नीति-सूक्ति कोश

नीति-सूक्ति-कोश

हिन्दी-सुकवियों की जीवन-पथ-प्रदर्शिनी मार्मिक सूक्तियों
का अपूर्व संग्रह

सम्पादक
डा० रामस्वरूप शास्त्री 'रसिकेश'
एम० ए० (हिन्दी, संस्कृत)
पी-एच० डी०, विद्यावाचस्पति
अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, हंसराज कालेज,
तथा
प्राध्यापक, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्राक्-कथन : डा० नगेन्द्र

सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली-७

प्रकाशक
[illegible] प्रकाशन
१६, यू० बी० बंग्लो रोड
दिल्ली ७

○

प्रथम संस्करण १९६८

○

मुद्रक
इण्डिया प्रिंटर्स, दिल्ली

समर्पण

अकथ्य भावनाओं सहित
कर्ममयी माता देवकी
तथा
धर्ममयी जाया-जननी ईश्वर देवी
के
कर-कमलों में
सादर समर्पित

प्राक्-कथन

प्रस्तुत कोश हिन्दी में अपने ढंग का एक रोचक प्रयास है जिसे हम हिन्दी-काव्य-मर्मज्ञों की सेवा में अर्पित कर रहे हैं। इसके सम्पादक डा० रामसरूप शास्त्री हिन्दी-साहित्य के अत्यन्त अनुभवी एवं वरिष्ठ प्राध्यापक हैं, जो देश-विभाजन से पूर्व १५ वर्ष तक डी०-ए० वी० कालेज, लाहौर, में अध्यापन करते रहे और गत २० वर्ष से हंसराज कालेज, दिल्ली, तथा दिल्ली विश्व-विद्यालय में उच्च स्तर का शिक्षण एवं अनुसन्धान का निर्देशन कर रहे हैं। हिन्दी-नीति-काव्य के अध्ययन में इनकी सहज रुचि है और इन्हें दिल्ली विश्वविद्यालय से 'हिन्दी में नीति काव्य का विकास'—शीर्षक शोध-प्रबन्ध पर पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त हो चुकी है। कोश-सम्पादन भी डा० शास्त्री का प्रिय विषय है और इनका 'आदर्श हिन्दी-संस्कृत कोश' निश्चय ही एक उप-योगी प्रकाशन है।

यह कोश-ग्रन्थ डा० शास्त्री के छह वर्ष के भगीरथ-परिश्रम का परिणाम है। इसके विहगावलोकन से स्पष्ट हो जाता है कि संग्रह-काव्यों के इतिहास में यह एक नूतन प्रयास है। सम्पादक ने हिन्दी के प्राचीन, मध्यकालीन और अर्वाचीन, प्रायः समस्त कवियों की विख्यात कृतियों का नीति-काव्य की दृष्टि से अध्ययन करने के पश्चात् इस कोश का निर्माण किया है, जिसमें अनेक कवियों के प्रकाशित तथा अप्रकाशित ग्रन्थों से संकलित आचार-व्यवहार-विषयक मार्मिक सूक्तियाँ, विषय-वर्णक्रम से कालक्रमानुसार प्रस्तुत की गई है। प्रत्येक सूक्ति के साथ उसके मूल ग्रन्थ, प्रणेता आदि का यथा-स्थान संकेत हैं जिससे कोश की उपयोगिता और भी बढ़ जाती है। मेरे विचार से यह कोश हिन्दी-साहित्य के क्षेत्र में एक सुन्दर प्रकाशन है जिसका न केवल साहित्यिक वरन् नैतिक मूल्य भी है। मैं इस अनुष्ठान की पूर्ति पर डा० शास्त्री का हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ।

वैशाखी, २०२५ वि०

डा० नगेन्द्र

भूमिका

विचारशील लोग सांसारिक पदार्थों को दो मुख्य विभागों में विभाजित किया करते हैं—जड़ और चेतन अर्थात् ज्ञानहीन और ज्ञानवान्। जड़ तो मस्तिष्क-हीन होने के कारण सोचने में समर्थ ही नहीं होता, परन्तु चेतन, मस्तिष्कयुक्त होने के कारण, अवश्य कुछ-न-कुछ सोचता ही रहता है। जिसकी बुद्धि जितनी उज्ज्वल होती है, वह उतनी ही अधिक अच्छी और दूर की बात सोचता है।

वह अपने वर्तमान का ही ध्यान नहीं करता, भविष्य का भी भव्य बनाने का भरसक उद्योग करता है। नन्ही-सी चींटी आज के लिए ही अनाज एकत्र नहीं करती, भावी समय के लिए भी संग्रह करती है। प्राणि शास्त्र की पुस्तकें पढ़ने से प्रतीत होता है कि अनेक पशु पक्षी आगामी दिनों के लिए अपना-अपना खाद्य बहुत सावधानी से और गुप्त स्थानों पर संगृहीत करते हैं।

ये अवर जीव हैं, उन्हें खान-पान के पदार्थों के संग्रह की ही सूझती है। परन्तु मनुष्य अपने बौद्धिक विकास के कारण उन से बड़ा है। अतः वह खाद्य-पेय पदार्थों का ही नहीं, ज्ञान का भी संचय करता है जो उसके जीवन को समृद्ध, सुखी तथा सानन्द बनाने का प्रमुख साधन है।

जब मनुष्य लिखना नहीं जानता था तब उत्तम विचारों तथा अनुभवों को कण्ठस्थ कर लेता था जो भविष्य में उसे मार्ग प्रदर्शित करते थे। परन्तु जब वह लेखन कला से अभिज्ञ हो गया तो उसने उपयोगी विचारों को ग्रन्थों में संगृहीत करना आरम्भ कर दिया।

इस प्रकार सूक्ति-संग्रह का कार्य प्राचीनकाल से चला आ रहा है। जो लोग वेदों को अपौरुषेय नहीं मानते, उनके विचार में वेद प्राचीन ऋषि मुनियों द्वारा समय-समय पर और विभिन्न स्थानों पर प्रणीत दिव्य सूक्तियों के संग्रह हैं, जो मनुष्यों के पथ प्रदर्शन के लिए समय-समय पर किए गए। पहले वे सुने सुनाए ही जाते थे, अतः श्रुति कहलाते थे, पश्चात् लिपिबद्ध किये जाने के कारण सुपाठ्य भी बन गये। वैदिक संहिताओं में यद्यपि प्रमुखता आध्यात्मिक और धार्मिक विषयों को दी गई है तथापि उन में प्रायः प्रत्येक प्रकार की नीति न्यूनाधिक मात्रा में उपलब्ध हो ही जाती है। जैसे—

समानी प्रपा सह वो अन्नभागः, समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि।
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः॥ अथर्व० ३।३०।६।

अर्थात् तुम्हारे प्याऊ समान हों, तुम मिल कर भोजन करो; तुम्हें समान स्नेह-पाश में बांधता हूँ। ऐसे मिल—बैठ कर यज्ञ करो जैसे अरे रथ-चक्र की नाभि के चारों ओर मिले हुए रहते है।

जहाँ आज वेद, संहिताओं के रूप में भी उपलब्ध हैं, वहां उनमें से भी अधिक उपयोगी मन्त्रों को चुन कर विभिन्न संग्रहों का रूप दिया गया है। विश्वबन्धु-कृत 'वेद सार' प्रियव्रत-प्रणीत 'वैदिक उद्यान के चुने हुए फूल' तथा 'वैदिक विनय' 'वेदसन्दोह' आदि अनेक वैदिक संग्रह बाजार में सहज सुलभ है।

वैदिक साहित्य के पश्चात् प्राचीनकाल में भी संस्कृत के सूक्ति-संग्रह अवश्य किए गए होंगे, परन्तु खेद है कि बहुत प्राचीन सूक्ति-संग्रह आज उपलब्ध नहीं हैं। किसी अज्ञात कवि द्वारा ग्यारहवीं शती में संगृहीत 'कवीन्द्र-वचन समुच्चय' ही आज संस्कृत का प्राचीनतम सुभाषित-संग्रह माना जाता है। इसके पश्चात् तो संस्कृत में सूक्ति-संग्रहों का कार्य निरन्तर होता ही रहा है। तेरहवीं शताब्दी में श्रीधरदास ने 'सदुक्तिकर्णामृत' (वा सूक्तिकर्णामृत) तथा जल्हण ने 'सूक्तिमुक्तावली', चौदहवीं शती में शार्गधर ने 'शार्गधरपद्धति', सूर्य कलिंगराय ने 'सूक्तिरत्नहार' तथा रूपगोस्वामी ने 'पद्यावली', पन्द्रहवीं शताब्दी में वल्लभदेव (काश्मीरी) ने 'सुभाषितावली', सत्रहवीं शती में वेणीदत्त ने 'पद्यवेणी', लमक्ष्मणभट्ट अंकोलकर ने 'पद्य-रचना', हरिकवि ने 'सुभाषित हारावलि' और हरिभास्कर ने 'पद्यामृत तरंगिणी' नामक संग्रह प्रस्तुत किए। वर्तमान शताब्दी में 'व्याख्यानमाला', 'सुभाषित रत्नभाण्डागार,' 'सुभाषित रत्नाकार' आदि नामों से कई संस्कृत-सूक्ति-संग्रह प्रकाशित हुए हैं। इन संग्रहों में नवरस, षड्ऋतु, नखशिख आदि विषयों के अतिरिक्त नीति-सूक्तियों भी पर्याप्त संख्या में प्राप्त होती हैं। इन में सचित सामग्री की विपुलता, विविधता और मनोहरता को देख पाठक संकलनकर्त्ताओं की अध्ययन-शीलता, भिन्न-रुचिता और सहृदयता की प्रशंसा करने पर विवश हो जाता है। उदाहरणार्थ—

> गुणेषु यत्नः क्रियतां किमाटोपैः प्रयोजनम्।
> विक्रीयन्ते न घण्टाभिर्गावः क्षीर—विवर्जिताः॥
>
> (जल्हणः सूक्तिमुक्तावली)

अर्थात् गुण-प्राप्ति के लिए प्रयास कजिये; आडम्बरों से कुछ भी सिद्ध नहीं होगा। दुग्धरहित गौएँ, गले में बांधी हुई घंटियों के बल पर, नहीं बिका करतीं।

स्मरण रहे कि इन सुभाषित-संग्रहों में ऐसे-ऐसे कवियों की सूक्तियाँ भी विद्यमान ह जिनके नाम-धाम का उल्लेख अन्यत्र कहीं भी नहीं मिलता।

पालि-साहित्य मे ऐसा कोई भी काव्य दृष्टिगत नही होता जिसमे अनेक कवियो की सूक्तियो का संग्रह हो। कारण, पालि-साहित्य का ९९ प्रतिशत मात्र बुद्ध वचन संग्रह तथा उसकी व्याख्या मात्र है। हाँ, महात्मा बुद्ध की सूक्तियो के सुन्दर संग्रह धम्मपद, सुत्त निपात, सिगाल सुत्तम् आदि नामो से प्रख्यात है। धम्मपद तो, डा० ए० बी० कीथ के मतानुसार-भारतीय साहित्य का सब से बड़ा नीति-काव्य ही है। उदाहरण अवलोकनीय है—

न पुप्फगन्धो पटिवातमेति न चन्दन तगर मल्लिका वा।
सतं च गन्धो पटिवातमेति, सब्बा दिसा सप्पुरिसो पवाति॥

अर्थात् पुष्प, चन्दन, तगर या चमेली मे से किसी की भी सुगन्ध वायु के विपरीत नही जाती, परन्तु सज्जनो का यश पवन के प्रतिकूल भी प्रसृत होता है। वह तो सभी दिशाओं को सुगन्धित कर देता है।

पालि के पश्चात् महाराष्ट्री, शौरसेनी आदि प्राकृतो मे साहित्य सृष्टि हुई। प्राकृत भाषा के दो प्राचीन संग्रह सुप्रसिद्ध है—'गाहा सत्तसई' (गाथा-सप्तशती) और 'वज्जालग्ग'। 'गाहा सत्तसई' का संग्रह राजा सातवाहन (नामान्तर हाल) ने १०० तथा ७०० ई० के मध्य मे किसी समय किया। इस शृंगार प्रधान मुक्तक-संग्रह ने संस्कृत की गोवर्द्धन-सप्तशती, हिन्दी की बिहारी सतसई आदि को अत्यधिक प्रभावित किया है। इसमे सुन्दर नीति-पद्य यत्र तत्र विकीर्ण है। उदाहरणार्थ दुष्टजन के स्वभाव की श्लेष तथा उपमा से युक्त सुन्दर अभिव्यक्ति या की गई है—

वसइ जहिं चेअ खलो पोसिज्जन्तो सिणेहदाणेहि।
तं चेअ आलअं दीवओ व्व अइरेण मइलेइ॥

(गाहा सत्तसई)

स्नेह (प्रेम, तेल) के दान से पोषित दुष्ट जिस घर मे रहता है, उसी को दीपक के समान शीघ्र ही मलिन कर देता है।

'वज्जालग्ग' महाराष्ट्री प्राकृत का द्वितीय महत्वपूर्ण संग्रह ग्रन्थ है जिसे जयवल्लभ ने संगृहीत किया। धर्म, अर्थ तथा काम के प्रतिपादक इस संग्रह मे नीति विषयक अनेक सुन्दर सूक्तियाँ उपलब्ध होती हैं। यथा—

'अपना हित करना चाहिए और यथासम्भव पराया भी हित करना चाहिए परन्तु जहाँ प्रश्न अपने और पराये हित मे चुनाव का आ पड़े वहाँ अपना ही हित करना चाहिए।'

(सत्यप्रसाद अग्रवाल, प्राकृत विमर्श, भूमिका)

प्राचीन ग्रंथ भण्डारो मे प्राकृत के अनेक सुभाषित-संग्रह ढूँढे जा सकते है। जोधपुर के पुरातत्त्व मन्दिर मे 'सुभाषित गाथा सटीक त्रिपाठ' नामक

एक सुभाषित-संग्रह हमारी दृष्टि से गुजरा। उस हस्तलिखित पुस्तिका के मध्य में प्राकृत के सुभाषित हैं, ऊपर संस्कृत में टीका और नीचे टिप्पणियाँ मुख्य विषय श्रृंगार है।

प्राकृत-सूक्तियों के संग्रह की यह प्रथा आज भी विद्यमान है। आधुनिक 'प्राकृत सुभाषित संग्रह'[१] तथा 'सूक्तिसरोज'[२] में प्राकृत-नीति-काव्य के सुन्दर निदर्शन उपलब्ध होते हैं। जैसे—

> निहणंति धणं धरणीयलं मिइय जाणि ऊण किविण जणा।
> पायालं गन्तव्वं ता गच्छ अग्गठाणं पि॥

(प्राकृत सुभाषित संग्रह, पृ० ४३)

अर्थात् कृपण जन भूमि खोद कर उसमें अपनी सम्पत्ति गाड़ देते हैं। मानो उन्हें नरक में जाने का निश्चय होता है, इसलिए अपनी सम्पदा पहले ही वहाँ पहुँचा देते हैं।

अपभ्रंश भाषा को हम शताब्दियों से विस्मृत कर बैठे थे, परन्तु धन्य है कि कुछ समय पूर्व हमें उसकी पुनः सुध आई। गत कुछ दशकों में उसकी कृतियों तथा सूक्तियों के कई संग्रह प्रकाशित हुए हैं जिनमें प्रमुख ये हैं—"बौद्ध गान और दोहा[३], पुरानी हिन्दी[४], अपभ्रंश पाठावली[५], अपभ्रंश दर्पण[६], और हिन्दी काव्य धारा[७]। इन संग्रह-ग्रन्थों में नीति, श्रृंगार, वीरता आदि अनेक विषयों की सैकड़ों सूक्तियाँ संकलित की गई हैं। उदाहरणार्थ—

> कहिं ससहरु कहिं मयरहरु, कहिं वरिहिणु कहिं मेहु।
> दूर-ठिआहं वि सज्जणहं, होइ असड्ढलुढ नेहु॥

(हेमचन्द्र)

'चन्द्र कहाँ है और समुद्र कहाँ, मेघ कहाँ है और मोर कहाँ! सज्जन एक दूसरे से चाहे दूर रहें, उनका अनुराग तो निराला ही होता है।

आज से लगभग एक सहस्र वर्ष पूर्व हिन्दी भाषा का उद्गम, अपभ्रंश भाषा से हुआ और क्रमशः उसमें काव्य-रचना होने लगी। तत्पश्चात् उन काव्यों में से चुनी हुई सूक्तियों के संग्रह भी किये गये। बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, पंजाब आदि के पुस्तकालयों, संग्रहालयों तथा ग्रंथ-

---

१. सं०, प्रो० वी. एम. शाह, सूरत १९३५ ई०।
२. सं०, मुनि विनयचन्द्र, रतलाम, १९९६ वि०।
३. सं० महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री।
४. सं० पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी।
५. प्रकाशक, गुजरात वर्नेकूलर सोसाइटी, अहमदाबाद।
६. सं० जगन्नाथ राय शर्मा।
७. सं० राहुल सांस्कृत्यायन।

भण्डारों में सुरक्षित संग्रह-ग्रन्थों की विपुल संख्या को देख कर मनुष्य चकित हो उठता है। उनका विवरण प्रस्तुत करने का यहाँ न समय है, न स्थान। संकेत के लिए इतना ही पर्याप्त होगा कि शोधार्थी लोग उनका संक्षिप्त विवरण नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टों तथा राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज रिपोर्टों (भाग १-४) से सहज ही प्राप्त कर सकते हैं।

यह तो हुई हस्तलिखित सूक्ति संग्रहों की बात। इनके अतिरिक्त इस शताब्दी में जब से देश में शिक्षा का विधिवत प्रसार आरम्भ हुआ, संग्रह-ग्रन्थों की बाढ़ का आना स्वाभाविक ही था। विद्यार्थियों को विभिन्न कवियों के सम्पूर्ण ग्रन्थ पढ़ाना असम्भव था। अतः अनेक प्राचीन-नवीन कवियों के काव्यांशों के सुन्दर संग्रह प्रस्तुत किये गये। छात्रोपयोगी संग्रहों के अतिरिक्त हिन्दी-प्रेमियों के लिए भी कई विद्वानों ने अनेक सुन्दर काव्य-संग्रह प्रस्तुत कर प्रकाशित कराए। मिश्रबन्धुओं के 'ग्रन्थ साहित्य' में अनेक प्राचीन हिन्दी कवियों की वाणियाँ संगृहीत हैं। 'शिवसिंह सरोज' में भी अनेक प्राचीन कवियों की सूक्तियों की बानगी देखी जा सकती है। वियोगी हरि की 'संतवाणी' तथा 'संत सुधासार', परशुराम चतुर्वेदी का 'सूफी काव्य संग्रह' गणेशप्रसाद द्विवेदी के 'हिन्दी के कवि और काव्य' तथा 'हिन्दी प्रेम गाथा काव्य संग्रह', रामनरेश त्रिपाठी की 'कविता कौमुदी' आदि अनेक उपयोगी काव्य संग्रह पिछले कुछ वर्षों में प्रकाशित हुए हैं।

प्रस्तुत संग्रह

अनेक वर्षों से कई उत्साही विद्यार्थी मुझसे किसी ऐसे संग्रह-ग्रन्थ का नाम पूछते आये हैं जिसमें से अपेक्षित विषयों की सूक्तियाँ चुन कर वे अपने निबन्धों, व्याख्यानों तथा वाद-विवादों को रोचक, प्रभावशाली और पुरस्कार्य बना सकें। परन्तु, अन्यविध संग्रह तो बहुत थे, तथाविध एक भी नहीं। विवश होकर मौन रहना पड़ता परन्तु ऐसे संग्रह की कमी कलेजे में काँटे की तरह कसकती रही। वर्षों बीत गये परन्तु, विविध व्यस्तताओं के कारण, इस ओर ध्यान न दे सका। अन्त में एक बात ऐसी हुई जिसने मुझे इस भागीरथ-प्रयत्न सदृश कार्य के लिए कटि-बद्ध कर ही दिया। वह बात थी मेरे शोध-प्रबन्ध का प्रकाशन।

आज से छः वर्ष पूर्व जब मेरा शोध प्रबन्ध 'हिन्दी में नीतिकाव्य का विकास' प्रकाशित होकर विद्वानों की दृष्टि में आया तो उनमें से अनेक ने यह उपयोगी सुझाव दिया कि यदि इसमें प्रसंगवश उद्धृत सहस्रों सूक्तियों को उपयुक्त क्रम में संकलित कर दिया जाय तो हिन्दी-प्रेमियों का अपूर्व हित होगा। कारण, उक्त शोध प्रबन्ध के प्रणयन में प्रकाशित नीति-काव्यों का ही अवलम्ब नहीं लिया

गया था, उन दर्जनों हस्तलिखित नीति-काव्यों से भी सहायता ली गई थी, जो देश के विभिन्न भागों में अनेक पुस्तकालयों, संग्रहालयों, मन्दिरों तथा साहित्य-प्रेमियों के घरों में सुरक्षित पड़े थे और तब तक कहीं से भी प्रकाशित न हो पाये थे। सुझाव सुन्दर भी था, सर्व-हितकर भी; अतः अनायास ही हृदयगंम हो गया। परन्तु, जब उस पर कुछ विचार किया तो ऐसे लगा कि वह संकलन उपयोगी होता हुआ भी अधूरा ही होगा। कारण मेरे शोध-प्रबन्ध का काल-क्षेत्र हिन्दी के आरम्भ से सं. १९०० वि. तक ही था परन्तु सं० १९०० से लेकर अब तक सैंकडों हिन्दी-काव्य और दर्जनों नीति-काव्य प्रकाशित हो चुके हैं। उनके प्रणेताओं ने स्वकृतियों में गौण तथा मुख्य रूप से सहस्त्रों नीति-सूक्तियाँ लिखी है जो पाठकों के हृदय को बरबस आकर्षित कर लेती हैं। इसलिए मुझे प्रतीत हुआ कि यदि मैं अपने सकलन को प्रचीन तथा मध्य-कालीन कवियों की सूक्तियों तक ही सीमित रखूँगा तो संग्रह हिन्दी-नीति-काव्य का यथार्थ प्रातिनिध्य न कर पायेगा। कारण, उससे पाठकों को यह तो विदित हो जायगा कि हिन्दी के प्रारम्भिक ९००वर्षों के कवि जीवन को सफल बनाने के लिए किन उपायों को आवश्यक मानते थे, परन्तु यह अज्ञात ही रहेगा कि गत सवा सौ वर्षो में भारतवासियों के समक्ष कौन-कौन-सी समस्याएँ आईं और हिन्दी-कवियों ने उनके क्या-क्या समाधान प्रस्तुत किये। एक बार तो यह विचार भी उठा कि जब हम रहते वर्तमान में ही है तो अतीत कालीन सूक्तियों के संग्रह का उपयोग ही क्या? परन्तु अधिक विचार से विदित हुआ कि चाहे प्रत्येक युग की कुछ समस्याएं अपनी ही होती है, तथापि अनेक समस्याएं सर्वयुगीन और सर्वकालीन भी होती हैं। उन्हें सुलझाने के लिए हमारे कवि-मनीपियों ने जो कुछ लिखा, वह वस्तुतः पठनीय ही नहीं, संग्रहणीय और मननीय भी है। यह सोच कर यही निश्चय किया कि इस कोश में प्राचीन-नवीन सभी सुकवियों की मनोहर सूक्तियों को सगृहीत करना समीचीन होगा। इसी विचार से गत कई वर्षों में मैंने अनेक पुस्तकालयों में सैंकड़ों प्राचीन-नवीन काव्यों के पन्ने पलटे और जो उपयोगी सूक्तियाँ उपलब्ध हुई उन्हें एकत्र करता रहा। जब सैंकड़ों विषयों की सहस्रों सूक्तियाँ संगृहीत हो गईं तो उन्हें क्रम-बद्ध करने का विचार उठा। पहले तो यह विचार आया कि उन्हें उसी क्रम से सँजोया जाये जिस क्रम से हिन्दी-नीति काव्यों का विवेचन स्व-शोध-प्रबन्ध में किया था। अर्थात् सभी सूक्तियों को वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक आदि वर्गों में विभाजित कर दिया जाय। परन्तु पर्याप्त सोच-विचार के बाद-विदित हुआ कि पाठकों का अधिक हित इसी बात में निहित है कि सूक्तियों के विषयों को वर्णमाला के क्रमानुसार व्यवस्थापित कर दिया जाय और उस विषय की सभी सूक्तियाँ यथासम्भव काल-क्रमानुसार उस शीर्षक के नीचे संकलित कर दी जायँ। इसलिए इस संग्रह ने कोश-का-सा रूप धारण कर लिया है और नाम भी इसका तदनुसार

ही रखा गया है। आशा है, पाठकों को इससे बहुत सुविधा रहेगी और वे अपेक्षित विषय की सूक्तियों को तुरन्त ढूंढ कर उनके अध्ययन और मनन से स्व-समस्याओं के समाधान में सहायता पा सकेंगे।

कोश की उपयोगिता के सम्बन्ध में मुझे कुछ भी कहने का अधिकार नहीं है। वस्तुतः यह कोश मेरा है भी नहीं। है उन्हीं सैकड़ों प्राचीन-नवीन सुकवियों का जिनकी जीवन-पथ प्रदर्शक महती सूक्तियाँ इसमें संगृहीत हैं और जिनके प्रति मेरे ही समान समस्त पाठकों को भी सच्चे हृदय से आभार प्रकट करना चाहिए। मेरा काम तो केवल उस तितली-सा ही रहा है जो कुसुमित उद्यान में भ्रमण करता हुआ सुमन-सञ्चय के प्रलोभन को संवरण नहीं कर सका। हाँ, इतना अवश्य किया है कि प्रत्येक सूक्ति के साथ उसके प्रणेता, पुस्तक आदि का परिचय यथासम्भव दे दिया है ताकि पाठक अपने प्रिय कवियों की पुस्तकों की बानगी का भी यथासमय रसास्वादन कर सकें। इतनी धृष्टता और भी की है कि, कवि न होते हुए भी, कुछ स्वरचित सूक्तियाँ, इस कोश में यथास्थान समाविष्ट कर दी हैं। कवित्व की दृष्टि से ऐसी-वैसी होती हुई भी वे यदि पाठकों का कुछ पथ प्रदर्शन कर सकीं तो मैं अपनी धृष्टता को क्षम्य ही मानूँगा।

प्रत्येक मानवीय कृति में कुछ-न-कुछ दोष, सतर्कता के बावजूद, रह ही जाते हैं। इस कोश की कई भूलें, कई पुनरुक्तियाँ मेरे सामने तब आईं जब इसका अन्तिम रूप मेरे सामने आया। मुद्रण-सम्बन्धी भी कई त्रुटियाँ इसमें रह ही गई हैं। उन सब ज्ञाताज्ञात भूलों के लिए क्षमा-याचना करता हुआ मैं विद्वद्वृन्द से निवेदन करता हूँ कि वे उस कवि की निम्नांकित सूक्ति—

दोषान्निरस्य गृह्णन्तु गुणमस्या मनीषिणः।
पांसूनपास्य मञ्जर्या मकरन्दमिवालयः॥

के अनुसार मिलिन्दवत् अरविन्द के मकरन्द का पान और पराग का परित्याग कर मुझे मेरी त्रुटियों से परिचित कराएँ तथा उन्हें अमूल्य सुझाव भेजें जिनसे प्रस्तुत ग्रन्थ का आगामी संस्करण अधिक निर्दोष और उपयोगी हो सके।

अन्त में एक बार फिर उद्धृत सूक्तियों के रचयिताओं तथा श्रद्धेय डा० नगेन्द्र के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हुआ प्रकाशक का भी आभार मानता हूँ जिनके सहयोग से यह कोश प्रस्तुत रूप में प्रकाशित हो सका।

डी—१४१, नया राजेन्द्र नगर, नयी दिल्ली
वैशाखी २०२५ वि

विनीत
रामसरूप

नीति-काव्य का महत्त्व

१. पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि जलमन्नं सुभाषितम् ।
मूढ़ैः पाषाणखण्डेषु रत्न—संज्ञा विधीयते ।

—अज्ञात कवि

पृथिवी पर रत्न तो तीन ही हैं—जल, अन्न और सुन्दर वचन; परन्तु मूढ़ लोग पत्थर के टुकड़ों को ही रत्न कहा करते हैं ।

२. कीरति भनिति भूति भलि सोई । सुरसरि सम सब कहँ हित होई ।।

—गोस्वामी तुलसीदास : राम चरित मानस

३. काव्य-कुसुम-कलिका दे कर ही, कला-केतकी है कृतकार्य ।
किन्तु कवित्व-रसाल, सुफल की आशा है तुझसे अनिवार्य ।।

—मैथिली शरण गुप्त : हिन्दू

४. कविर्मनीषी का कर्तव्य सनातन,
जीवन-मंगल का करना सुख-सर्जन,
श्री सुषमा, रस महिमा, स्वर गरिमा से,
कुसुमित कूजित रखना जन-भू प्रांगण ।

—सुमित्रानन्दन पन्त : लोकायतन

५. जो सुप्त चेतना जगा सके, उसको ही मैं कवि कहता हूँ ।
अन्तर तम को जो भगा सके, उसको ही मैं रवि कहता हूँ ।।

—सागर मल : कुछ कलियाँ कुछ फूल

संकेत-सारणी

(क) लेखक

अज्ञेय=श्री हीरानन्द सच्चिदानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय'
उ० शं० भ०=श्री उदय शंकर भट्ट
गि० द० शु०=श्री गिरिजा दत्त शुक्ल
(ठा०) गो० श० सिं०=(ठाकुर) गोपाल शरण सिंह
चाचा०=चाचा हित वृंदावन दास
दिनकर=श्री रामधारी सिंह 'दिनकर'
दी० द० गि०=दीन दयाल गिरि (बाबा)
द्वा० प्र० मि०=श्री द्वारका प्रसाद मिश्र
निराला=श्री सूर्य कान्त त्रिपाठी 'निराला'
नीरज=श्री गोपाल दास 'नीरज'
प० रा० च०=श्री परशुराम चतुर्वेदी
पेमी=शाह बरकत उल्लाह 'पेमी'
प्र० ना० मि०=पं० प्रताप नारायण मिश्र
प्रसाद=श्री जयशंकर प्रसाद
बच्चन=डा० हरवंशराय 'बच्चन'
बा० कृ० श० न०=पं० बाल कृष्ण शर्मा 'नवीन'
म० प्र० द्वि०=आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी
मा० ला० च०=पं० माखन लाल चतुर्वेदी
मै० श० गु०=श्री मैथिली शरण गुप्त
रसिकेश=डा० रामचन्द्र शास्त्री 'रसिकेश'
रा० च० शु०=पं० रामचन्द्र शुक्ल (आचार्य)
रा० च० उ०=पं० राम चरित उपाध्याय
रा० न० त्रि०=पं० राम नरेश त्रिपाठी
वि० ना० प्र० मि०=पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
व्र० र० दा०=श्री व्रज रत्न दास
स० (सै०) अ० अ० मीर=सय्यद अमीर अली 'मीर'
सि० श० गु०=श्री सियाराम शरण गुप्त
सु० न० पं०=श्री सुमित्रानन्दन पन्त
मो० ला० द्वि०=श्री मोहन लाल द्विवेदी
हरिऔध=श्री अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

(ख) ग्रन्थ

अकबरी०=अकबरी दरबार के हिन्दी कवि
आ० क०=आधुनिक कवि
उ० रा० दू०=उदैराज का दूहा
कलि०=कलि चरित्र वेली
जायसी के परवर्ती=जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य
तु० सू० सु०=तुलसी सूक्ति सुधा
दी० द० गि० ग्रं०=दीन दयाल गिरि ग्रंथावली
द्वि० का० मा०=द्विवेदी काव्य माला
पृ० रा० रा०=पृथ्वी राज रासो (उदयप्रदीप)
भा० ग्रं० दू० खं०=भारतेन्दु ग्रंथावली दूसरा खंड
रा० च० मा० गु०=राम चरित मानस गुटका (गीता प्रेस)
विवेक०=विवेक पत्रिका वेली
संत दादू...=सन्त दादू और उनकी वाणी
सू० का० सं०=सूफी काव्य संग्रह
हि० का० को०=हिन्दी काव्य की कोकिलाएँ
हिं० के० क०=हिन्दी के कवि और काव्य
हिं० जै० सा० सं० इ०=हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास
हिं० नी० का० वि०=हिन्दी नीति काव्य का विकास
हि० व० वि=हिम्मत वहादुर विरुदावली

(ग) फुटकल+

ना० प्र० स०=नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
याज्ञिक संग्रह=ना० प्र० स० काशी के पुस्तकालय में हस्तलिखित ग्रन्थों का विशेष संग्रह।
सं०=सम्पादक

+ हस्तलिखित पुस्तकों तथा उनके लेखकों के परिचय के लिए सम्पादक का शोध-ग्रन्थ 'हिन्दी में नीति काव्य का विकास सहायक है।'

विषय-सूची

अँग्रेज

भीतर भीतर सब रस चूसै,
हँसि हँसि कै तन मन धन मूसै ॥
जाहिर बातन में अति तेज,
क्यों सखि सज्जन? नहिं अँग्रेज ॥

(भा. ग्रं. द्वि., ना. प्र. स., पृ. ८११)

अँग्रेज के प्रति

स्वयं जगा कर नूतन भाव,
दिखलाओ न हठीले हाव।
मेटो उनकी क्षुधा नितान्त,
तभी रहेंगे हम तुम शान्त ॥
निज शासन सेवा का मोल,
लेते हो जो तुम जी खोल।
दे कर उसे बाप रे बाप,
बिके जा रहे हैं हम आप ॥
मरे नशों के मारे मुल्क,
पर उन से मिलता है शुल्क।
शिक्षा और स्वास्थ्य के अर्थ,
बजट बना रहता असमर्थ ॥
हम निश्चित हैं कृत संकल्प,
लेंगे क्या स्वराज्य से अल्प।
और न पिछड़ो कर के देर,
हो कृतकार्य धरोहर फेर ॥

(मै. श. गु. : हिन्दू, पृ. १८०-५)

अँग्रेजी का मोह

आकाश-बेल अंग्रेजी छाई जन मन पादप पर,
जीवन-विकास-क्रम जिससे कुंठित हो रहा निरन्तर!
इस पीढ़ी के मस्तक से कब छूटेगा यह लांछन?
इतिहास पुकार कहेगा जन-घातक थे नेतागण!

(सु. नं पं : लोकायतन. पृ. १६६)

अंतर की पीड़ा

मन की आग आँखों के आँसू बनकर कर बह जाती है,
किन्तु आह बन कर अन्तर की पीड़ा रह जाती है।

(बुद्धमल : आवर्त, पृ. ११७)

अतर्ल

अनिवार हो रे जन भू-जीवन, बाह्य शक्ति का विश्व जगत में क्षय,
आत्म बोध से करना युग चारण, मनुज-सत्य विजयी होना निश्चय।
(सु. न. प. लोकायतन, पृ. ५६१)

अन्तर्राष्ट्रीयता और हिंसा

अन्तर्राष्ट्रीयता असम्भव
जब तक मन में खूंख्वारी है,
सामाजिक कल्याण न होगा
जब तक हिंसा हत्यारी है।
(बा. कृ. श. न. हम विषपायी जनम के, पृ. ६)

अन्धकार आन्तरिक

धूप का ऐसा तना वितान, अँधेरा कठिनाई में फँसा,
भागने को न मिली जब राह, आदमी के भीतर जा धँसा।
(दिनकर चक्रवाल, पृ. २७३)

अंधता

एक काली होती अन्धता, ज्योति से जो पनती है दूर।
एक उजली होती जो सदा, मान से हो रहती है चूर॥
(दिनकर चक्रवाल, पृ. २७४)

अंधविश्वास

निबल, निरुद्यम, निधनी, नास्तिक, निपट निरास।
जड़, कादर करि देतु है, नरहिं अन्धविश्वास॥
(वियोगीहरि वीर सतसई, पृ. १०३)

अकर्मण्यता

न्हाना धोना, वस्त्र बदलना, भोजन चबा-चबा कर खाना।
बाल काढ़ना क्रीम मसलना घर में ऊपर नीचे जाना॥
यही काम क्या कम है भाई, इन में ही आफत आती है।
इन के ही 'प्रेशर' के मारे सेहत नहीं सुधर पाती है॥
(गोपाल प्रसाद व्यास चले आ रहे हैं, पृ. ३७)

अगुणज्ञ

१ कर लै, सूँघि, सराहि हूँ, रहे सबै गहि मौनु।
गन्धी अन्ध, गुलाब को, गवई गाहकु कौनु॥
(बिहारी रत्नाकर, पृ. २५७)

२. ल्यायौ कछू फल मीठो विचारिकै, दूरि तें दौरे सबै ललचाने ।
हाथ लै चाखि कै राखि दयौ निसवादिल बोलि सबै अलगाने ॥
'दास जू' गाहक चीन्ह्यो न लीन्ह्यो तूं नाहक दीन्ह्यो बगारि दुकानै ।
रे जड़ जौहरी गांव गंवारे में कौन जवाहर के गुन जानै ॥

(भिखारीदास ग्रन्थावली, १, पृ. ८०)

अछूत

१. बाल-बाल विके हैं बेहाल रहते हैं सदा,
इनके बवाल आज भी गये न कूते है।
तो भी काठ का सा है कलेजा हिन्दुओं का बना,
प्यार के न आँसू वंद लोचनों से चूते हैं॥
'हरि औध' छलछंद छोड़ो लो बदल आँखें,
छीजी जाती जाति के ए सच्चे बलबूते हैं।
छाती से लगा लो कौन छूत इन में ही लगी,
छूते क्यों नहीं हो ये अछूत तो अछूते हैं॥

(मर्मस्पर्श : पृ. १६४)

२. सुर-सरि औ अन्त्यज दुहूँ, अच्युत-पद-संभूत ।
भयौ एक क्यों छूत औ, दूजो रह्यौ अछूत ?

(वियोगी हरि : वीर सतसई, पृ. ९६)

अछूत : उद्धार

१. परम भागवत ऊँचे आर्य,
कहते हैं अपने आचार्य—
"जाति-पाँति पूछे नहीं कोय,
हरि को भजै सो हरि को होय।"
अपने विभु के बाहु विशाल,
शबरी हो या गुह चांडाल।
सोख सूर्य सम सारे पंक,
भर लेते हैं उसको अंक॥
कुत्ते-बिल्ली से भी दूर,
रक्खें अपनों को जो क्रूर,
क्या अचरज यदि उनको अन्य,
समझें घृण्य, असभ्य, जघन्य॥
बने विधर्मी वे अनजान,
मुसलमान किं वा क्रिस्तान,

तो हो जाते हैं सुस्पृश्य,
हा दैव क्या दारुण दृश्य !
दलित बन्धु, शुचिता के दूत,
उठो कि छू मन्तर हो छूत।
करो समुन्नति का प्रारम्भ,
मिटे द्विजों का मिथ्या दम्भ।
करो हमारा क्यों न विरोध,
पर स्वधर्म पर करो न क्रोध।
रहो स्वच्छता सहित सुदृश्य,
मलिन भाव ही है अस्पृश्य।
जन्म जहाँ चाहे दे दैव,
निज-वश हैं गुण-कर्म सदैव।
पङ्कज-रूप रंग या गन्ध
रखते नहीं पंक सम्बन्ध।
करो अछूतों का उद्धार,
उन्हें सिखाओ शुद्धाचार॥

(मै श गु हिन्दुत्व, पृ १०५—१११)

२ मत छूना हम तो अछूत हैं!

हम स तो पशु भी अच्छे हैं, उनको छूना पाप नहीं;
लो पुचकार श्वान को चाह, भूल न छूना हमें कहीं!
निर्धन हैं, पवित्र कैसे हो? नहीं मिलगी मुक्ति हमें,
स्वर्ण कुटी म आप विचरना, हमें छोड दो विप्र यहीं!
क्या हो सकते हम सपूत हैं?
दूर रहो हम तो अछूत हैं!

(श्रीमन् नारायण रजनी से प्रभात का इकुर, पृ ४२ ३).

अछूत की आह

एक दिन हम भी किसी के लाल थे,
आख के तारे किसी के थे कभी।
बूंद भर गिरता पसीना देख कर,
था वहा देता घडा लोहू कोई॥ १॥
हाय! हम न भी कुलीनो की तरह,
जन्म पाया प्यार से पाले गये।
जो बचे फूले फले तब क्या हुआ,
कीट से भी नीचतर माने गये॥ २॥

जन्म पाया पूत हिन्दुस्तान में,
अन्न खाया औ' यहीं का जल पिया।
धर्म-हिन्दू का हमें अभिमान है,
नित्य लेते नाम है भगवान का ॥ ३ ॥

पर अजब इस लोक का व्यवहार है,
न्याय है संसार से जाता रहा।
श्वान छूना भी जिन्हें स्वीकार है,
है उन्हें भी हम अभागों से घृणा ॥ ४ ॥

जिस गली से उच्च कुल वाले चलें,
उस तरफ चलना हमारा दंड्य है।
धर्म ग्रंथों की व्यवस्था है यही,
या किसी कुलवान का पाखण्ड है ॥ ५ ॥

छोड़ कर प्यारे पुराने धर्म को,
आज ईसाई मुसलमां हम वने।
नाथ, कैसा यह निराला न्याय है,
तो हमें सानन्द सब छूने लगे ॥ ६ ॥

जो दयानिधि कुछ तुम्हें आये दया,
तो अछूतों की उमड़ती आह का।
यह असर होवे कि हिन्दुस्तान में,
पाँव जम जावे परस्पर प्यार का ॥

(रामचन्द्र शुक्ल).

अजितेन्द्रिय

पाछे सुष्क हुतीं जो सरिता। उत्पथ चलीं वहुत जल भरिता।
अजितेन्द्रिय नर ज्यों इतराइ। देह गेह धन संपति पाइ ॥

(नंददास ग्रन्थावली पृ. २८९).

अति

१. वहु सुत वहु रुचि वहु वचन, वहु अचार व्यवहार।
इनको भलो मनाइवो, यह अज्ञान अपार ॥ ६३ ॥

(तुलसीदास : सतसई, पृ. २३६)

२. अति दरिद्रता भू-पथ की वाधा, अति वैभव भी उन्नति-हित बंधन,
ज्ञान-दग्ध आध्यात्मिकता शापित, शक्ति-अन्ध भौतिकता मूर्त मरण !
(सु. नं. पं. : लोकायतन, पृ. ४६८

३ सघन जब हो उठता है तिमिर, दृष्टि कुछ देख न पाती है,
ज्योति भी हो कर सीमातीत, अपना ही उपजाती है।
(दिनकर चक्रवाल, पृ २७३)

अति ' का नाश

प्रकृति का नियम यही है एक,
कि अति का होगा ही विध्वंस।
(रांगेय राघव मेधावी, पृ २५३)

अतिथि ' और आतिथेय

आतिथेय म बड़ा अतिथि ही माना जाता,
आतिथेय ही सदा अतिथि को माथ नवाता।
(रामखेलावन वर्मा चन्द्रगुप्त मौर्य, पृ १४)

अतिथि—सत्कार

१ साईं इतना दीजिए, जामें कुटुंब समाय।
मैं भी भूखा न रहूँ, साधु न भूखा जाय॥—कबीर
(कविता कौमुदी, १, पृ. १६०)

२ जिहि घर साध न पूजियें, हरि की सेवा नाहिं।
ते घर मडहट सारषे, भूत बसैं तिन माँहि॥
(कबीर ग्रन्थावली)

३ जा दिन सन्त पाहुने आवत।
तीरथ कोटि सनान करैं फल जैसा दरसन पावत।
(सूरसागर, पृ १२०)

अतिथि-सेवा पदानुसार

मुनिहि सोच पाहुन बड नेवता। तसि पूजा चाहिअ जस देवता॥
(रा च मा गु पृ ३४६)

अत्याचार

१ मनुज में शक्ति मनुज में भक्ति,
जनार्दन का जन है अवतार।
वही जन यदि ले मन में ठान,
ध्वस्त हो जाय अत्याचार॥
(बलदेव प्रसाद मिश्र साकेत सन्त, पृ १४६)

२ अत्याचार सहन करने का कुफल यही होता है,
पौरुष का आतंक मनुज कोमल हो कर खोता है।
(दिनकर की सूक्तियाँ, पृ ११३)

अत्याचारी

स्थिर, गँभीर, चुप शान्त न रह सकता है अत्याचारी,
करता रहता है विनाश की अपने आप तयारी।
अपना ही वह अविश्वास सब से पहले करता है,
औरों के विश्वास—घात से मूढ़ व्यर्थ डरता है।

(रा. न. त्रि. : पथिक, पृ ६४)

अदालत : महँगी

'अ' आवहु 'दा' देहु सब, 'ल' लड़ि होहु तवाह।
'त' तसला बाजै बहुरि, यहै 'अदालत' चाह॥

(रामेश्वर करुण: करुण सतसई, पृ. ४७)

अ-दान :—का फल

फटे वसन तनहूं लट्यौ, घरि-घरि माँगत भीख।
विना दिये कौ फल यहै, देत फिरत यह सीख॥

(हेमराज : उपदेशशतक, दोहा ३१)

अदानी

साधन कु मत देत बातन सुमेर देत
रिन माँगे रोय देत कहाँ धौं कहतु हैं।
जाहि ताहि दुख देत बीच परै दगा देत
साधन कौं दोस देत ग्यान न लहत हैं।
घर मांझ गारी देत रन मांझ पूठ देत
सांझ को किवारी देत ऐसे निवहत हैं।
एते पर कहैं सब भैया कछु देत नाहिं,
भैया जू तो आठौ जाम देवोई करत है॥

(हिं. नी. का. वि. पृ. ६१०)

अधिकार

१. जाको जहँ अधिकार न कोई। निकटहि वस्तु दूरि है सोई।
मीन कमल के ढिग ही रहै। रूप रंग रस मधुलिह लहै॥

(नन्ददास ग्रंथावली, पृ. १६१)

२. अधिकार न सीमा में रहते,
पावस निर्झर से वे बहते।

(प्रसाद : कामायनी, पृ. २३८)

अधिकार : के अपात्र

जो हों लोभी पातकी, व्यसनी क्रूर गँवार ।
उन्हें कभी मत दीजिए, थोड़ा भी अधिकार ॥

(रुद्रदत्त मिश्र)

अधिकार रक्षा

अधिकार खो कर बैठ रहना यह महा दुष्कर्म है ।
न्यायार्थ अपने बन्धु को भी दण्ड देना धर्म है ॥

(मै० श० गु० जयद्रथवध, पृ० ५)

अधिकार सन्धि और विग्रह से प्राप्त

स्वल्पहु मिलि प्राप्त अधिकारा । करत मनुज निज-पर उपकारा ॥
रण-उपरान्त निखिल जग-राजू । करत विग्रहहु केर अकाजू ॥
पै हित हानिहु ते बढ़ि धर्मा । उचित न भय-वश तजब स्वकर्मा ॥

(द्वा० प्र० मि० कृष्णायन, पृ० ४६५)

अध्ययन

जब साहित्य पढ़ो तब पहले पढ़ो ग्रन्थ प्राचीन ।
पढ़ना हो विज्ञान अगर तो पोथी पढ़ो नवीन ॥

(दिनकर नये सुभाषित, पृ० ३८)

अनाथ-रक्षा

जो जन हो असहाय अनाथ, रक्खो उनके सिर पर हाथ ।
शिक्षित बनें अकिंचन बाल, निकलें वे गुदड़ी के लाल ॥

(मै० श० गु० हिन्दू, पृ० १२२)

अनासक्ति

भ्रमरी, इस मोहन मानस के मृदु मादक हैं रस भाव सभी,
मधु पीकर और मदान्ध न हो उड़ जा बस है अब क्षेम तभी ।
पड़ जाय न पंकज-बन्धन में निशि यद्यपि है कुछ दूर अभी,
दिन देख नहीं सकते सविशेष किसी जन का सुख भोग कभी ।

(मै० श० गु० साकेत, पृ० ३०१)

अनीति का फल

अनीति अपार नहीं कभी फले, चले न नौका जल बीच कागजी ।
चढ़े न हाँडी द्वय बार काठ की, मिटे न रखा कर साख आजिनी ॥

(सत्यदेव परिव्राजक अनुभव, पृ० १०)

अनुभव

१ अनुभव वह कंघी है जो मिलती मनुष्य को,
तब जब हो चुकता उसका सिर पूर्ण खाण्डु है ॥

(दिनकर नये सुभाषित, पृ० ४१)

२. सबसे बड़ा विश्वविद्यालय अनुभव है,
पर इसकी देनी पड़ती है फीस बड़ी।

(दिनकर : नये सुभाषित, पृ. ४१)

अनुशासन

अन्न देइ सीख देइ राखि लेइ प्राण जात।
राज बाप मोल लै करै जु पोपि दीह गात ॥
दास होय पुत्र होय शिष्य होय कोइ माइ।
सासना न मानई तो कोटि जन्म नर्क जाइ ॥

(केशवदास : रामचन्द्रिका, प्रकाश ९)

अन्न :—दान-महिमा

सहस कोटि कुंजर दियै, एक अरब गोदान।
कन्या कोटि विवाह दै, तदपि न अन्न समान ॥ २५ ॥

(उदैराज रा दूहा, पृ. ३९।४)

अन्न : दूषित का कुप्रभाव

दूषित अन्न खलन कर खायी। सकत न सुरहु प्रभाव बरायी ॥

(द्वा. प्र. मि : कृष्णायन, पृ. ४९०)

अन्न : महिमा

अहो अन्न है शक्तिशाली महा, लिये घूमता प्राणियों को कहाँ।
सभी सभ्यताएँ गुलामी करें, बनें मूक विद्वान पानी भरें ॥
जला पेट तो रोटियाँ खोजता, नहीं ज्ञान की गुत्थियां खोलता।
यही है समस्या बड़ी बापुरी, सभी को मिलें रोटियाँ दो खरी ॥

अन्याय : का कुफल

स्वेच्छा से जो न्याय नही देता है, उसको
एक रोज आखिर सब कुछ देना पड़ता है।

(दिनकर की सूक्तियाँ, पृ. १११)

अन्याय : का विरोध

न्याय पर आघात जब लगते कड़े,
सुप्त शव भी जाग हो उठते खड़े ॥

(बलदेव प्रसाद मिश्र : साकेत-सन्त, पृ. ८७)

अन्वेषी

रोटी को निकले हो ? तो कुछ और चलो तुम।
प्रेम चाहते हो ? तो मंजिल बहुत दूर है।

किन्तु, वही आलोक खोजने को निकले हो।
तो भितिका के पार क्षितिज पर चलते जाओ॥
(दिनकर नये सुभाषित, पृ ४२)

अपना

को चाहे अपनो तऊ जा सग लहियै पीर।
जैसे रोग सरीर तैं उपजत दहन शरीर॥ ६॥
(वृन्दसतसई, दोहा १३०)

अपना-पराया

अपने को दूसरा न देख,
दूसर को अपना न कह।
सपने को कल्पना न मान,
कल्पना को सपना न कह॥
(निराला बेला, पृ ३२)

अपमान

रहे न वह अपमान-स्मृति भी प्रभु स यही विनय है।
पूत निरादर भी मानी को खल जाना विषमय है।
(मै० श गु किसान, पृ ४०)

अपमान और सम्मान

सोहत बुध अपमान नर, नहीं नीच सत्कार।
भजे तुरगम लात तैं, नही खर पीठि सवार॥
(दो द नि प्र, पृ ७७)

अपयश

१ लोभवन्त मानुष जा औगुण अनन्त ता मे,
जाके हिये दुष्टता सो पापी-परधान है।
जा के मुख्य सत्य वानी सोई नर का निधानी,
जा को मनसा पवित्र सो तीरथ थान है।
जा मे सज्जन की रीति ताको सब ही सो प्रीति,
जा की भली महिमा सा आभरणवान है।
जा के है सुविद्या सिद्धि ताही के अटूट रिद्धि,
जाको अपजस, सो तो मृतक समान है।
(बनारसी विलास, पृ १९६)

२ मागि कीति कुर, नहि जयरा, घारत जे जग प्राण।
अयस दसन सम ते मनुज, जीवित मृतक समान॥
(द्वा प्र मि कृष्णायन, पृ २२८)

३. और आप जानते है, संभावित व्यक्ति की,
थोड़ी भी अकीर्ति मृत्यु-कष्ट से अधिक है।
(रामकुमार वर्मा : एकलव्य, पृ. २९०)

अपयश : कारण

अपयश मिलता है अपभाग्य से,
तदपि तू डर कुत्सित कर्म से।
हृदय ! देख कलंकित विश्व में,
विबुध भी बुध भी विधि से हुए॥
(रा. च. उ. : विधिविडम्बना)

अपराधी: दंडनीय

माता, पिता, गुरु हु किन होई। दंडनीय अपराधी जोई॥
(द्वा. प्र. मि. : कृष्णायन, पृ. ८१८)

अपव्यय

१. पट बाहर जेइ पाँव पसारा। जाड़ा कठिन अंत तेहि मारा॥
(नूरमुहम्मद)

२. दीप वार ले आज तू, दिन भर फूंक फुलेल।
काल अँधेरी रात में, बैठेगा बिन तेल॥
(सं. रामकवि : हिन्दी सुभाषित, पृ. ७)

अफसर

अफसर ऊँचे हैं वही, जिनका ऊँचा पेट।
आवें आफिस में सदा, ढाई घण्टा लेट॥
(काका हाथरसी : दुलत्ती, पृ. ९१)

अफीम

झुके रहै पल नींद आवति न पलकहूँ,
परति न कल घने दाम चैहै हाथ में।
चाहत खुराक मुख निकरै न वाक पेट,
रहत कबज रूमैं आवत औ जात में॥
सुकवि गुपाल फेरि छूटि न सकति नेक,
कलह मन लागे बिन मिले मरिजात में।
सूखे रहैं गात मुख कारू और हाथ एतें,
दुःख सरसात है अफीम के सुखात में॥
(गुपाल राय : दम्पतिवाक्य विलास, पृ. १४)

अबला

सत्ता हीं समाज की है, वह जो करे करे,
एक अबला का क्या, जिये जिये, मरे, मरे ॥
(मै श गु नहुष, पृ ३४)

अबला की प्रबलता

१ का नहिं पावक जरि मरै, का न समुद्र समाय ।
का न करै अबला प्रबल किहि जग काल न खाय ॥
(जोधराज हम्मीर रासो, पृ. ५४)

२ नहीं जानते तुम कि देख कर निष्फल अपना प्रेमाचार ।
होती हैं अबलाएँ कितनी प्रबलाएँ अपमान विचार ॥
(मै श गु पंचवटी, पद्य १०७)

अबला जीवन

अबला जीवन, हाय, तुम्हारी यही कहानी ।
आँचल में है दूध और आँखों में पानी ॥
(मै श गु यशोधरा, पृ. ४७)

अबला—विलाप

प्यारे पिता, पुत्र-वर भाई-बन्धु आदि जो सारे हैं ।
ससुर, जेठ, देवर, पति, पुरजन जो जग बीच हमारे हैं ॥
दया-दृष्टि कीजिए थोड़ी सी सुनिये हम क्या कहती हैं ।
अबला होकर सबलों के घर किस प्रकार हम रहती हैं ॥१॥
"जहाँ हमारा आदर होता वहीं देवता करते वास,
जहाँ निरादर होता वह घर हो जाता है सत्यानाश ।"
देखो खोल पोथियाँ अपनी यह मनु जी की बानी है,
सुख में स किस म किस से यह गई यथाविधि जानी है ॥२॥
पैदा जहाँ हुई हम घर में सन्नाटा छा जाता है,
बड़े बड़े हुक्कामों का तो मुह फीका पड़ जाता है ।
क्या मरी कन्या यह बाई यही चित्त में आता है,
किसी किसी के ऊपर मानो वज्रपात हो जाता है ॥३॥
जो बच गई मौत के मुँह से जल्द बड़ी हो जाती हैं,
माता पिता, बन्धु सबों के हुक्म सदैव बजाती हैं ।
काम यहाँ सबे घर के सब करने में न लजाती हैं,
जो कुछ मिल जाता खा पीकर खुशी-खुशी सो जाती हैं ।४।

कूड़ा कर्कट वर्तन चौका गोबर सदा उठाती है,
शिक्षा और कला-कौशल में इतना ही सिख पाती है।
जो विद्या पुरुषों को सुखकर सुधासदृश मंगलकारी,
वही हमारे लिए विषम विष, विमल बुद्धि की बलिहारी ॥५॥
यदि कुलीन निर्धन के घर में जन्म हमारा होता है,
तो अबला-समुदाय जन्म भर हाय सभी सुख खोता है।
बीस वर्ष में यदि विवाह गोना मुश्किल से होता है,
पति-घर की ताड़ना याद कर जार जार उर रोता है ॥६॥
खाने को न पेट भर मिलता, नथ बिछिया बिक जाती है,
जरा-जरासी भी बातों पर नित डंडे हम खाती है।
जिन्दा ही जलती रहती हम जब दुख अति अधिकाता है,
फिर पापी-तन पिता-भवन में आकर आश्रय पाता है ॥७॥
यदि अभाग्य से कहीं हमारे हुआ सुहागिन पन का नाश,
यहीं हमें जीते जी मिलता रौरव नरक कुंड का वास।
जिसने पुरुष जाति को जग में न्यायाधीश बनाया है,
उसी निठुर ने सब सहने में वज्र हमें उपजाया है ॥८॥
पढ़ें लिखे जो नहीं जिन्होंने शिक्षा नही कभी पाई,
उनके साथ बात तक करते सकुचाते हो हे भाई।
पर हम जो घर में ही रहती जिनसे सब सुख पाते हो,
उन्हें मूर्ख रखने में क्या तुम जरा नही शरमाते हो ॥९॥

(स. प्र. द्वि : द्वि. का. मा., पृ. ४२४-८)

अभिमान

१. अपने को तू समझ जरा क्या भीतर है क्या भूला है।
तेरा असिल रूप क्या है तू जिसके ऊपर फूला है॥
हड्डी चमड़ी लहू माँस चरबी से देह बनाई है।
भीतर देखो तो घिन आवै ऊपर से चिकनाई है॥
भरी पेट में मल की गठरी ऊपर न्हाइ सुधरता है।
तिस को छूकर वायु चलै तो नाक बन्द सब करता है॥
मल से उपजा मल [में लिपटा मति-मलीन तू घूरा है।
इस शरीर पर इतना फूला रे अंधे मगरूरा है॥
जिसके छूटते ही तू गन्दा, मिलने ही से सजता है।
'हरीचन्द' उस परमातम को गदहे क्यों नहि भजता है॥

(भा. ग्रं. दू. खं., पृ. ५५४)

२ तुम जो देते हो मानवता को आठो याम चुनौती,
तुम महल खजानों को जो अपनी समझे हुए बपौती ।
तुम कल बन कर रज-कण पैरों से ठुकराये जाओगे,
है कौन यहाँ पर ऐसा जो खा आया हो अमरौती ।
(भगवती चरण वर्मा रंगों से मोह, पृ २१-२२)

अभिमान परिणाम

१ हम गंगोदक, हम गगन, हम दीपक, हम भान ।
यही तुम्हें ले डूबि है कुल-कारा-अभिमान ॥
(वियोगी हरि वीर सतसई, पृ १०४)

२ जो मिथ्या धन, धाम पर, करता है अभिमान ।
मना कूप का मेंड पर, मानव चादर नाम ॥
(म राम कवि हिन्दी सुभाषित, पृ १०२)

अभिशाप वरदान

जिसे तुम समझे हो अभिशाप,
जगत की ज्वालाओं का मूल ।
ईश का यह रहस्य वरदान,
कभी मत इसको जाओ भूल ॥
(प्रसाद कामायनी, पृ ५३)

अभ्यास

करत-करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान ।
रसरी आवत जात तें सिल पर परत निसान ॥
(सतसई सप्तक, वृन्द सतसई, दोहा २१०)

अमरता और मृत्यु

काल के प्याले में अभिनव,
ढाल जीवन का मधु आसव,
नाश के हिम अधरों से मौन,
लगा देता है आकर कौन ?
बिखर कर कन कन के लघु प्राण
गुन गुनाते रहते यह तान,
"अमरता है जीवन का ह्रास,
मृत्यु जीवन का चरम विकास" । —महादेवी वर्मा
(आधुनिक

अमृत : विष द्वारा

वाजीगर के खेलों जैसे, जीवन बाँटे जा न सकेंगे।
वे अमृत कैसे पायेंगे, जो विषघट अपना न सकेंगे ॥
(मा. ला. च. : वेणुलो गूंजे धरा, पृ. २२)

अयोग्य सम्मान

कहा भयौ 'मतिराम' हिय, जौ पहिरी नन्दलाल ।
लाल मोल पावै नहीं, लाल गुँज की माल ॥
(सतसई सप्तक, मतिराम सतसई, पृ. १२०)

अरथी

प्रवीर या कायर, या यती गृही,
नरेश या रंक यहाँ समान है,
निदान, भस्मान्त शरीर के लिए,
मिला खटोला यह आठ काठ का ।
(अनूप : वर्द्धमान, पृ. ३३५)

अर्थ का अनर्थ

स्वार्थ की कितनी दुर्धर आग,
जलाकर जगत रहा वह जाग ।
आय के मिथ्या-भ्रम में हाय,
मनुज मनुजों को ही खा जाय ॥
(बलदेव प्रसाद मिश्र : साकेत-सन्त, पृ. ५६)

अवगुण : एक भी बुरा

आये औगन एक के गुन सब जायँ नसाय ।
जथा खार जलरासि को नहिं कोऊ जल खाय ॥४
(दी. द. गि. ग्रं., पृ. ८४)

अवसर

१. का वर्षा जब कृपी सुखाने । समय चूकि पुनि का पछताने ।
(तुलसीदास)

२. दीबौ अवसर कौ भलौ, जासौ सुधरै काम ।
खेती सूखै वरिसबौ, घन को कौने काम ॥
(वृन्द सतसई, दो. १८)

३. बिन औसर न सुहाइ तन, चंदन ल्यावै गार ।
औसर की नीकी लगै, मीता सौ सौ गार ॥४—रस निधि
(सतसई, सप्तक पृ. २२०)

अविवेकी —के चिह्न

अहंकार अविचारिता, दुर्वच बैर विवाद।
अविवेकी के चिह्न ये, रचियें सतत प्रमाद॥

(रुद्रदत्त मिश्र)

अविश्वास

अविश्वास, बस अविश्वास ही इस दुनिया का मंत्र बना है।
भाई भाई में दो टुकड़ों पर भीषणतम युद्ध ठना है॥
मानवता बेचारी रानी स्वार्थ-स्वार्थ पर शस्त्र तना है।
व्यवहारों के भीतर देखो कृत्रिमता का रंग कितना है॥

(हरिकृष्ण प्रेमी अग्निगान, पृ ७६)

असत्य और सत्य

असत बैन नहिं बोलिये, जातें होत बिगार।
वे असत्य नाहिं सत्य हैं, जातें ह्वै उपकार॥

(बुधजन सतसई, पृ ७२)

असमय की बातें

असमय की कोई भी बातें,
मन को कब है रुचिकर होती।
असमय की अब धाराएं भी,
बीज दुखों के ही हैं बोती॥

(बलदेव प्रसाद मिश्र साकेत-सन्त, पृ १६०)

अहंकार —उपयोगिता

अहंकार होता न तो, होता कौन उदार।
कर रहा रग के रुधिर में, रुचिर ओज-संचार॥
सजीवता आत्मस्थिरता, आवश्यक सत्कर्म।
क्या पाते जो समझते अहंकार नहिं मर्म॥

(हरिऔध सतसई, पृ ४१)

अहंकार कुपरिणाम

अहंकार ने ही मचाया है हाहाकार।
मदांधता ने ही किया, है बहु अत्याचार॥

(हरिऔध सतसई, पृ ७२)

अहंकार —त्याग

१ खड़ा रह सकेगा रे यह मस्तक कब तेरा मानी?
झुका नहीं फल पा कर भी तू नत हुआ नहीं अज्ञानी।

जब तक दिन है तभी तलक सिर अकड़ रहा है तेरा।
मिट्टी का सिरहाना होगा जहाँ रात ने घेरा॥
(उ. शं. भ. : कणिका, पृ. ४४)

२. मानव, तू क्यों मद करे, दिखा ज्ञान विज्ञान ?
तुझ जैसा ज्ञानी रचा, उस का ही धर ध्यान।
(श्रीमन् नारायणः रजनी में प्रभात का अंकुर, पृ. ११०)

अहंकार :—लक्षण

पूजनीय को पूज्य मानने में जो बाधा-क्रम है,
वही मनुज का अहंकार है, वही मनुज का भ्रम है।
(दिनकर की सूक्तियाँ, पृ. १०९-११०)

अहंकार :—से कटुवाणी

बोल रहा या तीर जहर के पैने छोड़ रहा है।
समझ रहा है जैसे सारे जग को मोड़ रहा है॥
हर पिद्दी यह माना करता आसमान है उस पर।
औ हर सांप मारता जैसे जड़ी हुई मणि फन पर॥
(उ. शं. भ. : कणिका, पृ. ४५)

अहंभाव

महामारी युग की यही, छपे नाम अखबार में,
चित्र विकें चंदा मिले, जय जय हो बाजार में॥
(सत्यदेव परिव्राजक : अनुभव, पृ. ७)

अहम्

जब कभी अहं पर नियति चोट देती है,
कुछ चीज अहं से बड़ी जन्म लेती है।
(दिनकर की सूक्तियाँ, पृ. ११०)

अहिंसा

१. क्या बकरी क्या गाय है, क्या अपनो जाया।
सबको लोहू एक है, साहिब फरमाया।
पीर पैगंबर औलिया, सब मरने आया।
नाहक जीव न मारिये, पोषन को काया॥—गुरु नानक
(हिन्दी के कवि और काव्य, पृ. १०)

२. पीर सबन की एक सी, मूरख जानत नाहिं।
कांटा चूभै पीर है, गला काटि को खाइ॥—मलूकदास
(संतवाणी, पृ. १०)

३ हरि डारि न तोड़िये, लागै छूरा बान ।
दास 'मलूका' यों कहै, अपना सा जिव जान ॥
(सन्तसुधासार, २, पृ ३८)

४ साहिब के दरबार पुकार्या बाकरा,
काजी लीया जाय कमर सो पाकरा ।
मरा लीया मोल उसी का लीजिए,
हरिहा वाजिद, राव रंक का न्याय बराबर कीजिए ।
(स मंगलदास पंचामृत, पृ १५)

५ न छीनिए जीवन प्राणधान का,
न दे सकोगे नव प्राण जीव को,
धरित्रि है जीवन के लिए सदा,
यहाँ सभी के अधिकार तुल्य हैं ।
(अनूप वर्द्धमान, पृ २०२)

अहिंसा रुदन रहित

कौन सा है सदन—हो रुदन ही नहीं,
कौन-सा खेल है—जीत ही जीत हो ?
एक भी आदमी, मैं ने देखा नहीं,
जिसका दुश्मन न हो, मीत ही मीत हो ।
है अहिंसा-सदन में रुदन लाञ्छना,
प्यार है खेल वह, जीत ही जीत है ।
एक दुश्मन अहं का अगर जीत लो,
तो यहाँ क्या, वहाँ भी, सभी मीत हैं ।—राधेश्याम प्रगल्भ
(स रामदत्त भारद्वाज ऋतम्भरा, पृ ११३-४)

अहिंसा सैनिक

है स्वर्गीय अहिंसा शुद्ध, किन्तु जगत है शुद्ध न बुद्ध ।
यह है जीवन-युद्ध क्षेत्र, लखो किन्तु बन कर दृढ़ वेत्र ॥
(मै श गु : हिन्दू, पृ ३५)

आँख अनोखी

लोचन उपयोगी महा, हैं ध्रुवपत्र समान ।
विचलित हो न सुपथ से, जन-जीवन-जलयान ॥
आँखों की ही जाँच पर, करो सुहृद ! सन्तोष !
इन कसौटियों पर कसो, जन-जन के गुण-दोष ॥

वचो देख भवकूप, दो-दो दृग अर्पण किये।
पहिचानो निज रूप, प्रभु ने ये दर्पण दिये॥

(राजाराम शुक्ल)

आँख : ओजहीन

नभ जिमि बिन ससि सूर के, जिमि पंछी बिन पाँख।
बिना जीव जिमि देह तिमि, बिना ओज यह आँख॥

(वियोगी हरि : वीरसतसई, पृ. १०६)

आंख और कान

देख रहे जो कुछ उसमें भी सब का मत विश्वास करो।
सुनी हुई बातें तो केवल गूंज हवा की होती हैं।

(दिनकर : नये सुभाषित, पृ. ३२)

आंख : हृदयसूचक

जौ कुछ उपजत आइ उर, सो वे आँखैं देत।
रसनिधि 'आंखैं नाम इन' पायौ अरथ समेत॥

(सतसई सप्तक, रसनिधि सतसई पृ. १९९)

आँसू

यह प्राणों का गायन है, यह है मूकों की भाषा,
आश्रय असहाय जनों का, यह है हताश की आशा।
आँसू है गूढ़ प्रणय की व्याख्यायुत सरला टीका,
इस अनुपम रस के आगे नव-रस षट-रस सब फीका।
गल कर गीले आँसू से पाषाण कलेजे कितने,
पानी पानी हो कर के लगते हैं क्षण में बहने।

—हृदय नारायण पांडेय

(सं. सु. नं. पं. : कवि भारती, पृ. २२१)

पाप-ताप-संताप बहाने को या मानस-धारा दो;
पुण्य-बीज, या करुण-क्यारी सींचा करें हजारा दो;
कठिन काठ-से हृदय चीरने वाले हैं या आरे दो;
निर्दय हृदय आर्द्र करने को अथवा चले फुहारे दो।

(रूप नारायण पांडेय : पराग, पृ. ११७)

जीवन की रामायण पढ़ कर, पाया हम ने यही ज्ञान है।
साधनहीन समस्याओं का केवल आँसू समाधान है।

(सं. क्षेमचन्द्र सुमन : रामावतार त्यागी, पृ. १०२)

आँसू और गीत

अश्रु अपनी ही व्यथा का निर्वसन तन,
गीत जग-भर के दुखों की आत्मा है।
(स क्षेमचन्द्र सुमन रामावतार त्यागी, पृ १०५)

आखेट-निंदा

निठुर होइ जिउ बधसि परावा। हत्या केर न तोहि डर आवा॥
कहसि पंखि का दोष जनावा। निठुर तेइ जे परमस खावा॥
आवहि रोइ जात पुनि रोना। तबहु न तजहिं भोग सुख सोना॥
औ जानहिं तन होइहि नासू। पोखैं मांसु पराये मासू॥
जौ न होहिं अस परमस-खाधू। कित पंखिन्ह कहँ धरै बियाधू?
जो ब्याधा नित पंखिन्ह धरई। सो बेचत मन लोभ न करई॥
(जायसी ग्रंथावली पृ ३१)

आखेट-प्रेरणा

भोर से बैठा जाउ भावर में औ डाढ़ेन मे करो शिकार।
ले शिकार आवो भावर से महतारी के धरो अगार।
जौ शिकार लै है भावर से सो तलवरिहा पूत हमार॥
(जगनिक असली आल्हखंड, पृ ३०)

आचार • भारतीय

शौच, दान, विद्या, विनय, सत्य, धर्म-व्यवहार।
भरतखंड दिग्-दिग्‌ विदित, भरत-वंश-आचार॥
(द्वा प्र मि कृष्णायन, पृ ४९५)

आज्ञा • अनुचित अमान्य

अनुचित वचन न मानिए, जदपि गुरायसु गाढ़ि।
है "रहीम" रघुनाथ तें, सुजस भरत को बाढ़ि॥
(रहिमन विलास पृ १)

आज्ञा • का पालन

अन्न देइ सीख देइ राखि लेइ प्राण जात।
राज बाप मोल लै करै जु पोषि दीह गात॥
दास होय पुत्र होय शिष्य होय कोइ माइ।
सासना न मानई तो कोटि जन्म नर्क जाइ॥
(केशवदास रामचन्द्रिका, प्रकाश पृ ९)

आडम्बर : धार्मिक

१. पत्रे ब्रह्मा, कली विसना, फल मधे रुद्रम देवा।
तीनि देव का छेद किया, तुम्हें करहु कौन की सेवा ॥
चौदसियाँ नै पूनमियाँ जैन व्रतधारी हूवा।
अरहंत कौ तिन पार न पायौ, केस लौंचि-लौंचि मूवा ॥
येक मुलाँनम् दोइ कुराँनम् ग्यारह पुरसाणी हूवा।
अलह कौ तिन पार न पायौ, बंग देइ-देइ मूवा ॥
(गोरखबानी पृ. १३२-३)

२. तौ भक्त न भावै दूरि बतावैं तीरथ जावैं फिरि आवैं।
जी कृतम गावैं पूजा लावैं, रूढ दिढावै वहिकावैं ॥
अरु माला नावैं तिलक बनावैं क्या पावै गुरु बिन गैला।
दादू का चेला भरम पछेला सुन्दर न्यारा ह्वै षेला ॥
(सुन्दर सार, पृ. ९२)

आडम्बरी : गुणहीन

प्राय: व्यर्थ पदार्थ का, डम्बर होत महान।
तथा न सुनिये स्वर्ण का, यथा काँस्य का ध्वान ॥

—रसिकेश

आततायी का वध

जदपि विप्र यह; वध नहिं अनुचित। आततायि नहिं शास्त्र-सुरक्षित ॥
(द्वा. प्र. मि. : कृष्णायन, पृ. ७७६)

आत्म-गौरव

जब तक साथ एक भी दम हो, हो अवशिष्ट एक भी धड़कन।
रखो आत्म-गौरव से ऊँची, पलकें ऊँचा सिर ऊँचा मन ॥
एक बूंद भी रक्त शेष हो, जब तक तन में हे शत्रुंजय।
हीन वचन मुख से न उचारो, मानो नहीं मृत्यु का भी भय ॥
(रा. न. त्रि. : स्वप्न, पृ. ७१)

आत्मचिंतन

मरम नैन कर अँधरै बूझा। तेहि बिसरै संसार न सूझा ॥
मरम स्रवन कर बहिरे जाना। जो न सुनै किछु दीजै साना ॥
मरम जीभ कर गूँगे पावा। साथ मरै पै निकर न आवा ॥
मरम बाँह के लूलै चीन्हा। जेहि विधि हाथन्ह पांगुर कीन्हा ॥
मरम कया कै कुस्टी भेंटा। नित चिरकुट जो रहै लपेटा ॥
मरम पाँव कै तेहि पै दीठा। ओइ अथाय भुँई चलै बईठा ॥

अति सुख दीन्ह विधातै, औ सब सेवक ताहि ॥
आपन मरम 'मुहम्मद' अबहूँ समुझ कि नाहि ॥
(जायसी ग्रंथावली, आखिरी कलाम, पृ ३३९-४०)

आत्मज्ञान तथा विज्ञान

आत्मज्ञान विज्ञान समन्वय, गाधी युग का शुचि परिमल है।
बिना ज्ञान निज सत्य रूप के सबज्ञान विज्ञान गरल है ॥
(श्रीमन् नारायण रजनी मे प्रभात का अकुर, पृ १२९)

आत्म-त्याग

हँस देता नव इन्द्रधनुष की स्मित मे घन मिटता मिटता,
रग जाता है विश्व राग मे निष्फल दिन ढलता ढलता,
कर जाता ससार सुरभिमय एक सुमन झरता झरता,
भर जाता आलोक तिमिर म लघु दीपक बुझता बुझता,
मिटने वालो की ह निष्ठुर।
बेसुध रगरलियाँ देखो ॥ —महादेवी वर्मा
(आधुनिक कवि, पृ ६०)

आत्म निरीक्षण

१ आदमी आकाश को भी जानता है,
आदमी पाताल की तह छानता है,
परखता भूगर्भ की सब हड्डियाँ,
किन्तु अपने को नही पहचानता है।
(उ श भ कणिका, प १९)

२ देते हो समुपदेश बहुत भोले हो,
हर नए दोष देख सदा खोल बोले हो,
अपने कभी झाँक कर भीतर भी देखो तो,
कितना हलाहल इन प्राणों मे घोले हो।
(उ श भ कणिका पृ १५)

आत्मनिर्भरता

१ करु बहिया बल आपनी, छोड बिरानी आस।
जाके आगन नदी है, सो कस मरै पियास ॥ (कबीर)
(सतसुधासार, खड १, पृ १७५)

२ औरो की आशा है त्याज्य, जहाँ नही यह, वही स्वराज्य।
(मै श गु हिन्दू, पृ ८७)

३. आ वाहर से कौन किसी का घर भर देगा ?
स्वयं विधाता किसे दूसरे ही कर देगा ?
(मै. श. गु. : राजा-प्रजा, पृ. ४२)

४. विचरो अपने पैरों के वल, भुजवल से भवसिन्धु तरो।
जियो कर्म के लिए जगत में, और धर्म के लिए मरो ॥
(मै. श. गु. : मंगलघट, पृ. ४९)

५. जो आप न उठना चाहें, अपने पैरों पर भाई !
उन हीन जनों की जग में, कर सकता कौन भलाई ?
(रामेश्वर करुणः तमसा, पृ.२६६)

६. निज आयोजन-हेतु वस्तु का उत्पादन हो।
पर से नहीं कदापि वस्तु का आवाहन हो ॥
अपने से परितोप प्राप्त करना हम सीखें।
स्वावलाम्ब का सरल मंत्र पढ़ना हम सीखें ॥
(गिरिजादत्त शुक्ल : तारकवध, पृ. ५०७)

७. रथ का मेल जोत अच्छा है
बुरा वढाना परिचय
यहाँ किसे अपयश करे जो
स्मिति आँसू का विनिमय
निर्वलता है प्यास-प्यास
चिल्ला कर हाथ वढ़ाना
अपने हाथों कुआ खोद कर पानी पीना होगा।
(शिवमंगलसिंह सुमन : प्रथम सृजन, पृ. १७)

आत्म-रक्षा

करो धर्म-धन-जन का त्राण,
दे कर भी ले कर भी प्राण।
जो तुमको वध करने जाय,
वित्त-वधू को हरने जाय।
वध्य स्वयं वह वर्वर वन्य,
मारो देख उपाय न अन्य।
रक्खो अपने देवस्थान,
रक्खो अवलाओं का मान।
अन्य जनों के ही रक्षार्थ,
(प्राप्त पुण्य के प्रिय पक्षार्थ)

करो पातकों पर प्रतिघात,
तो यह है विधि की ही बात ।।
(मै श गु हिन्दू, पृ १२९-३१)

आत्मवत् सर्वभूतेषु

१ चाहो जो अपने लिए वही और के अर्थ,
केवल स्वार्थ विचारना है अत्यन्त अनर्थ ।
(म श गु काबा और कर्बला, पृ ८०)

२ शत्रु हो कोई नही, हो आत्मवत् ससार,
पुत्र-सा पशु-पक्षियो को भी सकूँ कर प्यार ।
(दिनकर सामधेनी, पृ ५०)

आत्म विश्वास (दे आत्म-निर्भरता)

गौण, अतिशय गौण है, तेरे विषय मे
दूसरे क्या बोलते, क्या सोचते हैं ।
मुख्य है यह बात पर अपने विषय मे
तू स्वय क्या सोचता क्या जानता है ।
(दिनकर नये सुभाषित, पृ ३०)

आत्म—शुद्धि

शुद्ध हो कर तुम जहाँ विचरो वहीं कल्याण,
स्थान से बनते नही जन, आप जन से स्थान ।
(मै श गु काबा और कर्बला, पृ ५१)

आत्मसतोष

वहीं जीत होगी जहाँ अन्त म है, सुखी शान्त होगी मनुष्यान्तरात्मा ।
बिना आत्मसन्तोष के लोक प्राणी, मनस्ताप से नित्य ही दग्ध होते ।।
(आनन्द कुमार अगराज, पृ २९५)

आत्म-सम्मान

१ वै तो मानत तोहि नहिं, तै कित भयौ उमग ।
नहिं दीपहि कछु दरद क्या, जरि-जरि मरै पतग ।।
(दी द गि ग्र पृ २२६)

२ बिना मान तजि दीजियौ, स्वगहु सुरन-समेत ।
रहै मान तौ कीजियौ, नरकहु निज निकेत ।।
(वियोगी हरि वीरसतसई, पृ १००)

३. भयों रक्त नहिं जिन दृगन, देखि आत्म-अपमान।
क्यों न विधे तिन में विधे ! शूल विषम विष-वान ।।
(वियोगी हरि : वीर सतसई, पृ १०६)

४. तरुण अरुण तो नवल प्रात में
ही दिखलाई पड़ता लाल—
इसीलिए मध्याह्न में अवनी,
को झुलसाती उसकी ज्वाल।
मानव किन्तु तरुण शिशु को ही,
दबना झुकना सिखला कर।
आशा करते हैं कि युवक का,
ऊँचा उठा रहेगा भाल ।
(अज्ञेय : इत्यलम्, पृ. ६३)

आत्म-हंता

अपना नियन्ता आप हो कर भी लोक में,
हन्त, निज हन्ता वनता है है नर आप ही।
(मै. श. गु. : जयभारत, पृ. ३६८)

आत्महत्या : महापाप

मिली जो देह उसका घात करना,
महा पातक स्ववपु का पात करना।
सहो काँटे कि डर यह फूल होवे,
सहो यह दुख कि विधि अनुकूल होवे ।।
(बलदेव प्रसाद मिश्र : साकेत-सन्त, पृ. ८२)

आत्मा और शरीर

आतम रथी शरीर रथ, बुद्धि सारथी जान।
इन डोरी इन्द्रिय हय; मारग विषय पिछान।
(गिरिधर : कुंडलिया, पृ. ६६)

ज्ञान, शक्ति, आनन्द सनातन हैं आत्मा का रूप।
मून से विरहित देह प्रकृति का केवल जंगम स्तूप ।।
(रामानन्द तिवारी : पार्वती, पृ. ५३४)

आत्मा का सार

न हो जव तक आत्मिक अवलंब, मृत्यु का तल्प वाह्य संसार,
खोजता मानव को अमरत्व, नही उसकी आत्मा का सार !
(सु. नं. पं. : लोकायतन, पृ. ३८१)

आत्मा का स्वरूप

दिव्य रे आत्मा अगोचर धन,
वह अनल के पावक का कण,
जड़ चेतन की धूप छाँह से
जीवन शोभा का मुग्ध गुंठन !
(सु न प वाणी, पृ १२)

आत्मा की अमरता

छेदत शस्त्र न अनल जरावत। भिजवत वारि न वात सुखावत।
जिअत मरत मीजत नहीं सूखत। थिर पुराण नित अचल सर्वगत ॥
(द्वा प्र मि कृष्णायन, पृ ५४०)

आत्मोद्धार

जब लग जग की सब सकुच आलस अलसता तजि वसु जाम।
करत न रहिहौ तन मन धन दै निज उद्धार हेतु भल काम।
तब लग जीवन की हम मानें, मरन अनन्तर जानैं राम।
हमरे कहा कहे कछुहूँ के कबहुँ न ह्वै हौ तृप्यन्ताम् ॥
(प्र ना मि तृप्यन्ताम्, पृ १९)

आदर्श और उत्कर्ष

आदर्श, हमेशा छाया को साकार बनाया करता है।
उत्कर्ष, हमेशा माया का ममाग बसाया करता है ॥
(मागरमल कुछ कलियाँ कुछ फूल, पृ ९३)

आदर्श और यथार्थ

मध्ययुगी आदर्शवाद को धिक् सामाजिकता के प्रति जो उपरत,
जड़ यथार्थ को पश्चिम के शत धिक्, जो अन मशय पीड़ित सतत !
(सु न प लोकायतन, पृ ५०८)

आदर्श नया

चिर विराम गति श्रम में अविरत, मानव जीवन सत्य चिरंतन,
पौरुष-यश के भाव पुरातन नव आदर्श—समर्पित जीवन !
(सु न प लोकायतन, ५३५)

आनन्द आत्मिक

साँचहु महि जल अनल समीरा। व्योम विनिर्मित मनुज शरीरा ॥
तदपि चेतना जो तेहि माहीं। महाभूत निर्मित सो नाहीं ॥
जे जड़, जड़ता जिन्हहिं पियारी। तिन्ह जानत जड़ दृगन निहारी ॥
जड़ प्रति प्रीति उपज हिय जिनके। उघरि जात मति लोचन तिनके ॥

विश्व अपरिमित परत लखायी। इन्द्रिय जड़ जहँ सकत न जायी।
मन-रत्नहिं योगिन पहिचाना। जड़-मति तासु प्रभाव न जाना।
तेहि सम अन्य शक्ति नहिं ताता। जीवहिं सोइ सर्वफल-दाता।
(द्वा. प्र. मि. : कृष्णायन, पृ. ७९५-६)

आनन्द : जड़ का चेतन

कर्म का भोग, भोग का कर्म
यही जड़ का चेतन आनन्द।
(प्रसाद : कामायनी, पृ. ५६)

आभूषण

कौन देखता है खाने को, घर में चाहे भूखा रह ले ?
आभूषण के विना न इज्जत, सब कुछ पीछे गहना पहले।
(परमेश्वर द्विरेफ : युगस्त्रष्ठा प्रेमचंद पृ. २४)

आमोद-प्रमोद

दिया है खुदा ने खूब खुशी करि 'ग्वाल कवि'
खाव पिओ देव लेव यही रह जाना है।...
आये परवाना पर चले न वहाना इहां,
नेकी करि जाना फेरि आना है न जाना है॥
(कविता कौमुदी १, पृ. ५३३)

आयु : सदुपयोग

सौ वरष आयु ताका लेखा करि देखा सव,
आधी तो अकारथ ही सोवत विहाय रे।
आधी में अनेक रोग वालवृद्ध दशा भोग,
और हु संयोग केते ऐसे बीत जायं रे॥
वाकी आव कहा रही ताहि तू विचार सही,
कारज की वात यही नीकै मन लाय रे।
खातिर में आवै तौ खलासी कर इतने में,
भाव फंसि फंद बीच दीनौ समुझाय रे॥
(भूधरदास : जैन शतक, पृ. ११)

आरम्भ-शूरता

उसने देखा कभी सफलता-मुख नहीं,
कभी कामना-वेलि नहीं उसकी खिली।
कभी न उसका भाग्य-गगन उज्जवल हुआ,
जिसकी कृति आरम्भ-सूरता से हिली॥
(हरि औध : पद्यप्रमोद, पृ. ५३)

आराम-व्यग्य

आराम जिन्दगी की कुञ्जी, इस से न तबेदिक होती है।
आराम सुधा की एक बूंद, तन का दुबलापन खोती है।
आराम शब्द मे राम छिपा, जो भवबन्धन को खोता है।
आराम शब्द का ज्ञाता तो बिरला ही योगी होता है।
यदि करना ही कुछ पड जाए तो अधिक न तुम उत्पात करो।
अपने घर मे बैठे बैठे बस लम्बी-लम्बी बात करो।
करने धरने म क्या रक्खा जो रक्खा बात बनाने मे।
जो होठ हिलाने मे रस है वह कभी न हाथ चलाने मे॥

(गोपालदास प्रसाद व्यास अजी सुनो, पृ १४३-४)

आर्य अनार्य की वाणी

मृग अनार्य-ललाट न जामा। आर्य-भाल नहिं विधु अभिरामा॥
बरसन मुख जम मधु, विष-बाणा। मिलत दुहुन पितु वश प्रमाणा॥

(द्वा प्र मि कृष्णायन, पृ ११३)

आर्य जाति प्राचीनता

अन्य जातियो के इतिहास, हैं कुछ शताब्दियो के दास।
आर्य जाति-जीवन की माप, काल-दण्ड कर सका न आप॥

(मै श गु हिन्दु, पृ ५८)

आर्य-देविया

अपन ही बल आपनी, रखन हारियाँ लाज।
धनि आरज कुल नारियाँ, जग-नारिनु-सिरताज॥

(वियोगी हरि वीरसतसई, पृ ७१)

आर्य-नीति और असुर-नीति

आर्य-नीति प्रीतिहि अधारा। असुर-नीति आतङ्क प्रसारा॥
रामसो आर्य-नीति भल जानी। तजेउ राज्य पाली पितु वाणी॥
कीन्हो भरतहु साइ प्रमाणा। वजेउ राज्य पूजे पद-त्राणा॥
असुर-नीति अब भारत छायी। प्रीति, प्रतीति, सुनीति, नसायी॥
डारत पितु बंदीगृह माहीं। भोगत राज्य न पुत्र लजाहीं॥

(द्वा प्र मि कृष्णायन, पृ १०४)

आर्य-बाला

कमला लौं सब काल लोक लालन पालन रत॥
गिरि नन्दिनी समान पूत पति प्रेम भार नत॥
गौरव गरिमा मयी ज्ञान शालिनी गिरा सम।
काम कामिनी तुल्य मृदुलतावती मनोरम॥

सुरपुर अधिपति ललना समा, प्रीति नीति प्रतिपालिका ॥
सब दनुज-प्रकृति नर के लिये, आर्य नारि है कालिका ॥

(हरि औध : पद्यप्रमोद, पृ. १५७)

आर्य संस्कृति का स्वरूप

एकांग का पाठ नहीं पढ़ाती, सर्वांगिनी संस्कृति भारती है;
ब्रह्माण्ड-सौन्दर्य विभिन्नता में, जो एकता पालन मानती है।

(सत्यदेव परिव्राजक : अनुभव, पृ. २८)

आलसी

कादर मन कहुँ एक आधारा। दैव दैव आलसी पुकारा ॥

(रा. च. मा. गु. पृ. ४९६)

आलस्य-व्यंग्य

१. दुनिया में हाथ पैर हिलाना नहीं अच्छा।
मर जाना पै उठके कहीं जाना नहीं अच्छा ॥
बिस्तर प मिसले लोथ पड़े रहना हमेशा।
बंदर की तरह धूम मचाना नहीं अच्छा ॥
धोती भी पहिनें जब कि कोई गैर पिन्हा दे।
उमरा को हाथ पैर चलाना नहीं अच्छा ॥
सिर भारी चीज है इसे तकलीफ़ हो तो हो।
पर जीभ बिचारी को सताना नहीं अच्छा ॥
फाकों से मरिए पर न कोई काम कीजिए।
दुनिया नहीं अच्छी है जमाना नहीं अच्छा ॥
सिजदे से गर बहिश्त मिले दूर कीजिए।
दोजख ही सही सिर का झुकाना नहीं अच्छा ॥
मिल जाय हिंद खाक में हम काहिलों को क्या।
ऐ मीरे फर्श रंज उठाना नहीं अच्छा ॥

(भारतेन्दु नाटकावली, पृ. ६१२)

२. देखना है अगर निकम्मापन, तो हमें आँख खोल कर देखो।
हैं हमीं टाल-टूल के पुतले, जी हमारा टटोल कर देखो ॥
टाट कैसे नहीं उलट जाता, जब बुरी चाट के बने चेरे।
दिन पड़े खाट पर बिताते है, काहिली बांट में परी मेरे ॥

(हरि औध : चुभते चौपदे, पृ. १२६)

३. जैसे करता नष्ट है, उपल विपल में सस्य।
वैसे विद्या बुद्धि का, नाशक है आलस्य ॥

(शिवदुलारे त्रिपाठी 'नूतन')

आलोचक

रचना में क्या-क्या गुण होने चाहिए, कूद फाँद कर भी तुम नहीं बताते हो।
पर रचना के दुर्गुण अपनी ही कृति में, कदम कदम पर खूब दिखाये जाते हो॥
(दिनकर नये सुभाषित, पृ १३)

आवश्यकता

आवश्यकता-वश विधि से विष तक खाया जाता है,
और सुधा-सम वही लाभ रोगी को पहुँचाता है।
किन्तु आवश्यकता बिन से भी होता स्वास्थ्य विघ्न है,
यही नियम अन्तर-बाहर जग पर सर्वत्र घटित है।
(विजयसिंह पथिक प्रह्लाद विजय पृ. ९)

आवश्यकताएँ मौलिक

असन, वसन, अरु धाम की, है जब लौं सुविधा न।
गगन-तरंग भुजंग-सी, कामी मरघट-मसान॥
(रामेश्वर करुण करुण सतसई, पृ १०)

आशा

१ अंग गलित सिर भर पलित, भयउ दंत को अन्त।
सोउ वृद्ध कर दंड गहि, आसा धरत अनन्त॥
(लक्ष्मीवल्लभ दूहाबावनी, दोहा २०)

२ अहो देवी आशे! प्रशंसा तिहारी,
सकै के यथावत् न जिह्वा हमारी।
महीमंडल, व्योम, पाताल माहीं,
कहाँ शक्ति न व्याप्त तेरी सदा ही॥
धनी, निर्धनी हू, जराक्षीण गाता,
वटी चूर्ण लेहादि पुष्टि प्रदाता।
तव प्रेरणा पाय सेवैं सबेरे,
बहावैं वृथा द्रव्य कंदर्प-चेरे॥
ज्वरी, जीर्ण-रोगी, क्षयी, क्षीण-देहा
वशीभूत तेरे भये, बैठि गेहा।
नई नित्य विज्ञापना देखि देवी,
ठगावैं, न पै हानि मानैं विशेषी॥
गये गर्भ ही में दृढ़ नैन जावें,
सुनो, हौं सुनाऊँ, समाचार तावें।
अहा, सोऊ, आशा तुम्हारा पाय! तारा
गिनैं सर्व आकाश के बैठ बारा॥

महामूं कहू जो हिए तोहि धारै,
प्रियापास ते प्रेमगाथा उचारै।
विना कर्ण शक्ति त्वदाकृष्ट नाना,
सुनै वात सौ कोस की सावधाना ॥
तुही मोहिनी, तूहि मायाविनी है,
तिहूँ लोक की तू ही संजीवनी है।
रहै तू न जो विश्व-जात-प्रसारा,
वनै दंड में दंडकारण्य सारा ॥

(म. प्र. द्वि. : द्वि. का. मा. : पृ. २१८—२२१)

३. आशा अद्‌भुत इन्द्रचाप- छवि है, वर्षाना आकाश की,
सन्ध्या के रवि-अंशु-सी जलद को, विच्छिलता-दायिनी;
वन्दी की निजतंत्रता, सरुज की, है स्वस्यता-स्थापना,
प्रेमी की अति सौख्यदा विजय है, संपत्ति है रंक की।

(अनूप शर्मा : सिद्धार्थ, पृ. २७१)

४. हार मान हो गयी न जिसकी किरण तिमिर की दासी।
न्योछावर उस एक पुरुप पर कोटि कोटि संन्यासी ॥

(दिनकर की सूक्तियाँ, पृ. १९)

५. जग अपूर्ण है तुम अपूर्ण हो
अपनी सीमाएँ पहचानो
जिस तिस से मत नेह लगाओ
कुछ तो सोचो समझो जानो
सब को अपने-सा समझे हो, नाहक अभिलापा रखते हो,
क्यों सबसे आशा रखते हो

(शिवमंगलसिंह सुमन : हिल्लोल, पृ. ११४)

६. जोड़-गुणा की उलझन में दे मत निराश हो, वनियाँ !
दृढ़ विश्वास, अमर आशा पर, जिन्दा सारी दुनियाँ ॥

(श्रीमन् नारायण : रजनी में प्रभात का अंकुर, पृ. १२१)

आशा : अद्‌भुत देवी

तुलसी अद्‌भुत देवता आसा देवी नाम।
सेयें सोक समर्पई विमुख भएं अभिराम ॥

(तुलसीदास : दोहावली, ८९)

आशा और कवि

सूर्य किरण बन जाओ हे कवि,
खारे जल से अमृत खींचो !
भवसागर दुख-सार-कणा से
आशा वर्षा कर जग सींचो !
(श्रीमन् नारायण रजनी मे प्रभात का अकुर, पृ २)

आशा और सशय

जे आसा तो आपदा, जे समा तो सोग ।
गर मुषि बिना न भाजसी, (गोरष) ये दून्यो बड रोग ॥
(गोरखबानी पृ ७४)

आशा • महत्व

१ चाहे जितनी सघन घटा हो, निबिड निशा मे तिमिर डटा हो,
पर विद्युत की एक चमक बस, नभ भूतल ज्योतित करती है ।
आशा पर दुनिया जगति है ॥
(श्रीमन् नारायण, रजनी मे प्रभात का अकुर, पृ १०)

२ अवश्य होगी गत यामिनी कभी,
कभी उगेगा रवि पूर्व-शैल पै ।
प्रभात-आशा-वश कज-कोष मे,
प्रकाश पाता अलि अधकार मे ।
(अनूप वर्द्धमान, पृ ५५२)

आश्रयदाता

बिन आश्रय सोभित नही, पडित, लतिका, नार ।
मणि माणिक बहु मूल्य हैं, वे भी हेमाधार ॥
(स रामकवि हिंदी सुभाषित, पृ १८)

आहार

अति आहार यद्री बल करै, नासै ग्यान मैथुन चित्त धरै ।
घापै न्यद्रा झपै काल, ता के हिरदै सदा जजाल ॥
(गोरखबानी, पृ १४)

इंद्रियनिग्रह

१ गज अलि मीन पतग मृग, इक इक दोष विनाश ।
जाके तन पचों बसै, ताकी कैसी आस ॥
पचों किनहु न फेरिया, बहुते करहि उपाइ ।
सर्प सिंह गज बसि करै, इंद्रिय गही न जाइ ॥
(सुन्दरसार, पृ ७२)

२. विपत्ति में कच्छप स्वीय अंग को,
सिकोड़ लेता जिस भाँति, हे सखे।
तथा सुधी भी विषयानुगामिनी,
स्वज्ञान से इन्द्रिय शक्ति खींचता।

(अनूप : वर्द्धमान, पृ. ५७७)

इच्छा

चाह गई चिन्ता मिटी, मनुवाँ वेपरवाह।
जिन को कछू न चाहिए, सोई साहंसाह॥

(कबीर वचनावली, पृ. १४३)

इच्छाएं

अन्तर-तरु से उड़-उड़ जातीं
चंचल चिड़ियों सी इच्छाएँ !
उड़ती फिरतीं दिशि-दिशि निशि-दिन,
लातीं सयत्न चुन-चुन तृण-तृण,
स्वप्नों के नीड़ सजा जाती
चंचल चिड़ियों सी इच्छाएँ !
कुछ तूफानी क्षण भी आते,
जो जड़ से पेड़ हिला जाते,
तृण उड़ते वे भी उड़ जातीं,
चंचल चिड़ियों-सी इच्छाएँ !
अन्तर-तरु·········

(नरेन्द्र : पलाश वन, पृ. ५२)

इच्छा और आचरण

सभी स्वप्न पूरे न होते किसी के, यही भेद है स्वप्न में जागरण में,
घिसटते चरण कल्पना दौड़ती है, यही भेद है चाह में आचरण में।

—उदय शंकर भट्ट

(सं. शिवदान सिंह चौहान : काव्यधारा १; पृ. ७१)

ईर्ष्या

गुण न हो तो ईर्ष्या भी क्या बुरी,
मानती जो सभी से निज को बड़ा।
लौ न चमके दोपहर में, है मगर—
गर्व उसको जल रही हूँ मैं सतत।

(उ. शं. भ. : कणिका, पृ. ४३)

ईश्वर आदर्श

अलक्ष की बात अलक्ष जानें, समक्ष को ही हम क्यों न मानें ?
रहे वही प्लावित प्रीति धारा, आदर्श ही ईश्वर है हमारा ॥
(मै श गु साकेत)

ईश्वर दर्शन

ईश्वर-दर्शन काम्य ? सृष्टि ही उसका दर्पण,
भाव रूप की साध ? रूप का करो उन्नयन !
क्या प्रकाश तम भिन्न ? पृथक सदसत्, जड चेतन ?
एक शक्ति क्रम भर से व्याप्त अमर तक अनुक्षण !
(सु न प वाणी, पृ ५३)

ईश्वर—प्रमाण मानव

क्योंकर भूले भटके फिरते भेद ढूढते जग नश्वर का ?
अन्तरदीप जगा कर देखो मानव ही प्रमाण ईश्वर का !
(श्रीमन् नारायण रजनी मे प्रभात का अकुर, पृ १२४)

ईश्वर भूमि पर ही

जग जीवन से कर वियुक्त प्रभु को, पूज रहा कब से छाया को नर,
कवि को लगा—स्वय लेटा भूपर साम ले रहा हो विराट् ईश्वर ।
(सु न प लोकायतन, पृ ६०१)

ईश्वर विश्वास

१ राखि हिये व्रजनाथ को, हाथ लेउ करवार ।
ये रक्षा करिहैं सदा, यह जानौ निरधार ॥[1] (गोरेलाल)
२ राम बनैहैं तो बनि जैहै बिगरी बनत बनत बनि जाए ॥[2] (जगनिक)
३ हरे, और भी एक मुझे यह हुआ भरोसा तेरा,
जो करना है तुझे उसी मे हित होना है मेरा ।
(मै श गु जयभारत, पृ ३६)
४ हम एकाकी और अनाथ नहीं इस जग मे ।
साथी एक समर्थ हमारा है पग-पग मे ॥
(मै श गु सान्त्वना, अप्रकाशित)

ईश्वर सौन्दर्य-स्रष्टा

मानवी या प्राकृतिक सुषमा सभी,
दिव्य शिल्पी के कला-कौशल सभी।
(प्रसाद काननकुसुम, पृ ५७)

---

१ 'छत्रप्रकाश' मे छत्रसाल को शिवाजी का उपदेश, 'वीरकाव्य' पृ ३१७
२ असली आल्हखड पृ ४५

ईश्वरेच्छा : प्रवल

हमें नहीं, जो उसे इष्ट होगा सो होगा,
तभी कटेगा पाप जायगा जव वह भोगा।

(मै. श. गु. : सान्त्वना, अप्रकाशित)

ईसवी पंजा

आँख की पट्टी नहीं तव भी खुली, विछ रहे हैं जाल अव भी नित नये।
क्या कहें ईसाइयों की चाल को, लाल पंजे से निकल लाखों गये॥
शेर जैसे क्यों न ईसाई वनें, हिन्दियों से मेमने क्या हैं कहीं।
पा सदी यह बीसवीं इस हिन्द में, फैलता क्यों ईसवी पंजा नहीं॥

(हरि औध : चुभते चौपदे, पृ १३६-७)

ईसाइयों के प्रति

ईसाई छोड़ो सन्देह,
वहीं तुम्हारा हो सुस्नेह।
जहाँ तुम्हारा है घर बार,
आजीविका और व्यापार॥
लेकर भी यूरुप का धर्म,
श्वेत न हुआ तुम्हारा चर्म।
वहाँ चर्म ही की है चाह,
नहीं धर्म की कुछ परवाह॥
वन्धु यही वह भारत शिष्ट,
हुए जहाँ ईसा उपदिष्ट।
हर्षित हो हम है सन्नद्ध,
हो जाओ तुम भी कटिवद्ध॥

(मै. श. गु. : हिन्दू, पृ. २०२-३)

उत्थान और पतन

उठते-गिरते ही रहते हैं राजा हों या रंक
अमिट है ये विधना के अंक।

(सं. अमृतलाल नागर : भगवतीचरण वर्मा, पृ. ११२)

उत्थान : कठिन

मानव मन दुर्वल और सहज चंचल है,
इस जगतीतल में लोभ अतीव प्रवल है।
देवत्व कठिन दनुजत्व सुलभ है नर को,
नीचे से उठना सहज कहाँ ऊपर को !

(मै. श. गु. : साकेत, अष्टमसर्ग, पृ. १७०)

उत्साह

१ थोड़ा चल कर बैठ न जाना, मोह गुफा मे पैठ न जाना।
विघ्न देख पीछे मत हटना, कर दिखलाना अघटित घटना।
मन मत होना कभी निराश, पहुँच जायगा कर विश्वास॥
(रा च उ राष्ट्र भारती पृ ७०)

२ उत्साह म हो रांड तो रुस्तम से भी लड जाय।
उत्साह म हो भांड तो शेरा से अकड जाय॥
उत्साह हो गीदड मे तो गजराज पछड जाय।
उत्साह हो भुजग मे तो वह भीम से अड जाय॥
उत्साह से घट-जात ने सागर को किया पान।
उत्साह से रवि लील गये बाल हनूमान॥
(भगवान दीन वीर प चरत्न, पृ ४९)

३ जहाँ अपेक्षा रही कि पथ निर्माण प्रथम हो,
दुगम, मेरे लिए किसी से स्वय सुगम हो,
वहाँ तरल 'इति' भी कठोर 'अथ' बन जाता है,
चलते हैं जब पैर स्वय पथ बन जाता है।
(बुद्धमल्ल मथन, पृ ३९)

४ जब कोई अ-आम सहारा हो जाता है,
सघर्षों मे लडना भी आ ही जाता है।

रामानन्द दोषी
(स शिवदान सिंह चौहान काव्यधारा १, पृ १५५)

५ कहा किसने तू है बलहीन ? न तुझ से बढ कोई बलवान,
सहोदर थे तेरे वे वीर, जिन्हो ने जीता जगत जहान,
अगर तू चले रौंदने विश्व, असम्भव, कोई पाये रोक,
खडा तो हो तो उठ कर तू और जरा निज क्षमता को पहचान।
(विराज अरुणोदय, ४९)

उत्साह * सफलता-मूल

सफलता का एक कोई पथ नही।
विफलता की गोद मे ही जीत है॥
हार कर भी जो नही हारा कभी।
सफलता उसके हृदय का गीत है॥
(उ श म कणिका, पृ २३)

उदारता

१. है तू मनुज उदार !
सभी मानवों में समता है,
फिर क्यों जग में निर्ममता है,
कर मनुष्यता का तू सन्तत,
सब से ही व्यवहार,
है तू मनुज उदार।
(ठा. गो. श. सिं. : आधुनिक कवि, पृ. ११६)

२. उदारता है मृदु भाव चित्त का,
न हस्त का और न प्राप्त द्रव्य का,
धरित्रि में वर्षण साम्य-भाव से,
पयोद में है अथवा उदार में।
(अनूप : बर्द्धमान, पृ. ५४८)

३. 'यही हमारा, वह आप का तथा
न है किसी का यह बाँट लो इसे'—
प्रवृत्ति ऐसी नर तुच्छ की लखी,
उदार को विश्व कुटुम्ब—तुल्य है।
(अनूप : वर्द्धमान, पृ. ५५८)

४. बना कर कोटि सीमाएँ हृदय को बाँधती दुनिया।
विशद विस्तार कर सकना बहुत मुश्किल हुआ जगमें ॥
(हरिकृष्ण प्रेमी : रूप रेखा, पृ. २४)

उदारता और शूरता

जहँ औदार्य शौर्य सँग निवसत। विजय विभूति बसहिं तहँ शाश्वत।
परिग्रह-ग्राह-गृहीत क्षुद्र जन। सकत कि साधि महत आयोजन ॥
(द्वा. प्र. मि. : कृष्णायन, पृ. ३७६)

उद्यम

१. चलै जु पंथ पिपीलिका, समुद पार ह्वै जाय।
जो न चलै तौ गरुड़ हू, पैंड़हु चलै न पाय ॥
(वृंद सतसई, दोहा ६११)

२. अभागी है जो माने पाप, काम करने में अपना आप।
(मै. श. गु. : काबा और कर्बला, पृ. ३२)

३. प्रभु ने दो-दो कर दिये करो कमाई आप;
पराधीनता-सम नहीं और दूसरा पाप।
(मै. श. गु. : काबा और कर्बला, पृ. ४०)

उधार

कौन गयो लोभ लोभ लालच गमावै सब,
सब ही कहत हाय हाय कै न पाइये।
दरब जाइ बैर होइ कारज नसाइ सब,
बार-बार ताके गृह जैय अरु आइये॥
सारेँ सहाय किय गुन सब मिट गयो,
ता को लाभ मोटी खरी कहिये कहाइये।
बानियो सयानो जान मानियो हमारी बान,
दीजै न उधार जलधार मे बहाइये॥
(सुखदेव वाणिज्य नीति, पृ २१)

उन्नति उत्तरोत्तर

जाने वालो की जीत वहीं, आने वालों से हार जहाँ,
अन्यथा हमारा गौरव जो, वह सन्तानो का भार यहाँ।
(मं श गु जयभारत, पृ ४३४)

उन्नति के उपाय

सतोपालम काम अरु, रोग भीति भूमोह।
ये ही जन ऊँचे उठें, करें जु छह मे द्रोह॥
—रसिकेश

उपदेश

मगरमच्छ की खाल, असर न हो तलवार का।
सधारी का हाल, असर न हो उपदेश का॥
(मेलाराम शिक्षा सहस्री, पृ ३४)

उपदेश पात्र

धरम नीति उपदेसिअ ताही। कीरति भूति सुगति प्रिय जाही॥
(तुलसीदास रा च मा गु पृ २७४)

उपदेशक

करे आप भी वही और को जो सिखलावे।
सधे सराहे सार वचन निज मुख पर लावे॥
हमे चाहिए ज्ञान-वान उपदेशक ऐसा।
जो तम पूरित उरा बीच वर जोति जगावे॥
(हरिऔध पद्य प्रसून, पृ ४५)

उपेक्षा

जार को विचार कहा, गनिका को लाज कहा,
गदहा को पान कहा, आंधरे को आरसी ।
निर्गुणी को गुण कहा, दान कहा दालिद्री को,
सेवा कहा सूम की, अरंड की सी डार सी ।
मद्यपी को सुचि कहा, साँच कहा लंपटी को,
नीच को वचन कहा स्यार की पुकार सी ।
टोडर सुकवि ऐसे, हठी तें न टार्यौ टरै,
भावै कहौ सूधी वात, भावै कहो फारसी ।।

(अकवरी दरवार के हिन्दी कवि, पृ. ५२)

उपेक्षिता (सापत्न्य-दुःख)

कैसा विचित्र अनुशासन, है करुणा-वरुणालय का ।
वन गई एक मृदु कलिका, दुखमूलक शूल हृदय का ।।

(गो. श. सि. : मानवी, पृ. ९६)

ऋण : सामाजिक

शैशव वालक स्ववल-विहीना । जीवन जननी-जनक-अधीना ।।
विपुल जीव अन्यहु हितकारी । पोपक, अभिभावक, भयहारी ।।
भये वयस्क लहत जो ज्ञाना । सोउ पर-अर्जित ऋपिन-निधाना ।।
यौवन भोगत भोग सोहाये । सोउ समाज-कृत, निज न, पराये ।
जन्म-मृत्यु-विच क्षण नही ताता । जव न समाज होत सुखदाता ।
कीन्ह ऋपिन ऋण-शोध-हित, आश्रम-धर्म-विधान ।
चारिहु जीवन-फल लहत, गहि जेहि आर्य सुजान ।।

(द्वा. प्र. मि. कृष्णायन. पृ. ८००)

एकता

जड़ से हो विच्छिन्न न चेतन,
आत्मा से रे भिन्न न तन मन,
इह पर में हो भक्त न जीवन,
भर्त्सित हो शुक ज्ञानी !

(सु. नं. पं. : वाणी पृ. ७३)

एकता : अनेकता में

जाति-भेद हैं धर्म-भेद है,
कर्म-भेद है वहुत यहां ।
जहां नही कुछ भेद-भाव हो
है जग में वह देश कहां ?

पर एकता भिन्नता में भी
है भारत के जीवन में।
रूप रंग हैं भिन्न भिन्न पर
एक भावना है मन में॥
(डा गो श सि जगदालोक पृ ११६)

एकता में सिद्धि

प्रेम करे सो करे स्वाय कर मने न अन्धा,
नग गने से गला और कन्धे से कन्धा।
मिलें पैर से पैर न सिर से सिर टकरावें,
तो मघन भी स्वय सघ हो कर चकरावें॥
(मै श गु राजा प्रजा, पृ ४०)

एकता साम्प्रदायिक

१ पुर पत्तन हो अथवा ग्राम, हो सवत्र समन्वय धाम।
जुडें जहाँ सब मन के लोग, साधन करें एकता योग॥
भाषण गीत कवित्व विनोद, हुआ करें पावें सब मोद।
क्रीडा-कौतुक उत्सव-खेल, साधन करें परस्पर मेल॥
होकर भी विभिन्न मत निष्ठ, बन सकते हैं बन्धु वरिष्ठ।
मिलें लौटकर यदि सविवेक, तो हैं तीन और छै एक॥
पावें सभी प्रबोध प्रमोद, सेवें भारत माँ की गोद।
मिटें परस्पर के सन्देह, उपजे साम्यभाव सस्नेह।
(मै श गु हिन्दू, पृ १७८-८०)

२ हिन्दू मुसलमान दोनों ही एक डाल के हैं दो फूल,
और एक ही है दोनों का बडा बनाने वाला मूल।
लडा रहे हैं जो इन दो को, इसमें है उन का मतलब,
भला दूसरे का क्या होगा, बुरा एक का होगा जब॥
(सि श गु आत्मोत्सर्ग, पृ ४९)

३ सडी-सडी बातों पर हम दो, भाई लडते-मरते हैं,
और तीसरे हँस कर हम पर हाय! हुकूमत करते हैं।
मन्दिर तोड-ताड कर तुम ने आज मस्जिदें तुडवाई,
राम रहीम एक की दो-दो जगहें गोडी गुडवाई।
नहीं मसजिदें ही उसकी हैं, गिरजे भी हैं मंदिर भी,
बंदे बहुत-बहुत हैं उसके मगर एक वह है फिर भी।
राम-खुदा के पाक नाम पर, करते शैतानों के काम,

क्या शहीद हो सकते हैं हम, उस मालिक के नमकहराम ?
सदियों तक आपस में लड़कर करते रहे बराबर वार ;
एक बार तो बैर छोड़ कर, भाई कर देखो तुम प्यार।
इसी मुल्क में हुए और हम, यहीं रहेंगे आगे भी ?
लड़-मर कर सह चुके बहुत क्या और सहेंगे आगे भी ?
अब मत भोगो अपने हाथों अरे बहुत तुम ने भोगा ;
हिन्दू मुसलमान दोनों का यह संयुक्त राष्ट्र होगा ।

(सि. श. गु : आत्मोत्सर्ग, पृ ६०-६१)

४. मेरे हिन्दू औ' मुसलमान, रे अपने को पहचान जान !
हम लड़ जाते हैं आपस में, मंदिर मस्जिद हैं लड़ जातीं,
हम गड़ जाते हैं धरती में, मंदिर मस्जिद हैं गड़ जातीं।
मंदिर मस्जिद से ऊपर हम, रे अपने को पहचान जान !
हम यवन बताते हैं तुमको, तब यवन बताते हैं पुराण,
तुम काफ़िर कहते हो हमको, तब काफ़िर कहती है कुरान।
गीता कुरान से ऊपर हम, रे अपने को पहचान जान!
हम चले मिटाने जब तुमको, बेचारी दाढ़ी कट जाती,
तुम चले मिटाने जब हमको, बेचारी चोटी कट जाती ।
दाढ़ी चोटी से ऊपर हम, रे अपने को पहचान जान !
हम शत्रु समझते हैं तुमको, इतिहास शत्रु बतलाता है,
हम मित्र समझते हैं तुमको, इतिहास मित्र बतलाता है।
इतिहासों से ऊपर हैं हम, रे अपने को पहचान जान !

(सो. ला. द्वि. : युगाधार, पृ. १०६-७)

एकाकी (मोह-त्याग)

इस धूप-छाँह की दुनिया में मन ! सदा अकेले ही घूमो ।
घूमो चाहे जंगल-जगल, चाहे उड़ तारों को चूमो ।।
धरती के चारों खूंट तुम्हारे हैं, चाहे जिस ओर चलो ।
चारों सिम्तें अपनी ही है तुम चाहे जो रस्ता पकड़ो ।।
बस एक बात लो गांठ बांध जिस से न कभी फिर हाथ मलो।
वह याद रही तो छूट्टी है फिर चाहे जो रस्ता पकड़ो ।।
तुम भूल न जाना, दुनिया में है सदा अकेले ही रहना ।
एकाकीपन को सह न सको, फिर भी एकाकी ही रहना ।।
तुम दर्पन में भी कभी भूल खोजना नहीं जीवन-साथी ।
मन, वह भी साथ नहीं देती, जो स्वयं तुम्हारी छाया थी ।।
ओ सोन चिरय्या से मेरे ! ओ सोन जुही से मन मेरे ।

कम भूल न जाना इतना ही तुम मेरे हो केवल मेरे ॥
जाओ, पर नेह लगाना मत, जाओ पर मोह जाड़ना मत ।
यह मैंने जो आदेश दिया मन मेरे, उसे तोड़ना मत ॥
घूमो चाहे जंगल-जंगल, चाहे उड़ तारों को चूमो ।
पर धूप छाह की दुनिया में मन सदा अकेले ही घूमो ॥
(नरेन्द्र शर्मा मिट्टी और फूल, पृ ४७-८)

एषणा

कम चक्र सा घूम रहा है,
यह गोलक बन नियति प्रेरणा,
सब के पीछे लगी हुई है
कोई व्याकुल नई एषणा ।
(प्रसाद कामायनी, पृ २६६)

कटुता

कटुता म पटुता मिली, है हित पटु कटु नीम ।
दल हैं नर-दुख दलन रत, फल हैं फलद असीम ॥
(हरि औध सतसई, पृ ३४)

कथनी और करनी

१ पानी मिलै न आप को, औरन बकसत छीर ।
आपन मन निसचल नही, और बँधावत धीर ॥
कहता तो बहुता मिला, गहता मिला न कोइ ।
सो कहता बहि जान दे, जा नहिं गहता होइ ॥ —कबीर
(संतसुधासार पृ १४३-४)

२ कहता है कुछ और, और ही कुछ करता है,
जब मिलते हैं, प्रेम-परस्पर होता प्रस्फुट ।
दिखलाता कुछ अन्य, भिन्न है अन्तर चिन्तन,
ऊपर अमृत, भीतर विष से भरा पडा घट ।
(सागर मल कुछ कलियाँ कुछ फूल, पृ १)

कनक और कामिनी

एक कनक अरु कामिनी, जग में दोइ फंदा ।
इन पै जो न बँधावई, ता का मैं बंदा ॥ —कबीर
(संतसुधासार, पृ ७५)

(ख) आतमजा जो होत एक, होत सदन उजियार ।
कन्यादान दिहे सों, होते मुकुत हमार ॥ (नूर मुहम्मद इन्द्रावती)

कन्या-विक्रय

वेटियाँ वहनें विकें धन के लिए, भाव ऐसा क्यों किसी जी में जगे।
जो लगा दे लात कुल की लाज को, लत बुरी ऐसी न दौलत की लगे ॥

(हरि औध : चुभते चौपदे, पृ १५०)

कन्या-विवाह

अहो सोच कन्या-विवाह का वृथा हृदय नर धरते हैं।
सर्वशक्तियुत ईश कृपा-निधि जोड़ी निर्मित करते हैं ॥
भावी वर को जन्म प्रथम दे कन्या पीछे रचते हैं।
'नायक' सोच करो मत कोई विधि के अंक न वचते है ॥

(विनायक राव)

कन्या-शिक्षा

वातें न मेरी भूल जाना, ध्यान रखना हे कली।
सवका वदलता है जमाना, सच समझना हे कली।
जिस वृक्ष से उत्पन्न हो, जिस गोद में तुम हो पली।
जिस भाँति वे सम्पन्न हों, उस भाँति रहना हे कली।
ज्यों-ज्यों अभी क्रम से वढ़ोगी, त्यों लगोगी तुम भली।
पर नेत्र पर सवके चढ़ोगी, धैर्य रखना हे कली।
मधु के लिए घेरे रहेंगे, मधुप रसवश हो छली।
मतलव मधुर वहुविधि कहेंगे, तुम मचलना हे कली।
गाना सुना करके फँसाना जानते है सव कली।
उनके प्रलोभन में न आना दृग वचाना हे कली।
तोड़े न तुम को मूढ़ माली, देख कर भी वेखिली।
करना न अपनी सून डाली, युक्ति रचना हे कली।
खा कर वसन्ती वायु भू पर गिर न जाना मनचली।
चढ़ना कठिन है पुनः ऊपर गिर चुकी जव हे कली।
दुर्लभ तुम्हें यदि देख कर कोई कहें वातें जली।
स्वार्थी जगत को देखकर मन में विहँसना हे कली।
सुर भी तुम्हें अपनायँगे, यदि विधि तुम्हारा है वली।
पामर वृथा अकुलायँगे, यह देख लेना हे कली।
जिसने किया निज धर्म को जग में वही फली फली।
तजना न सौरभ धर्म को, नय-मर्म है यह हे कली।
सम्पत्ति पर की आज तक किसके नहीं मन में खली।
तुम चाहना मत राज तक, गुण है मिला जव हे कली।
सोचो तुम्हीं किसकी घड़ी, जग में नहीं चढ़ कर ढली।

है रूप की महिमा बडी, मत गर्व करना है कली।
कोई कहेगा सुखमयी, चुपचाप सुनना है कली।
हिलकर न खिल जाना कहीं, बिकना पडेगा हर गली।
जिसकी न मर्यादा रही, वह है अधमतम है कली।
जीवन पराये हाथ है, इस हेतु मत डरना कली।
जगदीश सबके साथ है कर्त्तव्य निज करना कली॥
(रा च उ कली)

कन्या हत्या

जा कन्या के दान, निगम बखानत अम्य फल।
ताहि हनन अग्यान, कलि प्रताप हरि कृपा बिनु॥
(सोरठा ९५ चाचा० कलि०)

कमाई पाप की

१ करि छल बल बहा पाप थाप कूं झेलि रे।
ल्यायो दर्व कमाय धम कू पेलि रे॥
तातैं किये कुकम विपै रम पागि रे।
हरि हा 'दाम किसोर' भये विन पम अभागि रे॥
(सिद्धात रत्नाकर, पृ २४९)

२ ऊची है दुकान जा मैं फीके पकवान भरें,
खड़े हैं गिवार लोग जाणें हलवाई है।
कूर की मिठाई चाप चेप सू बनाई,
नही भाव मे भलाई घाट तोला सू तुलाई है।
कपट कमाई क्षुधा खात हू न जाई,
दाम देन है बजाई चाल चोर की चलाई है।
सार शरण पाई तोही साच नहि आई,
'रामचरण' राम बिना दुनी भरमाई है॥
(अणमै वाणी, पृ १००)

३ झूठ-पाप के विभव से, निधनता वर जान।
शोथ-जनित स्थूलत्व से, कृश काया भल मान॥
—रसिकेश

कर-वृद्धि

कहते हैं कुछ ही वर्षों में दुगुनी होगी अपनी आय।
इसका क्या विश्वास, चौगुना हो न जायगा व्यय-समुदाय॥
(मं श गु राज्य-सभा में २४-४-५४ को भाषण)।

करुणा

जो चिरंतन स्वप्न को खोजा किया, वह न कुछ भी हो मगर है आदमी,
हर दुखी को दो नयन की बूंद दो, इस खजाने में न आयगी कमी।
(सं. क्षेमचन्द्र सुमनः रामावतार त्यागी, पृ. ११८।

करुणा और विनय

झुक समिष्ट के संमुख जिस दिन व्यष्टि दान देती है,
तभी व्यक्ति के भीतर, करुणा विनय जन्म लेती है।
(दिनकर की सूक्तियाँ, पृ. ८९)

करुणा का अभाव

सब कुछ मिला नये मानव को,
एक न मिला हृदय कातर;
जिसे तोड़ दे अनायास ही,
करुणा की हलकी ठोकर।
(दिनकर : सामधेनी, पृ. ३८)

करुणा—प्रसार

भुनती वसुधा, तपते नग,
दुखिया है सारा अग—जग,
कंटक मिलते हैं प्रतिपग,
जलती सिकता का यह मग,
वह जा बन करुणा की तरंग,
जलता है यह जीवन—पतंग।
(प्रसाद : आँसू, पृ. ५०)

करुणा से प्रभु-प्राप्ति

दुखी पर करुणाक्ष ण भर हो
प्रार्थना पहरों के वदले।
मुझे विश्वास है कि वह सत्य
करेगा आ कर तव सम्मान॥
(प्रसाद : झरना, पृ. ७८)

कर्कशा

डाढी जारौं जेठ, देवर स्याम बदन करौं।
ससुर कौन वड़ सेठ, कलि प्रताप हरि कृपा विनु॥
(चाचा. : कलि., सोरठा ६९)

कर्त्तव्य

१ देवि, गया है जोड़ा यह जो,
मेरा और तुम्हारा नाता,
नहीं तुम्हारा मेरा केवल,
जग जीवन से मेल कराता।

२ दुनिया अपनी जीवन अपना,
सच, नहीं केवल मन-सपना,
मन-सपने-सा इसे बनाने
का, आओ, हम तुम प्रण ठानें।

३ जैसी हमने पाई दुनिया,
आओ, उस से बेहतर छोड़ें,
शुचि-सुन्दरतर इसे बनाने,
से मुँह अपना कभी न मोड़ें।

४ क्योंकि नहीं बस हमसे नाता,
जब तक जीवन-काल हमारा,
बेटे, पूत, पद, बड़ इसमें ही,
रहने को है लाल हमारा॥

(बच्चन सतरंगिनी, पृ १६६)

कर्त्तव्य—एकमात्र

एक ध्येय उद्देश इक, करब एक न आन।
जेहि तेहि भांति उठाइबो, हिन्दी-हिन्दुस्तान॥

(रामेश्वर करुण करुण सतसई, पृ १६२)

कर्त्तव्य—दिशा

१ कह दे माँ क्या अब देखूँ?
देखूँ हिम-हीरक हँसते,
हिलते नीले कमलों पर,
या मुरझाई पलकों से,
झरते आँसू-कण देखूँ?

२ सौरभ पी पी कर बहता
देखूँ यह मन्द समीरण
दुख की घूँटें पीती या,
ठंडी साँसों को देखूँ?

३. तेरे असीम आंगन की
देखूं जगमग दीवाली,
या इस निर्जन कोने के,
बुझते दीपक को देखूं?

४. तुझ में अम्लान हँसी है,
इस में अजस्र, आंसू जल,
तेरा वैभव देखूं या,
जीवन का क्रन्दन देखूं?

(महादेवी वर्मा : आधुनिक कवि, पृ. ३७-८)

कर्त्तव्य—पालन

१. कर्त्तव्य करना चाहिए, होगी न क्या प्रभु की दया,
सुख-दुःख कुछ हो, एक-सा ही सब समय किस का गया?

(मै. श. गु. : भारत भारती, पृ. १७९)

२. जग में सचर-अचर जितने है सारे कर्म-निरत है।
धुन है एक न एक सभी को सबके निश्चित व्रत हैं।
जीवन भर आतप सह वसुधा पर छाया करता है।
तुच्छ पत्र की भी स्वकर्म में कैसी तत्परता है॥
सिन्धु-विहंग तरंग-पंख को फड़का कर प्रतिक्षण मे।
है निमग्न नित भूमि-अंड के सेवन में रक्षण में।
कोमल मलय पवन घर-घर में सुरभि बाँट आता है।
सस्य सीचने घन जीवन धारण कर नित जाता है॥
रवि जग में सोभा सरसाता सोम सुधा बरसाता।
सब है लगे कर्म में कोई निष्क्रिय दृष्टि न आता।
है उद्देश्य नितान्त तुच्छ तृण के भी लघु जीवन का।
उसी पूर्ति में वह करता हैं अन्त कर्ममय तन का॥
तुम मनुष्य हो अमित बुद्धि-बल-विलसित जन्म तुम्हारा।
क्या उद्देश्य-रहित है जग में तुम ने कभी विचारा?
बुरा न मानो, एक बार सोचो तुम अपने मन में।
क्या कर्त्तव्य समाप्त कर लिये तुम ने निज जीवन में॥

(रा. न. त्रि. : पथिक, पृ. २८—२९)

३. उस कलंकी फूल का मत नाम लो, जो कहीं इतरा रहा हो ताज पर।
सौ गुना उस से सुघर वह शूल जो, दे रहा पहरा कली की लाज पर।

(रामनारायण त्रिपाठी : वनफूल, पृ. ११)

४ मानव ! मन तू फिक्र कर, यश अपयश सम द्रव्य,
बल, धीरज, मन, बुद्धि से करता जा कर्तव्य ।
(श्रीमन् नारायण रजनी मे प्रभात का अकुर, पृ १०९)

कर्त्तव्य—महत्त्व

कर्महि माँहि निहित भव-भमा । नहि स्वकर्म ते बढि सद्धर्मा ॥
(द्वा प्र मि कृष्णायन, पृ ४७९)

कर्तव्योपदेश

क्रोध लोभ मोह मार दर्प प्रचड वीर
इन ते सदाही ह्वै सचेत रहिया करो ।
जीवन मे उत्तम सरीर पाया मानव को
दीन उपकार चित्त माहि चहिवा करो ।
विप्र गुरु सत लो न कीजै रारि भूलि कबू
पावन पदारविन्द हर्ष गहिबा करो ।
तीरथ जहाँ लो बनै पग त कीजे 'केदार'
रामनाम रसना सो लाख कहिवो करो ॥
(काशीवासी प केदारनाथ जी)

कर्म अत्याज्य

विहित स्वधर्म कर्म जो जासू । उचित पार्थ ! सत्याग न तासू ॥
(द्वा प्र मि कृष्णायन, पृ ६०७)

कर्म और चिन्तन का सामंजस्य

जहाँ भुजा का एक पथ हो, अन्य पथ चिन्तन का,
सम्यक् रूप नही खुलता उस द्विधा-ग्रस्त जीवन का ।
(दिनकर की सूक्तियाँ, पृ ४२)

कर्म और ज्ञान

दो हाथो से चुनो भविष्यत की दीवारें,
रह पायेंगे वही कामना, मित्र ज्ञान के,
बिना साधना के विचार थोथे होते हैं,
बिना कर्म के थोथे हैं निश्वास प्राण के ।
(उ श म कणिका, पृ ४५)

कर्म और फल

१ यह कहवत जैसा करै तैसो पावै लोय ।
औरन कौं आधे करै आँधी कहियत सोय ॥
(सतसई सप्तक, वृन्दसतसई, दोहा २०२)

२. कोई जो बड़े से बड़ा फल नही पावेगा,
ऊँचे उठने का फिर कष्ट क्यों उठावेगा ?

(मै. श. गु. : नहुष, पृ. ३२)

कर्म और भाग्य

कर्म से भाग्य, भाग्य से कर्म,
उभय में बीज-वृक्ष का धर्म,
भाग्य की बात भाग्य के हाथ,
पुरुष का हो पौरुष से साथ ।।

(बलदेवप्रसाद मिश्र : साकेत-सन्त, पृ. ६२)

जो दक्षिन ध्रुव अस्तवै, तप्त अग्नि सियराइ ।
पश्चिम भान उदै करैं, तऊ न कर्म गति जाइ ।।
पंख लागि कै सिला उड़ाहीं । पाहन फोरि कमल विहसाँही ।
जो इतनी विपरीत चलावै । तउ न कर्म सों छूटन पावै ।
कर्महेत हरिचंद जल भरा । कर्म हेत बलि सर्वस हारा ।
कर्म हेत पांडव फल खाये । कर्म रेख रघुपति वन आये ।।
सोई कर्म मनुष्य में, कोटि कराव हि भेख ।
सो 'कवि आलम' ना मिटै, कठिन कर्म की रेख ।।

(आलम : माधवानल कामकन्दला)

कर्म—गति

१. करम गति टारे नाहिं टरी ।
मुनि वसिष्ठ से पंडित ज्ञानी सोधि के लगन धरी ।।
सीता हरन मरन दशरथ को वन में विपति परी ।
नीच हाथ हरिचन्द्र विकाने बलि पाताल धरी ।
पांडव जिनके आपु सारथी तिन पर विपति परी ।
राहु, केतु, औ भानु चंद्रमा विधि संजोग परी ।
कहत कबीर सुनो भई साधो होनी होके रही ।।

(कविता कौमुदी भाग १, पृ. १७५)

२. करम गति टारे नाहिं टरे ।
सतवादी हरिचन्द से राजा (सो तो) नीच घर नीर भरे ।
पाँच पांडु अरु सती द्रोपदी, हाड़ हिमालै गरे ।।

(मीराबाई की पदावली, पृ. १५६)

३. भावी काहू सौं न टरे ।
कहँ वह राहु कहाँ वै रवि ससि आनि संजोग परै ।।
मुनि बसिष्ठ पंडित अति ज्ञानी, रचि-पचि लगन धरै ।।
तात-मरन सिय-हरन राम बन-बपु धरि विपति भरे ।

हरिचंद सो को जग दाता सो घर नीच भरै।
'सूरदास' प्रभु रची सु ह्वै है को करि सोच मरै॥
(सूरसागर, पृ ८५)

कर्म-गोपन असम्भव

तारा कि जोति म चंद छिपै नहि, सूर छिपै नहि बादर छाए।
रन चढ्यो रजपूत छिपै नहि, दाता छिपै नहि माँगन आए॥
चंचल नारि के नैन छिपै नहि, प्रीति छिपै नहि पीठि दिखाए।
गग कहै सुनि साह अकब्बर, कर्म छिपै न भभूत लगाए॥
(स भटे कृष्ण गग कवित्त, पृ १२४)

कर्म जीवन

कर्म-करन सोई जियन, अकर्मण्य निष्प्राण।
लहत कि कबहुँ कर्म बिनु, मुनिहु मोक्ष-निर्वाण॥
(द्वा प्र मि कृष्णायन, पृ ४८०)

कर्म निष्काम

१ कर्म हेतु ही कर्म कहीं हम कर सकें,
तो उनके फल हमें कहाँ से धर सकें।
(मै श गु साकेत पृ १०१)

२ कर्म हि महँ अधिकार तुम्हारा, नाहि कर्म-फल पै अधिकारा।
फल हित करहु कर्म तुम नाही, नहि आसक्ति अकर्महु माहीं॥
(द्वा प्र मि कृष्णायन, पृ ५४३)

कर्म-पथ

फिर कहता हूँ डरो न दुख से, कर्म मार्ग सम्मुख है।
प्रेम-पथ है कठिन, यहाँ दुख ही प्रेमी का सुख है।
कर्म तुम्हारा धर्म अटल हो कर्म तुम्हारी भाषा।
हो सकर्म मृत्यु ही तुम्हारे जीवन की अभिलाषा॥
(रा न त्रि . पथिक, पृ ३४)

कर्म-मर्म

समझो मर्म,—एक ही कर्म, कहीं धर्म है कहीं अधर्म॥
करते हैं जो रण में क्षत्र, वही हिंस्र-हिंसा अन्यत्र॥
(मै श गु हिन्दू, पृ १२८)

कर्म-महत्त्व

सुन्दरता आनंद-मूर्ति है, प्रेम-नदी मोहक, मतवाली।
कर्म कुसुम के बिना किन्तु क्या भर सकती जीवन की डाली?
(दिनकर · चक्रवाल, पृ ३६)

कर्म : सभी प्रमुख

काम हैं जितने ज़रूरी, सब प्रमुख हैं,
तुच्छ इसको औ' उसे क्यों श्रेष्ठ कहते हो ?
मैं समझता हूँ कि रण स्वाधीनता का.
और आलू छीलना दोनों बराबर है ॥ (गांधी जी)

(दिनकर : नये. सुभाषित. पृ. ५२)

कर्म : से सिद्ध

कष्ट-प्राप्य हो, कर्मण्यों को सिद्धि अप्राप्य न होती,
पा लेते पन-पैठ सिन्धु के गूढ़ गर्भ से मोती ।

(रामखेलावन वर्मा : चन्द्रगुप्त मौर्य, १५०)

कर्म-हीन की दुर्दशा

सकल पदारथ है जग माहीं,
कर्महीन नर पावत नाहीं ।

(तुलसीदास : रा. च. मा.)

कर्मचारी : कपटी

रजो गुन कहत हैं दीनन कूं जाने नहीं,
ताते बोले बोल ताते तेल में नहाएँगे ।
लाव लाव कहै कछु न्याव की न बूझे बात,
बिगरसु न्याव सो वड़ीयै मार खाएँगे ॥
कहै कवि 'गंग' सो ते जीव दुखदाई सब,
मीड़ मीड़ हाथ के वे फेरि पछताएंगे ।
कहा भयो दिन चार गद्दी के मुसद्दी भये,
बद्दी के करैया सब रद्दी होय जाएंगे ॥

(अकबरी दरबार .....पृ ४३५)

कर्मवीर

आज करना है जिसे करते उसे है आज ही,
सोचते कहते हैं जो कुछ कर दिखाते हैं वही ।
मानते जी की हैं सुनते है सदा सब की कही,
जो मदद करते है अपनी इस जगत में आप ही ॥
भूल कर वे दूसरों का मुँह कभी तकते नहीं,
कौन ऐसा काम है वे कर जिसे सकते नहीं ।
जो कभी अपने समय को यों बिताते है नहीं,
काम करने की जगह बातें बनाते हैं नहीं ।

आज-कल करते हुए जो दिन गँवाते हैं नहीं,
यत्न करने मे कभी जो जी चुराते हैं नहीं ॥
बात है वह कौन जो होती नहीं उनके लिये,
वे नमूना आप बन जाते हैं औरो के लिये ॥
चिलचिलाती धूप को जो चाँदनी देवें बना,
काम पड़ने पर करें जो शेर का भी सामना ।
जो कि हँस-हँस के चबा लेते हैं लोहे का चना,
है कठिन कुछ भी नहीं जिनके है जी मे यह ठना ॥
कोस कितने ही चलें परे वे कभी थकते नहीं,
कौन सी है गाँठ जिसको खोल वे सकते नहीं ॥

(हरि औध पद्य प्रमोद, पृ ४२-४३)

कर्म-शीलता

१ जी लगा काम औ कमाई कर, हो गये कामयाब माहिर सब ।
हैं जवाहिर न जौहरी के घर, जाँघ में है भरे जवाहिर सब ॥
बाँह के बल को समझ लो बूझ लो, दूसरे ने तो बँटाया है नहीं ।
धन किसी का देख काटें होठ क्यो, हाथ तो हम ने कटाया है नहीं ॥

(हरि औध चुभते चौपदे, पृ ३८,४१)

२ नभ की उस नीली चुप्पी पर
घंटा है एक टँगा सुन्दर,
जो घड़ी-घड़ी मन के भीतर
कुछ कहता रहता बज-बज कर ।
परियो के बच्चा से प्रियतर
फैला कोमल ध्वनियो के पर
कानो के भीतर उतर-उतर
घोसला बनाते उसके स्वर ।
भरते वे मन मे मधुर रोर,
'जागो रे जागो, काम-चोर !
डूबे प्रकाश मे दिशा छोर
अब हुआ भोर अब हुआ भोर ।
आई सोने की नई प्रात
कुछ नया काम हो, नई बात,
तुम रहो स्वच्छ मन, स्वच्छ गात,
निद्रा छोड़ो रे गई रात ।'

(आधुनिक कवि, सु न प, पृ ४८)

कल करना सो······।

कहै 'पुसराम' चित चिदानन्द ही कों ध्याय
अन्त समय तासौं नांहि तेरें तम छावैगो।
मेरो मेरो करै सो तो तेरो नांहि कोऊ यार,
मेरो कह्यो मानैगो तो जन्म जीत जावैगो।
खाय लै खवाय लै गवाय लै गुनी पै गुन
पाय लै रे पुण्य मग तासों पति पावैगो।
कल जो करैगो सो तो आज ही करहु, आज—,
काल मैं न जानै काल कौन काल आवैगो॥

(पुरातत्व मन्दिर, जयपुर, पांडुलिपि संख्या २३४८)

कलम

सब वीर किया करते हैं संमान कलम का।
वीरों का सुयश-गान है, अभिमान कलम का॥

(भगवानदीन : वीरपंचरत्न)

कलम : का सम्मान

जो कलम सरीखे टूट गये पर झुके नहीं
उनके आगे यह दुनिया शीश झुकाती है,
जो कलम किसी कीमत पर बेची नहीं गई
वह तो मशाल की तरह उठाई जाती है।

—रामकृष्ण श्रीवास्तव

(सं. शिवदान सिंह चौहान : काव्यधारा १, पृ. १५२)

कलम : के धनी

है कहाँ कलम के धनी आज इस दुनिया में
जिसको देखो वह कलम बेचता फिरता है,
जब कलम गुलामी की सूली पर चढ़ती है—
आजादी की आंखों से लोहू गिरता है।

—रामकृष्ण श्रीवास्तव

(सं. शिवदान सिंह चौहान : काव्यधारा १, पृ. १५०)

कलह का प्रभुत्व

कलह स्वातन्त्र्य से बोला बहादुर !
समय में, शक्ति में, मेरा बसेरा;
भले अंग्रेज़ जाएँ, किन्तु मैं हूँ;
समूचा देश मेरा सिर्फ़ मेरा !

(मा. ला. च. : वेणुलो, गूंजे धरा, पृ. ७३)

कला

१ सुंदर को सजीव करती है,
भीषण को निर्जीव कला।
(मै श गु साकेत, एकादश सर्ग)

२ कला हलाहल जानिये, जा मैं पतित विचार।
कलावंद लै का करै, जो तहँ बडो विकार॥
(किशोरीदास बाजपेयी तरंगिणी पृ २)

३ कला हृदय में अनुभव-रस के स्वर का कलि-पथ पर वपन है।
चिन्तन, जीवन और वेदना, तीनों का यह अमर मिलन है।
कला अग्रगति, इसके पीछे हर युग मे सब जग चलता है।
चिर-जाग्रत इसके अतर मे दीप साधना का जलता है।
—जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिन्द'
(स मु न प कवि भारती, पृ ४९८)

कला और कवित्व

काम्य-कुसुम-कलिका देकर ही, कला-लेतकी है कृतकार्य।
किन्तु कवित्व रसाल, सुफल भी, आशा है तुझ से अनिवार्य॥
(मै श गु हिन्दू, भूमिका, पृ १६)

कलाकार

१ व्यर्थ कला है अगर जिंदगी को कुछ शान्ति नहीं दे पाई।
वह कविता क्या जो कि दलित को नूतन क्रांति नहीं दे पाई॥
कलाकार वह व्यर्थ कि जिसमे पीडा की पहचान नहीं है।
वह स्वर शिवम् नहीं है जिसमे जग हित नया विधान नहीं है॥
देहकार ! वीणा वाणी से वर्णों मे ज्वाला भर दो तुम।
कलाकार अपने जीवन से मानव को महान कर दो तुम॥
(रघुवीरशरण मित्र भूमि के भगवान, पृ ७१-८०)

२ तुम प्रकाश के स्रोत नित्य-नव,
प्रतिनिधि संस्कृति के, जीवन के,
प्रगति-पदो के मार्ग-प्रदर्शक,
प्रेरक हो जग के यौवन के।
उर-उर में जो एक वेदना,
प्राण प्राण मे एक व्यथा है,
असन्तोष है, प्यास साम्य की,
जो अभाव की एक कथा है,

उससे अपना हृदय अछूता,
रख कैसे तुम जी पाओगे ?
क्रान्ति तथा नव-रचना-पथ पर,
कैसे पीछे रह जाओगे ?

—जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द
(सं. सु. नं. पं. : कवि भारती, पृ. ४९७,५००)

कला संगीत कवित्व

केवल भावमयी कला, ध्वनिमय है संगीत ।
भाव और ध्वनिमय उभय, जय कवित्व नय-नीत ।।

(मै. श. गु. : हिन्दू, भूमिका. पृ. १९)

कलि : प्रभाव

१. कलिकाल बिहाल किए मनुजा । नहिं मानत क्वौ अनुजा तनुजा ।।

(रा. च मा. गु. पृ. ६५४)

२. कलि बारहिं बार दुकाल परै, बिन अन्न दुखी सब लोग मरै ।।

(रा. च. मा. गु. पृ. ६५४)

३. बहु दाम सँवारहिं धाम जती । बिषया रह लीन नहीं बिरती ।।
तपसी धनन्वत दरिद्र गृही । कलि कौतुक तात न जात कही ।।

(रा. च मा. गु. पृ. ६५३)

४. जे बरनाधम तेलि कुम्हारा । स्वपच किरात कोल कलवारा ।।
नारि मुई गृह-संपति नासी । मूँड़ मुड़ाइ होहिं संन्यासी ।।
ते बिप्रन सन पाँव पुजावहिं । उभय लोक निज हाथ नसावहिं ।।

(रा च मा. गु. पृ. ६५३)

५. कासौं कीजै रोष ? दोष दीजै काहि ? पाहि राम,
कियो कलिकाल कुलि खलल खलक ही ।

(तुलसी ग्रंथावली २, पृ. १८६)

६. पूत न कह्यौ पिता कौ मानत, करत आपनौं भायौ ।
बेटी बेचत संक न मानत दिन-दिन मोल बढ़ायौ ।
याही तैं बरिषा मंद होत है, पुन्य तें पाप सवायौ ।
इतनों दुख सहिबे के काजै काहे को 'व्यास' जिवायौ ।।

(व्यास वाणी, पृ. १२२)

७. धर्म दुर्यौ कलि दई दिखाई ।
धन भयौ मीत, धर्म भयौ वैरी, पतितन सौं हितवाई ।
जोगी जपी तपी संन्यासी व्रत छांड्यो अकुलाई ।।

दरवन गन्न भयानक लागत, भावत सगुन जमाई।
दान लैन को वड़े तामसी, मचलनि की बैमनाई।
लरन मरन की बड़े तामसी, वारों कोटि कमाई ॥
उपदमन की गुरु गुसाई, आचरनें अधमाई ॥

(व्यास वाणी, पृ. १२२)

८ जो सेवक साहिब कौं इरकै सो सेवग धन पावै।
जो सब भांति साहिबहि सेवै सो न साहबहि भावै।
कुर की मिहरी मनहि न भावै चित चोरावै दासी।
ए कल काल तमासे तरे दुप आवै अरु हासी।
धानतदार दुषी दिन दीसै नाहि न धनी पतीजै।
चोरहि सरबस सौंपि आपनों तारारि सुष्यो न लीजै।
सुषिया जें दिवान के सवक दुषिया राजन जी कै।
देवदूबर भेषा मोट कलि करतूत हँसी कै ॥
आपर जोरै सुरषि कहावै पंडित कहै कहानी।
करैं सवारि मागि को गोलो भोई वैद वषानी ॥
पत्रा बाचि होइ ज्योतिषी अटकर प्रसन मिलावै।
विद्या-हीन गपि-रतव डाढी कनि मैं सिद्ध कहावै ॥

(बान न कलिचरित्र ४।१।४०)

६ देखो कलिजू के राजनीति को तमासो यह,
बासो कियो आय हर एक की अक्कल पैं।
खानदान वारे पानदान लिये दौरत हैं,
तान गान वारे बैठे जोवन महल पैं ॥ ग्वालकवि

(कविता कौमुदी, भाग १)

कलि के योगी

१ असुभ वेष भूषन धरे, भच्छाभच्छ जे खाहि।
तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर, पूज्य ते कलिजुग माहि ॥

(रा च मा गु, पृ ६५२)

२ चोर चतुर, बटमार नट, प्रभु प्रिय भड़आ भण्ड।
सब भक्षी परमारथी, कलि सुपन्थ पाखण्ड ॥

(तुलसी सतसई, पृ २४६)

कलि : के राजा

गाँड गँवार नृपाल कलि, यवन महा महिपाल।
साम न दाम न भेद कलि, केवल दण्ड कराल॥
(तुलसी सतसई, पृ. २४७)

कलि : महिमा

कलि जुग सम जुग आन नहिं, जो नर कर विस्वास।
गाइ राम गुनगन विमल, भव तर विनहिं प्रयास॥
(रा. च. मा. गु., पृ. ६५५)

कल्पना-जगत्

आह कल्पना का सुन्दर यह
जगत मधुर कितना होता!
सुख स्वप्नों का दल छाया में
पुलकित हो जगता सोता।
(जयशंकर प्रसाद : कामायनी, पृ. ३७)

कल्पना—वृद्धि

वढ़ाओ कल्पना का जाल, तव भी स्वप्न वाकी है;
लगाओ तर्क के सोपान, तव भी प्रश्न रहते हैं।
(दिनकर की सूक्तियाँ पृ. २८)

कल्पना-स्वरूप

आत्मा की है आँख, बुद्धि की पाँख है,
मानस की चाँदनी विमल है कल्पना।
(दिनकर : नये सुभाषित, पृ. १४)

कल्याण का उपाय

कहता हूँ जव तक न वनेगा, यह नर नारायण का प्रतिनिधि;
तव तक व्यर्थ सिद्ध होगी यह जगन्मोक्षकारी सव गति-विधि।
(बा. कृ. श. न. : हम विषपायी जनम के, पृ. ६६)

कवि

कविहि अरथ आखर वल साँचा। अनुहरि ताल गतिहि नट नाचा॥
(रा. च. मा. गु. पृ. ३६०)

कवि और काव्य-रसिक

कविगण कविता जो करहिं, ज्ञानवान रस लेइ।
जन्म देइ पितु पुत्रि को, पुत्रि पतिहि सुख देइ॥
(विनायक राव)

कवि और वीर

वीरों की गुणगाथा का यश जो नहीं गाता ।
वह व्यर्थ सुकवि होने का अभिमान जताता ॥
जो वीर सुयश-गान में है ढील दिखाता ।
वह देश के वीरत्व का है मान घटाता ॥
दुनिया में सुकवि नाम सदा उसका रहेगा ।
जो काव्य में वीरों की सुभग कीर्ति कहेगा ॥१॥
वाल्मीकि ने जब वीर चरित राम का गाया ।
सम्मान सहित नाम अमर अपना बनाया ॥
श्री व्यास ने तब नाम सुकवियों में है पाया ।
भारत के महायुद्ध का जब गीत सुनाया ॥
कब चंद भी हिन्दी का सुकवि आदि कहाता ।
यदि वीर पिथौरा का सुयश-गान न गाता ॥
सब वीर क्रिया करते हैं समान कलम का ।
वीरों का सुयश-गान है अभिमान कलम का ॥

(ला. भगवान दीन)

कवि और सुरुचि

करते रहोगे पिष्ट पेषण और कब तक कविवरो !
कच कुच कटाक्षों पर अहो ! अब भी न जीते जी मरो ।
है बन चुका शुचि अशुचि अब तो कुरुचि को छोड़ो भला,
अब भी दया करके सुरुचि का तुम न यों घोंटो गला ॥

(मै. श. गु. भारत भारती, पृ. १७०)

कवि-कर्तव्य

१ कविमनीषी का कर्तव्य सनातन
जीवन मंगल का करना सुख सर्जन,
श्री सुषमा, रस महिमा, स्वर गरिमा से,
कुसुमित कूजित रखना जन-भू प्रांगण !
शुभ्र शान्ति में मज्जित कर भू-उर दुख
कवि का रखना तत्व सिखाना जन को,
सदा गुहा में सोया भावी मानव,—
उसे जगाना जड़ में स्थित चेतन को !

(सु. न. प. लोकायतन, ३३)

२. कवि का क्या संमान करेगा कोई जग में !
रवि का क्या यश-गान करेगा कोई जग में !
दोनों का ही मान यही—तपनिधि में डूबे ।
मिले नहीं आदान दान से तदपि न ऊवें ।

(गिरिजादत्त शुक्ल : तारकवध, पृ. ३)

३. कवि के स्वर में वह कम्पन हो, वह क्रन्दन हो, वह स्पन्दन हो ।
कवि के उर में वह दर्शन हो, वह स्पर्शन हो, वह घर्षण हो ॥
सोया जन-मानस फड़क उठे,
मृतकों के शव भी धड़क उठें ।
फिर कड़क उठे अविवाद क्रांति,
अन्तर की ज्वाला भड़क उठे ।
खिल जाएं मुखरित हो शत-दल,
महके अविरल प्रतिपल परिमल ।
भूतल से मिटे जटिल छल-बल,
जंगल में हो जाए मंगल ।
कवि के उस कोमल अन्तर में वह चिंतन हो वह मंथन हो ॥

(सागरमल : कुछ कलियां कुछ फूल, ८४)

कवि-कर्म

केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए,
उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए ।
क्यों आज राम चरित्र मानस सब कहीं सम्मान्य है ?
सत्काव्ययुत उस में परम आदर्श का प्राधान्य है ॥

(मै. श. गु. : भारतभारती, १७१)

कवि-कल्पना

जब तक कवि कुल कल्पना, करे कलित आलाप ।
अवनि लसित तब तक रहे, कवि का कीर्ति-कलाप ॥
सुर-सरि धारा सी सरस, पूत परम रमणीय ।
है कवियों की कल्पना, कल्पलता कमनीय ॥

(हरि औध : सतसई, पृ. ७६)

कवि-कीर्ति

कोई काल कैसे नाम उनका करेगा लोप,
जिनको प्रसिद्ध कर पाती है परम्परा ।
जिनकी रसाल रचनाओं से सरस वन,
रहता सदैव याद पादप हरा-भरा ।

'हरिऔध' होते हैं अमर कविता से कवि,
कमनीय कीर्ति है अमरता-सहोदरा।
सुधा हैं बहाते कवि-कुल वसुधा-तल में,
सुधा कवि-कुल को पिलाती है वसुधरा।

(मर्मस्पर्श पृ १६३)

कवि कुकवि

१ कविराजा सू मद कवि, अकम करे अविचार।
अब जग करना सू अकम, करमी घट करतार॥

(बाँकी दास ग्रंथावली, २, पृ ८०)

२ वानर री निरलज्जता, उपर कठणता लीध।
वायस तणा कुकठ ले, कुकवि विधाता कीध॥

(बाकीदास ग्रंथावली, २, पृ ७६)

३ मरदान के कवित ए कहिहैं क्यो मतिमन्द।
बैठि जनाने पढत जे तिन नख सिख के छद॥

(वियोगी हरि वीरसतसई, पृ ८३)

४ बडे-बडे वह बाल बढावे, कुर्ते को नहि बटन लगावे,
अपने को वह समझे रवि, ऐ सखि पागल ? ना सखि कवि।

(बरसाने लाल रंग और व्यंग्य, पृ ८)

कवि कुकवि और सुकवि

जुगनू भानु के आगे भली विधि आपनी जोतिहु को गुन गैहै।
माखिया जाइ खगाधिप सो उडिबे की बडी-बडी बात चलैहै॥
'दास' जबै तुक जोरनहार कविन्द उदारन की सरि पैहै।
तौ करतारहु सो औ कुम्हार सो एक दिना झगरो बनि ऐहै॥

(भिखारीदास · काव्यनिर्णय, पृ ८३)

कवि के मुख से

मैं 'माइक' के सम्मुख हूँ,
'माइक' मेरे सम्मुख है।
कोई सुनता भी होगा या नही,
इसी का दुख है।

(प्रभाकर माचवे नयी कविता, अक २, १९५५, पृ १०४)

कवि : प्रयोगवादी

ग़लत न समझो, मैं कवि हूँ प्रयोग शील,
खादी में रेशम की गांठ जोड़ता हूँ मैं ।
कल्पना कड़ी से कड़ी, उपमा सड़ी से सड़ी,
मिल जाय पड़ी उसे नही छोड़ता हूँ मैं ।।
स्वर को सिकोड़ता, मरोड़ता हूँ मीटर को,
बचना जी, रचना की गति मोड़ता हूँ मैं ।
करने को क्रिया-कर्म, कविता अभागिनी का,
पेन तोड़ता हूँ मैं, दवात फोड़ता हूँ मैं ।।

—गोपाल प्रसाद व्यास

(सं. शिवदानसिंह चौहान : काव्यधारा १, पृ. १६४)

कवि : वहुतायत

कुछ नहीं मालूम, लव का मर्म है,
प्रेम का बाजार, लेकिन गर्म है।
जिसको देखो, बन गया 'पोएट' वही,
आजकल कविता का फैला जर्म है ।।

(बेढब बनारसी : बेढब की बहक, पृ. ३८)

कवि-महत्त्व

विधि तें कवि सब विधि बड़ो, या में संशय नाहिं।
छै रस विधि की सृष्टि में, नौ रस कविता माहिं ।।

(अज्ञात कवि)

कविराज

बड़े वही कविराज हैं, और सभी कवि व्यर्थ ।
श्रोता जिनके काव्य का, समझ न पावें अर्थ ।।

(काका हाथरसी : दुलत्ती, पृ. ९१)

कवि-लक्षण

जो सुप्त चेतना जगा सके, उसको ही मैं कवि कहता हूँ ।
अन्तर तम को जो भगा सके, उसको ही मैं रवि कहता हूँ ।।

(सागरमल : कुछ कलियाँ कुछ फूल, पृ. ८६)

कवि-वाणी

कवि-अच्छर अरु तरुनि-कटाछै । ए दोउ सुलग लगैं हिय आछै ।
जो हिय अच्छर-रस नहिं भिदै । सो हिय अर्जुन-बान न छिदै ।।

(नंददास ग्रंथावली पृ. ११८)

कवि-शृंगारी

राग उदै जग अंध भयो, सहजै सब लोगन लाज गँवाई।
सीख बिना नर सीख रहे, विसनादिक सेवन की सुघराई॥
तापर और रचैं रसकाव्य, कहा कहिये तिन की निठुराई।
अंध असूझन की अँखियान मैं झोंकत हैं रज, राम दुहाई॥
(भूधरदास जैनशतक, पृ २४)

कवि-सम्मेलन निंद्य

नीति बिहूनो राज ज्यों, सिसु जनो बिनु प्यार।
त्यों अब कुच-कटि-कविन बिनु, सूनो कवि-दरबार॥
(वियोगी हरि वीरसतसई, पृ ८२)

कवि सुकवि

१ जिनकी कृति, हो अमर, जगत् में पूजा पाती,
जनता सुनकर सरस सूक्तियाँ वश हो जाती,
प्रतिभा जिनकी सदा बनी रहती है दासी,
किया करे लेखनी सदा नव-रस-वर्षा-सी,
सुकवि सरल सिद्धान्त के, जो न पंडितम्मन्य हैं,
भक्त भारती के भले वे भरनायक धन्य हैं।
(रूपनारायण पाण्डेय पराग, पृ १०५)

२ कोइ छाया माया बिधे, कुच कटाक्ष बिध कोय।
दीन-गुहारन जे बिधे, सुकवि सदा हिय सोय॥
(रामेश्वर 'करुण' करुण सतसई, पृ ६)

कविता

कविते! सोता—देश जगा दो।
युवक छोड़ कर हाला प्याला—
जिससे खेल मृत्यु से खेलें,
हँसते हँसते बलि-वेदी पर—
युवकों को चढ़ना सिखला दो।
कविते!
जिससे ललनाएँ परिकर कस,
आता बालक बाँध कमर से,
चढ़ घोड़े पर लड़ युद्ध में—
ऐसा महायुद्ध दिखला दो,
कविते!

कविता और ज्ञान : बड़े

बड़ी कविता कि जो इस भूमि को सुन्दर बनाती है।
बड़ा वह ज्ञान जिससे व्यर्थ की चिन्ता नहीं होती ।।

(दिनकर की सूक्तियाँ. पृ. २६)

कविता और मूढ़

भरिवो है समुद्र को शम्बुक में, छिति को छिगुनी पर धारिवो है।
बँधिवो है मृणाल सों मत्त करी, जुही फूल सों सैल विदारिवो है ।।
गनिवो है सितारन को कवि शंकर, रेणु सों तेल निकारिवो है।
कविता समुझाइवो मूढ़न को, सविता गहि भूमि पै डारिवो है ।।

(नाथूराम शंकर शर्मा)

कविता और वियोग

वियोगी होगा पहला कवि,
आह से उपजा होगा गान;
उमड़ कर आँखों से चुपचाप,
वही होगी कविता अनजान ।

(सु. नं. पं. : आधुनिक कवि, पृ. १५)

कविता : नई

१. अनुप्रास व्यर्थ हैं, और व्यर्थ हैं छन्द,
जो इन्हें मानता, वह केवल तुकवन्द,
कुछ नई धजा हो, कुछ हो नया प्रयोग,
बैठे-ठाले कुछ नया दन्द या फन्द ।
फ्रायड के भाई बन्द बन गए है सत-चित-आनन्द !
तुम नए-नए कवियों की नई जमात
कहने आई है नई-नई कुछ बात ।
यारो यह रंगत नई नए ये भाव
मै इनको समझूँ मेरी नहीं बिसात ।
मैं तुम में ऐसा, दाल-भात में जैसे मूसलचन्द !

(भगवतीचरण वर्मा : रंगों से मोह, पृ. ८५-६)

२. श्रोता हजार हों कि गिनती के चार हों,
परन्तु मैं सदैव तार-सप्तक में गाता हूँ।
सांस खींच, आंख मीच, जो भी लिख देता उसे,
खुदा की कसम, नई कविता बताता हूँ ।।

ज्ञेय को बनाता अज्ञेय, मन-चित् को शून्य,
देखन चलो मैं आग पानी में लगाता हूँ।
अली की कली की बात बहुत दिनों चली,
अब, हिन्दी में देखो छिपकली भी चलाता हूँ।।
(स शिवदान सिंह चौहान काव्यधारा, १, पृ १६५)

कविता-स्वरूप

तुकान्त ही में कविता त है यही,
प्रमाण कोई ममिमान मानते।
उन्हें यही काम कदापि और से,
अहा महामोह! प्रवञ्चना सब।।
अभी मिलेगा व्रजमण्डलान्त का,
मुभुक्त-भावामय वस्त्र एक ही।
शरीर-संगी करके उसे सदा,
विराग होगा तुझ को अवश्य ही।।
सुरम्यता ही कमनीय कान्ति है,
अमूल्य आत्मा, रस है मनोहरे!
शरीर तेरा सब शब्द मात्र है,
नितान्त निष्कर्ष यही, यही, यही।।
(म प्र द्वि द्वि का माला, पृ २९३ ५)

कसाई

मीठा नमक कसाव की, कहि हिसाब कह कौन।
कसके हिये कसाव जो, छुरी चलावै कौन।
होते जो पै कनक कहूँ, सदा चाम के दाम।
रहन न देते वे—दरद, काहू तन में चाम।।
रसनिधि सतसई सप्तक, पृ २२५

काटा और फूल

कांटा सुमन शरीर छेदता लोग कोसते रहते।
कांटा ही सुमनों का रक्षक-बात न कोई को हते।।
(गिरिजा दत्त शुक्ल तारकवध, पृ ५५५)

काम

काम दिया दुख बहुत ही, बन तजि बध्या ग्राम।
गज बपूरे की को कहै, विश्व नचाया काम।।
(सुन्दर सार, पृ ६५)

काम : अजेय

मानी गई मदन की प्रभुता अजेया,
कान्ता-कटाक्ष-विशिखाहत चित्त-द्वारा ।
है कौन जीव जग में काल से वचे जो,
आकृष्ट-चाप रति-नायक के करों से ।

(अनूप शर्मा : सिद्धार्थ, पृ. ६७)

काम : अनुपम धनुर्धर

संसार में वहुत हैं कृत-काय धन्वी,
जो एक वस्तु क्षण में करते द्विधा हैं ।
धानुष्क शक्तिधर है स्मर ही अकेला,
जो एकता विरचता युग वस्तुओं में ॥

(अनूप शर्मा : सिद्धार्थ. पृ. ६७)

काम : उपयोगिता

जिसका पानी मर गया है,
सेक्स-हीन मनुष्य वह डावर या सोता है ।
सेक्स-हीन लोगों से,
जीवन उत्पन्न नहीं होता है ।

(दिनकर की सूक्तियाँ, पृ. ३०)

काम : गुण

संसृति सृजन समस्त है, संस्कृति उसके साथ ।
उन्नति अवनति गति प्रगति, का है पति रतिनाथ ॥

(हरिऔध सतसई, पृ. ५३)

काम : दोष

उसकी चर्चा ही हुए चित नहिं पाता चैन ।
आँख मैन की अव कभी, देख सकूँगा मैंन ॥
सुरुचि साथ देती नहीं, हुए कुरुचि का संग ।
अगं-अगं में रम दिखाता है रंग अनंग ॥

(हरिऔध सतसई, पृ. ५२)

काम : वाण

रमणी की रमणीयता, हाव भाव मुस्कान ।
उसका कलित कटाक्ष है, कामदेव का वान ॥

काम विजय

१ छाँड़हु घिउ औ मछरी माँसू। सूखे भोजन करहु गरासू ॥
दूध मासु घिउ कर न अहारू। रोटी सानि करहु फरहारू ॥
एहि बिधि काम घटावहु काया। काम क्रोध तिस्ना मद माया ॥
(जायसी ग्रंथावली पृ. ३२८)

२ मोहित होना सुमुखि पर, है स्वाभाविक बात।
उल्लंघन मर्याद है, शुचि रुचि पर पवि-पात ॥
(हरिऔध सतसई, पृ ५३)

३ विचलित क्या हो गये देख नारी को भैया,
भूल गये क्या नारी ही तो प्यारी मैया ?
(श्रीमन्‌ नारायण रजनी मे प्रभात का अंकुर, पृ. ११०)

काम करो

हेरे भी मिलेंगे नहीं संकट के चिह्न कहीं,
आयेंगे कहीं के कहीं सारे विघ्न बाधा पीर।
बनेगा जगत भर तुम्हारी दया का पात्र,
देख के तुम्हारा मुख आशा मे भरेगा नीर ॥
रख कर माथे हाथ भाग्य के भरोसे पर,
बैठे मत रहो सुनो भारत-निवासी वीर।
काम करो, काम करो, काम करो, काम करो,
काम करो, काम करो, काम करो, धरो धीर ॥
(गिरिधर शर्मा)

कामना भोग से शान्त नहीं

शान्त होत नहीं कामना, किये काम-उपभोग।
बढ़ति लालसा भोग-सँग, ज्वाला जिमि घृत-योग ॥
(द्वा प्र मि कृष्णायन, पृ ७९७)

कामना शान्ति

विषयन-साथ निरखि मन जाना। रोकत निग्रहवन हठाना ॥
जस-जस बढ़त ज्ञान अभ्यासा। तस-तस छिन कामना-पाशा ॥
जड़ विमुक्त मन विहग उड़ायो। धावत चेतन दिशि हर्षायो ॥
जेहि तेहि जात अनत पुनि नाहीं। मन थिर होत काम मिट जाहीं ॥
(द्वा प्र मि कृष्णायन, पृ ७९९)

कामादि गुण दोष

कभी न ऐसा हुआ न होगा।
वह दुख सदा भोगना होगा जो जाता है भोगा ॥

काम-क्रोध मद लोभ मोह से पूरित है भव सारा।
इनके विविध प्रपंचों से कब किसे मिले छुटकारा ॥
मानव-तन में ये पारस हैं इनके परसे सोना।
बनते हैं कुधातु, यदि कुत्सित मति का लगे न टोना ॥
यदि न काम होता तो कैसे सृष्टिसृजन हो पाता।
यदि न क्रोध होता प्रवृत्ति-पति कैसे कौन बचाता ॥
यदि न लोभ होता तो हित की ललक न रक्षित रहती।
यदि न मोह होता तो ममता कितनी आँचें सहती ॥
यदि मद होता नहीं आत्म-गौरव क्यों रक्षित रहता।
कैसे संकटमय जग में जन-जीवन समुद न बहता ॥
कामादिक के अनुचित निन्दित घृणित प्रयोगों द्वारा।
अत्याचार निरत लोगों ने ले अन्याय-सहारा ॥
जितने अत्याचार किये, की है जितनी निर्दयता।
उनको कहते वज्र हृदय भी बार-बार है कँपता ॥
आज भी धरातल में ऐसे प्रलयकांड हैं होते।
जिन्हें देख वसुधातल सहृदय-जन सुधबुध हैं खोते ॥
सदा रहा अवनीतल ऐसा और रहेगा ऐसा।
जिससे दूर तमोगुण हो बल किसे मिला कब वैसा।

(हरिऔध : मर्मस्पर्श, पृ. १४)

कामादि : नवदृष्टिकोण

काम क्रोध मद लोभ आदि भी,
उचित प्रयोग-कुशल को पाकर;
मिश्रण से अनुकूल गुणों के
हो सकते हैं सुख के आकर।
दुरुपयोग से सद्गुण कह कर,
घोपित सत्य अहिंसादिक व्रत,
हो सकते हैं दुख के कारण
है यह सत्य विज्ञ-जन-सम्मत ॥

(रा. न. त्रि. स्वप्न, पृ. ७३)

कामिनी और कंचन

१. कंचन भण्डार पाय रंच न मगन हूजै,
पाय नवयोवना न हूजै जोवनारसी।
काल असिधारा जिन जगत बनाए सोई,
कामिनी कनक मुद्र दुहुँ को बनारसी।

दोऊ विनाशी सदीव तू है अविनाशी जीव,
या जगत-कूप बीच ये ही डोबनारसो।
इनको तू संग त्याग कूप सों निकसि भाग,
प्राणी मेरे कहे लाग कहत 'बनारसी'।
(बनारसीविलास पृ १९७)

२ जाके तन बसै काम कामिनि घन।
ताकै स्वपने हूँ नहिं सम्भव आनन्दकन्द स्याम-घन।
(व्यास वाणी, पृ १२१)

कामिनी निन्दा

कामिनि को तन मानो कहिये सघन बन,
उहाँ कोऊ जाइ सु तो भूलिकै परतु है।
कुंजर है गति कटि केहरी को भय जा मैं,
बेनी कालो नागनीउँ फन कौं धरतु है।
कुच है पहार जहाँ काम चोर रहै तहाँ,
साधि कै कटाक्ष बान प्रान को हरतु है।
'सुन्दर' कहत एक और डर अति तामैं,
राक्षस बदन खाउँ खाउँ ही करतु है॥
(सुन्दर सार, पृ १७७)

कायर

बल-विक्रम से शून्य, शौर्य-साहस से खाली,
दे सकते बस क्लीव मुक्त-मुख सब को गाली।
नर निर्वीय सदैव अधिक भड़का करते हैं,
बिना नीर के मेघ अधिक कड़का करते हैं।
पुरुष नपुंसक गाज-सदृश गाजा करते हैं,
अधिक पोल के ढोल अधिक बाजा करते हैं॥
(रामखेलावन चन्द्रगुप्त मौर्य, पृ १०२)

कायर और वीर

१ परतख जबक पेखियाँ कोय न जावै भाग।
सींहा केरा खोज सू मानीजै डर माग।
(बाँकीदास ग्रन्थावली, १, पृ १५)

२ गिरते हैं सभी, मगर कायर, गिरकर न कभी उठ पाते हैं,
सचमुच हैं वही बहादुर जो गिरते हैं फिर उठ जाते हैं।
(आरसी प्रसाद सिंह आरसी, पृ ५१९)

कारण और कार्य

कारन तें कारजु कठिन, होइ दोसु नहिं मोर ।
कुलिस अस्थितें उपल तें, लोह कराल कठोर ।।

(रा. च. मा. गु., पृ. ३२९)

कारण : पर ध्यान

जो कार्यों से उलझा करता,
कारण का ध्यान नहीं रखता ।
वह लक्ष्य-भ्रष्ट ही होता है,
लड़-लड़ कर जीवन खोता है ।।

(बलदेव प्रसाद मिश्र : साकेत-संत, पृ. ९९)

कारागार

कंस का विध्वंस करने के लिये,
भूमि का भय भार हरने के लिये,
कृष्ण ने जिस में लिया अवतार है,
वह धरा में धन्य कारागार है ।
हैं नहीं वे कुछ अमर जो डर रहे,
गेह में गाफिल गुलामी कर रहे ।
देश-सेवा की नई यह युक्ति है,
जेल-जीवन आज जीवन्मुक्ति है ।

(रूप नारायण पांडेय : पराग, पृ. ६०-१)

काय : निंदनीय

१. पाप की सिद्धि सदादिन वृद्धि सुकीरत आपनी आप कही की ।
दुक्ख को दान जु सूतक न्हान जु दासी की संतति संतत फीकी ।।
बेटी को भोजन, भूपन रांड कों, केसव प्रीति सदा, पर-ती की ।
जूझ में लाज दया अरि कौ अरु बाम्हन जाति सों जीति न नीकी ।।

(केशव ग्रन्थावली १, कवि प्रिया, पृ. १७४)

२. बुरो प्रीति को पंथ बुरो जंगल को वासो,
बुरी नारि को नेह बुरो मूरख सो हाँसो ।
बुरो सूम की सेव बुरो भगनी घर भाई,
बुरी नारी कुलच्छ सास घर बुरो जमाई ।।
बुरो पेट पंचाल है बुरो सूर को भागनो ।
'गंग' कहे, अकबर सुनो, सबसे बुरो है माँगनो ।

(अकबरी दरबार···, पृ. ४३५)

कार्य : योग्यतानुसार

जो मंत्रणा-प्रवीण, नहीं वह झाड़ू देवे ।
जो सैनिक रणवीर, न वह धोबी-पद लेवे ।।

चिन्तन-रत विद्वान, न कूड़ा ढोने पाये।
राष्ट्र-सम्पदा-सा न नाहक होने पाये॥

(गिरिजा दत्त शुक्ल तारकवध, पृ ५०७)

कार्य से पहले और पीछे

काज परे कछु और है, काज सरे कछु और।
'रहिमन' भंवरी के भये, नदी सिरावत मौर॥

(स व्रजरत्नदास रहिमन विलास, पृ ४)

काल (समय)

जो स्वय काल से चरण मिला कर चलते हैं,
पथगत बाधाओं का अस्तित्व कुचलते हैं,
वे ही अपने निर्णीत साध्य को हैं पाते,
मिट जाते हैं वे जो कि बीच में रुक जाते।

(बुद्धमल मन्थन, पृ ३)

काल (मृत्यु)

१ जब तक चलना है, चलना है।
जीवन किसे नहीं प्यारा है, मरना किसे नही खलता है।
अब हो या वह कल्मर में हो, टाले नहीं काल टलता है॥
बालक हो या युवा, वृद्ध हो किस को नहीं छली छलता है।
सोच-सोच कर उसकी चालें बढती चित की चचलता है॥
लाख य्योंन हो तेल चुक गये कभी नहीं दीया जलता है।

(हरिऔध मर्म स्पर्श, पृ १३)

२ बिना किये अपराध भी रिपु बनता है काल।
गाली देती जीभ है, मुह बनता है लाल॥

(हरिऔध सतसई, पृ १७)

काल - प्रवाह

काल की गति का तीव्र प्रवाह,
बहे जाते हैं हम सब आह!
मार लें भले एक दो हाथ,
छूटेगा किन्तु न उसका साथ॥

(बलदेव प्रसाद साकेत-सन्त, पृ ६०)

काल बली

(क) काल बली तैं सब जग काप्यौ ब्रह्मादिक हू रोए।
'सूर' अधम की कहौ कौन गति उदर भरे, परि सोए॥

(सूर सागर, पृ १९)

काव्य : सुधा

मन ! रमा, रमणी, रमणीयता,
मिल गई यदि ये विधि-योग से।
पर जिसे न मिली कविता-सुधा,
रसिकता सिकता-सम है उसे ॥

(रा. च. मा. : विधि-विडम्बना)

काव्य : सुन्दर

कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि-सम सब कहँ हित होई ॥

(रा. च. मा. गु. पृ. ४४)

किसान : दरिद्र(दे. कृषक भी)

बैलों के ये बन्धु वर्ष भर, क्या जाने, कैसे जीते हैं !
बँधी जीभ, आँखें विषण्ण, ग़म खा, शायद, आँसू पीते हैं !

(दिनकर : चक्रवाल, पृ. ४९)

कीर्ति : बिना जन्म व्यर्थ

कौन करे परमारथ को पथ स्वारथ पेट भरो पर सोयो।
संगत ज्ञानविहीन कियो अति आगम बीज यहै फिरि वोयो।
सौंह किये न बढ़ै सुख-संपति राज मिलै न निसादिन रोयो।
कीरति की करनी न करै कछु मानुष जन्म अकारथ खोयो ॥

(गोपाल चानक :कीर्ति शतक, पद्य ३०)

कीर्ति : संसार-सार

सुनहु तो कहूँ कवित्त, सुथिर जीवन जग नाँही।
यह संसार असार, सार कित्ति कलु मांही ॥ (चंदबरदाई)

(पृ. रा. रा. भाग १ (उदयपुर) पृ. १६६)

हम्मीर राव हँसि यों कहै, सदा कौन जग थिर रहै।
छिन भंग अंग लालच कहा, सुजस एक जुग-जुग रहै। (जोधराज)

(हम्मीर रासो, पृ. १५५)

जीवंतह कीरति सुलभ, मरन अपच्छर हूर।
दो हथान लड्डू मिलै, न्याय करै वर सूर ॥

(रेवातट, पृ. २१)

कुटिल और सरल

"मधुसूदन" कोइ कुटिल सूं, सरल करो मति हेत।
नैंकु धनुष के जुरत ही, वान प्रान हर लेत ॥

(हि. नी. का. वि. पृ. ६०९)

कुटुम्ब मोह त्याज्य

१ सबै कुटुम को हेत हित, करत प्रेम की हान।
सोना क्या लै कीजिए, जासो टूटे कान॥
(प्रेमी प्रेमप्रकाश, पृ २४)

२ केहु नहिं लागिहि साथ, जब गौनब कबिलास मह।
चलब झारि दोउ हाथ, 'मुहमद' यह जग छोडि कै॥
(जायसी ग्रन्थावली, पृ २१६)

कुत्ता प्रेमी

नहिं रहीम कछु रूप गुन, नहिं मृगया अनुराग।
देसी स्वान जो राखिए, भ्रमत भूख ही लाग॥
(रहिमन विलास, पृ १२)

कुदृष्टि

१ अनुज बधू भगिनी सुत-नारी। सुनु सठ कन्या सम ए चारी॥
इन्हहि कुदृष्टि बिलोकइ जोई। ताहि बधे कछु पाप न होई॥
(रा च मा गु पृ ४५२)

२ चित चंचलता का नयन-चंचलता है अंग।
मधुर माधुरी के सदृश, है दोनों का संग॥
चाल बुरी चल, बुरा है कहलाता चालाक।
ताक झाँक अनुचित महा कट जायेगी नाक॥
(हरिऔध सतसई पृ १६, १७)

कुरीतियां वैवाहिक

जन्मपत्र विधि मिले ब्याह नहिं होन देत अब।
बालकपन मे ब्याहि प्रीतिबल नास कियो सब॥
करि कुलीन के बहुत ब्याह बल बीरज मारयो।
विधवा-ब्याह निषेध कियो, विभिचार प्रचारयो॥
(भारतेन्दु नाटकावली, पृ ६०५)

कुल

काहू के कुल तन न विचारत।
अविगत की गति कहि न परत है व्याध अजामिल तारत।
कौन जाति अरु पांति विदुर की, ताही के पग धारत।
भोजन करत मांगि घर उनके, राज मान-मद टारत॥
(सूरसागर, पृ ४)

कुल का कपूत

जिहि कुल उपज्यौ पूत कपूत।
ताको वंस नास ह्वै जैहै जिहि गिधयो जम दूत।
जो नुपितहिं विरोधै सोई है सबहिन को मूत॥

(व्यास-वाणी, पृ. ७५)

कुल-जाति

कुल विशेष उत्तम नहीं, सुमिरै उत्तम होय।
उत्तम जात भये सों, गरब न राखे कोय॥

(इन्द्रावती, पृ. ७५)

कुल—त्याग से दुःख

जे छोड़त कुल आपनो, ते पावत वहु खेद।
लखहु वंस तजि बांसुरिन, लहे लोह सों छेद॥

(पद्माकर पंचामृत, पृ. ७४)

कुल-दीपक

कोटिनु मधि कोऊ कहूँ, कुल दीपक इक होतु॥
नेह-सहित निज सीस दै, दस दिसि करतु उदोतु॥

(वियोगी हरि : वीरसतसई, पृ. १५)

कुलवधू

१. अपनी सुधि ये कुल-स्त्रियाँ लेती नहीं,
पुरुष न लें तो उपालम्भ देती नहीं।

(मै. श. गु. : साकेत, पूसर्ग, पृ. १०७)

२. कुल-वधू कब रहती स्वच्छन्द,
उसे बस अपना भवन पसन्द।

(बलदेवप्रसाद मिश्र : साकेत-सन्त, पृ. २२)

कुल-स्वभाव

को सिखवत कुल वधून लाज गृह कज्ज रंग रति।
को हंसनि सिक्खवत करत पय पानि भिन्न गति॥
कै सिंहन को सिवखत हनत गज वाजि तच्छन।
कै सज्जन सेक्खएउ दत्त गुरु वत्त सुलच्छन॥
विधि रचेउ जानि 'नरहरि' निरखि कुल सुभाउ नहि मिट्टवे।
गुन धर्म अकव्वर साहि कह कहहु सो को नरु सिक्खवे।

(सरयूप्रसाद : अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, पृ. ७१)

कुलटा

जो पर पुरुषन की मुख जोवै ।
वह तिय अपनो जौबन खोवै ॥
(आनकवि सतवती सत, पत्र ४)

कुलटा धनलोभी

मेघनि जिमें अलप जल परैं । तडि भई अलुप नेह परिहरैं ।
ज्यौ लपट जुवती जग माँहि । निधन भये पुरुषहि तजि जाहीं ॥
(नन्ददास ग्रन्थावली, पृ २९०)

कुलटा वध

भली नहीं मिहरी की जाति, जब तब इन से पानिउ जात ।
जो तिय अपना खोवैं सील, मारहु ताकि न लावहु ढील ॥
(जान कवि कथा छविसागर)

कुलीन · धन से नम्र

भले बन को पुरुष सो, निहुरै वहु धन पाय ।
नवै धनुष सदवश को, जिहि द्वै कोटि दिखाय ॥
(वृन्द सतसई)

कुलीना

विरध अरु बिन भागहू की, पतित जो पति होइ ।
जऊ मूरख होइ रोगी, तजै नाहीं जोइ ॥
तजि भरतारु और जो भजियै, सो कुलीन नहि कोइ ।
मरै नरक, जीवत या जग मै, भली कहै नहि कोइ ॥
(सूरसागर, पृ ६११)

कु-सग (दे० संगति बुरी)

१ 'रहिमन' नीच प्रसग ते, नित प्रति लाभ विकार ।
नीर चोरावै सपुटी, मारु सहै घरिआर ॥
(स प र दा रहिमन विलास, पृ २२)

२ ओछे को सतसग, रहिमन तजहु अँगार ज्यो ।
तातो जारै अग, सीरो पै कारो लगै ॥
(रहिमन विलास, पृ २८)

३ नीच सग ते सुजन की, मानि-हानि ह्वै जाय ।
लोह कुटिल के सग तें, सहै अगिन घन घाय ॥
(दी द गि ग्र , पृ ७४)

कूटनीति

होती कार्य-सिद्धि तात्कालिक,
कूट-निति द्वारा केवल ।
पर होता है क्षीण सर्वदा,
उससे जग का नैतिक वल ॥

(ठा. गो. श. सि. : जगदालोक, पृ. १२१)

कृतघ्नता

१. दोप स्थूल शरीर में, एक दोय नहिं कोट ।
पुनि जो एक कृतघ्नता, या सम और न खोट ॥

(गिरिधर : कुंडलिया, पृ. ७१)

२. कृतघ्न प्राणी-सम दुप्ट जीव को
धरित्रि उत्पत्ति न दे सकी कभी ।
वसुन्धरा मध्य अनेक पाप है,
यही महा पाप महा कुकर्म है ॥

(अनूप : वर्द्धमान, पृ. ५४४)

कृतज्ञता

आदमी को आदमी का ही सहारा चाहिए,
किन्तु उसके दान का प्रतिदान भी तो हो ।
जो जलधि पाता सरित से प्राण-जल पल-पल,
मेघ बन गाता उसी का गान भी तो वो ॥

(उ. शं. भ. : कणिका, पृ. ३१)

कृपरण

१. जैसे मधु मापी संच्यौ, मरम न जान्यो मूरि ।
लोग वटाऊ लै गए, मुप में मेली घूरि ॥

(बाजिद : साखी, दोहा ४७४)

२. जाचग आवै आस करि, सनमुप सकै न हेर ।
मानहु ससुरहि देषि कै, वहू रही मुष फेर ॥

(बाजिद : साखी, दोहा ४९३)

३. दियो सबद सुणियाँ दुसह, लागै तन मन लाय ।
सूंव दियो न करै सदन, परव दिवाली पाय ॥
रत ज्यूं दत जाचक रसक, जाचै वे कर जोड़ ।
ननो भंणे नव नार ज्यूं, मूढ़ कृपण मुख मोड़ ॥

(बाँकीदास ग्रन्थावली, २, पृ. ३५, ३७)

४ माया माया करत है, खर्च्यो खाया नाहिं।
सो नर ऐसे जाहिंगे, ज्यों बादर की छाहिं॥
ज्यो बादर की छाहिं जायगा आया जैसा।
जाना नहिं जगदीश प्रीति कर जोड़ा पैसा॥
कहै 'दीन दरवेश' नहीं कोइ अम्मर काया।
खर्च्यो खाया नाहिं करत नर माया माया॥
—दीन दरवेश (प० रा च सू का स २, पृ २२०)

कृपण और दानी

बलि सरवस्व दै हरिस्व करि वाके पिशुन,
अति उच्च तावो जस चढ़ि मरसात है।
सकर को सीस दै के रावन बने शकर न,
भयो निहू पुर को भयकर विख्यात है।
"ग्वाल कवि" राम दै विभीषण को लकराज,
तोर लई लक जाकी अजो बक घात है।
सूमन की नाव जलहू पै फाटि डूब जात,
दातन की नवका पहाड़ चढ़ि जात है॥
(स० कवि किकर ग्वाल रत्नावली, पृ ४५)

कृपण के सग यात्रा निषेध

जिका न दीधो जनम धर, हेको गुण दुज हत्थ।
नहिं बैसीजे नाव मे, सायर सूमा सत्थ॥
(बाकीदास ग्रन्थावली, २, पृ ३१)

कृपण निन्दा

१ दब्बु गाडि मम धग्गु धगी किछु काजि न आवइ।
बिलमउ जम कइ काजि न तरि पीछै पछिताबइ॥
नर नरिंद नर भुवणि सचि सपइ ते मूवा।
ते वम्नु धामहि वहुरि जनम मूकर कै हूवा॥
धन काज अधोमुख दसन मिउ धरणि बिदारहि रयण दिन।
छीहल कहइ सो धन फिरइ किही न पावै पुनि बिण॥
(छीहल बावनी, छप्पय ३७)

२ तूं ठगि कै धन और को ल्यावत तेरेउ तो घर औरइ फोरै।
आगि लगै सब ही जरि जाय सु तू दमरी दमरी करि जोरै।

हाकिम कौ डर नाहिन सूझत सुन्दर एक ही वार निचौरै।
तू खरचै नहि आपुन खाइसु तेरिहि चातुरि तोहि लै बौरै॥
(सुन्दरसार, पृ. १६१)

३. साधन कु मत देत बातन सुमेर देत
रिन मांगे रोय देत कहां धौं कहतु हैं
जाहि ताहि दुख देत बीच परैं दगा देत
साधन कों दोस देत ग्यान न लेहत हैं
घर मांज गारी देत रन मांझ पूठ देत
सांझ को किवारी देत ऐसे निवहैत हैं
एतै पर कहैं सब भैया कछु देत नाहि,
भैया जू तो आठों जाम देवोई करत है॥
(पुरातत्त्वमंदिर जयपुर, संग्रहक्रमांक २३१८, पत्र १।९)

कृपणता-निन्दा

मीत न नीति गलीत ह्वै, जो धरियै धनु जोरि।
खाएँ खरचैं जो जुरै, तौ जोरियै करोरि॥
(बिहारी रत्नाकर, पृ. ८२)

कृषक (*दे किसान भी*)

भोले भाले कृषक देश के अद्भुत बल हैं।
राजमुकुट के रत्न कृषक के श्रम के फल हैं॥
कृषक देश के प्राण कृषक खेती की कल हैं।
राजदंड से अधिक मान के भाजन हल हैं॥
सरल हृदय होते ग्रामवासी किसान।
श्रम-रत श्रमजीवी सच्चरित्र प्रधान॥
सुखयुत रहते वे अल्प में तुष्टि मान।
लघु धन-महिमा में सद्गुणों में महान॥
(लोचन प्रसाद पांडेय)

कृषक-प्रशंसा

हल के बल जो हल करती, नित पेट-पहेली प्यारी,
बलि जायें कृषक-भुजा पर, भुजदंड भटों के भारी।
(रामेश्वर करुण : तमसा, भू० पृ. ११)

कृषि-महिमा

हल है झंडा सदा तुम्हारा,
हल के गाओ गौरव-गान;

हल से हल हो सभी समस्या,
सहल बने अपना मैदान।
(सो ला द्वि युगाधार पृ ३५)

कृषि-सुधार

जब तक तुम हो मेघाधीन, तब तक हो कृषि में भी दीन।
प्रकृति क्यों न अपनी हो आप, उसके भी वश होना पाप॥
और करो गो-वश सुधार, बहे अटूट दूध की धार।
नई युक्तियों में हो लीन, नई उपज हो स्वाद नवीन॥

कृष्ण-भक्ति

१ मात पिता सुत वाम धाम धन त्यागि रे।
मावन कहा गवार ऊठि अब जागि रे॥
सिर परि साधै तीर परो सठ काल रे।
हरि हा 'दास किसोर', भये बिन अन्न बिहाल रे॥
(सिद्धान्त रत्नाकर, पृ २४८)

२ लुचित केस कलेस कलेवर काल करम किये अधिकारी।
रक्षक जीव अनछ्न्न ईश्वर वासर भोजन अल्प सुधारी॥
इन्द्रिनि जीनि अतीन पराहद धाम सत्रामन हूँ मनि टारी।
ऐसे भये तो कहा हरिदास लखे नहीं नित्य 'किशोर' बिहारी॥
(सिद्धान्त रत्नाकर पृ २६३)

क्या है ?

कांटे क्या हैं ? सस्मृति हैं मधुमार घरे फूलों की,
आहें क्या हैं ? विस्मृति है उन प्यार-भरी भूलों की,
पीड़ा क्या है ? तड़पन है दुखियों के अन्तस्तर की,
क्रीड़ा क्या है ? क्रीड़ा है यौवन में अजर-अमर की,
वैभव क्या ? सपना है इस छोटे से जीवन का,
अपना क्या है ? खो देना जीवन में अपने पन का।
(शिवमंगलसिंह 'सुमन' हिल्लोल, पृ ३०)

क्रांति

यह क्रान्ति है कि तुम करो, हिंसा से हिंसा का मर्दन ?
शान्तिवाद क्या यही कि घहरे इधर-उधर तोपों का गर्जन ?
(बा कृ श न हम विषपायी जनम के पृ ६५)

क्रान्ति : पारिवारिक

अब नर स्वतंत्र, नारी स्वतंत्र,
शादी स्वतंत्र, यारी स्वतंत्र,
कपड़े की हर धारी स्वतंत्र,
घर-घर में फैला प्रजातंत्र।
पति बेचारे का ह्रास हुआ।
क्या खूब कोढ़-बिल पास हुआ॥
अब हर घर की खाई समाप्त,
बहनें समाप्त, भाई समाप्त,
पंडित समाप्त, नाई समाप्त,
रुपया आना, पाई समाप्त,।
पिछला जो कुछ था झूठा है,
अगला ही सिर्फ अनूठा है,
अणु फैल-फैल कर फूटा है,
दसखत की जगह अँगूठा है।
यह क्रान्ति नहीं तो क्या है जी ?
यह गदर नहीं तो क्या है जी ?

(गोपालप्रसाद व्यास : चले आ रहे हैं, पृ. ४३)

क्रान्ति : प्रेममयी

व्यापक प्रेम बिना संभव कब पूर्ण क्रान्ति प्रियदर्शिनि ?
संघर्षण से नहीं उपजती ज्वाला वह मधुवर्षिणि !

(नरेन्द्र : अग्निशस्य, पृ. ८१)

क्रान्ति : में शान्ति

घूमता कुलाल-चक्र कितनी ही तीव्रता से,
एक रेखा सुस्थिर, छिपी हैं चक्र-फेरे में।
छिपी रहती है मंद-मुस्कान छवि-छाय,
भाग्य-भामिनी के तीखे तेवर तरेरे में॥
आशा-द्वार खुलते भी लगती नहीं है देर,
डालती निराशा जब चित्त घोर घेरे में।
क्रान्ति में 'सनेही' एक शान्ति का निवास छिपा,
प्रबल प्रकाश छिपा अधिक अँधेरे में॥

गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'
(सं. सु. नं. पं. : कविभारती, पृ १५१)

क्रान्ति सामाजिक

न्याय धर्म के लिए लड़ो तुम, झूठ हित मत मरो बूना।
अनय राज, निर्दय समाज से निर्भय होकर जूझो॥

(मै. श. गु. द्वापर)

क्रान्तिकारी

पाथ भी यह पथ का अपने रचयिता भी यही है,
रूढ़ियों, परिपाटियों ने पथ नहीं इसका बनाया।
साथियों में स्नेह गहरा, पर न यदि साथी चले तो,
है अकेले ही कदम इसने कठिन पथ पर बढ़ाया॥

(जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द भूमि की अनुभूति पृ. १७)

क्रूर

हाने जो पै चलन कहुँ, सदा चाम के दाम।
रहन न देत बे-दरद, काहू तन मे चाम॥ (रसनिधि)

(सतसई सप्तक, पृ. २२५)

क्रोध

१ तन धन स्वजन स्वमित्र से, हुए बुरा व्यवहार।
होता रहता है दुखित, जन नित बारबार॥

(हरिऔध सतसई, पृ. ४८)

२ गंभीरता सुखद शान्ति विवेक भक्ति,
आनन्द नीति क्षमता सुविचार-शक्ति।
तो ना निवास करते नर चित्त बीच,
जौं ला प्रवेश नहिं हो तव क्रोध नीच॥

(सं. कमलाकान्त पाठक मैथिलीशरण गुप्त, व्यक्ति और काव्य, पृ. १६३)

३ भाग्यहीन जब किसी हृदय में क्रोध उदय होता है।
बढ़ती है पाशविक शक्ति आत्मिक बल क्षय होता है।
शोध, दया सुविचार न्याय का मार्ग भ्रष्ट करता है।
अपना ही आधार प्रथम यह दुष्ट नष्ट करता है।
क्रोध तुम्हारा प्रबल शत्रु है, क्षमा तुम्हारे घर में।
हो सकते हो उसे जीत कर विजयी तुम जग भर में॥

(रा. न. त्रि. पथिक, पृ. ५८)

क्रोध : अपात्र

अपने ते जो छुद्र अति, तिहि पै करिउ न क्रोध।
किहूँ भांति सोहत नहीं, केहरि मसक विरोध॥

(रा. च. उ. : सतसई)

क्रोध और कृपा

यथा समय जो कोप-अनुग्रह को प्रयोग में लाते हैं,
स्वयं देहधारी सब उनके वशीभूत हो जाते है।
क्रोधहीन नर की रिपुता से कोई भय नहि पाते हैं,
तथा मित्रता से वे उसको आदर नही दिखाते है॥

(म. प्र. द्वि : द्वि. का. मा. पृ. २८३)

क्रोध और ज्ञानी

सुनु प्रभु बहुत अवज्ञा किए। उपज क्रोध ज्ञानिहूँ के हिए।
अति संघरपन जौं कर कोई। अनल प्रगट चंदन ते होई॥

(तुलसीदास)
(तुलसीरत्नावली, पृ. १११)

क्रोध : गुणनाशक

गंभीरता, सुखद शान्ति, विवेक, भक्ति,
आनन्द, नीति, क्षमता, सुविचार-शक्ति।
तौ लों निवास करने नर चित्त-बीच,
जौं लो प्रवेश नहि हो तब क्रोध नीच !

(मैं. श. गु. क्रोधाष्टक; सरस्वती नवंबर, १९०५ई.)

क्रोध : जित् बनावटी

बनत क्रोध-जित निबल नर धारि छमा अभिराम।
करत कलंकित क्लीब ज्यौं ब्रह्मचर्यव्रत-नाम॥

(वियोगी हरि : वीरसतसई, पृ. १०५)

क्रोध : त्याग के लाभ

न क्रोध हो तो फिर पाप भी नहीं,
न कोप हो तो अभिशाप भी नहीं,
न मन्यु हो तो न अमान भी कहीं,
न रोष हो तो न अशान्ति भी कहीं।

(अनूप : बर्द्धमान, पृ. ५३९)

क्रोध दमन

१ ठाढ़ो ह्वै तो बैठ है, बैठो जे है लेटि।
लेट्यो ह्वै तो करोट लै, ज्यों त्यों रिस को मेटि॥
(ज्ञानकवि शिष्यासागर)

२ स्व धर्म-सेवा विहिता क्षमा-युता,
क्षमा सदा क्रोध प्रशान्ति-तत्परा,
प्रसिद्ध है मार्दव क्रोध-शत्रु ही,
वही जनों का अभिमान मारता।
(अनूप वर्द्धमान, पृ ५६४)

३ इतने मत उत्तप्त बनो।
मेरे प्रति अन्याय हुआ है
ज्ञात हुआ मुझको जिस क्षण,
करने लगा अग्नि-आनन हो,
गुरु गर्जन, गुरुतर तर्जन—
शीश हिलाकर दुनियाँ बोली,
पृथ्वी पर हो चुका बहुत यह,
इतने मत उत्तप्त बनो।
(बच्चन अभिनव सोपान, पृ १५८)

४ गाली दे गुस्सा करे, यह ओछे के काम।
धीरे से समझाय दे, इसमें लगे न दाम।
(मेलाराम शिक्षासहस्री)

क्रोध धर्म-नाशक

खोजत कतहुँ मिलइ नहिं धूरी। करइ क्रोध जिमि धर्महि दूरी॥
(रा च मा गु पृ ४५५)

क्रोध पात्र

जिसके हृदय समीप है
वही दूर ... है,
और क्रोध होता पर ही
जिस से कुछ ... है।
(प्रसाद कामायनी पृ १२६)

क्रोध फल

बन कर क्रोधी, सब ... खो दी।
अब पछताता, कुछ न सुहाता॥
(सत्यदेव ... अनुभव, पृ २५)

क्रोध : बुद्धिनाशक

माना किन्तु महापमान अपना जी में उन्होंने इसे,
क्रोधाधिक्य विचारयुक्त रखता संसार में है किसे ?

(मै. श. गु. : शकुन्तला पृ. १९)

क्रोध : में मौन

क्रोध न रसना खोलिये, वरु खोलव तरवारि ।
सुनत मधुर परिनाम हित, बोलव वचन विचार ॥

(तुलसीदास)

क्रोध : युद्ध-कारण

महा भयंकर कोप के, ही सब थे परिणाम ।
वसुधा में जितने हुए, बड़े-बड़े संग्राम ॥

(हरिऔध सतसई पृ. ६९)

क्रोध : से हिंसा

महा बुभुक्षा-सम क्रोध भाव है,
उसे सदा खाद्य पदार्थ चाहिए ;
मृगेन्द्र का दारुण ही स्वाभाव है,
प्रकोप का मारण ही प्रभाव है ॥

(धनूप : वर्द्धमान पृ. ५३९)

क्रोध : हृदय-दाहक

जिहि मन तें उद्‌भव भयो, जिहि बल जग मैं सूर ।
तिहि निसि दिन जारत अहो, दुसह कोप गति क्रूर ॥
दुसह कोप गति क्रूर, बड़ो कृतघन जग मों है ।
प्रथम दहत है आप, बहुरि दाहत सब को है ॥
बरनैं दीन दयाल, कोप ! तू सुनि सब जन तें ।
अजस होत जनि दहै, भयो उदभव जिहि मन तें ॥

(दी. द. गि. ग्रं पृ. २५१)

क्रोधादि का नाश

प्रशान्ति से क्रोध विनाशनीय है,
विनम्रता से अभिमान जेय है,
अवश्य ही आर्जव मोह नाशंता,
प्रलोभ को लुण्ट मनुष्य जीतता ।

(अनूप : वर्द्धमान पृ. ५७६)

क्लर्क

सवेरे-साँझ चाय पीता है,
डालडा खा खुशी से जीता है ;

कौन जाने शरीर मे क्या है,
दिल है खाली, दिमाग रीता है।
कलम से मन मे काम करता है,
यो ही हर दिन को शाम करता है,
है समझदारी भी कि साहब को
बा अदब झुक सलाम करता है।
हौसले दिल के थके जाते है,
बाल जल्दी ही पके जाते हैं,
वोट देता है बहस करता है,
दोस्त व दिन खिसके जाते हैं।
(देवराज नयी कविता, अक एक, १९५४, पृ ३२)

क्षत्रिय उद्बोधन

वीरो! उठो, अब तो कुयश की कालिमा को मेट दो,
निज देश को जीवन सहित तन मन तथा धन भेंट दो।
रघु राम भीष्म तथा युधिष्ठिर सम न हो जो ओज से—
तो वीर विक्रम से बनो, विद्यानुरागी भोज से॥
(मै श गु : भारतभारती पृ १६८)

क्षत्रिय और युद्ध

शूद्र, वैश्य, द्विज-वर्ण विचारा। होत सतत भूपनि दरबारा।
पै निर्णायक क्षत्रिय लागी। नही थल अन्य समर-महि त्यागी॥
(द्वा प्र मि कृष्णायन, पृ २०३)

क्षत्रिय और स्वाभिमान

हत स्वाभिमान यदि हुआ नही, फल क्षत्रिय का यश हुआ नहीं;
फिर आन-बान यश मान बिना, क्षत्रिय रह सकता कही नहीं।
(राजेन्द्रदेव सेंगर सारथा पृ १९)

क्षत्रिय का धर्म

१ यह धर्म छत्रिन को प्रमान, पुरान बेद सदा कहैं।
द्विज गऊ पालहि, रिपु उसालहि, अस्त्र घावहि तन सहैं।
अग जुवा जुद्ध हु को कबहुँ, सपने हु नहि नाही करैं।
ऐसे परम रजपूत को, रन सिरस वारगन वरै॥
(पद्माकर पद्मामृत पृ १७)

२ क्षत्रिय का यही धर्म है, बलवान से जुट जाय।
दोनो मे है यश, मारै चहै आप ही कुट जाय॥
(भगवानदीन वीर पचरत्न पृ २८)

३. युद्ध सनातन क्षत्रिय धर्मा। समर-पलायन कायर-कर्मा ॥

(द्वा. प्र. मि. कृष्णायन पृ. २२८)

क्षत्रिय : का मोक्ष

मुक्ति-हेतु इक करत तपु, अपर दान, मख, ध्यान।
पै छिति छत्रहि छाँड़ि रण, नाहिन साधन आन ॥

(वियोगी हरि : वीर सतसई पृ. ११०)

क्षत्रिय : का युद्ध-प्रेम

बंब सुणायो वींद नूं, पेसंतां घर आया।
चंचल साम्है चालियो, अंचल बंध छुड़ाय।

(सूर्यमल्ल : वीरसतमई पृ. ७२)

क्षत्रिय : की आयु

बारह वरिस लै कूकर जीयें, औ तेरह लै जिये सियार।
वरस अठारह छत्री जीयें, आगे जीअन को धिक्कार ॥

(जगनिक)

क्षत्रिय : परिभापा

क्षत्रिय-क्षत्रिय कहें तें, क्षत्रिय होय न कोय।
सीस चढ़ावै खड्ग पै, क्षत्रिय सोई होय ॥

(वियोगी हरि : वीरसतसई पृ. १२)

क्षत्रिय : वृत्ति

छत्रनि की यह वृत्त वनाई। सदा तेग की खाइ कमाई।
गाइ वेद विप्रन प्रतिपाले। घाउ एड़धारिन पै घाले ॥

(गोरेलाल : छत्र प्रकाश)

क्षत्रिय : सच्चा

(क) उदनि वांकुड़ा तव उठि वोलो, अनुपी ! सुनो हमारी वात।
वन्स हमारे में चलि आई, पहिले चोट करत हम नाहिं ॥

(ख) तव फिरि ऊदनि वोलन लागे, सूरज ! सुनो हमारी वात।
जो कोई उपजत नगर महोवे, पहिले चोट करत सो नाहिं ॥

(जगनिक : असली आल्हखंड पृ. ७२, ७८)

क्षमा

क्षमा शोभती उस भुजंग को, जिसके पास गरल हो।
उसको क्या जो दन्तहीन, विष रहित, विनीत, सरल हो ॥

(दिनकर की सूक्तियां पृ. ११३)

क्षमा और मृदुता

न क्रोध उत्पन्न करे कदापि जो
वही क्षमा उत्तम अंग धर्म का,
न मान को दे अभिवृद्धि स्वप्न में
प्रशस्त सो मार्दव धर्म-शील का।

(अनूप . वर्द्धमान पृ ५६१)

क्षमा की महिमा

जब टूटा घट जुड़ सकता है, सध सकता है टूटा तार।
तो टूटा मन क्यों नहीं जुड़ता, कुछ तो समझो करो विचार॥
सध सकता है, सध सकता है, फिर सध सकता टूटा मन भी,
अगर हृदय हो, क्षमाभाव हो, कोमलता हो, निर्मलता हो,
ठंडापन हो, चिकनापन हो, गीलापन हो, हृदयपन हो,
और यही तो भारतीय जीवन-दर्शन का उत्कर्ष है।
क्षमा-याचना पथ-दर्शन है॥

(सागरमल कुछ कलियाँ कुछ फूल पृ ७)

क्षीणता कारण

सोच तें रूप कुमन्त्र ते भूपहु हास विलाय गये घर दाम ज्यों।
नेह घटे जिमि जानि दिया ससि को छवि देखन ही रवि घाम ज्यों॥
लोभ तें धर्म बड़ाई अनीति ते होत सनेह विदेश धिराम ज्यों।
नैक वियोग में ही तन प्यारी को छीन ह्वै जात है साँझ के घाम ज्यों॥

(कुलपति मिश्र रस रहस्य पृ १७)

खड्ग

तिरिया भूमि खड्ग कै चेरी। जीत जो खड्ग होइ तेहि केरी।
जेहि घर खड्ग मोंछ तेहि गाढ़ी। जहाँ न खड्ग मोंछ नहिं दाढ़ी॥

(जायसी ग्रंथावली, पृ २८४)

खड्ग क्षत्रियधन

पेखौ हम कुल खग्ग, खग्ग हम अदथ खजानह।
खग्ग करे हम खलक, नाम हम खग्ग निदानह।
खल दल खण्डन खग्ग, खेत इच्छन हम खग्गह।
छिति रक्खन पुनि खग्ग, अहित मग्गो इन अग्गह।
खगधार तीर्थ धत्री धरम, आवागमनहिं अपहरन।
सो खग्गबंध हम सूर सब, धरम न छाहिं खजानधन॥

(मान राजविलास, पृ १)

खद्दर

१. खद्दर अति को खरखरो, तऊ नेह कौ गेह।
पर-चरबी चखि चाटि कै, करी न चिकनी देह ॥
(किशोरीदास वाजपेयी : तरंगिणी, पृ. २४)

२. खादी के रेशे रेशे में
अपने भाई का प्यार भरा,
मा-बहनों का सत्कार भरा
बच्चों का मधुर दुलार भरा।
खादी में कितने ही नंगों
भिखमंगों की है आस छिपी,
कितनों की इस में भूख छिपी
कितनों की इस में प्यास छिपी !
खादी ही बढ़ चरणों पर पड़
नूपुर सी लिपट मनायेगी,
खादी ही भारत से रूठी
आजादी को घर लायेगी।
(सोहनलाल द्विवेदी : भैरवी, पृ. ६—८)

खल : ईर्ष्या-युक्त

लखि भूपित गज पथ विषे, भूकत स्वान अजान।
तैसे खल जन जरत है, महिमा देखि महान ॥
(दी. द. गि. ग्रं. पृ. ७९)

खिताब

इनकी उनकी खिदमत करो,
रुपया देते देते मरो।
तव आवै मोहिं करन खराव
क्यों सखि सज्जन ? नहीं, खिताब ॥
(भारतेन्दु : भा. ग्रं द्वि. ना. प्र. स. पृ. ८१२)

खुशामदी

साँचरु झूँठ को हाँ कहनी औ सदा कहनी मुह सों मिली वातैं।
दुःखरु सुःख में संग रहैं नित राखनो राजी सु आपनी घातैं ॥
राय गुपाल जू देय कछू जव डोलत पाछे लग्यो दिन रातैं।
याही ते या जग मांझ बुरो रुजिगार खुशामदि को यह यातैं ॥
(गुपालराय : दंपति वाक्य विलास, पृ. ३१)

खून निकम्मा

वह खून कहो किस मतलब का, जिसमें उबाल का नाम नहीं।
वह खून कहो किस मतलब का, आ सके देश के काम नहीं॥

(गोपालप्रसाद व्यास कदम बढ़ाए जा, पृ ३२)

खेती (दे कृषि)

खेती है इस देश में, सब सम्पति की मूल।
कोहनूर इस कोश में, हैं कपास के फूल॥

(राय देवीप्रसाद 'पूर्ण')

खेल

एकाकी जन खेलत कोई। खेलत ताहि कछु न सुख होई॥

(नंददास ग्रंथावली, पृ २६६)

गंतव्य और पथ

पथ सभी मिल एक होंगे
तम घिरे यम के नगर में।

(बच्चन अभिनय सोपान, पृ ११६)

गपोड़ा

गपोड़ा भाषा का कोई, अरु संस्कृत का कोय
कोई गपोड़ा पारसी, अंग्रेजी पुनि होय॥
अंग्रेजी पुनि होय, गपोड़ा कोई अरबी।
ब्रह्मज्ञान बिन विद्या सब ज्यों पात में दरबी॥
कह गिरिधर कविराय', बेग समझो कोई मोड़ा।
जा करि आतम लाभ, भला है सोई गपोड़ा॥

(कुंडलिया, पृ ४५)

गर्ज (गरज)

१ गर्जहि अर्जुन हीज भये अरु गर्जहि गोविंद धेनु चरावे।
गर्जहि द्रोपदी दासि भई अरु गर्जहि भीम रसोई पकावे।
गर्ज बरी सब लोगन में अरु गर्ज बिना कोई आवे न जावे।
'गंग' कहै सुन साह अकब्बर गर्ज से बीबी गुलाम रिझावै॥

(अकबरी दरबार, पृ ४१३)

२ 'जिनरंग' मीठी गरज है, अवर न मीठी कोय।
जब निकसै है सीतला, गरघम आदर होय॥

(जिनरंग सूरि, रंग बहत्तरी, दोहा पृ ५९)

गर्भ : से साथी

सुख दुख विद्या आयु धन, कुल बल वित अधिकार।
साथ गर्भ मैं अवतरै, देह धरी जिहि बार॥

(बुधजन सतसई, पृ. २७)

गर्व (दे. मान, अभिमान, अहंकार, दर्प, घमंड)

कहा नर गरवस थोरी बात !
मन दस नाज टका चार गांठी, ऐंड़ो टेढ़ो जात॥
बहुत प्रताप गांव से पाये, दुइये टका बरात।
दिवस चारि कै करो साहिबी, जैसे बन हर पात॥
ना कोऊ लै आयो यह धन, ना कोऊ लै जात।
रावन हूं से अधिक छत्रपति, छिन में गये बिलात॥

(कबीर शब्दावली, दू. भा., पृ. २९-३०)

गर्व : विविध

रूपवंत गरवावै। कोई मो सम दृष्टि न आवै॥
तरुनापा गरवाना। वह अंधरा होवै राना॥
कहै धनमद में परबीना। सब मेरे ही आधीना॥
कहै कुल अभिमानी सूचा। मैं सब जातिन में ऊँचा॥
वह विद्या गर्व जो भारी। करै वाद विवाद अनारी॥
अरु भूप करै अभिमाना। उन आपै ही कूं जाना॥
उन काल नहीं पहिचाना। सो मार करै घमसाना॥ चरणदास

(सन्तसुधासार, २. पृ. १७७)

गर्व : शरीर का

'कबीर' कहा गरबियौ, चाम लपेटे हड्ड।
हैवर ऊपर छत्र सिर, ते भी देना खड्ड॥

(कबीर ग्रंथावली पृ. २१)

गार्हस्थ्य

पति पत्नी का सदाचार भी
नहीं मात्र परिणय से पावन,
काम निरत यदि दंपति जीवन,
भोग मात्र का परिणय साधन।
प्राणों के जीवन से ऊँचा
है समाज का जीवन निश्चय,
अंग लालसा में, सामाजिक
सृजन शक्ति का होता अपचय।

(सु. नं. पं. : स्वर्णधूलि, पृ. ५)

गार्हस्थ्य आवश्यकता

आओ कुछ ले लें औ दे लें।
हम हैं अजान पथ के राही,
चलना जीवन का सार प्रिये!
पर दुसह है अति दुसह है
एकाकीपन का भार प्रिये!
पल भर हम तुम मिल हँस खेलें,
आओ कुछ ले लें औ दे लें!

(स अमृतलाल नागर भगवती चरणवर्मा पृ ६८)

गार्हस्थ्य प्रशंसा

सब आश्रम, सब तप, साधन श्रम, चिरआश्रित गृह पत्नी के।
श्रेष्ठ गृहस्थ जहाँ हरि श्री से चिर दर्शन पति पत्नी के॥

(अतुल कृष्ण गोस्वामी नारी, पृ १२५)

गाली प्रेम-वैर की जननी

अमिअ गारि गारेउ गरल, गारि कीन्ह करतार।
प्रेम बैर की जननि जुग, जानहिं बुध न गँवार॥

(तुलसीदास दोहावली, पृ ११३)

गीत : फिल्मी

न लेना नाम भी तुम अब इलम का,
लिखो बस गीत हुक्के का, चिलम का,
अभी खुल जायगा रस्ता फिलम का।

—भारत भूषण अग्रवाल

(नयी कविता, अंक १, १९५४, पृ ८८)

गुण

सद्गुण, साहस, सत्य, शूरता, लोकोत्तर उत्तमता
पौरुष, प्रतिभा, प्रीति, प्राण, प्रभुता, पर-पालन क्षमता।
क्षमा, शान्ति, करुणा, उदारता, श्रद्धा, भक्ति, विनयिता।
सज्जनता, शुचिता, मनस्विता, मेधा, मन निर्भयता॥
यह सम्पत्ति धरोहर प्रभु की तुम्हें मिली धरने को।
अवसर पर प्रस्तुत सब जग हित मे वितरण करने को।
सो तुम सकल चुरा कर जग से भाग बसे निर्जन में।
प्रभु से यह विश्वास-घात करते न डरे तुम मन में॥

(रा न त्रि पथिक, पृ ३०)

गुण और दोष

लोभ सो न ओगुन पिसुनता सो पातुकु न,
सांच सो न तप नाहि ईरषा सो दहनों।
सुचि सो न तीरथ सुजनता सो सेवक न
चाह सो न रोग तीनि लोक मांह कहनो।
धरम सो मीत न दुरित जीवघातक सो
काम सो प्रवल नाहि दत्त (?) सो लहनों।
चिता सो न साल 'देवीदास' तीन्यों लोक कहैं
सन्तोष सो सुख नांहि कीरति सो गहनो॥

(देवीदास, याज्ञिक. संग्रह, पद्य ८८.)

गुण और रूप

१. काली निपट कुरूप, कसतूरी मौंहगी बिकै।
साकर निपट सरूप, तुलै न टाँका नाथिया॥

(नाथूराम : सिछ्यासार)

२. रूप हो या न हो इस से क्या बिगड़ता है,
किन्तु गुण तो रात में भी चमक आते है।
मेघ की काली घटा में दामिनी के स्वर—
नीद में भी कहानी अपनी सुनाते हैं।

(उ. शं. भ. : कणिका पृ. ४२)

गुण और स्थान

१. कहा भयौ जौ सिर धयौ, कान्ह तुम्हें करि भाव।
मोरपंखा बिन और तुम, उहाँ न पैहौ नाँव॥ रसनिधि

(सतसई सप्तक, पृ. २२२)

२. ए रे गुणी गुण पाइ चातुरी निपुण पाइ,
कीजिये न मैलो मन काहूँ जो कछू करी।
वारन बिराने द्वार गये को यही सुभाव
मान अपमान काहूँ रे करी कि जू करी॥
कूर और कवि चले जात हैं सभा के मध्य,
तो सों तौ हटकि 'देवीदास' पलटू करी॥
दरवाजे गज ठाढ़े कूकरी सभा के मध्य
कूकरी सो कूकरी औ तू करी सो तू करो॥

(देवीदास : शिवसिंह सरोज पृ. १२२)

गुण जाति से उत्तम

द्विज-सा देव प्रिय चाण्डाल, यदि वह है स्ववृत्ति-व्रत पाल।
नहीं बिन विद्या अनिवार्य, वृत्त बनाता है बस आर्य॥
दीपक से भी कज्जल जात, और पंक से भी जल-जात।
एक डाल में कांटे फूल, जाति नहीं, गुण मंगलमूल॥

(मै श गु हिन्दू पृ १७०)

गुण दिखावटी

दया, दाक्षिण्य, सेवा, प्यार, श्रद्धा,
हमारी वंचना के नाम हैं ये।
हृदय, मस्तिष्क, भुज, श्रम, शीष, जिह्वा
क्षणों की रातियों के दाम हैं ये।

(भा सा च. वेणु लो गूंजे धरा, पृ ६८)

गुण दुष्टों द्वारा निन्दा

तउ ल 'गाज' न होई है, गुण माणिक की ओप।
खम जोहा गरमाण परि, चढ़ै न अऊँ लुं चोप॥

(लक्ष्मीवल्लभ - दूहा बावनी)

गुण नाश

कृपन बुद्धि जम हने, कोप दृढ प्रीत बिछोरै।
दम्भ विघु मैं सत्य, छुधा मर्यादा तोरै॥
कुविसन धन छै करै, बिरति थिरता पद टारै।
मोह मरारै ग्यान, विषय शुभ ध्यान बिडारै॥
अभिमान विहंडै विनय गुन, पिसुन कर्म गुरुता गिलै।
कुकथा अभ्यास नासै सुपथ, दारिद सो आदर ढिलै॥

(बनारसीदास नवरत्नकवित्त, पद्य ८)

गुण प्रकाशनीय

बाह्मन बाद सुवा सौं पूछा। दहुँ गुनवन्त कि निग्गुन छूछा।
कहु परबत्ते! गुन तोहि पाहा। गुन न छिपाइय हिरदय माहा॥

(जायसी ग्रंथावली, पृ ३९)

गुण फल कर्मानुसार

स्वीय कर्मों ही के अनुसार,
एक गुण फलता विविध प्रकार,
कहीं राखी बनता सुकुमार,
कहीं बेड़ी का भार।

(सु नं प आधुनिक कवि, पृ ४२)

गुण : महिमा

१. गुन देखें गुनिजन सुखी, निर्गुन होइ जनु कोइ ।
राय रंक सब बीच लै, जौ रै पेट गुन होइ ॥
ऊँच नीच पूछहि नहि कोई। बैठहि सभा जोर गुनु होई ॥
गुनीं पुरिष जो पर भुमि जाई । त्यों त्यों महँगे मोल विकाई ॥
जैसे पुत्रहि पालै माई । त्यों गुन रहै सदा सुखदाई ॥
गुन विन पुरिष पंख विन पंखी । गुन विन पुरिष अंध ज्यों अंखी ॥
(आलम : माधवानल कामकंदला)

२. कहा रूप कहि कोकिलहि। गुन करि सब सुपदाइ।
अति उज्जल बक गुन बिना। काहूँ कूँ न सुहाइ ॥
गुन बिन रूप निकाज गनि। ज्यों जलनिधि को तोइ।
देपक को अतही भलौ। प्यासौ पिये न कोइ ॥
कहा रूप कुबुजा कहउ। गुनन कृप्न बस कीन।
गुन ग्राहक प्रिय देश कै। रूप रह्यो दिन दीन ॥
(लाल : रूपगुण-संवाद पृ. ७८)

३. घड़ियौ सोव्रन घाट, जडियौ घट जवाहर सूँ ।
विण गुण को हर बाट, नीर न निकसै नाथिया ॥
(नाथूराम . सिछयासार)

४. गुनि लखि सब कोइ आदरै, गारी धक्का खाय।
कौन पिटाई डुगडुगी, रेल चढ़हु हे भाय ॥
(सुधाकर द्विवेदी)

५. काँटा अपने आँगन का भी अपनी आंखों में गड़ता है,
लेकिन फूल कहीं का भी हो मन में बस जाया करता है।
महक उठा करता जीवन में परदेसी होकर भी कोई,
कोई अपना होकर भी तो बहुत पराया सा लगता है।
(रूपनारायण त्रिपाठी : बनफूल, पृ. २१)

६. जो औरों के हृदय जीत ले,
उसकी हार नहीं होता है।
(रघुवीर शरण मित्र : जननायक)

गुण : संमान-कारण

१. ऊँचे बैठे ना लहै, गुण विन बड़पन कोइ।
बैठो देवल शिखर पर, वायस गरुड़ न होइ ॥
(सतसई सप्तक, वृन्द सतसई, पृ. ३००)

२. क्या. मैं हूँ यह सुमन नहीं बतलाता फिरता,
उसकी सुन्दर सुरभि उसे है मान दिलाती।

ऐसे ही है मनुज गुणा से पूजा जाना,
लबी-लबी बात नही है यान बनाती ।
(हरिऔध मर्म स्पर्श, पृ १५)

३ जानी जान सुगध सो, सोई मृगमद जान ।
नान नाम तें होन जो, तो न खरी पहचान ॥
(म प्र द्वि द्वि का भा, पृ २७७)

गुण : सुखदायक

कबहूँ कहूँ न काहू बात की कमी न रहै
काम बयों करै सदा सब पै यसान के ।
सुकवि गुपाल पूजा होइ ठौर ठौर लोग
आय आय बुझ्यो करै सकल दिशान के ॥
देस परदेसन नरेसन मे नाम होइ
जोनत गुनीन निज गुण ते जिहान के ।
द कै दानमान भले लै कै खान पान सहे
रहैं धनमान सदा द्वार गुणमान के ॥
(गुपाल राय बपति वाक्यविलास, पृ, १२०)

गुणी और निर्गुण

जिनके उदार चित्त गाँव बीच मित्त पूरे,
गुनवन सब ही के 'देवी' सुखदात हैं ।
रूप के उजारे नैन तारन मैं राखि लीजैं,
बालन मैं मोन लेन ऐसे मुख बान हैं ।
साथ लागे सुख फिर निराधार दुख फिरै,
भाग खुले जहाँ को तहा ई चलि जात हैं ।
कापुरुष गुनहीन दीन मन नीच नर,
बाप की तलाई बीच बैठे कीच खात है ॥—देवीदास

गुणी का आदर

कूपहि आदर उचित है, नही गुनिन को हेय ।
अनर गुन को ग्रहन करि, फिरि फिरि जीवन देय ॥
(वो द गि प्र, पृ २५६)

गुरु अनिवार्य

व बिन गुरु कोई भेद न पावे, धरती से आकास को धावे ।
पहिले प्रीत गुरु से करै, प्रेम डगर मे तब पगु धरै ।
बिन गुरु 'बजहन' जो कोई, लेत है बसन रँगाय ।
यह तुम निश्चय जानियो, तो दोउ ओर से जाय ॥
(सरला शुक्ल जायसी के परवर्ती पृ ३२२)

गुरु : की उपेक्षा

बोझ लदे हय हाथिन पै खर खात खड़े नित जायखु जाये ।
बन्धन में मृगराज पड़े शठ स्यार स्वतंत्र पुकारत पाये ।।
मान सरोवर में विहरें बक, 'शंकर' मार मराल उड़ाये ।
मान घटो गुरु लोगन को, जग वंचक पामर पंच कहाये ।।

(नाथूराम शंकर शर्मा)

गुरु : की मार

मार भली जो सतगुरु देहि । फेरि बदल औरै करि लेहि ।
ज्यूं माटी कूं कुटै कुँभार । त्यूं सतगुरु की मार विचार ।।
जैसा लोहा घड़ै लुहार । कूटि काट करि लेवे सार ।
त्यूं 'रज्जव' सतगुरु का खेल । तातै सभी मार सब झेल ।।

(सन्तसुधासार, १, पृ. ५२२)

गुरु : झूठा

१. मन का मोह न हरे राल घन पर टपकावे ।
मुक्ति बहाने भूल भुलैयाँ बीच फँसावे ।।
हमें चाहिए गुरु नहीं ऐसा अविवेकी ।
जो न लोक का रखे न तो परलोक बनावै ।।

(हरिऔध : पद्यप्रसून, पृ. ४८)

२. कन फूंका गुरु जगत का, राम मिलावन और ।
सो सतगुरु कों जानिए, मुक्ति दिखावन ठौर ।।—चरणदास,

(सन्तसुधासार, २, पृ. १७३)

गुरु : भक्ति

१. सतगुरु ब्रह्म सरूप हैं, मनुष्य भाव मत जान ।
देह भाव मानै 'दया', ते हैं पसू समान ।। —दयाबाई

(गि. द. शु. : हिं. का. को., पृ. ५५)

२. राम तजूं पै गुरु न बिसारूँ । गुरु के सम हरि कूं न निहारूँ ।।
हरि ने जन्म दियो जग माहीं । गुरु ने आवागमन छुटाहीं ।।
हरि ने कुटुंब जाल में गेरी । गुरु ने काटी ममता बेरी ।।
हरि ने रोग भोग उरझायो । गुरु जोगी कर सबै छुटायो ।।
हरि ने कर्म मर्म भरमायो । गुरु ने आतम रुप लखायो ।।
फिर हरि बंध मुक्ति गति लाये । गुरु ने सब ही मर्म मिटाये ।।

—सहजोबाई

(गिरिजादत्त शुक्ल : हिं. का. को., पृ. ५०)

गुरु महत्व

१ गुरु दियना बारु रे, यह अंध कूप संसार ।।टेर।।
माया के रंग रची सब दुनिया, नहिं सूझ परत करतार ।।१।।
पुरुष पुरान वसैं घट भीतर, तिनुका ओट पहार ।।२।।
मृग के नाभि बसत कस्तूरी, सूँघत भ्रमत उजार ।।३।।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, छूटि जात भ्रम जार ।।४।।
(कबीर शब्दावली, दू भा, पृ ८०)

२ गुरु गोविन्द दोऊ खडे, काके लागा पाय ।
बलिहारी गुरु आपने, गोविंद दियो बताय ।।
(कबीर वचनावली, पृ ११९)

३ गुरु हमार तुम राजा, हम चेला तुम नाथ ।
जहाँ पाँव गुरु राखै, चेला राखै माथ ।।
(जायसी ग्रन्थावली, पृ ६२)

४ प्रभु प्रिय पूज्य पिता सम आपू । कुल-गुरु सम हित माय न बापू ।।
(रा च मा गु पृ ३८६)

५ गुरु ग्याता परजापति, सेवक माटी रूप ।
'रज्जब' रज सूँ फेरि कै, घडि ले कुंभ अनूप ।।
(सन्तसुधासार, १ पृ ५२५)

६ रवि ज्यौं प्रगट प्रकाश म, जिन तिमर मिटाया ।
शशि ज्यों शीतल है सदा, रस अमृत पिवाया ।।
अति गम्भीर समुद्र ज्यो, तरवर ज्यो छाया ।
वानी बरषै मेघ ज्यो, आनन्द बढाया ।।
(सुन्दरसार, पृ ८५)

७ बिन गुरु माल होउँ कत चेला, बिन गुरु दाया चलै अकेला,
गुरु बिन पथ न पावै कोई, केतिको ज्ञानी ध्यानी होई ।
गुरु ऐसो मीठो किछु नाहीं, जहँ गुरु तहा तिक्त मिटि जाही,
'कामयाब' को गुरु अति भावै, सो हित जो गुरु ताहि जिवावै ।।
(नूरमुहम्मद अनुराग बाँसुरी पृ ३३)

८ तिनको न कछू कबहूँ बिगरै, गुरु लोगन को कहनो जे करै ।
जिनको गुरु पथ दिखावत हैं, ते कुपथ पै भूलि न पाँव धरै ।।
जिनको गुरु रच्छन आप रहै, ते बिगारे न बैरिन के बिगरै ।
गुरु को उपदेस सुनो सब ही, जग कारज जासो सबै सँभरै ।।
(भारतेन्दु नाटकावली, पृ ३३४)

९. जन रंजन होता नहीं, कर गंजन तम-मान।
दृग-रुज मंजन जो न गुरु, करते अंजन दान॥

(हरिऔध सतसई, पृ. ७)

गुरु-वचन :

भले-बुरे गुर जन वचन, लोपत कवहुँ न धीर।
राज-काज को छांड़ि कै, चले विपिन रघुवीर॥

(सतसई सप्तक, वृन्दसतसई, दोहा ६३७)

गुरु : सच्चा

१. आँखों को दे खोल भरम का परदा टाले,
जी का सारा मैल कान को फूँक निकाले।
गुरु चाहिए हमें ठीक पारस के ऐसा,
जो लोहे को कसर मिटा सोना कर डाले।

(हरिऔध : पद्य प्रसून, पृ. ४५)

२. ज्ञान टकों पर बिक गया, मान कहाँ से होय।
बिना मूल्य जो देत है, सच्चा गुरु है सोय॥

(मेलाराम : शिक्षासहस्री)

गृह-कलह

कहा भोजन आज तो खारो भयो, अधिको तुम लौन घुं काहे कु डारो,
वात सुनै तै सुनि ह्वै लगी, हम नाहिं करै तुम्हहीं जस वारो।
धिग पापन तूं हम सुं ज कहै, धिग पापी है तूं तेरो बाप हत्यारो,
राज कहै कलहो दिन को तिन तो गृह को मुह कीजियै कारो।

(लक्षीवल्लभ : सवैया बावनी)

गृहस्थ : आदर्श

धर्महि-हेतु गृहस्थ ते, सन्तति-हेतु विवाह।
ग्रहण त्याग-हित, त्याग महँ रंचहु नहिं यश-चाह॥

(द्वा. पृ. मि. : कृष्णायन, पृ. ८०१)

गृहस्थ : दरिद्र

१. जल संकोच विकल भई मीना। अबुध कुटुम्बी जिमि धनहीना॥

(रा. च. मा. गु. पृ. ४५६)

२. तुच्छ सलिल के पुनि ये मीन। सरद ताप तपि भये जु दीन॥
कृपन दरिद्र कुटुम्बी जैसें। अजितेन्द्रिय दुख भरत है तैसें॥

(नन्ददास ग्रन्थावली, पृ. २९१)

गृहस्थ सफल

रमवती जिसकी मृदु भारती,
गृहवधू शुभ पुत्रवती सती,
बहुत दानवती वर सम्पदा,
सफल जीवन है वह ही गृही।

(अनूप वर्द्धमान, पृ. २१०)

गृहस्थाश्रम की श्रेष्ठता

पालत इतर आश्रमन निज श्रम, ताते सब ते श्रेष्ठ गृहाश्रम।
पथ जो ताता गृही प्रतिकूला, करत सो छिन धर्मतरु-मूला॥

(द्वा प्र मि कृष्णायन, पृ. ८०२)

गृहस्वामिनी

अपनी रक्षा स्वयं करो, पर-मुख मत देखो,
निज प्राणों से सदा धर्म को बढ़ कर लेखो।
आ जाए यदि समय, प्राण की बली चढ़ा दो,
रिपु से जम कर लड़ो, धर्म की ढाल अड़ा दो।
हिम्मत हारो मत कभी, बैंदल बन कर कामिनी,
दिखला दो निज शौर्य को, हो तुम तब गृहस्वामिनी॥

(रामचन्द्र शर्मा मेरी सम्पत्ति, पृ. २७)

गृहिणी

१ सब प्रतिष्ठा, निरछल निष्ठा, गुण स्रष्टा, शिव द्रष्टा सी।
लोक लक्ष्मी, भुवि सरस्वती, दुर्गा, सब पर तुष्टा सी॥
रस की राधा, रुचि की रति, चिर अन्नपूर्णा, सत्सेवी।
शक्ति भक्ति मयि, गेहात्मा, जय नवगृहिणी कुल की देवी॥

(अनुलकृष्ण गोस्वामी नारी, पृ. ११५)

२ रत्न विभूति अवतरित न होती यदि न जो नारी आती।
बाण भट्ट की, कालिदास की प्रतिभा किस पर जी पाती?
क्या संस्कृति, क्या दर्शन होता, तुम बिन क्या करती वाणी?
वाङ्मय मरु-सा रह जाता रूखा-सूखा-सा प्राणी॥

(अनुलकृष्ण गोस्वामी नारी, पृ. १८७)

गो-गौरव

भारत अवनी अन्न बहुत सा है उपजाती,
इसीलिए है कनक प्रसविनी जाती।
इसी अन्न से तीस कोटि मानव पलते हैं,
तथा तम-भरे सदन मध्य दीपक बलते हैं।

गो-सुत-गात-विभूति से अन्न-राशि उद्भूत है,
भारतीय गौरव सकल गो-गौरव-संभूत है।

(हरिऔध : मर्मस्पर्श, पृ. १७२)

गो-रक्षा

१. अरिहु दन्त तिनु धरै ताहि नहिं मारि सकत कोइ।
हम संतत तिनु चरहिं वचन उच्चरहिं दीन होइ॥
अमरित पय नित स्रवहिं वच्छ महि थंभन जावहिं।
हिन्दुहिं मधुर न देहिं कटुक तुरकहिं न पियावहिं॥
कहि कवि नर हरि अकबर, सुनो, विनवति गउ जोरे करन।
अपराध कौन मोहि मारियत मुएहु चाम सेवइ चरन॥

(सरयूप्रसाद : अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, पृ. ३३३)

२. अवनि-असुर अति प्रबल मुनीजन-कर्म छुड़ाए।
गउ सन्तन के हेत, देह धरि ब्रज में आए॥

('कुम्भनदास,' पृ. १४)

३. गैया माता तुम का सुमरों कीरत सबते बड़ी तुम्हारि।
करो पालना तुम लरिकन कै पुरिखन बैतरनि देउ तारि॥
तुमरे दूध दही की महिमा जानै देव पितर सब कोय।
को अस तुम बिन दूसर जिहि का गोबर लगे पवित्तर होय॥
जिनके लरिका खेती करिकै पालै मनइन के परिवार।
ऐसी गाइन की रच्छा माँ जो कुछ जतन करो सौ सौ बार॥
घास के बदले दूध पियावै मरि के देंय हाड़ और चाम।
धनि यह तन मन धन जो आवै ऐसी जगदम्बा के काम॥

(प्रताप नारायण मिश्र)

४. थोरे घास पानी में अघानी रहैं रैन दिन,
दूध, दही, माखन मलाई देत खाने को।
पूतन तें खेती करवाय देत अन्न वस्त्र,
जाके हाड़ चाम आँत गोबर ठिकाने को॥
'दीन' कवि मेरे जान याही बात अनुमानि,
मुनिन महान धर्म मान्यो गो चराने को।
ऐसे उपकारी की कृतज्ञता बिसारि अब,
भारत निवासी मारे फिरैं दाने-दाने को॥

(लाला भगवानदीन)

५. गुन गायो वहि मातु नित, निरखि नवायो माथ।
वैतरनी-तरनी वहै, सौंपि कसाइन-हाथ।
(रामेश्वर करुण करुण सतसई, पृ १४९)

६ जिनके धन वह पय पाया, जिनके बल विभव बढ़ाया।
वह गोधन हाय! हमारा, खूंखार खलों ने खाया॥
निज कटें कलोरें कितनी, उस 'ओम' धर्म के कारण।
जिसका धारण कर करते, हम गौ रक्षा व्रत धारण॥
वह मन मोहन की मैया, वह ग्वाल-गणों की गैया।
हत भाग्य! उसी के घर में, अब काटें उसे कसैया॥
(रामेश्वर करुण तमसा, पृ २१९-२१)

७ दूध हमारे बच्चों को भी नहीं पेट भर देते,
मन में जान बपौती अपनी, सब निकाल तुम लेते।
नित्य मधुर पकवान बनाते कूद-कूद कर खाते,
बन कर हृष्ट-पुष्ट हम से ही, हम पर छुरी चलाते॥
(रामचन्द्र शर्मा मेरी सम्पत्ति, पृ ३८)

गो-संवर्द्धन

१ 'चतुभुज' प्रभु पट पीत लिएँ कर धावत नन्द-दुहैया।
पोछत रेनु धेनु के मुख की गिरि गोवर्धन-रैया॥
('चतुर्भुजदास' : पृ १२०)

२ स्याम सखि के द्वार करावत गायन को सिंगार।
नाना भांति सींग मंडित किये ग्रीवा मेले हार॥
घंटा कंठ मोतिन की पटियाँ पीठिन की आधे औंधार।
किंकिन नूपुर चरन बिराजत बाजत चलत सुदार॥
(परमानन्द सागर पृ ८१)

गौरव

प्यास सहत पी सकत नहिं, औघट घाटन पान।
गज की गरुवाई परी, गज ही के गर आन॥ (रसनिधि)
(सतसई सप्तक, पृ २२३)

ग्रंथ उपेक्षा

गो नारद जब पाहुँ काया। चारा मेलि फाद जग माया॥
नाद वेद औ भूत सचारा। सब अरुझाई रहा ससारा।
(जायसी ग्रन्थावली, पृ ३१०)

बेद पुरान सबै पढ़ै, पुथियन अवगाहैं।
बिना पेम कछू नाहैं, पूजा बिरथा हैं॥
(पेमी : पेम प्रकाश, पृ. ६०)

तुसी इलम किताबाँ पढ़दे हो, केहे उलटे माने करदे हो।
बेमूजब ऐवें लड़दे हो, केहा उलटा वेद पढ़ाया है॥ (बुल्लेशाह)
(सन्तवानी संग्रह, भाग २)

ग्रन्थकार : लक्षण

शब्द-शास्त्र है किसका नाम ?
इस झगड़े से जिन्हें न काम :
नहीं विराम-चिह्न तक रखना जिन लोगों को आता है।
उधर-उधर से जोर-बटोर,
लिखते हैं जो तोड़-मरोड़,
इस प्रदेश में वे ही पूरे ग्रन्थकार कहलाते हैं॥१॥

अन्य देश-भाषा का ज्ञान;
कालकूट के घूंट समान;
स्वयं मातृभाषा भी जिनको देख-देख घबड़ाती है।
भाड़े पर रख विज्ञ विशेष,
लिखवाते हैं जो निज लेख,
ग्रंथकार-पदवी उनको ही दौड़-दौड़ लिपटाती है॥२॥

ए, बी, सी, डी का भी ज्ञान
जिनको अच्छी भाँति हुआ न,
अंग्रेजी उद्धृत करने में किन्तु न जो शर्माते हैं।
ऐसे विद्या-बुद्धि-निदान
जिनका बड़ा मान-सम्मान,
निश्चय वे ही परम प्रतिष्ठित ग्रन्थकार कहलाते हैं॥३॥

संस्कृत भाषा कौन पदार्थ ?
जिन्हें न यह भी विदित यथार्थ,
धर्म शास्त्र का किन्तु मर्म जो लिख-लिख कर समझाते हैं।
जन-समाज संशोधन कार्य
व्यर्थ वाद जिनका व्यापार,
सत्य-सत्य वे ही अति उत्तम ग्रन्थकार कहलाते हैं॥४॥

अपनी पुस्तक की सानन्द,
स्वयं समीक्षा लिख स्वच्छंद,
अन्य नाम से अखबारों में जो शतवार छपाते हैं।

निज मुख से जो गुण विस्तार,
करते सदा पुकार-पुकार,
ग्रंथकार-पद-योग्य सर्वथा वे ही समझे जाते हैं ॥५॥
(म. प्र द्वि द्वि का भा पृ २९८)

ग्रन्थकारों से विनय

भाषा है रमणी रत्न महा-सुखकारी,
भूषण हैं उसके ग्रंथ लोक उपकारी।
उनको नित्य उसकी तृप्ति भली विधि कीजै
अति विमल-सुयश की राशि क्यों न ले लीजै ? १
सत्काव्य, तथा इतिहास, और विज्ञान,
सत्पुरुषों के भी चरित विचित्र-विधान।
लिखिए हे लेखन-कला-कुशलतावान!
इसमें ही है सब भांति देश-कल्याण ॥२॥
जो वस्तु और की बिना कहे लेता है,
सब कोई उसको 'चोर' सदा कहता है।
औरों के चारु विचार तथापि मनोहर,
ले लेने में कुछ दोष नहीं हे बुधवर ॥३॥
इंग्लिश का ग्रन्थ-समूह बहुत भारी है,
अति-विस्तृत-जलधि-समान देहधारी है।
संस्कृत भी सबके लिए सौख्यकारी है,
उसका भी ज्ञानागार हृदय हारी है ॥४॥
इन दोनों में से अय रत्न ले लीजै,
हिन्दी के अर्पण उन्हें प्रेमयुत कीजै।
वह माता हम सब भांति स्नेह-अधिकारी,
इतनी ही विनती आज विनम्र हमारी ॥५॥
(म प्र द्वि द्वि का भा पृ ३७३-७४)

ग्राम की गन्दगी

सरे पात पसरे सरे, मल पूरे चहु फेर।
ग्राम कहैं इन सो हरे, कै घूरे के ढेर ?
(रामेश्वर करुण करुण सतसई, पृ ९७)

ग्राम : सुधार

करके शिक्षा-कार्य समाप्त,
वय [illegible]य का पदवी प्राप्त।

फिर तुम ग्रामों में कर वास,
ग्रामीणों का करो विकास ।।
बतलाओ कुछ उन्हें उपाय,
बढ़ा सकें वे अपनी आय ।
संक्रामक रोगों की छूत,
(जिसे समझते हैं वे भूत) ।
कर न सके उनका अपघात,
उन्हें बताओ उनकी बात ।।
पाकर तुम को अपने बीच,
समझें वे न आप को नीच ।
उन पर कोई किसी प्रकार,
कर न सके अब अत्याचार ।।
अपना राष्ट्र जानि निज जीर्ण,
है ग्रामों में ही विस्तीर्ण ।
जाकर वहाँ जलद सम आप,
मेटो तुम उसका उत्ताप ।।

(मै. श. गु. : हिन्दू, पृ. ८१-५)

ग्रमीण-सुधार

ये भारत के ग्राम-निवासी,
क्षुधित देह मन, आँखें प्यासी,—
जीवन वैभव से हों परिचित !
इन्हें रूप दो !
बाह्य रूप हो पहिले सुन्दर,
जानें जन, जीवन प्रभुका वर,
देखें ईश्वर का मुख बाहर,
छँटे दृष्टि तम ज्योतिमंडित !
इन्हें रूप दो !
नगर नरक,—जन कीर्ण अप्राकृत,
ग्राम स्वर्ग हों, संघ विकेन्द्रित,
सरल सौम्य सात्विक जीवन मिल,
शिक्षित न हों, लोग हो संस्कृत !
इन्हें रूप दो !
भारत के जन ग्राम-निवासी,
मनुष्यत्व के हों अभिलाषी,

भू संपद जन श्रम की दासी,—
जीवन रचना हो दिव् कुसुमित !
इन्द्र रूप दो !
(सु न पं वाणी, ७७-७८)

ग्राम्यजीवन

अहा ! ग्राम्य जीवन भी क्या है, क्यों न इसे सबका मन चाहे।
थोड़े में निर्वाह यहाँ है, ऐसी सुविधा और कहाँ है ? ॥
यहाँ शहर की बात नहीं है, अपनी अपनी घात नहीं है।
आडम्बर का नाम नहीं है, अनाचार का काम नहीं है ॥
कुटिल कटाक्ष-बाण के द्वारा, जाता नहीं पथिक जन मारा।
भोगों में वह भक्ति नहीं है, अधिक इन्द्रियासक्ति नहीं है।
वह अदालती रोग नहीं है, अभियोगों का योग नहीं है ॥
गुण्डों की न यहाँ बन आती, इज्जत नहीं किसी की जाती।
सीधे सादे भोले भाले, हैं ग्रामीण मनुष्य निराले।
यद्यपि वे काले हैं तन से, पर अति ही उज्ज्वल हैं मन से।
प्राय सब की सब विभूति हैं, पारस्परिक सहानुभूति है।
प्राणों से भी अधिक प्यारियाँ, हैं अर्द्धांगी ठीक नारियाँ।
बात-बात में अड़न वाली, गहनों के हित लड़ने वाली।
दिखलाने वाली दुर्गतियाँ, हैं न यहाँ ऐसी श्रीमतियाँ ॥
छोटे से मिट्टी के घर हैं, लिपे-पुते हैं स्वच्छ सुघर हैं।
है जैसा गुण यहाँ हवा में, प्राप्त नहीं डाक्टरी दवा में ॥
अतिथि कहीं जब आ जाता है, वह आतिथ्य यहाँ पाता है।
ठहराया जाता है ऐसे, कोई सम्बन्धी हो जैसे ॥
जगती कहीं ज्ञान की ज्योती, शिक्षा की यदि कमी न होती।
तो ये ग्राम स्वर्ग बन जाते, पूर्ण शान्ति रस में सन जाते ॥
(मैं श गु)

घटाव

ज्ञान घटै ठग चोर कि संगति, रोष घटै मन के समुझाये।
पाप घटै कछु पुन्य करे, अरु रोग घटै कछु औषधि खाये ॥
(असली आल्हखंड' पृ ५८४)

घर और वन

माता के समान पर पतनी विचारी नहीं,
रहे सदा पर धन लेन ही के ध्यानन में।

गुरुजन पूजा नहीं कन्हीं सुचिभावन सों,
गीधे रहे नानाविधि विषय विघानन में ॥
आयुस गँवाई सबै स्वारथ सँवारन में,
खोज्यो परमारथ न वेदन पुरानन में।
जिन सों बनी न कछु करत मकानन में,
तिनसों बनैंगी करतूत कौन कानन में ॥
'पूरन' सप्रेम जो न लेत मुख राम-नाम,
टीका अभिराम है निकाम तासु आनन में ।
उर में नहीं जु हरिमूरति विराजी मंजु,
कौन महिमा है कंठ-मालन के दानन में ॥
आसन के नेम बिन वासना नमाये मिथ्या,
बिन श्रुतिज्ञान होत मुद्रा वृथा कानन में।
चहिये सुप्रीति धर्म-कर्म के विधानन में,
रहिये मकानन में चाहे छोर कानन में ॥

(राय देवी प्रसाद 'पूर्ण')

घर : का भेद

रहिमन अँसुआ नैन ढरि, जिय दुख प्रगट करेइ ।
जाहि निकारो गेह ते, कस न भेद कहि देइ ॥

(रहिमन विलास, पृ. १८)

घर : की फूट

जहाँ लरैं सुत बाप सँग, और भ्रात सों भ्रात ।
तिनके मस्तक सों हटै, कैसे पर की लात ॥

(बालमुकुन्द गुप्त)

घर : पराये में शोभा नहीं

कौन बड़ाई जलधि मिलि, गंग नाम भो धीम ।
केहि की प्रभुता नहीं घटी, पर घर गये 'रहीम' ॥

(सं. व्र. र. दा. रहिमन विलास, पृ. ५)

घूँसखोरी

१. लीन्ह अंकोर हाथ जेहि, जीउ दीन्ह तेहि हाथ ।
जहाँ चलावै तहँ चलै, फेरे फिरे न माथ ॥
लोभ पाप के नदी अंकोरा । सत्त न रहै हाथ जो बोरा ॥
जहाँ अंकोर तहँ नीक न राजू । ठाकुर केर बिना सैकाजू ॥

(जायसी ग्रन्थावली पृ. २८७)

२ जूते में भी जड सको 'नाल' चाँदी का,
तो सिर हाजिर, मूह बद पुलिस बाँदी का ।
(भें श गु राजा-प्रजा पृ १६)

घृणा त्याग

माना तुम हो सभ्य और यह महा असभ्य है ।
च्चे-बापचे तुम भव्य और यह सभी नव्य है ।
तुम तो हो उस्ताद और यह नया खिलाडी ।
तुम हो कला प्रवीण और यह निरा अनाडी ।
किसी बात को ले विरोध हो जाना भी सभव है ।
मत घृणा करो, यह भी तुम जैसा ही मानव है ॥
(सागर मल कुछ कलियाँ कुछ फूल, पृ ३०)

चचल

राजा चचल होय, मुलुक को सर करि लावै ।
पडित चचल होय, सभा उत्तर दै आवै ॥
हाथी चचल होय, समर मे सूडि उठावै ।
घोडा चचल होय, झपट मैदान देखावै ॥
ये चारो चचल भले, राजा पडित गज तुरी ।
'बैताल' कहै विक्रम सुनो, तिरिया चचल अति बुरी ॥
(कविता कौमुदी, १, पृ ४६३)

चंदा

जिधर देखो उधर ही चदा है,
बडा हैरान इस से बदा है ।
जिधर जाओ उधर खुरचने हैं,
यह सोसाइटी नहीं है, रदा है ॥
(बेढब बनारसी बेढब की बहक, पृ १२१)

चतुर

भीरु छिपावतु जीव ज्यों, कृपण छिपावतु दामु ।
सूर छिपावत शक्ति त्यों, चतुर छिपावतु नामु ॥
(वियोगी हरि वीरसतसई, पृ १०२)

चतुर और मूर्ख

चतुर सभा म कूर नर, सोभा पावत नाहिं ।
जैसे बक सोभित नहीं, हस मडली माहिं ॥
(वृन्दसतसई, पृ १०४)

नहिं पढ़ायो पुत्र कों, सो पितु वड़ो अभाग।
सोहत सुत सो वुध-सभा, ज्यों हंसन में काग ॥

(दी. द. गि. ग्रं. पृ. ८२)

चतुर : पर कुसंग-प्रभाव नहीं

जैसे धूम प्रभाव तें, गगन न होत मलीन।
तथा कुसंगति पाय कै, मलिन न होहिं प्रवीन ॥

(दी. द गि. ग्रं. पृ. ८५)

चतुर : स्त्री-वश नहीं

तिय वश होहिं न चतुर नर, ते दुर्लभ तिहुँ लोक।
फूलत कामिनी पग परस, आनन्द मगन अशोक ॥

(कुलपति मिश्र : रस-रहस्य, पृ. वृत्तात)

चतुरानन की चूक

१. जा तिय को अति उत्तम रूप वनायहु ता पिय को पति-हीना।
जौ मन भावन छैल दई पुनि तौ तिय ही को कुरुपिनि कीना ॥
जौ वहु रूप दई दुहुँ को पुनि तौ कलपावत पुत्र विहीना।
तीनहुँ जाहि दई शिव सम्पति जू विधि ताहि दरिद्रता दीना ॥

(शिव सम्पति)

२. चतुरानन की चूक सव, कहँ लौं कहिये गाय।
सतुआ मिलै न सन्त को, गनिका लुचुई खाय ॥

(शिव सम्पति)

चरित्र

चिंतन कर यह जान कि तेरी क्षण-क्षण की चिन्ता से,
दूर-दूर तक के भविष्य का मनुज जन्म लेता है;
उठा चरण यह सोच कि तेरे पद के निक्षेपों की;
आगामी युग के कानों में ध्वनियाँ पहुँच रही हैं।

(दिनकर की सूक्तियाँ, पृ. ३७)

चरित्र : नर का भूपण

नर का भूपण विजय नही,
केवल चरित्र उज्ज्वल है।

(दिनकर की सूक्तियाँ, पृ. ३८)

चर्खा, चक्र सुदर्शन

यह चर्खा चक्र-सुदर्शन है।
मनोहर जिसका दर्शन है ॥

असहयोग का आज छिड़ा है देवासुर संग्राम,
हमें विजय लक्ष्मी यह देगा, बड़ा करेगा काम।
यहाँ की यह मशीनगन है।
यह चर्खा चक्र सुदर्शन है॥
(रूप नारायण पांडेय पराग, पृ ३५-६)

चला-चली

हय चले हाथी चले रथ चले प्यादे चले,
ऊँट चले रेल चली तार धाय कै चली।
सूर चल चंद चल्यौ तारा चले दिन चल्यौ,
रैन चली छिन चले पल-पल में टली।
बाप चल्यो बेटा चल्यो नारि चली मीत चले,
'हरीचंद' चली देव-दानव की मंडली।
प्रति जुग प्रति बर्ष प्रति मास प्रतिदिन,
प्रति घरी प्रति छिन लागी है चला चली॥
(भारतेन्दु ग्रन्थावली, दू ख, पृ २९६)

चाटुकारी

'रहिमन' जो रहिबो चहै, कहै वाहि के दाव।
जो वासर को निस कहै, तौ कचपची दिखाव॥
(स ब्रजरत्नदास' रहिमन विलास, पृ २०)

चाल टेढ़ी और सीधी

फरजी साह न ह्वै सकै, गति टेढ़ी तासीर।
'रहिमन' सीधी चाल सो, प्यादो होत वजीर॥
(रहिमन विलास. पृ २०)

चालाक

धूल से धूल हैं मिला देते, रगतें ढग से बदलते हैं।
चाल चालाकियों भरी कितनी, कब न चालाक लोग चलते हैं।
(हरिऔध चुभते चौपदे, पृ १२८)

चाह

१ चाह गई चिन्ता मिटी, मनुवाँ बेपरवाह।
जिन को कछू न चाहिए, सोई साहसाह॥
(कबीर वचनावली, पृ १४३)

२ बिन चाहे सब ही मिलै, चाहे कछु न मिलंत।
बालक मुख जोरावरी, माता भाता देत॥
(ज्ञानसार, प्रास्ताविक अष्टोत्तरी)

चिंता

चिन्ता से जिसको न आप अपने देहादि का ज्ञान हो—
क्या आश्चर्य न और का यदि उसे आते हुए ध्यान हो ?

(मै. श. गु. : शकुन्तला, पृ. १९)

चिंता : का त्याग

जब दांत न थे तब दूध दियो अब दांत भए कहा अन्न न दैहै।
जीव बसे जल में थल में तिन की सुधि लेइ सो तेरिहु लैहै ॥
जान को देत अजान को देत जहान को देत सो तोहूं कूं दैहै।
काहे को सोच करैं मन मूरख सोच करै कछु हाथ न ऐहै ॥—बीरबल

(अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, पृ. ३५४)

चिंता : चिता से बुरी

'रहिमन' कठिन चितान ते, चिंता को चित चेत।
चिता दहति निर्जीव को, चिंता जीव समेत ॥

(रहिमन विलास, पृ. १८)

चिता : निवारण

१. उस अचिंत्य प्रभु की कृपा, हुई नहीं भरपूर।
चिंतित चित ! चिन्ता कहो, कैसे होवे दूर ॥

(हरिऔध सतसई, पृ. ५०)

२. विना तजे दुर्वृत्त औ, लाभ किये सद्वृत्त।
होयेगा निश्चित क्यों, कोई चिन्तित चित्त ॥

(हरिऔध ससतई, पृ. ९०)

३. चिन्ता-जननी चाह है, ताको पति अविवेक।
जौ विवेक की चाह तो, राम नाम जपु एक ॥

(रा. च. उ. : सतसई)

चित्त

चाकर है सब चित्त के, क्या चकोर क्या कोक।
खिले कमल अवलोक रवि, कुमुद मयंक विलोक ॥
अपने अपने भाव हैं, अपने अपने साथ।
भूले आक-प्रसून पर, भोले भोलानाथ ॥

(हरिऔध सतसई, पृ. ३२)

चित्तौड़ दर्शन

तपन वात उर लाय, फिरि सेयहु धीर समीर ।
प्रथम जाउ चित्तोर-गढ़, पुनि बिरमहु कसमीर ॥

(वियोगी हरि, वीर सतसई, पृ ४०)

चीनी भक्षण का विरोध

चीनी ऊपर चमचमी भीतर अति अपवित्र ।
करते हो व्यवहार तुम है यह बात विचित्र ॥
है यह बात विचित्र अरे निज धर्म बचाओ ।
चौपायो का रुधिर अस्थि अरु अधिक न खाओ ॥
है यह प्यारी बात बड़ो की छानी-बीनी ।
करो भूर स्वीकार करो मत नुक्ताचीनी ॥

(सकलित)

चुगल

आय आय लोग घर बैठे ही गिरामैं हाथ,
टटे औ सिगाइ पे सु उठत गुाल को ।
सुकवि 'गुपाल' इत उत म दिगाय भय,
करि कैं फरेबी माल मारत जुगल को ।
राति दिन बूम गरकार मे रहति डर,
मार्यौ मरै लोग ऐगो जैसो न मुगल को ।
या मे छलछिद्र कछू परत नवन सदा,
या तें यह भलो रुजिगार है चुगल को ॥

(गुपाल कवि दम्पतिवाक्य विलास, पत्र ३९)

चुगली

नब हीं ... ते या मे पोटी कहनों परनि बात
गारो गरा कहैं चुगार वैर वधै तन छीजियें
कै बहु चोमन रहत लोग,
जाहर भए मामले मे जाइ कैं बिगारि घाम दीजियें ।
यहु विगरन हाल या तें,
कहत 'गोपाल' मेरी बात हि पतीजियें ।
भूपं रहि जीजि रि विष लाइ पीजिये,
पैं भूलि रुजगार चुगली को नहिं कीजिए ॥

(दम्पतिवाक्य विलास, गुपाल कवि पत्र ३९)

चेतावनी

१. कहा कियो हम आइ करि, कहा कहैंगे जाइ।
इत के भये न उत्त के, चाले मूल गँवाइ ॥
इहि औसरि चेत्या नहीं, पसु ज्यूं पाली देह।
राम-नाम जाप्या नहीं अंति पड़ी मुख खेह ॥

(कबीर : चितावणी को अंग)

२. पर प्रपंच पर दर्व पर स्त्री निसु दिन फिरत रहन निगु नत्ते।
लप्पट पाग लप्पटि बात निप्पटि अवसि करत निज दत्ते ॥
'नरहरि' हसत भुकत वर बोल्लत गावत जोवन अधर धरि दत्ते।
तब ते समुझि सकुचि विरधप्पन किऐ ते काज जोवन मद मत्ते ॥—नरहरि

(अकबरी दरबार... पृ. ३२६)

३. जब तलक तू हाथ में मन का मनका लायगा।
तब तलक इस काठ की माला से क्या फल पायगा ॥
भूल कर अज को अजा का आज लो चेरा बना।
क्या इसी पाखंड से परमात्मा मिल जायगा ॥
धर्म का धन छोड़ कर पूंजी बटोरी पाप की।
बस इसी करतूत से धर्मात्मा कहलायगा ॥
चाह की चिनगी से चैंका चैन फिर चित को कहां।
देख बर कर आग पैं पारा न टुक ठहरायगा ॥
दान दीनों को न दे कर नाम का दानी बना।
भोग के भूखे वहां जा कर बता क्या खायगा ॥
लोभ-लीला के लिए रच रंग-शाला राग की।
बोल वह रंगी रंगीले गीत कब तक गायगा ॥
स्वारथी उपकार औरों का कभी करता नही।
फिर तुझे संसार सारा किसलिए अपनायगा ॥
जो तुझे भाती नहीं सब की भलाई तो भला।
क्यों न भोले भाइयों को भूल में भरमायगा ॥
प्रेम का जल दे रहा परिवार के आराम को।
फल नही देगा किसी दिन फूल कर मुरझायगा ॥
खेल में खोया लड़कपन भोग में जोबन गया।
भूल में भागी जरा क्या और जी— आएगा ॥
दूर प्यारे की पुरी है दिन किनारे आ चुका।
चल नहीं तो इस झमेले में पड़ा ।५॥ ॥

कठ की घर-घर सुनेंगे अत वो घर के गड़े।
उस घड़ी "शंकर" घिरा घर घेर में घबरायगा ॥
(नाथूराम शंकर अनुराग रत्न, पृ ११७ ८)

(१)

४ मानी, देख न कर नादानी।
मातम का तम छाया, माना,
अन्तिम सत्य इसे यदि जाना,
तो तू ने जीवन की अब तक आधी सुनी कहानी।
मानी, देख न कर नादानी!

(२)

सुन यदि तूने आशा छोड़ी,
तो अपनी परिभाषा छोड़ी,
तुझे मिली थी यह अमरों की केवल एक निशानी।
मानी, देख न कर नादानी!

(३)

ध्वसों में यदि सिर न उठाया,
सृजन का यदि गीत न गाया,
स्वर्गलोक की आशाओं पर फिर जाएगा पानी!
मानी, देख न कर नादानी ॥
(बच्चन सतरंगिनी पृ १०४)

चौका-चूल्हा

१ चौका कर, जला दे आग, अदहन[1] धरे जला दे साग।
गूंधे, बेले भी वर वय, सेंक न सके किन्तु आश्चर्य ॥
(मै श गु हिन्दू, पृ १७९)

२ हैं जह 'आठ कनौजिया नौ चूल्हे' की रीति।
तहाँ परस्पर प्रीति की कहा पढावत नीति ॥
(वियोगी हरि वीरसतसई, पृ ९१)

छन्द मुक्त

मुक्त छन्द कुछ वैसा ही येनुका काम है,
जैसे कोई बिना जाल के टेनिस खेले।
(दिनकर · नये सुभाषित, पृ १५)

१ वह पानी जो दाल आदि पकाने के लिए पहले गर्म किया जाता है।

छल

१. पुरुष तहाँ पै करै छर, जहँ वर किए न आँट ।
जहाँ फूल तहँ फूल है, जहाँ काँट तहँ काँट ।।

(जायसी ग्रन्थावली पृ. २८७)

२. विबुध काज बावन वलिहि, छलो भलो जिय जानि ।
प्रभुता तजि बश भे तदपि, मनतें गई न ग्लानि ।।

(तुलसी सतसई, पृ. २४२)

छींक

हौसले वाले हिचकते ही नहीं, राह चाहे ठीक या बेठीक हो ।
हो सगुन या काम असगुन से पड़े, दाहिने हो या कि वायें छींक हो ।।

(हरिऔध : चुभते चौपदे, पृ. ३३)

छूआ-छूत

एकै पवन एक ही पाँणी, करी रसोई न्यारी जांनी ।
माटी सूँ माटी ले पीती, लागी कहौ कहां धूँ छोती ।।
धरती लीपि पवित्र कीन्हीं, छोति उपाय लीक विचि दीन्हीं ।
या का हम सूँ कहौ विचारा, क्यूँ भव तिरिहौ इहि आचारा ।।

(कबीर ग्रन्थावली, पृ. २४५)

२. छूत क्या है अछूत लोगों में, क्यों न उनका अछूतपन लखिए ।
हाथ रखिए अनाथ के सिर पर, कान पर हाथ मत रखिए ।।
क्या उसी से कढ़ी न गंगा है, बल उसी के न क्या पुजे बावन ।
हैं अपावन अछूत सब कैसे, है भला कौन पांव सा पावन ।।

(हरिऔध : चुभते चौपदे, पृ. ११६)

३. अपनेहिं अंग अछूत करि, पर-अछूत भे लोय ।
जो जैसी करनी करै, तैसी भरनी होय ।।

(दुलारे लाल : दुलारे दोहावली, पृ. ६३)

अरे अमरपुर भारत में क्यों छूआछूत का भूत ?
एक पिता चारों का, माँ के चारों प्यारे पूत ।

(सुधीन्द्र : शंखनाद, पृ. १४)

छोटे

कैसे छोटे नरनु तैं सरत बड़नु के काम ।
मढ्यौ दमामौ जात क्यों कहि चूहे के चाम ।।

(बिहारी रत्नाकर, पृ.५९)

छोटे और बड़े

१ काज पड़े सब ही बड़ा, बिना काज सब छोट।
पाई हेतु मँगावते, रुपया मोहर लोट॥
(सुधाकर द्विवेदी)

२ आड़ बड़े की लेकर छोटा, पलता भी है गलता भी है।
योग हवा का पाकर दीपक, जलता भी है बुझता भी है॥
(सागरमल कुछ कलियाँ कुछ फूल, पृ ६१)

छोटे *तिरस्कार्य नहीं*

'रहिमन' देख बड़ेन को, लघु न दीजिए डारि।
जहाँ काम आवे सुई, कहा करे तलवारि॥
(रहिमन विलास, पृ २१)

छोटे *से बड़े की शोभा*

छोटेन सों सोहैं बड़े, कहि 'रहीम' यह रेख।
सहसन को हय बाँधियत, लै दमरी की मेख॥
(रहिमन विलास, पृ ६)

जगत्

१ जो पै ईश्वर साँचो जान।
तो क्यों जग को सगरे मूरख झूठो करत बखान॥
जो करता साँचो है तो सब कारजहू है साँच।
जो झूठो है ईश्वर तो सब जगहू जानो काँच॥
जो हरि एक अहै तो माया यह दूजी है कौन।
'हरीचंद' कछु भेद मिल्यो न बक्यो जिय आयो जौन॥
(भा ग्र हू ख पृ ११९)

२ कागद की
नाव नहीं,
बालक-बहलाव नहीं।
बंदीघर,
जेल नहीं,
दानवीय खेल नहीं।
नन्दन का
कुंज नहीं
सुखमा-सुख पुंज नहीं।
दुनिया यह स्वर्ग बेलि,
दुनिया यह स्वर्ग बीज,

अश्रु-स्वेद-लोहू से
जिसको जब सींच-सींच
मनुज बढ़ा लेता है,
अमृत फल देता है।

(बच्चन : सतरंगिनी, पृ. १६२)

जगत् : अनित्य

खोलता इधर जन्म लोचन,
मूंदती उधर मृत्यु क्षण, क्षण;
अभी उत्सव औ हास हुलास,
अभी अवसाद, अश्रु, उच्छ्वास !
अचिरता देख जगत की आप
शून्य भरता समीर निःश्वास,
डालता पातों पर चुपचाप
ओस के आँसू नीलाकाश;
सिसक उठता समुद्र का मन,
सिहर उठते उडुगन।

(सुमित्रा नन्दन पंत : आधुनिक कवि, पृ. ३५)

जगत् : की उलटी चाल

या जग की विपरीति गति, समझी देखि सुभाव।
कहै जनार्दन कृष्ण कौं, हर को शंकर नांव॥

(वृन्द सतसई, दोहा, १२६)

जगत् : नित्य

मूंदती नयन मृत्यु की रात,
खोलती नवजीवन की प्रात,
शिशर की सर्व प्रलयकर वात
बीज बोती अज्ञात।
म्लान कुसुमों की मृदु मुसकान,
फलों में फलती फिर अम्लान,
महत् है, अरे, आत्म बलिदान,
जगत केवल आदान प्रदान।

(सु. नं. पं. : आधुनिक कवि, पृ. ४१)

जगत् : में मित्र व सम्बन्धी नहीं

या जग मीत न देख्यो कोई।
सकल जगत अपने सुख लाग्यो, दुख में संग न कोई॥

दारा मीत पूत सम्बन्धी सगरे धन सो लागे।
जब ही निरधन देख्यो नर को, संग छाडि सब भागे ॥—नानकदेव
(गणेशप्रसाद हिन्दी के कवि , पृ ७०)

जगत् में वास

१ ऐसा यह संसार है, जैसा सेमर फूल।
दिन दस के व्योहार में, झूठे रंग न भूल ॥
(कबीर वचनावली, पृ. १२८)

२ जग माही ऐसे रहो, ज्यों जिह्वा मुख माहि।
घीव घना भच्छन करै, तो भी चिकनी नाहिं ॥ (चरणदास)
(सन्तसुधासार, २ पृ १६७)

३ जा में सदा उतपात रोगन सों छीजै गात,
कछू न उपाय छिन छिन आयु खपनो।
कीजै बहु पाप औ नरक दुख चिन्ता व्यापै,
आपदा कलाप में विलाप ताप तपनो ॥
जा में परिग्रह को विषाद मिथ्या बकवाद,
विषैभोग सुख को सवाद जैसो सपनो।
ऐसा है जगत वास जैसो चपला विलास,
ता में तू मगन भयो त्याग धर्म अपनो ॥
(बनारसी दास बनारसीविलास, पृ १९९)

जठराग्नि

प्रबल किया जठरागि को, जानहिं नीके चार।
दीन-हीन, श्रमकार, त्यों, कृषि-जीवी बेकार ॥
(रामेश्वर करुण · करुण सतसई, पृ ११)

जड़ी

जड़ी बूटी भूलै मत कोइ, पहली रांड बैद की होइ।
जड़ी बूटी अमर जो करै, तो बैद धनंतर काहे मरै ॥
(गोरख बानी, पृ १७७)

जन त्रिविध

आरम्भ ही नहिं विघ्न के भय अधम जन उद्यम सजैं।
पुनि करहिं तौ कोउ विघ्न सों डरि मध्य ही मध्यम तजैं।
धरि लात विघ्न अनेक पै, निरभय न उद्यम ते टरैं।
जे पुरुष उत्तम अन्त में ते सिद्ध भव कारज करैं।
(भारतेन्दु नाटकावली, पृ २३३)

जन : धिक्कार्य

१. मूढ़ मसकती तपी, दुष्ट मानी गृहस्थ नर।
नर नायक आलसी, विपुल धनवंत कृपन कर।
धरमी दुसह सुभाव वेदपाठी अधरम रत।
पराधीन शुचिवन्त भूमि पालक निदेश हत।
रोगी दरद्रि पीड़ित पुरुष वृद्धि नारि-रस गृद्ध चित।
एते विश्व संसार महि इन सबकहुँ धिक्कार नित ॥
(बनारसीदास, नवरत्न कवित्त, पद्य ६)

२. नारि सो धिकु जेहि पुरुष न रिंमे, पुरुष सो धिकु जीवन अपकारी।
वचन सो धिकु जो बोलि पलट्टिय, दानि सो धिकु जो करकस भारी ॥
प्रभु सो धिक जो कृत गुन मेटत, जया सकति बोल्लत कहि गारी।
नरु सो धिक्कु जीवन धिकु नरहरि, जिन केवल हरि भक्ति बिसारी ॥
(अकवरी दरबार, के हिन्दी कवि, पृ. ३२२)

जन : पूज्य

जो हैं प्रेम-दया-समुद्र जन वे निर्वन्ध के पात्र हैं,
श्रद्धा है जिनमें निवास करती वे भक्ति के सिन्धु हैं,
स्रष्टा में अनुराग नित्य रखते, वे धर्म में लीन हैं,
प्राणी जो निज कर्म में निरत हैं वे स्तुत्य हैं पूज्य हैं।
(अनूप शर्मा : सिद्धार्थ, पृ. २९४)

जन : मत

करो वही जो तेरे मन का ब्रह्म कहे,
और किसी की बातों पर कुछ ध्यान न दो।
मुँह बिचकायें लोग अगर तो मत देखो,
बजती हों तालियाँ अगर तो कान न दो ॥
(दिनकर : नये सुभाषित, पृ. ३७)

जन : विविध

धन चाहत निसिदिन अधम, मध्यम धन अरु मान।
उत्तम चाहत मान ही, चाहत कछु न महान ॥
(सं. रामकवि : हिन्दी सुभाषित, पृ. ४६)

जनक : सन्तान-प्रेम

जरा जिउ माता को और पिता को प्रान।
बालक पगु को कांटा मात पिता अँखियान ॥
(कासिमशाह : हंस जवाहिर)

जनतत्र और अनुशासन

सब के शासन मे कौन सहे अनुशासन ?
सब का समान पद और एक-सा आसन।
भोगी तुम ने चिरकाल कराल विषमता,
कर के छोडोगे क्यो न भला तुम समता।
(मै श गु - राजा-प्रजा, पृ २२)

जनता की शक्ति

हुकारो से महलों की नींव उखड जाती,
सासो के बल से ताज हवा मे उडता है,
जनता की रोके राह, समय मे ताव कहाँ ?
वह जिधर चाहती काल उधर ही मडता है।
(दिनकर चक्रवाल, पृ ३५२)

जन्म दिवस

एक दिन
और दिनो-सा
आयु का एक बरस ले चला गया।
(अज्ञेय अरी ओ करुणा प्रभामय, पृ १३२)

जन्मभूमि

१ आजीवन उसको गिनें, सकल अवनि सिरमौर।
जन्म भूमि जलजात के, बने रहें जन भौर॥
फलद कल्पतरु तुल्य हैं, सारे विटप बबूल।
हरिपद रज सी पूत है, जन्म-धरा की धूल॥
(हरिऔध सतसई, पृ ७४)

२ जन्म भू सी जन्मभू है, और है उपमा नहीं।
खोजते रहिए कभी भी पा नही सकते कहीं॥
जन्मदा माँ है हमारी जो नही नि स्वार्थ है।
जन्मभू सी फिर उसे कहना हमारा व्यर्थ है॥
(रा च उ राष्ट्र भारती, पृ १८)

३ स्वर्ग से भी श्रेष्ठ जननी जन्मभूमि कही गई।
सेवनीया है सभी की वह महामहिमामयी॥
(मै श गु : मगलघट, पृ १९४)

जन्मभूमि-प्रेम

हंस ! गंगा कूल भी अनुकूल तेरे है नहीं;
मान सर पहुंचे बिना तू मान सकता है नहीं।
धन्य है अनुरक्ति तेरी, धन्य तेरी शक्ति है;
धन्य तेरी जन्म-धरती, धन्य तेरी भक्ति है ॥

(रा. च. उ. : राष्ट्र भारती, पृ. १९)

जन्म-मरण

जन्म-मरण हैं इस मायावी जीवन के दो छोर;
लांघ सकेगा कौन इन्हें ? यह प्रश्न रहा झकझोर।
जीवन तो है गम्य किधर ये छोर अगम्य अपार,
कूल कहाँ है दृश्य ? यहाँ तो दृश्य बनी है धार,
किन्तु धार के आर पार भी कुछ तो होगा श्रेय,
छोड़ दिया है जिसको भ्रमवश कह कर के अज्ञेय।

(वृद्धमल : मंदन, पृ. ४)

जाति : अमर

जो रहती है जाति जगत में, मरने को तैयार।
वही अमरता का पाती है, ईश्वर से अधिकार ॥

(रा. न. त्रि. : मिलन, पृ. ५३)

जाति : गौण

यह न मानना कभी कुलीन के कुलीन होता,
मन मलीन कीचड़ में सरोज रोज खिलता है।
वर्ष भर तिमिर पोती काजल सी रजनी से,
सुधा भरी चांदनी से शरद हास मिलता है।

(उ. शं. भ. : कणिका, पृ. १०)

जाति : जीवित

सो कर मृतक-समान सतत मन-मार नही रह सकती।
कोई जीवित जाति सदा अपमान नहीं सह सकती।

(रामखेलावन वर्मा : चन्द्रगुप्त मौर्य, पृ. १५५)

जाति : प्रेम

क्यों सुनोगे मरे या जाति जिये, बस तुम्हें खाना पीना सोना है।
सच है अंधे के सामने रोना, अपने आप अपनी आंखें खोना है ॥

—संकलित

जाति : बहिष्कार

व्यय है जहाँ नहीं है आय,
कब तक वहाँ कुशल है हाय !

जगती मे जब तक है बुद्धि,
नही येनुकी तब तक शुद्धि ।
भूले भटके भाई वन्द,
जो आवें, आवें सानन्द ।
होते हैं निज जन पर—दूर,
बनते हैं अरि से भी क्रूर ।
वर्णो को यह वँट कठोर,
है कठोर से भी अति घोर ।
विजातीय भी विज्ञ वदान्य,
समझो सजातीय सम मान्य ।
हिन्दू मुसलमान क्रिस्तान,
परम पिता की सब सन्तान ।
लिखी नही माथे पर जाति,
गुण कर्मों से उसकी जाति ।
सब के दो पद हैं दो हस्त,
सजातीय हैं मनुज समस्त ।।
है उत्थान पतन सर्वत्र,
हम सब कर्म-पवन के पत्र ।
किन्तु नीच उठ सकें न यत्र,
होंगे पतित उच्च भी तत्र ।।

(मै श गु हिन्दू, पृ १००-१०५)

जाति भेद

वर्ण वर्ण मे छिड़ा द्वन्द्व है,
जाति जाति से जूझ रही है ।
स्वार्थ किये है व्यग्र सभी को,
सुमति सुगति कब सूझ रही है ?

(सो ला द्वि युगाधार, पृ ३०)

जाति रक्षक

नित [illegible] दौड धूप जी से कर,
जो गि[illegible] जाति को उठा देवें ।
चाहिए [illegible] चाह मे उन का,
चूम लें आँख से लगा लेवें ।।

(हरिऔध चुभते चौपदे पृ ५)

जाति : रक्षा

१. क्यों लुच्चे लुंगाड़े नीच, ले जाते हैं वधुएँ खींच ?
तन-मन से तुम निर्वल आज, रख सकते हो कैसे लाज ?
(मै. श. गु. : हिन्दू, पृ. ६१)

२. जो आघात वही प्रतिघात, यह ही तो स्वाभाविक वात।
हिन्दू, सजग रहो सब ओर, लगे धर्म-धन के हैं चोर ॥
(मै. श. गु. हिन्दू, पृ. ९६)

जाति : वृद्धि

केवल व्यय से धन कुवेर निर्धन होवेगा।
केवल वरसे वारि-राशि वारिद खोवेगा ॥
विना जलागम जल सूखे सूखेगा सागर।
वंश वृद्धि के विना अवनि होगी विरहित नर ॥
वह जाति ध्वंस हो जायगी, जो दिन दिन है छीजती।
होगा न जाति का हित विना, वने जाति-हित-व्रत व्रती ॥
(हरिऔध : पद्य प्रसून, पृ. ४२-३)

जाति : से भक्ति प्रवल

जाति न काहू की प्रभु जानत। भक्ति-भाव हरि जग-जुग मानत ॥
(सूर : राम चरित्रावली, पृ. ६२)

जाति : सेवक

लाखों लेते जन्म, नित्य लाखों मर जाते,
किन्तु न उनका कहीं नाम भी हम सुन पाते।
खाते पीते और विषय भोगें हम जैसे,
पशु-पक्षी भी, मित्र, वही करते है वैसे।
वस जो इस संसार में, जाति-समुन्नति कर गया ;
वही अमर नरवर सदा, यद्यपि वह हो मर गया ॥
(राम नारानण पाण्डेय : पराग, पृ. १७)

जाति-पाँति

१. एक वूंद एकै मल मूतर एक चाम एक गूदा।
एक जोतिथै सव उतपना, कौन वाह्म, कौन सूदा ॥
(कवीर ग्रन्थावली, पृ. १०६)

२. कुल विशेप उत्तम नहीं, सुमिरै उत्तम होय।
उत्तम जात भये सौ, गरव न राखे कोय ॥
(नूरमुहम्मद : इन्द्रावती, पृ. ७५)

३ हैं उपजे रज-बीज ही ते, बिनसे हू सबै छिति छार के छाँड़े।
एक-से देखु कछू न बिसेखु, ज्यों एकै उन्हार कुम्हार के भाँड़े।
तापर ऊँच औ नीच बिचारि, वृथा बकवाद बढ़ावत चाँड़े।
वेदन मूँदि लिया इन दूँदि, कि सूद अपावन पावन पाँड़े।

(देवसुधा, पृ. २१)

४ जाति अनेकन करी नीच अरु ऊँच बनायो।
खान पान सम्बन्ध सबन सों बरजि छुड़ायो॥
अपरस सोल्हा छूत रचि, भोजन प्रीति छुड़ाय।
किए तीन तेरह सबै, चौका चौका लाय॥

(भारतेन्दु नाटकावली, पृ. ६०४-५)

५ है कौन कहाँ से नीचा ? है कौन कहाँ से ऊँचा ?
क्या एक समान नहीं है, हम सब का जिस्म समूचा ?
क्या ब्राह्मण भंगी दोनों कुछ अपना चिह्न न लाते ?
एक ही डगर क्या आते एक ही डगर क्यों जाते ?
भंगी में भी ब्राह्मण है, ब्राह्मण में भी है भंगी,
चारों वर्णों के क्रम से, यह देह बनी बहुरंगी।
जो काम करे कुछ ऊँचा, वह ऊँचा क्यों न कहाये ?
चाहे भंगी घर जन्मे, चाहे ब्राह्मण घर आये ?
एक ही बदन वेदों ने, चारों का वास बनाया॥
चारों के संग्रह से ही, मानव विराट कहलाया॥

(रामेश्वर करुण : तमसा, पृ. १२६-७)

जाति-पाँति : भारत का कलंक

भारत मस्तक का कलंक यह—
जाति पाँतियों में जन खंडित,
जहाँ मनुज अस्पृश्य चरण रज,
राष्ट्र रहे वह कैसे जीवित।

(सु. न. प. : लोकायतन, पृ. ९७)

जातीयता

जीवन मृतक कहते किसे जातीयता जिसमें न हो,
जिसमें न जाति ज्ञान हो आत्मीयता जिसमें न हो।
राकेश ताराओं रहित शोभित न होवेगा कभी,
हो क्षुधा से नर अलग सुख से न सोवेगा कभी॥

(रा. च. उ. : राष्ट्र भारती, पृ. २४)

जात्यभिमान

निज दूषण भी सद्‌गुण-कोष, विजातीय गुण भी है दोष ।
होता है जिससे यह भान, झूठा है वह जात्यभिमान ॥
(मै. श. गु. हिन्दू, पृ. १५८)

जामाता

निवही तिहुं लोक में 'सूर किशोर' विजै रन में निमि के. कुल की ।
जस जाइ रह्यौ सत दीप लुकान कथा कमनीय रसातल की ।
मिथिला वसि राम सहाय चहै तो उपासक कौन कहें मल की ।
जिन के कुल बीच सपूत नहीं करें आस दमादन के वल की ॥
(मिथिला महात्म्य, पद्य. ६.)

जिन्दगी (दे० जीवन)

चूम कर मृत को जिलाती जिन्दगी ।
फूल मरघट में खिलाती जिन्दगी ॥
(दिनकर की सूक्तियाँ, पृ. ४०)

जिज्ञासा

उठते हैं यदि प्रश्न हृदय में तो वे उठें सुखेन;
प्रश्नों के वल हमें उपनिषत् मिली प्रश्न, कठ, केन;
करते करते प्रश्न वन गया नचिकेता यम-मित्र;
और अमृत है केवल मंथन-जिज्ञासा का फेन ।
(वा. कृ. श. न. : हम विषपायी जनम के, पृ. २३)

जिह्वा : दो न रखे

दो जिह्वा रखिये नहीं, हो विद्या-वागीश ।
यथा लेखनी का कटा, कुटा व्याल का शीश ॥
(रुद्रदत्त मिश्र)

जीव : दया

१. दया कौन पर कीजिए, कापर निर्दय होय ।
सांई के सब जीव हैं, कीरी कुंजर दोय ॥
(कवीर वचनावली, पृ. १४५)

२. क्या वकरी क्या गाय है, क्या अपनो जाया ।
सबको लोहू एक है, साहिब फरमाया ।
पीर पैगम्बर औलिया, सब मरने आया ।
नाहक जीव न मारिए, पोषन को काया ॥ (गुरु नानक)
(हिन्दी के कवि और काव्य, पृ. ७०)

३ पीर सबन की एक सी, मूरख जानत नाहि।
काटा चूभो पीर है, गला काटि को खाइ॥

(मलूकदास ; सन्तवाणी, पृ ८१)

४ हरी डारि न तोडिये, लागे छूरा बान।
दास 'मलूका' या कहै, अपना सा जिव जान॥

(सन्त सुधासार, २, पृ ३८)

५ खुस खाना है खीचरी, माहि परा टुक नोन।
मास पराया खाय कर, गरा कटावै कौन॥

(कबीर वचनावली, पृ १४८)

जीव : हिंसा

जिव हिंसा जग में बुरी, हिंसा फल दुख देत।
मकरी माखी मछ्यनी, ताहि चिरी भख लेत॥

(भगवतीदास ब्रह्मविलास, पृ २४९)

जीवन

१ काल भर अवकाश होना चाहिए,
कुछ खुला आकाश होना चाहिए,
बीज की फिर शक्ति रुकती है वहाँ।
भाव की अभिव्यक्ति रुकती है कहाँ।

(दिनकर चक्रवाल, पृ ३४९)

२ न रहता भौंरो का आह्वान,
नही रहता फूलों का राज्य,
कोकिला होती अन्तर्धान,
चला जाता प्यारा ऋतुराज,
असम्भव है चिर सम्मेलन,
न भूलो क्षण भंगुर जीवन!
विकसने मुरझाने को फूल,
उदय होता छिपने को चंद,
शून्य होने को भरते मेघ,
दीप जलता होने को मन्द,
यहां किस का अनन्त यौवन?
अरे अस्थिर छोटे जीवन!

छलकती जाती है दिन रैन,
लबालब तेरी प्याली मीत,
ज्योति होती जाती है क्षीण,
मौन होता जाता संगीत,
करो नयनों का उन्मीलन,
क्षणिक हे मतवाले जीवन !
शून्य से बन जाओ डम्बर,
त्याग की हो जाओ झंकार,
इसी छोटे प्याले से आज,
डुबा डालो सारा संसार;
लजा जायें यह मुग्ध सुमन,
बनो ऐसे छोटे जीवन !
सखे ! यह है माया का देश,
क्षणिक है मेरा तेरा संग,
यहां मिलता कांटों में बन्धु !
सजीला सा फूलों का रंग;
तुम्हें करना विच्छेद सहन,
न भूलो हे प्यारे जीवन !

(महादेवी : आधुनिक कवि, पृ. १८)

३.

छाया भी,
स्वप्न नहीं,
भ्रान्ति-भेद-मग्न नहीं।
काल की,
तरंग नहीं,
एक मृत्यु व्यंग नहीं।
पागल की,
गल्प नहीं,
अर्थ-रहित जल्प नहीं।
मानव के अन्तर में,
जो कुछ उत्तम-तर है,
उसके अभिव्यंजन का
जीवन यह अवसर है,
सुखमय वह केवल जो,
इस तप में तत्पर है।

(बच्चन : सतरंगिनी, पृ. १६३)

४
यही पर
सब हँसी,
सब गान होगा शेष
यहाँ से
एक जिज्ञासा
अनुत्तर जगेगी अनिमेष !

(अज्ञेय हरी घास पर क्षण भर, पृ ५०)

५ चलना है तो चल आँधी-सा, बढ़ता जा आगे हू हू ।
जलना है तो जल फूसों-सा, जीवन मे करता धू धू ॥
क्षण भर ही आँधी रहती है, आग फूस की भी क्षणभर ।
किन्तु उसी क्षण मे हो जाता, जीवनमय भू से अम्बर ॥
मलयानिल-सा मन्द-मन्द मृदु चलना भी क्या चलना है ।
ओदी लकडी सा तिल तिल कर जलना भी क्या जलना है ॥
आग वही, जिसकी ज्वाला से, भस्म बने जो वस्तु झुके ।
वेग उसी को कहते हैं जो बाधाओं से नही रुके ॥
जब तक चलना है, चलता जा, सोच नहीं सम्मुख क्या है ?
जब तक जलना है जलता जा, फिक्र नही दुख सुख क्या है ।
रोगी बन सुकुमार सेज पर तू कायर की मौत न मर ।
पानी से भी जो बदतर हो, पैदा ऐसी आग न कर ।
क्षण भर को थोडा न समझ तू यदि वह है गौरव का क्षण ।
व्यर्थ हुआ मुर्दों सा पाया यदि तुमने लम्बा जीवन ।
मिटना ही है जब आखिर तो एक बार चल कर मिट जा ।
बुझना ही है जब आखिर तो एक बार जल कर बुझ जा ॥

(आरसीप्रसाद सिंह आरसी, पृ २१३)

जीवन अन्तरीप तुल्य

बने महाद्वीप भविष्य-भूत वे,
सुमध्य में जीवन अन्तरीप-सा,
सम्हाल दे जो पथ वर्तमान का,
वही बलक्ष्येन्द्र समान ख्यात हो ।

(अनूप वर्द्धमान, पृ ३०४)

जीवन अपूर्ण

न वह जीवन पूरा होता !
जिस में प्रेम, मिलन मधु-आशा,

सुख का नित संचार;
दुख का स्वाद न कुछ भी जाना,
विरह कथा का भार;
निराशा जो न तनिक ढोता,
न वह जीवन पूरा होता।

(सच्चिदानन्दसिंह : पलकों के मोती, पृ. ३४)

जीवन : अमूल्य

(दादू) ऐसे मँहगे मोल का, एक सांस जे जाइ।
चौदह लोक समान सो, काहे रेत मिलाइ॥

(सन्त दादू और उनकी वाणी. पृ. १३०)

जीवन और मरण

१. प्राची में हो उदित रवि भी सांझ को अस्त होता,
पाता है जो सुख, दुख वही अन्त में झेलता है;
संयोगी भी अहह! सहता विप्रयुक्ता दशा है,
देखो, कैसा क्रम चल रहा जन्म का मृत्यु का भी।

(अनूपशर्मा : सिद्धार्थ, पृ. १६०)

२. सदा सभी की दश-द्वार देह में,
न प्राण पक्षी करता निवास है।
रहा, वही जीवन है मनुष्य का,
गया, वही मृत्यु कही गयी यहाँ॥

(अनूप : वर्द्धमान, पृ. ३०७)

३. जीवन नहीं व्यर्थ का सपना, वुद्‌वुद् जैसा ही क्षण भंगुर;
चपला जैसा चंचल, अस्थिर, ऊषा की लालीं सा नश्वर!
जन्म-मरण है आँख-मिचौनी, एक अनोखा खेल-तमाशा;
मर कर अमर कीर्ति से सुरभित जग हो ऐसी अतुलित आशा!

(श्रीमन् नारायण : रजनी में प्रभात का अंकुर. पृ. ८५)

४. उतना आसान न है जीवन,
नाविक, जितना आसान मरण!

(शम्भूनाथसिंह : उदयाचल, पृ. २७)

जीवन और यौवन

जीवन कहता यौवन से, 'कुछ
देखा तू ले मतवाले?'

यौवन कहता 'सांस लिये, चल ।'
कुछ अपना संबल पा लें ।'
(प्रसाद . कामायनी, पृ २२३)

जीवन और वस्तुएँ

न अन्न-वस्त्रादिक ही समेटना
निधेय है कार्य मनुष्य मात्र का,
रची गयी जीवन हेतु वस्तुएँ
न किन्तु जीना इन के लिए कभी ।
(अनूप वर्द्धमान, पृ २१५)

जीवन का आदर्श सुख शान्ति

विश्व में फैल जाय सुख शान्ति,
यही हो जीवन का आदर्श ।
इसी में मानव की कान्ति,
इसी में मानव का उत्कर्ष ।
उचित है मनुज इसी के हेतु,
सँभालें अपने अपने काम ।
जहाँ है भरत, वहाँ हो भरत
जहाँ है राम, वहाँ हो राम ॥
(बलदेव प्रसाद मिश्र साकेत सन्त, पृ ११३)

जीवन का आनन्द

अपने को विस्मृत होने देना ही—
मौत बुला लेना है,
स्मृति के विषय रहो
जीवन का यदि आस्वाद यहाँ लेना है ।
अनुभव दान करो, पर इतना ध्यान रखो, मैं लूट न जाएँ ।
मन के तार कसो, पर इतना ध्यान रखो, मैं टूट न जाएँ ॥
(बुद्धमल्ल आवर्त, पृ २१)

जीवन का उद्देश्य

१ जीना केवल सत्य-साधना के लिए ।
मरना भी बस सत्य-दृष्टि ही के लिए ॥
निज समाज को सीख मनोहर दो यही ।
आये हम सब सत्य-दृष्टि ही के लिए ॥
(गिरिजादत्त शुक्ल तारकवध, पृ ५०२)

२. समस्त भू को पहचानना तथा
समस्त को सादर दृष्टि देखना।
समस्त-प्राणी-प्रति प्रेम मानना,
प्रशस्त है जीवन-ध्येय जीव का।

(अनूप : वर्द्धमान, पृ. ३०१)

३. जीवन की गति का ध्येय यही, मिट्टी वन जाये ज्योतिपुंज,
मरुभूमि चेतना-हीन जगे वन वनकर नन्दन वन-निकुंज !

(नरेन्द्र : अग्निशस्य, पृ. १९)

जीवन : का उपयोग

यह जीवन उपयोग, यही है बुद्धि-साधना।
अपना जिसमें श्रेय, यही सुख की आराधना॥

(प्रसाद : कामायनी, पृ. १९३)

वनजी : का गन्तव्य

प्रगति, अगति, दुर्गति, सद्गति;
गन्तव्य एक जीवन का—
हो यह वसुधा शुचितर अभिनव
मनुष्यत्व से शोभित !

(नरेन्द्र : अग्निशस्य, पृ. ११)

जीवन : का परिमाण

मनुष्य का जीवन दीर्घ-काय है,
उसे कि जो क्लेशित हो, स-दुःख हो;
परन्तु है सूक्ष्म, अदीर्घ भी उसे,
जिसे न आनन्द-प्रमोद त्यागते।

(अनूप : वर्द्धमान, पृ. ३०९)

जीवन : का मज़ा

सिर की कीमत का भाव हुआ, तव त्याग कहाँ ? वलिदान कहाँ ?
गरदन इज्जत पर दिये फिरो, जव मजा यहाँ जीने का है।

(दिनकर की सूक्तियां, पृ. ८६)

जीवन : का रहस्य

चला बँधे हाथ मनुष्य विश्व को,
विता दिया जीवन चार साँस ले,
चला खुले हाथ अभी श्मशान को,
खुला सभी जीवन का रहस्य भी।

(अनूप : वर्द्धमान, पृ. ३२०)

जीवन का विश्वास अमर

मिटते हैं जो बीज धरा की गोद भरेंगे,
शत-शत रूपों में अनिवार्यतया उभरेंगे,
बलिदानों का यह इतिहास लिखा धरती पर,
स्वयं सत्य भी इसे अन्यथा कर न सकेगा,
जीवन का विश्वास मौत से मर न सकेगा।
(बुद्धमल्ल - मथन, पृ ३७)

जीवन का श्रेय

तम न किसी के लिए सुखद है, ज्योति सभी को रही प्रेय है।
दीप प्रज्वलित रहे—यही बस जीवन का सर्वांश श्रेय है॥
(बुद्धमल्ल आवर्त, पृ ५१)

जीवन की जय

नया जन्म ही जग पाता है,
मरण मूढ सा रह जाता है।
एक बीज सौ उपजाता है,
जीवन की ही जय है।
मृषा मृत्यु का भय है।
(मै श गु · मगलघट, पृ २६१)

जीवन की दुःखमयता

वासनाओं का यह ससार
भयानक भ्रम का है बन्धन,
और इच्छाओं का मडल
आदि से अन्त रुदन है रुदन,
एक अनियन्त्रित हाहाकार
इसी को कहते हैं जीवन !
(सं अमृतलाल नागर · भगवतीचरण वर्मा, पृ ११४)

जीवन की निष्फलता

हाय ! न जीवन जन्म सुधारा कर्म किये दुखदाई रे।
न्हाया नहीं सुमति-सुरसरि में निशिदिन कुमति कमाई रे॥
काट दिया आनन्द-कल्पतरु दुख की बेल बढ़ाई रे।
माना कभी न समझाने से हठधर्मी उर छाई रे॥
हाय गिरा गुण-गौरव गिरि से नीच दशा मन भाई रे।
पाला पेट श्वान शूकर सम नेक न उन्नति पाई रे॥

जग का वास सराय न जाना अंधाधुंध मचाई रे।
रे कवि कर्ण भला क्या होगा कर पाया न भलाई रे॥
(कर्णसिंह : पश्चात्ताप)

जीवन : की परिभाषा

१. उठा हुआ जो पैर, यही बस जीवन का विश्वास हमारा,
रुका कि समझो यहीं आ गया इस प्रवाह का अपर किनारा।
(बुद्धमल्ल : मंथन, पृ. ८)

२. सिद्धि से पहले कभी जो वीच में रुकते नहीं,
जो कभी दवकर किसी के सामने झुकते नहीं,
जो हिमालय से अटल है सत्य पर, हिलते नहीं,
आग पर चलते हुए भी जो चरण जलते नहीं,
उन पगों के रज-कणों का नाम केवल जिन्दगी ?
(सं. क्षेमचंद्र सुमन : रामावतार त्यागी, पृ. ३६)

३. हम सुवह का जन्म-दिन मनाते रहे,
रात के चित्र उजले वनाते रहे,
सांझ आकर मगर सूचना दे गई—
जिंदगी है दुखों का सुखद संकलन।
(सं. क्षेमचन्द्र सुमन : रामावतार त्यागी, पृ. १०९)

४. आज प्रतीति न प्रीति हृदय में औ' उल्लास न आशा,
प्रतिहिंसा तृष्णा संशय भय नयनों की शर भाषा।
आत्मा में सौन्दर्य नहीं निज, मानव गरिमा मुख पर,
सृजन प्राण चेतना वाष्प सी उड़ उड़ जाती ऊपर।
कव विश्वास प्रेम आशा पुरुषार्थ उच्च अभिलाषा,
कला सृष्टि, सौन्दर्य दृष्टि होगी जीवन परिभाषा।
(सु. नं. पं. : स्वर्णकिरण., पृ. २६)

जीवन : की पहिचान

जीवन है लहरों का मेला,
राग द्वेष है जिनसे खेला।
और जगत् क्या ? उन लहरों का,
उठना मिटना या इतराना॥
जीवन को किसने पहिचाना ?
वीणा अपनी, स्वर उस प्रभु के,
उड़ना अपना, पर उस प्रभु के।

नर का जो अपना जीवन-पट,
उसमे उसका ताना बाना ॥
जीवन को किसने पहिचाना ?

(बलदेव प्रसाद मिश्र साकेत सन्त, पृ १९६)

जीवन की विडम्बना

ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है
इच्छा क्यो पूरी हो मन की,
एक दूसरे से न मिल सके
यह विडम्बना है जीवन की।

(प्रसाद कामायनी, पृ २७२)

जीवन की सत्यता

मानव आता है चल जाता, कुछ पल जग मे डेरा रहता,
किन्तु वास यह एक सत्य है, इसे कौन छलना है कहता ?

(रागेय राघव • मेघावी, पृ २२५)

जीवन की सफलता

१ मातु पिता गुरु स्वामि सिख, सिर धरि करहिं सुभाय ।
लहउ लाभु तिन्ह जनम कर, न तरु जनमु जग जाय ॥

(तुलसीदास दोहावली, दोहा ५४०)

२ हरि भजि साफिल जीवना, पर उपगार समाइ ।
दादू मरणा तहँ भला, जहँ पसु पखी खाइ ॥

(सन्त दादू पृ १३०)

३ तन्त्रीनाद कवित्त-रस, सरस राग रतिरग ।
अनबूडे बूडे तरे, जे बूडे सब अग ॥

(बिहारी रत्नाकर, पृ ४४)

४ निज जीवन का नाश ही, जिसका है उद्देश ।
होता है अति भयकर, आत्मग्लानि आवेश ॥
हैं हैं करते क्यो रहें, करें कमर कस काम ।
अच्छा होता है सदा, जीवन का परिणाम ॥

(हरिऔध सतसई, पृ ४६)

५ पर-पीडन से विरत वियुक्त, सर्वभूत हित निरत नियुक्त ।
देता है सबको समभाग, सफल उसी का जीवन-याग ॥

(मै श गु हिन्दू, पृ १२१)

६. वे द्रोह न करने के स्थल हैं
जो पाले जा सकते सहेतु ;
पशु से यदि हम कुछ ऊँचे हैं
तो भवजलनिधि में बने सेतु।
(प्रसाद : कामायनी, पृ. १४७)

७. निसर्ग से जीवन प्राप्त जो हुआ
अदीर्घ है अस्थिर है अपूर्ण है;
व्यतीत जो उत्तम भाँति से हुआ
सु-दीर्घ है, शाश्वत है, प्रपूर्ण है।
(अनूप : वर्द्धमान. पृ. ३००)

८. कलंक से जीवन हीन जो हुआ,
सधे विनिर्विघ्न समस्त कर्म जो,
मनुष्य का सार्थक जन्म हो गया,
अशोच्य है देह-निपात भी उसे।
(अनूप : वर्द्धमान, पृ. ३०१)

९. जग में लाखों मनुज, जन्म लेते मरते हैं।
तनु पोषण के लिए, विविध लीला करते हैं॥
पशु सम जन्म मनुष्य का, हो जाता है व्यर्थ।
जो रहते हैं अन्ध वन, निज सुख साधन-अर्थ
अर्थ के दास हो।

धर्म-धार में धैर्य-सहित नर जो बहते हैं।
चिरजीवी हो वही जगत में नित रहते हैं॥
होते हैं जो रत सतत, बन्धु-कुशलता-हेतु।
अमर वही है नर प्रवर, सौख्य सेतु कुलकेतु॥
मर्त्य इस लोक में॥
(लोचन प्रसाद पाण्डेय : आत्मत्याग)

१०. सदुपदेश से सफल हुई क्या भाषण-शक्ति तुम्हारी ?
दयावान कर सकी किसी निष्ठुर को भक्ति तुम्हारी ?
आवश्यकता की पुकार को श्रुति ने श्रवण किया है ?
कहो, करों ने आगे बढ़ किसको साहाय्य दिया है ?
आर्त्तनाद तक कभी पदों ने क्या तुम को पहुँचाया ?
क्या नैराश्य-निमग्न जनों को तुमने कंठ लगाया ?
कभी उदर ने भूखे जन को प्रस्तुत भोजन पानी।

देकर मुदित भूख के सुख की क्या महिमा है जानी ?
मार्ग-पतित असहाय किसी मानव का भार उठा के।
पीठ पवित्र हुई क्या सुख से उसे सदन पहुँचा के ?
मस्तक ऊँचा हुआ तुम्हारा कभी जाति-गौरव से।
अगर नहीं तो देह तुम्हारी तुच्छ अधम है शव से ?
भीतर भरा अनन्त विभव है उसकी कर अवहेला।
बाहर सुख के लिए अपरिमित तुमने संकट झेला।।

(रा न त्रि : पथिक, पृ ३१)

११

भू पर सस्कृत इन्द्रिय जीवन
मानव आत्म को रे अभिमत,
ईश्वर को प्रिय नहीं विरागी,
सन्यासी जीवन से उपरत !
आत्मा को प्राणो मे विलगा
अंधि दर्शन ने की जग की क्षति,
ईश्वर के सग विचरे मानव
भू पर, अन्य न जीवन परिणति !

(सु न प वाणी, पृ १७५)

जीवन क्षणिक

सुपुत्र पत्नी धन कीर्ति जीव को,
प्रमोद देते यह बात सत्य है,
परन्तु हा ! जीवन तो मनुष्य का,
प्रमत्त नारी दृगपांगलोल है।

(अनूप वर्द्धमान, पृ ३७१)

जीवन : क्षय

फाट रह्यो जीवन-बसन, पल-पल करो विचार।
श्वास-श्वास पर खिचत है, याको इक-इक तार।।

(स राम कवि : हिन्दी सुभाषित, पृ ४९)

जीवन गतिमय

रुकना है गति का नियम नहीं, तुम चलते जाना भाई,
बुझना प्राणों का नियम नहीं, तुम जलते जाना भाई !
हिम-खण्ड सदृश तुम निर्मल शीतल उज्ज्वल यश के भागी,
जमना आँसू का नियम नहीं, तुम गलते जाना भाई !

(भगवती चरण वर्मा : रंगों से मोह, पृ २२)

जीवन : गीत

शोक-भरे छन्दों में मुझ से कहो न 'जीवन सपना है'।
जो सोता है वह है मृतवत् जग का रंग न अपना है ।।
जीवन सत्य, नहीं झूठा है, चिता नहीं इस का अवसान।
'तू मिट्टी, मिट्टी होवेगा,' उक्ति नहीं यह जीव-निदान ।।
भोग-विलास नहीं, न दुःख हैं, मानव-जीवन का परिणाम।
करना ही चाहिए नित्य प्रति अधिकाधिक उन्नति का काम ।।
जग की विस्तृत रण-स्थली में जीवन के झगड़ों के बीच।
नायक बन कर काम करो सब पशुओं ऐसे बनो न नीच ।।
नहीं भविष्यत् पर पतियाओ, मृतक भूत को जानो भूत।
काम करो सब वर्तमान में, सिर प्रभु मन दृढ़ यह करतूत ।।
हो सचेत श्रम करो सदा तुम, चाहे जो कुछ हो परिणाम।
सदा उद्यमी होकर सीखो, धीरज धरना करना काम ।।

(पुरोहित लक्ष्मीनारायण)

जीवन : झरना

चलना है, केवल चलना है;
जीवन चलता ही रहता है।
मर जाना है रुक जाना ही,
निर्झर यह झर कर कहता है।

(आरसी प्रसाद सिंह : आरसी, पृ. ५०२)

जीवन : धार्मिक

हेया है जग में प्रपंच रचना, श्रेया निकुंजावली,
देया संपति दीन-हीन जन को, ज्ञेया कथा शम्भु की,
ध्येया प्रेम-प्रपत्ति है रसमयी, पेया सुधा मुक्ति की,
जेया इन्द्रिय-शक्ति है, स्वमति है नेया सदा ब्रह्म में।

(अनूप शर्मा : सिद्धार्थ, पृ. २९९)

जीवन : नश्वर

धरित्रि मेला, मिलते जहाँ सभी,
धरित्रि खेला, सब खेलते जहाँ;
रुका न कोई जग-पण्य-भूमि में
चले गये बालक खेलते हुए।

(अनूप : वर्द्धमान, पृ. ३०३)

जीवन निषिद्ध

बालक, दीन, अनाथ, हाय ! अपनाय न पाले ।
दलित देश के साथ, प्रेम कर कष्ट न टाले ॥
संकट किया न दूर, अभागे विधवा-दल से ।
मान-दान भरपूर, न पाया मुनि-मंडल से ॥
गरिमा न गही गोपाल की, ज्ञान न गुणियो से लिया ।
शठ 'शंकर', लोभी, लालची, पाय प्रचुर पूंजी जिया ॥

(नाथूराम शंकर अनुराग रत्न, पृ ११३)

जीवन निष्फल

१ चार दिन अपनी नौबत चले बजाइ ॥ टेक ॥
उतानै खटिया गडिले मटिया,
संग न कछु ले जाइ ॥ १ ॥
देहरी बैठी मेहरी रोवै,
द्वारे लौं संग माइ ॥ २ ॥
मरघट लौं सब लोग कुटुंब मिलि,
हंस अकेला जाइ ॥ ३ ॥
वहि सुत वहि वित वहि पुर पाटन,
बहुरि न देखै आइ ॥ ४ ॥
कहत 'कबीर, भजन बिन बंदे,
जनम अकारथ जाइ ॥

(कबीर शब्दावली, दू भा, पृ २९)

२ जिनका अभिमान गया है मर,
मन है जिनके जीवन का स्वर,
पनपा करते हैं गैर सदा
जिनके जीवन की धरती पर,
जिनका जीवन मुर्दों का और
मरण है जिनका श्वानो का,
कुछ मोल नही उन प्राणों का !

(शम्भूनाथसिंह उदयाचल, पृ ४५)

३ लह्यो न जग सुख, ब्रह्म को, धर्यो न हिय मे ध्यान ।
घर को भयो न घाट को, जिमि धोबी को स्वान ॥
सुबह साझ के फेर मे, गुजरी उमर तमाम ।
दुविधा महँ, खोये दुऊ, माया मिली न राम ॥

(शिवसम्पति)

जीवन : पथ की विषमता

जीवन-पथ पर चलते-चलते, बड़ी-बड़ी उलझन आती हैं।
आँखें कभी उठा करती हैं, कभी शर्म से झुक जाती हैं।
मन में टीस चीस होती है, फिर भी मुसकाना पड़ता है।
छाती को छलनी करके भी, मन को समझाना पड़ता है।

(रघुवीरशरण मित्र : जननायक)

जीवन : पहेली

कि जीवन आशा का उल्लास, कि जीवन आशा का उपहास,
कि जीवन आशामय उद्गार, कि जीवन आशाहीन पुकार,
दिवा-निशि की सीमा पर बैठ निकालूँ भी तो क्या परिणाम,
विहँसता आता है हर प्रात, बिलखती जाती है हर शाम।

(बच्चन : अभिनव सोपान, पृ. २००)

जीवन : प्रेम

सदैव है जीवन प्रेय सर्वथा
धरित्रि मैं जीवित प्राणि-मात्र को,
विभीत हो कीट-पतंग भी सभी
न त्यागना जीवन चाहते कभी।

(अनूप : वर्द्धमान, पृ. २९४)

जीवन : महान् कर्त्तव्य

चन्द्र देख कर मैंने समझा, जीवन है आह्लादित गान।
सूर्योदय लख मैंने जाना, जीवन बस कर्त्तव्य महान॥

(श्रीमन् नारायण : रजनी में प्रभात का अंकुर, पृ. १२२)

जीवन : यापन-विधि

हे वीणा-वादन-पर सखे, तार हों ठीक तेरे,
ऊँचे-नीचे अव [मत रहें रंग गाढ़ा जमावें।
जो होते हैं सम-बल वही मोहते विश्व को हैं
जो ढीले तो गत-रव बने, जो खिंचे शीघ्र टूटे।

(अनूप शर्मा : सिद्धार्थ, पृ. २०९)

जीवन : रंगभूमि

मनुष्य का जीवन रंगभूमि है,
जहाँ दिखाते सब पात्र खेल हैं;

जभी हिलाया कर सूत्रधार ने,
हुआ पटाक्षेप तुरन्त मृत्यु का।

(अनूप वर्द्धमान, पृ ३०६)

जीवन रस

अन्धकार में बगती उषा, बिजली बादल बीच।
उर में मरमिज सरस खिलाती मर की काली कीच॥
जीवन का रस लेना हो तो करो मरण से प्यार।
जो उल्लास स्वाद चखना हो तो लो मन को मार॥

(गिरिजादत्त शुक्ल, तारकवध पृ ७८)

जीवन व्यर्थ-नाश

रैन दिना (वस ?) दाम को कामु है, काहू को लैकरि काहू को दीबो।
'ब्रह्म भनै' जगदीस न जान्यो, न जानियो जी करि जे लगि जीबो॥
भोर तें रानि लों रानि तें भोर लों, कालि कियो सु तो आज ही कीबो।
खाइबो सोइबो बार ही बार, चमार के चामहि ज्यों जल पीबो॥

—बीरबल (अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, पृ १५७)

जीवन शाश्वत

ज्यो ज्यो लगती है नाव पार
उर मे आलोकित ज्ञान विचार।
इस धारा सा ही जग का क्रम, शाश्वत इस जीवन का उद्गम,
शाश्वत है गति, शाश्वत सगम।
शाश्वत नभ का नीला विकास, शाश्वत शशि का यह रजतहास
शाश्वत लघु लहरों का विलास।
हे जग-जीवन के कर्णधार! चिर जन्म-मरण के आर-पार
शाश्वत जीवन-नौका विहार।
मैं भूल गया अस्तित्व ज्ञान, जीवन का यह शाश्वत प्रमाण
करता मुझको अमरत्व-दान।

(सु न प आधुनिक कवि, पृ. ५८)

२ लह्-
घर को
जगत्-जन-जीवन है सग्राम।
सुबह स। का जिस मे होता रहता है वसुयाम॥
द्विविधा मह लोभ मोह के बहु व्यापक व्यापार।
होते है कर-कर प्रबल प्रहार॥

रक्त-पात वध छेदन-वेधन है इन की करतूत ।
विविध अवसरों पर ये बनते रहते हैं यमदूत ।।
कलह इन्द्रियों का मन का मनमानापन मतिभ्रान्ति ।
नाश शान्ति का कर करती रहती है कितनी क्रान्ति ।।
जो है संयत, आत्मबोध के जो हैं भक्त अनन्य ।
वे हैं जीवन्मुक्त और उन ही का जीवन धन्य ।।

(हरिऔध : मर्मस्पर्श, पृ. ८)

जीवन : संतुलित

न भोग है त्याज्य, न कर्म हेय है, विजेय निः श्रेयस है न घात से ।
न जीव है वध्य, न मृत्यु श्रेय है, न प्रेय हिंसा, न विधेय पाप है ।।

(अनूप शर्मा : सिद्धार्थ, पृ. २४०)

जीवन : सफल

करने चले तंग पतंग जला कर मिट्टी में मिट्टी मिला चुका हूँ ।
तम-तोम का काम तमाम किया, दुनिया को प्रकाश में ला चुका हूँ ।।
नहिं चाह 'सनेही' सनेह की और सनेह में जी मैं जला चुका हूँ ।
बुझने का मुझे कुछ दुःख नहीं, पथ सैकड़ों को दिखला चुका हूँ ।।

—गयाप्रसाद शुक्ल

(सं. सु. नं. पं : कविभारती, पृ. १५२)

जीवन : समृद्ध

निज वसुधा पर सभी पदार्थ, सारे अर्थ और परमार्थ ।
बन कर कर्मठ वीर वदान्य, प्राप्त करो तुम सब धन-धान्य ।।

(मै. श. गु. : हिन्दू, पृ. १२४)

जीवन : सुख-दुःखमय

१.

निर्मोह काल के काले
पट पर कुछ अस्फुट लेखा,
बस लिखी पढ़ी रह जाती,
सुख दुखमय जीवन-रेखा ।

(प्रसाद : आँसू, पृ. ४५)

२.

है जीवन के एक हाथ में,
मधुर जीवनामृत का प्याला,
और दूसरे कर में उसके
है कटु मरण-हलाहल-हाला ।

(बा. कृ. श. न. : हम विषपायी मरण के, पृ. ११८)

जीवन : सुखी

१ है विद्या और जन्म धन्य धरती पै तिनको ।
पराधीनता माहिं कटत नहिं जीवन जिनको ।।
कर्म पवित्र विचारन के जिनके अतिसुंदर ।
सरल सत्य सो मिलो निपुनता के जो आकर ।।१।।

बुरी वासना मन मे जिनके कबहुँ न आवत ।
रूप भयंकर धारि मृत्यु नहिं जिनहिं डरावत ।।
जगज्जाल मे बँधे करत नहिं यत्न हजारन ।
गुप्त प्रकट निज नाम सदा विस्तारन कारन ।।२।।

जिनहिं ईरखा होति नाहिं पर उन्नति देखे ।
चाटुकारि अनजान वस्तु है जिनके लेखे ।।
राजनीति को तत्त्व करत नहिं चित आक्रमन ।
धर्मनीति के ऊपर जो वारत तन-मन-धन ।।३।।

भयो कलंकित नाहिं कबहुँ जिनको यह जीवन ।
विमल विवेचक बुद्धि विपति मे विनति-निकेतन ।।
खुशामदी नहिं खायें उड़ावैं जिनकी सम्पति ।
औ शत्रुन कहँ प्रबल करत नहिं जिनकी अवनति ।।४।।

परमेश्वर को भजन करत जो साँझ सवेरे ।
हरि—सेवा को छाडि चहै नहिं सुख बहुतेरे ।।
धर्म ग्रन्थ अवलोकन मे ही समय बितावत ।
साधुन को सतसंग बैठि हरि कथा चलावत ।।५।।

नहिं उन्नति की इच्छा और नहिं अवनति सो डर ।
आशा बंधन काटि भये निरद्वन्दी सो नर ।।
वसुधा—शासन भूल करत निज मन को शासन ।
यद्यपि सो अति सुखी कहावत तऊ "अकिंचन" ।।६।।

(जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी सुखमय जीवन)

२ न भीति से संपति-काल रिक्त है,
विपत्ति आशा—सुख से न मुक्त है,
न ध्यय आलिंगन दुःख का कभी,
यही सुखी जीवन—मार्ग जानिए ।

(अनूप वर्द्धमान, पृ ५३७)

जीवन : सौन्दर्य

जीवन—धारा सुन्दर प्रवाह,
सत, सतत, प्रकाश सुखद अथाह।

(प्रसाद : कामायनी, पृ. २४१)

जीवन : स्वर्ग

जीवन स्वर्ग, स्वर्ग जगती है, कहीं न पंकिलगा है।
जीवन का शतदल सहस्रश : संसृति में खिलता है ॥

(परमेश्वर द्विरेफ : युगस्रष्टा प्रेमचंद, पृ. २०)

जीवन्मुक्त

जो सत्कर्म-परा प्रवृत्ति रख के संसार को झेलता,
सारे दुःख सहर्ष भोग कर जो कल्याण को खोजता,
जो गंभीर विनम्र न्याययुत हो, औदार्य से पूर्ण हो,
प्राणी जीवन-वासना-रहित हो, जीता वही मुक्त है।

(अनूप शर्मा : सिद्धार्थ, पृ. २९३)

जीविका

जिहि जेतो उनमान तिहिं, तेतौ रिजक मिलाय।
कन कीड़ी, कूकर टुकर, मन भर हाथी खाय ॥

(सतसई सप्तक : वृन्द सतसई, दोहा ५०४)

जीविका-चिन्ता

भूपतियों से कृषक लड़ रहे,
धनिकों से हैं श्रमिक युद्ध-रत,
जीवन नहीं जीविका चाहिए,
गरज रहा, है आज लोक-मत।

(सो. ला. द्वि. : युगाधार, पृ. ३०)

जीवित और मृत

धरित्रि में आ कर रो उठा जभी,
मनुष्य हैं जीवित जानते उसे,
तथैव ले दो हिचकी चला गया,
समस्त प्राणी मृत मानते उसे।

(अनूप : वर्द्धमान, पृ. ३००)

जीवित मृतक सम

कौल कामवस कृपिन विमूढ़ा। अति दरिद्र अजसी अति बूढ़ा ॥
सदा रोगबस सतत क्रोधी। विष्णु विमुख श्रुति सत विरोधी ॥
तनुपोषक निंदक अघ-खानी। जीवन सव सम चौदह प्रानी ॥

(रा च मा गु पृ ५२४)

जुआरी

आवत औ जात मे न दीसत है दाम या के
बड़ोई निकाम काम पाछे बड़ी ख्वारी को।
सुकवि गुपाल भूल लागति है जब तब
दाऊ अड़ि देत घर बार सुत नारी को ॥
काहू के छुटाये यह छूटि न सकत बहु
आवत है लपक झपक चोरी चारी को।
मीठी लगै हारी झूठ बोलत है भारी या ते
बड़ो दुखकारी रूजिगार है यह ज्वारी को ॥

(गुपाल राय दम्पति वाक्यविलास, पृ ११२)

जुगनू

तम मे तू भी कम नही, जो, जुगनू, बड भाग।
भवन-भवन मे दीप हैं, जा वन-वन मे जाग ॥

(मै श गु . साकेत, ९ सर्ग)

जूआ और दीवाली

पास जिसके न रही कौडी, बना कब वह पैसेवाला ?
मनावें तब क्यो दीवाली, निकलना जब हो दीवाला ?

(हरिऔध मर्मस्पर्श, पृ ९९)

जूआ : पापों की जड

जड है जूआ कुकर्म की, दुराचार का यार।
इसमे हारे हार है, जीते भी है हार ॥
जीते भी है हार, जूआ अपमान करावे।
धीर धाम धन—धान्य धरणि धी धर्म नशावे ॥
चोरी चारी खून, तीन तापो की जड है।
जूआ नाश का मूल जूआ पापो की जड है ॥

(स रामकवि हिन्दी सुभाषित, पृ ६८)

"जेंटिलमैन"

१. गौरांगिनी भाषा रहे, इंग्लैंड के स्कालर रहे।
हो सूट में शोभित वदन, टाई रहे, कालर रहे॥
होवें पदद्वय बूट धर, चश्मा-सुशोभित नैन हों।
भगवान, भारतवर्ष के सब लोग जेंटिलमैन हों॥
(मनोरंजन : गुनगुन, पृ. १२४)

२. सड़ी घड़ी, टूटी छड़ी, छै आने का पैन।
फूटी इंग्लिश बोलते, बाबू जैन्टिलमैन॥
(काका हाथरसी : दुलत्ती, पृ. ९२)

जेठानी

देती आदर, गेह-कृत्य करती सारे परामर्श से,
छोटी जान सदैव ध्यान करती, विश्राम देती उसे।
जेठानी करती न चित्त त्रुटि को, दायित्व लेती स्वयं,
भार्या देवर की सगी बहिन सी आत्मीय प्यारी सखी॥
(अतुल कृष्ण गोस्वामी : नारी, पृ. २७४)

जैन : आस्तिक

जैन को नास्तिक भाखै कौन ?
परम धरम जो दया अहिंसा सोई आचरत जोन॥
सब पहुँचत एक हि थल चाहो करौ जौन पथ गौन।
इन आंखिन सो तो सब ही थल सूझत गोपी रौन॥
(भारतेन्दु ग्रंथावली, दू. खं., पृ. १३४)

जैसे को तैसा

१. जो जैसो तिहं तैसियै, करियै नीति प्रकास।
कठिन काठ भेदै भ्रमर, मृदु अरविन्द निवास॥
(सतसई सप्तक, वृन्द सतसई, पृ. ३३९)

२. जो तुझको तोला झुके तू झुक सेर पचीस।
मरोर करै इक तस्सु भर, तू कीजै हाथ बईस॥
कीजै हाथ बईस रीति व्यवहारिक ऐसी।
जैसा जैसा देव जगत में पूजा तैसी॥
कह गिरिधर कविराय रोते के संग रोते जो।
हँसते संग हँस मिलो पुरुष हँस के बोले जो॥
(गिरिधर : कुंडलिया पृ. ११०)

३ कपटी कुटिल मनुष्यो से जो जग मे कपट न करते हैं,
वे अतिमद मूढ नर, निश्चय, पाय पराभव मरते हैं।
उनमे कर प्रवेश फिर उनको शठ यो मार गिराते हैं,
कवच हीन तनु से ज्यो पैने बाण प्राण ले जाते हैं॥
(म प्र द्वि द्वि का मा, पृ २८२)

४ पाओ तन-मन का आरोग्य, आओ हो जाओ इस योग्य।
तुम पर हो जिसका जो भाव, उससे करो वही बर्ताव॥
(मै श गु हिन्दू, पृ ९१)

जौहर की राख

क्यों न धारियँ सीस पै, वह जौहर की राख।
भव-तनु भूपन भसम तें, जो पुनीत गुन लाख॥
(वियोगी हरि वीरसतसई, पृ ६०)

ज्ञान अपकारक रूप

ज्ञान शक्ति है, किन्तु नही यदि, वह ईश्वर-चरणो पर अर्पित,
असुर दर्प बन वह विध्वसक, बन जाता जन भू जीवन हित।
(सु न प लोकायतन, पृ ५३५)

ज्ञान और कर्म

ज्ञान की आराधना दिन का शयन है,
क्लेश से निस्तार केवल कर्म से है,
दर्शना स सिद्धियाँ किस को मिली हैं?
जीव का उद्धार केवल धर्म से है।
(दिनकर की सूक्तियाँ, पृ २६)

ज्ञान और प्रेम

ज्ञान सब की व्यक्तिवादी चेतना है,
प्यार हर इसान का परमात्मा है।
(स क्षेमचद्र सुमन रामावतार त्यागी, पृ १०४)

ज्ञान और विज्ञान

दु ख से, कैसे हो जनमुक्ति, धर्म ने दिया त्याग, विश्वास,
भूत जग से जूझा विज्ञान, परिस्थितियो का किया विकास।
उभय पथ ही एकागी सत्य, व्यक्त उनमे न समग्र प्रकाश,
मिले जब तक न ज्ञान-विज्ञान सभ्यता का रे! नियत विनाश।
(सु न प लोकायतन, पृ ६०९)

२. जब जब मस्तिष्क जयी होती, संसार ज्ञान से जलता है।

(दिनकर की सूक्तियाँ, पृ. ११८)

ज्ञान की अति

तर्क से तर्कों का रण छिड़ा, विचारों से लड़ रहे विचार,
ज्ञान के कोलाहल के बीच, डूबता जाता है संसार।
ज्ञान के मरु में चलता हुआ आदमी खोता जाता है,
हृदय के सर का शीतल वारि और कम होता जाता है।

(दिनकर : चक्रवाल, पृ. ३६४)

ज्ञान : के अपात्र

हे पांडे यह बात को, को समुझै या ठांव।
इतै न कोऊ है सुधी, यह ग्वारन को गांव॥
यह ग्वारन को गांव, नांव नहिं सूधे वोलैं।
वसैं पसुन के संग, अंग ऐंड़े करि डोलैं॥
वरनैं दीनदयाल, छाँछ भरि लीजै भांडे।
कहा कहो इतहास, सुनै को इत हे पांडे॥

(दी. द. गि. ग्रं. पृ. २३१)

ज्ञान : महिमा

उघरे ज्ञान-नयन नहिं जासू। व्यर्थहि जन्म अवनि-तल तासू॥

(द्वा. प्र. मि. : कृष्णायन, पृ. १६९)

ज्ञान : शुद्ध

होती है निश्चय ही ज्ञान में प्रकाश-माल,
किन्तु वह रंग रूप लेती संस्कार का,
भिन्न-भिन्न रंग वल्व अनुसार वनते हैं,
शुद्ध ज्ञान एक मात्र मन निर्विकार का।

(उ. श. भ. : कणिका, पृ. २९)

ज्ञान : से मान

जिसका जितना ज्ञान है, वह है उतना मान्य।
अधिक मान्य को ही मिला, करता है प्राधान्य॥
है प्रधानता योग्यता, द्वारा होती प्राप्त।
मिले योग्यता ही मनुज, वन पाता है आप्त॥

(हरिऔध सतसई, पृ. ५६,५७)

ज्ञानी की मसी

ज्ञानी की मसी का कही, कौन करेगा मोल,
बलिदानी का रक्त भी, नही भरेगा तोल।
(मै श गु काबा और कर्बला, पृ ३९)

ज्योतिष

(क) मन ते इतने भरम गँवावो।
चलत विदेश विप्र जनि पूछ, दिन का दोष न लावो।
(मलूकदास सन्तसुधासार, २, पृ ३३)

(ख) लगन मुहूरत झूठ सब, और बिगाडैं काम।
और बिगाडैं काम, साइत जनि सोधै कोई।
एक भरोसा नाहि, कुशल कहवा से होई॥
'पलटू' सुभ दिन सुभ घडी, याद पडै जब नाम।
लगन मुहूरत झूठ सब, और बिगाडैं काम॥
(सन्तसुधासार, २, पृ २२८)

झडा ऊचा रहे हमारा

यह झडा, जिसको मुर्दे की मुट्ठी जकड रही है,
छिन न जाय, इस भय से अब भी कस कर पकड रही है।
थामो इसे, शपथ लो, बलि का कोई क्रम न रुकेगा,
चाहे जो हो जाय, मगर यह झडा नही झुकेगा॥
(दिनकर सामधेनी, पृ ६६-६७)

झूठ और मान

मान घटत जग झूठ ते, सो यह झूठी बात।
पावत मान वकील हैं, कहि झूठी ही बात॥
(किशोरीदास वाजपेयी तरगिणी, पृ ५३)

झूठ थोडा

झूठ बिना फीकी लगै, अधिक झूठ दुख भौन।
झूठ तितो ही बोलिये, ज्यो आटे मे लौन॥
(सतसई सप्तक, वृन्द सतसई, दोहा ४०२)

झूठ महापाप

यहां तुला मे अघ-ओघ डालिये,
वहा पला मे रखिये असत्य को,

विलोकिये सर्षप से अघादि हैं,
तथैव मिथ्यात्व सुमेरु-तुल्य है ।

(अनूप : वर्द्धमान, पृ. ५६३)

झोंपड़िओं की ओर

उन के फटे चीथड़े देखो
अपने वस्त्र विभव शाली,
उन की रोटी-नमक निहारो
अपनी खीर-भरी थाली;
उनके छूछे टँट निहारो
अपनी वसनी धनवाली
उनके सूखे खेत निहारो
अपनी उपवन हरियाली!
यह अनाय अनीति मिटाओ
युग-युग के दुख-दैन्य दलो ।
महलों को भूलो प्यारे,
अब झोंपड़िओं की ओर चलो !

(सोहनलाल द्विवेदी : भैरवी, पृ. १९)

टका

टका धम कर्महु टका, टका परम पद पाय ।
होत टका जा के न कर, टकटकाय कहि हाय ।।

(रामेश्वर करुण : करुण सतसई, पृ. १०९)

टूटे-फूटे

टूटे पर ईख ताकी मिस्री गुड कंद करो,
ताको लै प्रसाद देव देविन चढ़ाइये ।
फूट के कपास पत राखत है आलम की,
ताके होत वस्त्र (सब ?) कहाँ लो गिनाइये ।
सड़े जब सन ताके स्वेत बन कागज कै,
तापर कुरान औ पुरानहू लिखाइये ।
कहै कवि 'ब्रह्म' सुनो अकबर बादसाह,
टूटे फूटे सड़े ताको या विधि सराहिये ।।—बीरबल

(अकबरी दरबार , पृ. ३५६)

ठहरौनी

लड़के के विवाह मे कहिए मोल-तोल क्यो करते हो ?
इस काले कलक को हा हा ! क्यो अपने सिर धरते हो ?
जिनके नही शक्ति देने की क्यों उनका धन हरते हो ?
चढ कर उच्च सुयश-सीढी पर क्यो इस भाँति उतरते हो ? ॥१॥
फिर हे कान्यकुब्ज कुलनन्दन ! खजुहा और मुरादाबाद,
उगू, असनी और गेगासो आदिक की कर लीजे याद ।
ठहरौनी के कारण उन पर वह-वह आफत आती है,
सब गहनो की नाक, नाक की नथुनी तक बिक जाती है ॥ ॥२॥
किस स्मृति मे, किस गृह्यसूत्र म, किस पुराण मे बतलावो ?
है विधान इस माल-तोल का, खोल क्यो तुम दिखलावो ?
जो इसका कुछ पता नही तो क्यो यह रीति चलाते हो ?
क्यो न इसे हे प्यारे भाई ! छोड अलग हो जाते हो ? ॥३॥
महामूढ अविवेकी जन ही रूढ रीतियो के बन दास
अपना और वश अपने का आँख मूँद कर करते नाश ?
जो सुधार का ध्यान तुम्हारे मन मे स्थान न पावेगा,
उन मे और आप मे, कहिए, भेद कौन रह जावेगा । ॥४॥
यह कुरीति कुल-कन्याओं का कोमल हृदय जलाती है,
मनस्ताप से उनके तन को तप्तागार बनाती है ।
बीस वर्ष की होने पर भी अविवाहित रह जाती हैं,
मुह से यदपि न कुछ कहती हैं, अति दु सह दुख पाती हैं । ॥५॥
बे-ब्याही चाहे रह जावें, चाहे करें वश बदनाम,
मर जावें, परवाह नहीं है, हमे सिर्फ रुपये से काम ।
पाँच का न व्यवहार हमारा, लेंगे हम तो एक हजार,
चाहे चमक वाले चाँदी के वही अखड-मडलाकार । ॥६॥
अपने निर्धन बन्धुवरों की जो तुम को परवाह नही,
हाय ! हाय ! तो कन्याओ के दुख पर भी क्या आह नहीं ?
उनकी गुप्त अश्रुधारा जो कही निकल बाहर आवे,
तो यह चन्दन-खौर हमारा सारा उन से घुल जावे ! ॥७॥
जो अपने को उच्च मानते हैं उनके न द्वार जावो,
ठहरौनी करके कौडी भी कभी न उनको दिखलावो ।
जो अपने को सम समझ हैं, जिनको नही उच्चता गर्व,
सालङ्कृत कन्या उनको ही दे सम्बन्ध कीजिए सर्व ॥ ॥८॥

(म प्र द्वि द्वि का मा, पृ ४३४—९)

ठोकर

औषधि की हमें जरूरत है, हम को चंगा कर देने को।
ठोकर की हमें जरूरत है, हम में हिम्मत भर देने को ॥
रुक जाती पेड़ों को उखाड़, आँधी भी टकरा गिरिवर से।
सोने की जांच कसौटी पर, होती वीरों की की ठोकर से ॥

(आरसी प्रसाद सिंह : आरसी, पृ. ५१६)

ढाढ़स

न हो जो कि बिगड़ा बना कौन ऐसा, गिरा जो न होवे उठा कौन ऐसा।
न हो जो कि उतरा चढ़ा कौन ऐसा, घटा जो न होवे बढ़ा कौन ऐसा ॥
सदा एकसा है किसी का न जाता, यहाँ का यही ढंग ही है दिखाता।
अगर चाँद खो सब कला फिर पलेगा, अगर बीज मिल धूप में बढ़ चलेगा ॥
अगर काटने बाद केला फलेगा, अगर बुझ गये पर दिया फिर बलेगा।
भला तो न क्यों दिन फिरेंगे हमारे, दमकते मिले जब कि डूबे सितारे ॥

(हरिऔध : चुभते चौपदे, पृ. १९१—९२)

ढाल-तलवार

गाउन वारे कौ स्वर दीजौ औ बजवैयै दीजौ ताल।
नाचन वारे कौ नैना देउ मर्द कौ देउ ढाल तलवारि ॥

(असली आल्हखंड, पृ. ५)

ढोंगिये

दुख सहे पर दूसरों का हित करे, वह रहा घिसता सदा ही इसलिए।
यह मरम जी में समाया जो नहीं, तो भला चन्दन लगाया किसलिए ॥
इस तरह के है कई टीके बने, जो कि तन के रोग देते हैं भगा।
जो न मन के रोग का टीका बना, तो हुआ फिर लाभ क्या टीका लगा ॥

(हरिऔध : चुभते चौपदे, पृ. ११९)

तप

तप रे मधुर-मधुर मन !
विश्व-वेदना में तप प्रतिपल,
जग-जीवन की ज्वाला में गल,
बन अकलुष, उज्ज्वल औ' कोमल
तप रे विधुर-विधुर मन !
अपने सजल स्वर्ण से पावन,
रच जीवन की मूर्ति पूर्णतम,
स्थापित कर जग में अपना पन,
ढल रे ढल आतुर मन !

(सु. नं. पं ; आधुनिक कवि, पृ. ५१)

तप-त्याग

घातक समाज में मानवता
जब लुप्त प्राय हो जाती है,
बेबस असहाय निरीहों की
जब हाय-हाय छा जाती है
मानवता का स्वर ऊँचा हो, वह राग चाहता है जीवन
तप-त्याग चाहता है जीवन !

(शिवमंगल सिंह सुमन प्रलय-सृजन, पृ ६)

तप-महिमा

काम नहीं, तप है जीवन मे मंत्र महत्तम जय का,
तप से करो शक्ति का साधन, तप ही मंत्र अभय का !
तप से पूत अनंग काम ही जग का मंगल कारी,
तप-प्रसूत शक्ति पर होती विजय स्वयं बलिहारी ॥

(रामानन्द तिवारी पार्वती, पृ १२५)

तरुण

तू रहे औ' हो जवानी, देश हो लाचार ?
तो तुझे, तेरी जवानी पर, अरे धिक्कार !
देखता तू बाट किसकी ? देख अपना जोश,
देख जननी बंदिनी, कब से पड़ी बेहोश ।
अरुण आँखों मे रहे घिरते, प्रलय के मेघ,
चाल मे बिजली चमकती हो सघन तम देख ।
बढ उधर, हुंकारा भर, हो जिधर गर्जन घोर,
छीन ले झंडा कि जिसका घट गया हो जोर ॥

(सो ला द्वि युगाधार, पृ ४६—४७)

तरुण, तरुणी और वृद्ध

होत तरुन के तरुनि बसि, बिरध तरुनि बसि होइ ।
इहै रीति इक जगत की, जानत है सब कोइ ।—गुरुगोविन्द सिंह

(दशम ग्रंथ, पृ ८१)

तर्क

१ भटका स्वयं है तर्क खोजने जा तत्त्व को,
फिर भी न माने कौन उसके महत्त्व को !
शंका वधू जेठी, वर हेठा समाधान है

(मै श गु नहुष, पृ ३२)

२. मानव, तुम तार्किक हो, लेकिन तर्क नहीं निस्सीम अपरिमित;
उसकी भी सीमाएँ हैं पर, उन से शायद तुम न सुपरिचित;
मत अवलम्बित रहो तर्क पर, तर्क-सूत्र का कौन सहारा ;
कहीं न हेत्वाभासों में ही, उलझ जाय यह जीवन सारा ॥
(बा. कृ. श. न. : हम विषपायी जनम के, पृ. ६२-३)

तलवार और धर्म

तलवार पुण्य की सखी, धर्म-पालक है
लालच पर अंकुश कठिन, लोभ सालक है ॥
(दिनकर की सूक्तियाँ, पृ. ४४)

तलवार और भाग्य

तलवारें सोती जहां वंद म्यानों में ।
किस्मतें वहाँ सड़ती हैं तहखानों में ॥
(दिनकर की सूक्तियाँ पृ. ४४)

ताली

हसि कै नर ताली दियैं, या जुग कै उदराज ।
और कहा सिर फोड़िहै, पलक रीझ कै काज ॥
(उदैराजरा दूहा, पृ. ८।६)

तीर्थ

१. घट में तीरथ क्यों न नहावो ।
इत उत डोलत पथिक वनें ही, भरमि भरमि क्यों जन्म गंवावो ।
सत जमुना संतोष सरस्वती गंगा धीरज धारो ।
झूठ पटकि निर्लोभ होय करि, सब ही वोझा सिर सूं डारो ॥—चरणदास
(सन्त सुधासार, २, पृ. १६०)

२. साहिव जिनके उर वसै, झूठ कपट नहिं अंग ।
तिनका दरसन न्हान है, कहं परवी फिर गंग ॥—गरीबदास
(संतवाणी, पृ. १४३)

तीर्थ : महिमा

'व्यास' मिठाई विप्र की, ता में लागै आग ।
वृन्दावन के स्वपच की, जूठन खैये माँग ॥
(व्यासवाणी, पृ. १६६)

तीर्थ : यात्रा

काबा कासी त्यागि अब, देखहु दीनन गेह ।
दरिदनरायन ही जहाँ, दर्शन देत सदेह ॥
(रामेश्वर करुण : करुण सतसई, पृ. ५३)

तृष्णा

१ जौ लहि ऊपर छार न परै तौ लहि यह तृस्ना नहिं मरै ।

(जायसी ग्रन्थावली, पृ ३००)

२ कौन गनै यहि लोक तरीन विलोकि विलोकि जहाजन बोरै ।
लाज विशाल लता लपटी तन धीरज सत्य तमालन तोरै ॥
वचकता अपमान अयान अलाभ भुजग भयानक भृष्णा ।
पाट बडो कहु घाट न 'केशव' क्यो तरि जाय तरगिनी तृष्णा ॥

(केशव रामचन्द्रिका, प्रकाश २४)

३, अग गलित सिर सब पलित, भयउ दत को अन ।
तोउ वृद्ध करि दड गहि, आसा धरत अनन ॥

(लक्ष्मीवल्लभ दूहा बावनी)

४ ज्यों धातु कै खायै तैं, भूप अनि बढनी जाय ।
त्यो इष्ट अय कै लाभ तै, बढै तृस्ना को काय ॥
भूख है तन की तनक सो, मन की भूख महान ।
जगत विभौ सो ना मिटै, मिटै न अमृतपान ॥

(मानिकदास सतोषसुरतरु, दोहा ४७, ७३)

५ नाहिनै या आसा को अत ।
बढ़त द्रौपदी-चीर-सरिस सब जुरे तन मे तत ॥
बरन बरन प्रगटत ही आवत तन बिराट अनुहारी ।
थक्यौ दुसासन जीव बापुरो खींचत खीचत हारी ॥
जिमि तित बसन बढ़ाइ बहाए भगत-बछल महाराज ।
तैसहि इतै घटाइ राखिए हरीचन्द की लाज ॥

(भारतेंदु ग्रन्थावली, द्वि ख, पृ ५४३)

६ लखा न सन्तुष्ट मनुष्य विश्व मे,
गयी बुभुक्षा न प्रकाम खा चुके ।
धनाढ्य प्राणी बहुधा दरिद्र है,
गुणाढ्य को भी गुण और चाहिए ॥

(अनूप वर्द्धमान, पृ ५४३)

७ पी पी रूप-सुरा के प्याले आखें फिर प्यासी की प्यासी,
छोड न पायी तृषा उमगें जर्जर भी हो गई जवानी ।
सरिता को तो पार कर लिया गहराई अब तक न जानी ॥

——जगदीश भारद्वाज 'सम्राट'

(स रामदत्त भारद्वाज ऋतभरा, पृ ४६)

तृष्णा : नागिन

कह 'गिरिधर कविराय' नागनी है यह कृष्णा ।
जिसके अन्दर बसै तिसी को डँसि है तृष्णा ।।
(गिरिधर : कुंडलिया, पृ. १४२)

तृष्णा : नाश

आस तो काहु की नाहिं मिटी जग में भये रावण से बड़ जोधा ।
मांधत सूर सुयोधन से बल से नल से रत बादि विरोधा ।।
केते भये नहिं जाय बखानत जूझ मुये सब ही करि क्रोधा ।
आस मिटे 'परताप' कहै हरिनाम जपेऽरु विचारत बोधा ।।
—प्रताप कुंवरिबाई
(सं. गि. द. शु. : हिं. का. को., पृ, ६५)

तृष्णा : निन्दा

केवल मुट्ठी भर अन्न, इसी
पर केन्द्रित मानव का जीवन,
दो-चार हाथ कपड़ों से ही
ढक जाता है मानव का तन,
छः हाथ भूमि पर बसा हुआ
है मानव का ऐश्वर्य-सदन,
फिर क्यों इतना मानापमान
इतनी तृष्णा, इतना क्रन्दन ?
(सं. अमृतलाल नागर : भगवती चरण वर्मा, पृ. ९१-९२)

तृष्णा : लाभ से वृद्धि

ज्यौं धातु के खाये तें, भूप अति बढ़ती जाय ।
त्यौं इष्ट अर्थ के लाभ तें, बढ़े तृस्ना को काय ।।
(मानिकदास : सन्तोष सुरतरु, पृ. १३)

त्याग और संयम

बिना त्याग जीवन ही नीरस, तर्पण ही उसकी सुवास है ।
त्याग लवण मानव-जीवन का, संयम ही उसकी मिठास है ।
(श्रीमन् नारायण : रजनी में प्रभात का अंकुर, पृ. १३०)

त्याग : विनिमय से उत्तम

विनिमय प्राणों का वह कितना भय-संकुल व्यापार अरे !
देना है जितना दे दे तू, लेना ! कोई यह न करे !

परिवर्तन की तुच्छ प्रतीक्षा पूरी कभी न हो सकती।
सध्या रवि दे कर पाती है इधर-उधर उडुगन बिखरे॥
(प्रसाद कामायनी पृ १७८)

त्याग से महत्त्व

बूंद ने अपनी नही दुनिया बसाई, जब सजाई सिन्धु की नगरी सजाई,
इस हिमालय को बडप्पन तब मिला है, भूमि को जब आँख से गगा पिलाई,
इस जगत् मे सब किसी के प्रिय अलग हैं, किन्तु रचना हर किसी की प्रियतमा है।
(स क्षेमचन्द्र सुमन रामावतार त्यागी, पृ १०६)

त्याग से विकास

स्निग्ध अपना जीवन कर क्षार,
दीप करता आलोक-प्रसार,
गला कर मृत्पिडो मे प्राण,
बीज करता असख्य निर्माण।
सृष्टि का है यह अमिट विधान,
एक मिटने मे सौ वरदान,
नष्ट कब अणु का हुआ प्रयास,
विफलता मे है पूर्ति-विकास॥
(महादेवी वर्मा आधुनिक कवि, पृ ३६)

थाती

जो थाती काहू सो नासे, आपुइ आप न ताही ग्रासे।
जो थाती थाती लै धरई, नासै उतर ताहि को करई॥
जो थाती दूसर घर माही, डर सो डारा कर तेहि नाही॥
(कासिमशाह हस जवाहिर)

दंड

प्रायश्चित्त रूप कुछ दड नही पायगा,
तो हे दये ! दूषित ही दोषी रह जायगा।
(मै श गु नहुष, पृ १३)

दम्पती

१ द्रुम और अहो लतिके मिलके खिलके तुम भूतल-ताप हरो।
बिछडो न परस्पर एक रहो नित निर्मल निश्चल भाव धरो॥
मधुसचय से द्विजवदित हो, पथिकाश्रय दो परमार्थ करो।
फल फूल भरे दृढ मूल रहो, जग मे निज शुद्ध सुगन्ध भरो॥
(मै श गु चद्रहास पृ १०९)

२. गृहिणी की यदि सुने, गेह से कौन निकल सकता है ?

× × ×

एक नाव पर चढ़े हुए हम उदधि पार करते है ।

(दिनकर की सूक्तियां, पृ . ४५)

३. कान्ता कटाक्ष पतिचित्त प्रफुल्ल करती,
होती विमुग्ध तनु कान्त रसेक्षणा से ।
राकेन्दु सी प्रमुदिता जन-पार्श्व में स्त्री,
होता प्रतीत पति सिन्धु-तरंग-युक्त ॥
तेंतीस कोटि सुर, सात्विक सम्पदाओं,
का स्वर्ग भूमि पर दम्पति ने उतारा ।
है गेह में वह रही सुख, शान्ति, शोभा,
सन्तोष, गीत, रस, वैभव की त्रिधारा ॥

(अतुल कृष्ण गोस्वामी : नारी पृ. २५९)

दम्पती : मतभेद

खसम जो पूजै देहरा, भूत पूजनी जोय ।
एकै घर में दो मता, कुशल कहाँ ते होय ।

(शिवनाथ : भारतेन्दु की कविता, पृ. ३७)

दया

१. बछा चूंखत उपजी न दया, बछा बांधि विछोही मया ।
ताका दूध आप दुहि पीया ग्यान विचार कछू नहीं कीया ॥

(कबीर ग्रंथावली, पृ. २४४)

२. दया कौन पर कीजिए, का पर निर्दय होय ।
सांई के सब जीव हैं, कीरी कुंजर दोय ॥

(कबीर वचनावली, पृ. १४५)

३. सजै न बिन अंजन वधू, भूपन भरी प्रवीन ।
तैसेई नव धर्म हैं, एक दया करि हीन ॥

(दी. द. गि. ग्रं., पृ. ८०)

४. दया महा उत्तम वस्तु विश्व में,
दया सभी पै करना स्वधर्म है,
दया बनाती जग सह्य जीव को,
दया दिखाना अति उच्च कर्म है ।

(अनूप : बर्द्धमान, पृ. २९५)

५ महान् वैष्म्य विलोकिए सखे, मनुष्य हो निर्दय चाहते दया,
न जानते हैं सब जीव विश्व के, विहारनिद्रा भय मे समान है।
(अनूपशर्मा सिद्धार्थ, पृ २४०)

६ मरुथल मे भी उग सके, मीठे पिंड खजूर।
निर्दय दिल मे भी दया, के अकुर भरपूर ॥
(श्रीमन् नारायण रजनी में प्रभात का अकुर, पृ ११६)

७ अपना सा जो सब का जानें।
सब के ही अपना सा दिल है, उन का दुख हलका क्या माने।
प्रभु की कृपा चाहते हैं तो कृपा करें हम दुखी जनो पर,
उनका मन समझें, सहलावें, रोये उनके अश्रु कणो पर।
उनकी आहें प्रभु की आह, उनका आशिष प्रभु की आशिष,
नहीं दुखाओ दिल दुखिया का उनका शाप बनेगा कलि-विष।
(श्रीमन् नारायण रजनी मे प्रभात का अकुर, पृ ८६)

दया अनुचित

विसघर भीम भुजग को, अग नासि जो कोय।
दया सँपेरन पर करत, बुद्धिमान नहि सोय ॥
(म प्र द्वि का मा पृ, २७८)

दया का प्रभाव

दया, क्षमा से परिपूर्ण, पूर्णता
प्रदान भू मे करती मनुष्य को,
दया नृपो को अभिषिक्त न्याय से
बना सकी ईश्वर-तुल्य विश्व मे।
(अनूप वर्द्धमान, पृ ५५७)

दया दीनों पर

रावन से बावन बिलाने हैं बचे न एक,
चाल नहि काल से किसी की चल पाई है।
कौरव कुटिल कुल कुल के कुठार भये,
कृष्ण जी सो कस की न दाल गल पाई है।
हाय की हवा सो जल गये हैं जवन जूथ,
हामिल हुकुम प न लागे पल पाई है।
या ते बल पाय फल पाय लेहु जीवन को,
दीन कलपाय कहो कौने कल पाई है ॥
(गयाप्रसाद शुक्ल)

दया : महत्त्व

कमल भानु-दाया तैं फूला, ना तु रवि कहाँ, कहाँ वह फूला ॥
फूले कुमुद चंद्र की दाया, ना तो कहाँ कुमुद को काया ॥
पलुहै धरती तेहि दाया सों, ना तौ का गुन-रूप रसा सों ॥
उत्तम होंहि अधम पर, आप दयाल ।
मन को सुकन फंदावे, दाया जाल ॥
(नूरमुहम्मद : अनुराग बांसुरी, पृ. ७८)

दयालु

प्रेरे पवन सु जीवन वरपै। सब के दुख करषै मन हरपै ॥
जैसे करुन पुरुष पर हेत। अपने प्यारे प्रानन देत ॥
(नंददास ग्रंथावली, पृ. २८६)

दरिद्र

लखि दरिद्र को दूर तें, लोग करै अपमान।
जाचक जन ज्यो देखि के, भूसत है वहु स्वान।
(दी. द. गि. ग्र. पृ. ७८)

दरिद्रता और संस्कृति

दिवस-ज्योति सा सार सत्य यह गोचर निश्चित
मनुष्यत्व है रीति-नीति धर्मों से विस्तृत !
संस्कृति रे परिहास, क्षुधा से यदि जन कवलित,
कला कल्पना, जो कुटुम्ब-तन नग्न, गृह-रहित !
(सु. नं. पं. : स्वर्णकिरण, पृ. १११)

दरिद्रता : दान-जनित स्तुत्य

चातक को दुख दूर कियो सुख दीनों सबै जग जीवन भारी।
पूरे नदी नद ताल तलैया किए सब भाँति किसान सुखारी ॥
सूखेहु रूखन की ने हरे जग पूरो महामुद दै निज वारी।
हे घन आसिन लौं इतनो करि रीते भएहू वड़ाई तिहारी ॥
(भा. ग्रं. दू. खं., पृ. ८४२)

दरिद्रता : नाश

१. चीटी मक्खी शहद की, सभी खोज कर अन्न।
करते हैं लघु जन्तु तक, निज गृह को सम्पन्न।
निज गृह को सम्पन्न करो स्वच्छन्द मनुष्यो !
तजो तजो आलस्य अरे मतिमंद मनुष्यो !

चैन न अब तक हुआ मुसीबत इतनी चक्खी।
भारत की सन्तान बने ही चींटी मक्खी।
(राय देवीप्रसाद 'पूर्ण')

२ ओ भिखमंगे, अरे पराजित, ओ मजलूम, अरे चिरदोहित,
तू अखंड भांडार शक्ति का जाग, अरे निद्रा-सम्मोहित,
प्राणों को तड़पाने वाली हुंकारों से जल-थल भर दे,
अनाचार के अंबारों में अपना ज्वलित फलीता धर दे।
(बा कृ श न हम विषपायी जनम के, पृ ४९४)

दरिद्रता पारिवारिक

बाप विष चाखै भैया खटमुख राखै देखि,
आसन में राखै बस बारो जाको अचलै।
भूतन के छैया आसपास के रखैया,
और काली के नथैया हू के ध्यानहू ते न चलै॥
बैल बाघ वाहन बसन को गयंद खाल,
भांग को धतूरे को पसार देतु अचलै।
घर को हवाल यहै संकर की बाल कहै,
लाज रहै कैसे पूत मोदक को मचलै॥
(सुजान चरित, तृतीय जंग)

दर्प (द अहंकार, गर्व, घमंड इ)

क्षोभ में ही प्रकट होता दर्प है,
गरजता छेड़ बिना कब सर्प है?
(म श गु शकुंतला, पृ ३३)

दर्प-दलन

१ देख कर ऊंचा सजा प्यारा महल, और गहने देह के रत्नों जड़े।
पास बैठी चांद-मुखड़े-वालियां, फूल ऐसे लाडिले, सुन्दर, बड़े॥
फल रसीले और खा व्यंजन सभी, सुख सुखों का देख मनमाना हरा।
तन लगे ठंडी हवा आनन्द पा, रात में अवलोक नभ तारों भरा॥
कह उठा एक राज-मद-माता हुआ, भौंह दोनों चौगुनी टेढ़ी किये।
कौन मुझ सा है आह! मैं धन्य हूँ, है बना संसार सब जिसके लिये॥
एक मसा उस काल उसकी नाक पर, बैठ कर बोला लहू पी अनमना।
है बना तेरे लिए संसार सब, और मेरे वास्ते तू है बना॥
(हरिऔध पद्य प्रमोद, पृ १४७)

२ मैं घमंडों में भरा ऐंठा हुआ, एक दिन जब था मुंडेरे पर खड़ा।
आ अचानक दूर से उड़ता हुआ, एक तिनका आंख में मेरी पड़ा॥

मैं झिझक उट्ठा हुआ बेचैन सा, लाल होकर आंख भी दुखने लगी।
मूंठ देने लोग कपड़े की लगे, ऐंठ बेचारी दवे पावों भगी॥
जब किसी ढंग से निकल तिनका गया, तब समझ ने यों मुझे ताने दिये।
ऐंठता तू किसलिए इतना रहा, एक तिनका है बहुत तेरे लिए॥
(हरिऔध : पद्यप्रमोद, पृ. १४६)

दर्शन या अन्धकार

दर्शन है या अन्धकार वह ? जो सुख को भी दुख में ढाले।
जीवन की चेतना—घटी में अपनी मलिन मूकता पाले॥
जो स्वरूप में भी कुरूप का दर्शन करता हो वह दर्शन ?
नहीं-नहीं, यह भ्रांति-भावना, दर्शन का परिहास-प्रदर्शन॥
(शरण विहारी गोस्वामी : पाषाणी, पृ. ९९)

दलितोद्धार (दे. अछूतोद्धार)

एक देह के भाग हैं, उरू भुजा मुख पैर।
क्या मुख करता है कभी, नीच पैर से वैर ?॥
आश्रित चरणों के सदा, रहती है यह देह।
अतः बाहु शिर ने किया, पद-वन्दन सस्नेह॥
(रुद्रदत्त मिश्र)

दशा-परिवर्तन

धन जोवन नर की दशा, सदा न एक विहाय।
पाख पांच ससि की कला, घटत-घटत बढ़ि जाय॥
(हम्मीररासो पृ. १९९)

दांपत्य-व्रत

नर में पत्नीव्रत का बल हो, पातिव्रत बल नारी में।
जौहर की सतियों का साहस, बृद्धा-युवति-कुमारी में॥
(श्याम नारायण पांडेय : जौहर, पृ. २५१)

दान

धनि जीवन औ ताकर हिया। ऊंच जगत महँ जा कर दीया।
दिया जो जप तप सब उपराही। दिया बराबर जग किछु नाहीं॥
एक दिया ते दस गुन लहा। दिया देखि सब जग मुख चहा।
दिया करै आगे उजियारा। जहाँ न दिया तहाँ अँधियारा॥
दिया मंदिर निसि करै अँजोरा। दिया नाहिं घर मूसहि चोरा।
हातिम करन दिया जो सिखा। दिया रहा धर्मन्ह महँ लिखा॥

दिया सो काज दुवौ जग आवा। इहाँ जो दिया उहाँ सब पावा ॥
निरमल पथ कीह लेइ, जेइ रे दिया किछु हाथ।
किछू न कोइ लेइ जाइहि, दिया जाइ पै साथ ॥
(जायसी ग्रन्थावली, प ६१)

दान अकातर

डाली ने फल एक बार जो टपकाया सो टपकाया,
बादल ने धरती पर पानी बरसाया सो बरसाया,
उस ने फल की तरफ न देखा यह कब रोया पानी को,
प्राण, अकातर हो कर दे दो आज देह को, वाणी को !
(भवानी प्रसाद मिश्र गीत फरोश, पृ १६३)

दान असमय का

समय जु सीत बिनीत वृथा बस्तर बहु पाये।
पीन पुष्पा घटि गई वृथा पचामृत पाये ॥
वृथा सुरत सभाग रजनि मइ अलि मुकिज्जय।
वृथा सलिल सीतल सुबास बिन तृषा जु पीजइ ॥
चातक कपाल जलधर मुए वृथा मेघ जल बहू दए।
सौ दानु वृथा छीहलु कहइ जो दीजइ अवसर गए ॥
(छीहल बावनी)

दान और भिखारी

कन्यादान लेत सब छत्रपति छत्रधारी,
हयदान गज दान भूमि दान भारी है।
राजा माँगै रावन पै राव माँगै खानन पै,
खान सुलतानन पै भिच्छु छाक डारी है।
भिच्छा ही के काजें कवि 'गंग' कहे ठाडे द्वार,
बलि से नृपति तहाँ बावन बिहारी है।
सपदा के काजें कहो औ ने नहीं ओड्यो हाथ,
जहाँ जैसो दान तहाँ तैसोई भिखारी है।
(अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, पृ ४४३)

दान कितना ?

चालिस अंस दरब जहँ, एक अंस तहँ मोर।
नाहित जरै कि बूडै, की निसि मूसहिं चोर ॥
(जायसी ग्रन्थावली पृ १७२)

दान-क्रम

पहिले निजवर्तिन देहु अबै। पुनि पावहिं नागर लोग सबै।
पुनि देहु सबै निज देशिन को। उबरो धन देहु विदेशिन को॥

(केशवदास : रामचन्द्रिका, प्रकाश २)

दान : गुप्त की प्रशंसा

'तुलसी' दान जो देत हैं, जल में हाथ उठाइ।
प्रतिग्राही जीवै नहीं, दाता नरकै जाइ॥

(दोहावली, दोहा ५३३)

दान : देश के लिए

दान नाम से संपदा, देते फूंक अनेक।
खोले थैली देश-हित, कोई विरला एक।

(किशोरीदास वाजपेयी : तरंगिणी, पृ. ३५)

दान : निकृष्ट

पर देने में विनय न हो कर जहाँ गर्व होता है।
तपस्त्याग का पर्व हमारा वहाँ खर्व होता है।

(मै. श. गु., जयभारत, पृ. १८१)

दान : प्रभाव

क्यूं न सूको कबर मै, हातम हंतो हत्थ।
हातम ले उण हत्थ सूं, अपहड़ वांटी अत्थ॥

(बांकीदास ग्रन्थावली, भाग १, पृ. ५४)

दान : प्रशंसा

१. धूर परै उनके धन पै, जिनको धन पुन्न के काम न आवै।
धूर परै उनके तप पै, जिनके तप तें अघ दूर न जावै।
काह कहूँ उन भूपन तें जिनको अरि पैर की धूर न खावै।
धाम ढहौ तिनके कहि 'गंग', जिनके घर मंगन मान न पावै।

(सं. वटे कृष्ण : गंग—कवित्त, पृ. १२९)

२. ईह कें आउत है कोउ मांगण, होय न ह्रीय तोउ उस दीजै।
आस नेरास न कीजीइ वल्लभ, दुल्लभ होइ कै कामहूँ कीजै।
जीवन में उपगार करो जीउ, योवन गौ तब हाथ घसीजै।
मानव को भव पाय के 'केशव', यों कवु राम दिलावें सो दीजै॥

(केशव दास जैन : केशव बावनी, पद्य ९)

दान बुरा

को न अलय-मग पग धयौ नहि इहि कुमति कुदान ?
न्याय-पनित मे भीष्महू मलि दुर्योधन-धानु ॥
(वियोगी हरि वीर सतसई, पृ १०२)

दान लौटाना पाप

आम गण वस्तुएँ जो एक बार देते हैं,
उन्हें लौटाना फिर, उनका क्या धम है ?
हम तो समझते हैं, दान हुई वस्तु को
फिर से ग्रहण कर लेना बडा पाप है।
(राम कुमार वर्मा एकलव्य, पृ १०४)

दान सहज धर्म

दान जगत् का प्रकृत धर्म है, मनुज व्यर्थ डरता है।
एक रोज तो हमें स्वय, सब कुछ देना पडता है ॥
(दिनकर की सूक्तियाँ, पृ ४८)

दानी अनुपम

स्रवन गीन हिन दिये, नैन दिय बर तियानि कहि।
शृग दिये जोगीन माँस भागीन पुरुष महि।
जीव बधिक को दिया, तुचा मुनिवर कहँ दीनी।
मनिरय दिये जु कच, नृपनि-तन मृगमद भीनी।
दिय समुन मरस पयीन कहँ, रत कायर दिय चरन सोइ।
कवि गग कहै इमि साह सुनि, मृग समान दाता न कोइ ॥
(स बटे कृष्ण गग कवित्त, पृ १३४)

दानी का यश

दाता धन जेतो दियै, जस लेतो घर पीठ।
जेतो गुल लै धालियाँ, तेतो जीमण मीठ ॥
मोटो दाता माँगियौ, तोटो भाजै तेण।
कीजै सायर खेप तिन, जुडै जवाहर जेण ॥
(बाँकीदास ग्रन्थावली, १, पृ ४९)

दानी महिमा

अनि अगाधु अनि औथरौ, नदी कूप सर बाइ।
सो ताको सागर जहा, जाकी प्यास बुझाइ ॥ —बिहारी
(सतसई सप्तक, पृ ९२)

दानी : सेठ

जिसके धन से खुलें समुन्नति की सब राहें।
हो जावें वे काम विबुध जन जिन्हें सराहें॥
हमें चाहिए सुजन गाँठ का पूरा ऐसा।
जो पूरी कर सके जाति की समुचित चाहें॥

(हरिऔध : पद्यप्रसून, पृ. ४७)

दानी : स्तुत्य और निन्द्य

'नरहरि' दानि दरिद्र बस, तऊ सो मंगन जोग।
जो सलिता जल सूपिगो, कुआं पने सब लोग।
'नरहरि' कूप न मांगिऐ, जेपे दुखित तन हो न।
दैहै दानु कुबोल कहि, जरै उपर जस लोन॥

(अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, पृ. ३२३-४)

दामाद : दे. जामाता दास

दास सदा ही दास, समादृत वा ताड़ित, परतंत्र।
स्वर्ण निगड़ होने से क्या वे सुदृढ़ न बंधन-यंत्र ?

(सु नं. पं. : स्वर्णधूलि, पृ. १३१)

दिन : विविध

एक दिन ऐसो जा मे शिविका हू वाजि रहै,
एक दिन ऐसो जा मे सोयवो को सहसो।
एक दिन ऐसो जा मे गिलम गलीचा लागे,
एक दिन ऐसो जा मे तामे को न पयसो॥
एक दिन ऐसो जा मे राजन सो प्रीति होत,
एक दिन ऐसो जा मे दुश्मन को धहसो।
कहे कवि 'गंग' नर मन में विचार देख,
आज दिन ऐसो जात काल दिन कै-असौ॥

(अकबरी दरबार···पृ. १२२)

दिन : सफल

जो दिन जाइ अनंद में जीवत कौ फल सोइ।
जीवत कौ फल सोइ आनन्द निधि उर मै धारै॥

मन्त्री ग्यान विवेक अमुम अग्यान निवारैं।
पदम पत्र ज्यौं रहै काल सम पेपि पिछानैं॥
जग प्रपच तैं दूरि सत्य सीतापति जानैं।
'अगर' कठ यत अजा कैं त्रिपनि न देख्यौ कोइ।
जो दिन जाइ अनन्द मैं जीवन को फल सोइ॥
(अग्रदास कुडलियाँ)

दीन

दीननु देखि घिनात जे, नहि दीननु सो काम।
कहा जानि ते लेत हैं, दीनबन्धु को नाम॥
(वियोगी हरि वीर सतसई, पृ ९८)

दीनता त्याग

रैन बसेरा नहीं मिले यदि तो पथ मे ही पड रहना,
बिना वस्त्र यदि ठण्ड लगे तो यों ही यार अकड रहना।
सुबह देख कर लोग कहेंगे, लो, यह तो था वह यात्री।
पर जीते-जी कातर हो कर तुम मत दीन वचन कहना॥
(बा कृ श न . हम विषपायी जनम के, पृ ५२४)

दीर्घ—सूत्रता

वह मर कर आई सद बोला मुझे यों—
"यह गफलत ही का है नतीजा उठाया,
'बस कल कर लूगा' था यही रोग मेरा,
दिन गुजर गये वे हाय! क्या हाथ आया॥
(सत्यदेव परिव्राजक अनुभव, पृ २४)

दीर्घायु में दु ख

जीवन मे बहुत न रुकना, रुकने मे दुख ही दुख है।
आये चल दिये चमक कर बन धूमकेतु, यह सुख है॥
(गुरुभक्तसिंह नूरजहाँ, पृ २८)

दीवानी

मूँह नहीं देखैं ताके चाटनो परत पाय
घूस खरचा के दाम बहि जात पानी मे।
पायँन की खाल उडि जाति जात आवत
मुकद्दमा को हारैं ज्वावदई की जवानी मे॥

सुकवि गुपाल जू उमरि बीति जाय तऊ
होत नहीं न्याय होस उड़त हिरानी में।
ग्वाह अगमानी करनी परै बेईमानी
याते नालिस न कीजै कहूँ भूलि के दिवानी में॥

(गुपाल राम : दंपति वाक्य विलास, पृ. ७७)

दुःख : (दे. सुख भी)

वासर सुख ना रैनसुख, ना सुख सपने माहिं।
जो नर बिछड़ें नाम से, तिन को धूप, न छांहि॥

(कबीर वचनावली, पृ. १२९)

दुख : अस्थायी

जीवन की लम्बी यात्रा में
खोये भी है मिल जाते,
जीवन है तो कभी मिलन है
कट जातीं दुख की रातें।

(प्रसाद : कामायनी, पृ. २१४)

दुख : का कारण

नहिं कलियुग, दुर्भाग्य नहिं, नहिं कर्मन को फेर।
है कारन दुख-द्वन्द्व को, यह केवल 'अन्धेर'॥

(रामेश्वर करुण : करुण सतसई, पृ. ३५)

दुख : का प्रतिकार

दुख से पहिले पुरुष जो, करें न कुछ उपचार।
अग्नि लगे पश्चात् वे, करते कूप तयार॥

(रुद्रदत्त मिश्र)

दुख : का महत्त्व

सुलभ जहाँ जो स्वाद, उसका महत्त्व क्या ?
दुःख जो न हो तो फिर सुख में है सत्त्व क्या ?

(मै. श. गु. : नहुष, पृ. १६)

दुख : का सहन

दुख के संमुख मुस्काने से दुख ही सुख लगने लगता है,
बन जाता विश्वास विजय का थका पड़ा मुरदा सा मन भी,
हँस कर दिन काटे सुख के, हँस-खेल काट फिर दुख के दिन भी।

(नीरज : आसावरी, पृ. ७२)

दुख का स्वरूप

जिसको दुनिया दुख कहे, वह ईश्वर का प्यार,
पाप कटे ऋण भी चुके, होवे बेडा पार !
(श्रीमन् नारायण रजनी मे प्रभात का अकुर, पृ ११०)

दुख की उपयोगिता

१ दुख को क्या समझते हो, घेरता है व्यथ तुम्हें ?
जीवन का सत्य रूप इस मे झाँक जाता है,
चादनी रात मे क्या दीखता है सही सही,
दिन की जलन मे सत्य सहूँ खोल आता है।
(उ श म - कणिका, पृ २८)

२ दुख दिलाता याद राम की, सुख मे मन जब रमता जाता।
जब मेरे जीवन की कलियाँ, सुख-हिमजल से ठिठुर सजाती,
दुख-रवि की तीखी किरणें ही, पुष्पित कर, कवि उन्हें सजाती !
क्यो न करूँ सत्कार दुख का, जब वह मुझको राह दिखाता,
क्यो न हँसूँ दुख पाकर, प्रिय मैं, वह तो जीवन पाठ सिखाता !
(श्रीमन् नारायण रजनी मे प्रभात का अकुर, पृ ८२)

दुख के बाद सुख

गहन व्यथा के बाद हर्ष का नव-नर्तन है,
प्रसव-पीर के पार नवल-शिशु का दर्शन है।
(श्रीमन नारायण रजनी मे प्रभात का अकुर, पृ १२३)

दुख दायक

को चाहै अपनो तऊ जा सग लहिये पीर।
जैसे रोग सरीर तै उपजत दहत सरीर ॥
(वृन्द सतसई, दोहा १३०)

दुख नाश

पट पनही बहु-खीर गो, ओषधि बीज अहार।
ज्यों लाभै त्यों लीजिये, कीजै दुख परिहार ॥
(बुधजन सतसई, पृ २६)

दुख बुढ़ापे के

कपे उर बानि डगै कर डीठि, त्वचा अति कुचै सकुचै मति-बेली।
नवै नवग्रीव थकै गति 'केशव' बालक ते सग ही सग खेली ॥

लिये सब आधिन व्याधिन संग जरा जब आवै ज्वरा की सहेली।
भगै सब देह-दशा जिय साथ रहै दुरि दौरि दुराशा अकेली॥
(केशवदास : रामचन्द्रिका, पृ. २४)

दुख : महत्त्व

मर्म जीवन का छिपा है दुख में, विश्व-रचना का यही साहित्य है।
है हमारे नाश का इतिहास सुख, दुःख से उत्थान होना सत्य है।
(सत्यदेव परिव्राजक : अनुभव, पृ. ३)

दुख : में धैर्य

कुछ दिन सहो विरह दुख दाहू। बिन दुख प्रेम न प्रापत काहू।
जो दुख ते नहिं होय उदासा। अंत होय सुख भोग विलासा॥
(निसार : यूसुफ जुलेखा)

दुख :—सुख (दे. सुख-दुख भी)

१. दुख-सुख दीवै कौ दई, है आतुर इहिं ठाट।
अहि-करंड मूसा पर्यो, भखि निकस्यो उहि वाट॥
(सतसई सप्तक, वृन्द सतसई, दोहा ३६१)

२. आसमान है तो काले मेघ भी छायेंगे ही,
सूरज चमकेंगे औ' चाँद मुसकाएँगे ही;
रोती है रात तो हँसता है दिन उग,
जीवन जो मिला तो दुःख-सुख आएँगे ही।
(उ. शं. भ. : कणिका, १७)

३. मिथ्या-मिश्रित सदाभास के पर्दों में ही दुःख है।
स्वच्छ भावना हृदयों में हो यदि तो दुःख भी सुख है॥
(उ. शं. भ. : तक्षशिला, पृ. ६५)

४. बिना दुख के सब सुख निस्सार,
बिना आँसू के जीवन भार;
दीन दुर्बल है रे संसार,
इसी से दया, क्षमा औ' प्यार !

आज का दुख कल का आह्लाद,
और कल का सुख आज विषाद;
समस्या स्वप्न-गूढ़ संसार,
पूर्ति जिसकी उस पार;

जगत जीवन का अथ विकास,
मृत्यु, गति क्रम का ह्रास।

(सु न प आधुनिक कवि, पृ ४३)

५ दुख पुरुषार्थी की करवट है, सुख श्रम की परिणति का घर है।
धूप छाह मे कैसा झगडा, कभी इधर है कभी उधर है॥

(मा ला च वेणुलो गूजे धरा, पृ २)

६ दुख के बिना जीवन कटे, सुख से किसी का मन हटे।
पथन गिरे टूटे न कन, औ प्यार बिन जी जाय मन।
ऐसा कभी होगा नही, ऐसा कभी होना नही।

—रमानाथ अवस्थी

(स शिवदान सिंह चौहान काव्यधारा १, पृ १२६)

दुख —सुख से लाभ हानि

जब प्रकृति जीतती थी केवल, तब भी मानव था दुखी विकल,
जब मानव सघर्षण की जय, तब भी तो दुख का ही सबल,
हाँ, मानव का यह दुख महान, यह अमरोर ही गति प्रसार,
उसको सुख कभी न मिल पाये यह उसकी मेधा का खुमार।

(रागेय राघव मेधावी, पृ ११५)

दुख से सुख

डरो नही पथ के काँटो से, भरा अमित आनन्द अजिर मे।
यहाँ दुख ही ले जाता है, हमे अमर सुख के मन्दिर मे॥

(दिनकर चक्रवाल, पृ ३६)

दुखी

नारी बिन गेही दुखी, द्रव्य बिना परिवार।
ग्यान बिना तपसी दुखी, कहि 'अनन्य' निर्धार॥

(अक्षर अनन्य निर्धार शतक, पृ ३९)

दुखी और सुखी

चिर दुखी को सुख की आशा उसे असीम हर्ष देती।
सुखी नित्य डरता रहता है ध्यान भविष्यत् का करके॥

(प्रसाद प्रेमपथिक, पृ २९)

दुखी की आह

फूक देती है दुर्गम दुर्ग,
दग्ध उर से जो उठती आह।

करोड़ों वज्रों सी दुर्दम्य,
मनुजता की वह अन्तर्दाह ।।
(बलदेव प्रसाद मिश्र : साकेत-सन्त, पृ. १४६)

दुनिया : मतलब की (दे. संसार, जन इ.)

और का गिरते पसीना देख कर,
जो कि अपना हैं गिरा देते लहू ।
वे कहें कुछ पर सदा उस में मिली,
बूझ वालों को किसी मतलब की बू ।।
जाति के हित की सभी तानें सुनी,
देश हित के भी लिए सब राग सुन ।
लोक-हित की गिटकिरी कानों पड़ी,
पर हमें सब में मिली मतलब की धुन ।।
(हरिऔध : पद्य प्रमोद, पृ. १४२—१४४)

दुर्जन (दे. दुष्ट भी)

१. परहित-हानि लाभ जिन केरें । उजरें हरष बिषाद बसेरें ।।
हरिहर जस राकेस राहु से । पर अकाज भट सहसबाहु से ।।
जे परदोष लखहिं सहसाखी । परहित घृत जिनके मन माखी ।।
तेज कृसानु रोष महिषेसा । अघ-अवगुन-धन-धनी धनेसा ।।
(रा. च. मा. गु., पृ. ३७)

२. शूकर जैसे जीव को है मल से ही काम ।
नन्दन वन-सा ही न हो क्यों उपवन आराम ।।
(हरिऔध : मर्मस्पर्श, पृ. १५२)

३. उपजे यदपि सुवंस में, खल तउ दुखद कराल ।
चन्दन हू की आग में, जरे देह तत्काल ।।
(रा. च. उ. : सतसई)

४. जहाँ एक भी दुष्ट रहेगा, वह समाज क्यों चल पावेगा ।
जहां तनिक भी अम्ल पड़ेगा, मनों दूध भी फट जावेगा ।।
(रा. च. उ. : कुसंग)

५. रच्छत भेद मौन जन धारी । दुर्जन वाक्य-जाल विस्तारी ।
उर विष, नेह नयन बरसावत । अधर हास, मधु वदन बहावत ।।
(द्वा. प्र. मि. : कृष्णायन, पृ. १४१)

६. दियासलाई ! पाइहै, पतित कौन गति नीच ।
पर-जारन हित आपु जरति, धारि प्रथम सिर मीच ।।
(किशोरीदास वाजपेयी : तरंगिणी, पृ. ४७)

दुर्जन और उपदेश

दुबराई गिरि जातु है, बचन कामिनी बाँह।
उपदेश न ठहरात ज्यों, दुरजन के उर माँह॥

(सतसई सप्तक, मतिराम सतसई, पृ १३०)

दुर्जन और विनय

छुवत न पयहु विनय ते दुजन। छल ते विपहु पियावत बुधजन।

(द्वा प्र मि कृष्णायन, पृ १९)

दुर्जन को दण्ड देने से लाभ

खल दुष्टा के दाह से, सरें लोक हित-काम।
वृश्चिक भस्म कुघाव को, तुरत करे आराम॥

(स रामकवि हिन्दी सुभाषित, पृ ६७)

दुर्जन दमन

कब तक हम चुप रहेंगे, खल को क्यों दें छोड।
खडे बखेडे क्यों सहें, क्यों न दांत दें तोड॥

(हरिऔध सतसई, पृ २०)

दुर्जन विषपूर्ण

बीछी पूछ, सर्प मुख माहीं। नहिं खल-अंग जहाँ विष नाहीं।

(द्वा प्र मि कृष्णायन, पृ १४१)

दुर्जन संग

सर्प डसै सु नही कछु तालक, बीछु लगै सु भलो करि मानौं।
सिंह हुँ खाइ तौ नाहिं कछू डर, जौ गज मारत तौ नहिं हानौं॥
आगि जरौ जल बूडि मरौ गिरि, जाय गिरौ कछु भै मति आनौं।
सुंदर और भले सब ही दुख, दुर्जन संग भलौ जनि जानौं॥

(सुन्दर सार, पृ १७९)

दुर्जन-सज्जन की पहचान

जौ मैलो तौ दुयण जण, जौ उज्जल तौ सैण।
बास अघायी नासिका, रूप अघाये नैण॥

(उदैराम का दूहा, दूहा ५)

दुर्जन : स्वभाव

१. करत प्रगट दुरजन सदा, दोष करत उपगार।
मधुर सचिक्कण पोप तैं, करत मार ज्यौं मार ॥
(हेमराज : उपदेश शतक, दोहा ४३)

२. भला कियैं करि है बुरा, दुर्जन सहज सुभाय।
पय पायैं विष देत है, फणी महा दुखदाय ॥
(बुधजन सतसई, पृ. १२)

दुर्बल और सबल

दुर्बल का कब तक है क्षेम, उस पर कौन करेगा प्रेम ?
दया भले कोई कर जाय, किन्तु जगत है निर्दय हाय !
सबलों को ही मैत्री मान, मिलता है सर्वत्र समान।
जिन में होता है कुछ सार, यहाँ उन्हीं के हैं अधिकार।
(मै. श. गु. : हिन्दू, पृ. ६६-७)

दुर्बलता : कारण

नया गल्ले का राशन है, वनस्पति खा रहे हम हैं।
बतायें कौन कारण देशवासी आज बेदम हैं ॥
(बेढब बनारसी : बेढब की बहक, पृ. ८२)

दुर्बलता : व्यापक

हाँ सच है प्रत्येक मनुज में दुर्बलता कुछ होती है।
पा प्रतिकूल परिस्थिति मन में बीज रूप जो सोती है;
अवसर-सलिल सींचता उसको तब वह अंकुर ले लेती,
हैं इतिहास पुस्तकें सारी उदाहरण ऐसे देती।
(गुरुभक्त सिंह : विक्रमादित्य, पृ. ११)

दुर्भाग्य

१. हंस पर्यो लखि पींजरा, बगुला मारत चौंचि।
रह्यौ चुप समय विचारि कैं, मानि भाग की खोंचि ॥
(चाचा० : विवेक, पत्रिका वली दोहा १३६)

२. भौंडी किस्मत के भये, जोरू मारै जूत।
मजूर हो कर जो रहे, करै निरादर पूत ॥
(गिरिधर : कुंडलियाँ, पृ. १२४)

दुर्भावों का नाश

यदि हो प्राप्त सभी मनुजों को,
उन्नति का समान अवसर।
यदि सब को हो सुविधाएँ भी,
सुलभ एक सी ही सुखकर।
यदि व्यवसाय-वृद्धि में कोई,
हो प्रतिबंध नहीं अनुचित।
तो उठ सकते किसी मनुज के,
उर में नहीं भाव कलुषित॥
(डा गो श सि जगदालोक, पृ १२२)

दुर्लभ

दुर्लभ जो होना है, उसी को हम लेते हैं,
जो भी मूल्य देना पड़ता है वही देते हैं।
(मै श गु नहुष, पृ १६)

दुर्व्यवहार

दुर्व्यवहार एक का कैसे
अन्य भूल जावेगा,
कौन उपाय! गरल को कैसे
अमृत बना पावेगा?
(प्रसाद कामायनी, पृ १२४)

दुलहिन

शृंगार छिपा है उर में, करुणा है भरी नयन में!
है शोक भरा मृदु मन में, लावण्य-लोक है तन में॥
है हृदय-देश पर करना शासन क्या-क्या साधन हैं?
शुचि प्रेम भव्य भोलापन अमृतोपम मधुर वचन हैं।
मंत्री बस सदय हृदय है, उपमंत्री कोमल मन है।
शुचि सत्य शील ही बल है, धन केवल जीवन-धन है॥
(डा गो श सि मानसी, ९, ११, १२)

दुष्ट (दे दुर्जन, खल इ)

१ दादू कीड़ा नर्क का, राख्या चंदन माहि।
उलटो अपूठा नरक में, चंदन भावै नाहि॥
(सन्तसुधासार १, पृ ४९८)

२ आप भले तो सबहि भलो है, बुरा न काहू कहिये।
जाके मन कछु बसै बुराई, तासों भागे रहिये॥ —मलूकदास
(संत सुधासार २, पृ ३३)

३. क्षण में होवे रुष्ट जो, दूसर क्षण में तुष्ट।
रुष्ट तुष्ट क्षण-क्षण विषे, ऐसा नर जो दुष्ट॥
(गिरिधर : कुंडलियाँ, पृ. १२१)

दुष्ट : का उपकार

पाहण कोरो रह्यो बरसता मेह में।
घात घणी वाजिद दुष्टता देह में॥
डसे अचानक आय मूंड गहि रोइये।
हरिहां, सर्प ही दूध पिलाय व्यर्थ का खोइये॥ —वाजिद
(सं. मंगलदास : पंचामृत, पृ. ९७)

दुष्ट : का सुधार नहीं

दादू कीड़ा नर्क का, राख्या चंदन मांहि।
उलटि अपूठा नरक में, चंदन भावै नांहि॥— दादू
(सन्तसुधासार खण्ड १, पृ. ४९७)

दुष्ट : की जीभ

कस्तूरी थपि नाभि विधि, वादि दियो मृग मीच।
मैं विधि होउँ सो वहि धरौं, खल जीभन के बीच॥
(भिखारीदास : काव्यनिर्णय, पृ. १५६)

दुष्ट : की दृष्टि

जा न गुणों पर दोषों पर ही दृष्टि खलों की जाती,
मिलता सब को दूध थनों में जोंक रुधिर ही पाती।
(रामखेलावन वर्मा : चन्द्रगुप्त मौर्य, पृ. १५६)

दुष्ट : की रीति

यह खल-रीति सदा संसारा। दै विष धाय करत उपचारा॥
(द्वा. प्र. मि. : कृष्णायन, पृ. १८२)

दुष्ट : के-वध में पाप नहीं

जो अघ वधे अवध्यहिं होई। वध्य वधे विन लागत सोई॥
(द्वा. प्र. मि. : कृष्णायन, पृ. ५०७)

दुष्ट : को भेद न दो

खल जन सौं कहिये नहीं, गूढ कबहूँ करि मेल।
यौं फैले जग माहिं ज्यौं, जल पर बूंद कि तैल॥
(सतसई सप्तक, बृन्दसतसई, दोहा १४१)

दुष्ट को सीख

दाख बड़ो फल है सुखदायक, काग भखै तो महादुख पावै।
मिलै अमोल बहोत मिठास मैं, जो खर खावै तो प्रान नसावै॥
सील बिना खल खाइ छुहारे तो, ताते तुरंग को तेज नसावै।
'गंग' कहै सुनि साह अकब्बर, सीख कुमानुस को नहिं भावै॥

(स. घटे कृष्णा: गंग-कवित्त, पृ. १२५)

दुष्ट दुष्टता नहीं छोड़ता

बैननहु शठ आनक असहायी। सकउ न छाडुय कबहुँ बिसरायी॥
निर्बल श्वानहु दसन-विहीना। धावत काटन वृत्ति-अधीना॥

(द्वा. प्र. मि.: कृष्णायन, पृ. १४२)

दुष्ट नाश

जैसे मराल चुगै मुकताहल, चंद-मयूख चकोर ज्यों चाखै।
पन्नग पान करै पवमान को, तन को वह्नि भखै करि राखै॥
दीप दिवाकर तामस को गिलि जात निसाकर कहूँ नहिं राखै।
दुष्ट को भक्षन काल करै, तत्काल ही तो न मिटै अभिलाखै॥

(रघुनाथ: दुष्ट गंजन पचावनी, पत्र ९)

दुष्ट संहार

अपकारियों के साथ में उपकार करना भूल है।
काँटा निकलता है तभी काँटा निकालें जब उसे।

(रा. च. उ.: मुक्ति मंदिर, पृ. १०)

दुष्ट से न लड़ो

सुख दिखाय दुख दीजियै, खल सों लरियै नाहिं।
जो गुर दीने ही मरै, क्यों विष दीजै ताहि॥

(सतसई सप्तक: वृन्द सतसई, दोहा २११)

दूरी में आकर्षण

करतो मानिक निकटि नर, ढूँढ़त दूर प्रभात।
गंगतीर निवसैं तऊ, दूर तीरथनि जात॥

(दो. द. गि. प्र.: पृ. ७५)

दृढ़ता

१

दृढ़ प्रतिज्ञ जो कार्य मूल कर में धरता है,
करता है वह उसे, नहीं जब तक मरता है।

कह कर जो हट जाय वही अति कायर नर है,
जग में वह उपहास-पूर्ण अपयश का घर है।
शशी समीरण सूर्य क्या करते कुछ विश्राम हैं ?
शेष-शीश पर भी धरा रहती आठों याम है।

(रा. च. उ. : राष्ट्र भारती, पृ. ६८)

२. तजिहैं मरद न मेंड़ निज, रहैं वकत वदराह।
करत न कूकर वृन्द की, कछु गयन्द परवाह॥

(वियोगी हरि : वीरसतसई, पृ. ७६)

दृष्टि

प्रेम भरी चितवन प्राणी को है पीयूष समान।
और घृणा की एक दृष्टि ही है विकराल कृपाण॥

(रा. न. त्रि. : मिलन, पृ. ६५)

दृष्टि-कोण : स्वस्थ

'आधी गगरी रिक्त है !' कट कर क्यों कुम्हलाता ?
गगरी है आधी भरी ! यूं कह मैं मुस्काता॥

(श्रीमन् नारायण : रजनी में प्रभात का अंकुर, पृ. १२३)

दृष्टि-भेद

जितनी दिल की गहराई हो उतना गहरा है प्याला,
जितनी मन की मदकता हो उतनी मादक है हाला,
जितनी उर की भावुकता हो उतना सुन्दर साक़ी है,
जितना ही जो रसिक, उसे है उतनी रसमय मधुशाला।

(बच्चन : अभिनव सोपान, पृ. ६७)

देव और दानव

देव दनुज को सम द्रष्टा ने
दी सम शक्ति जगत विकास हित,
यह मानव मति गति पर निर्भर
वह हो देव दनुज के आश्रित !
ज्योति प्रीति तप, शांति श्रेय धृति,
शील न्याय—देवों के प्रतिनिधि,
घृणा द्वेष भय कलह कलुष रुज्,
रोष दर्प,—ये दानव की निधि !

(सु. नं. पं. : वाणी, पृ. १७६)

देव और मानव

है आसान देव बन जाना, बड़ा कठिन बनना इन्सान,
पूजा जाना सदा सुलभ है, पूजा करना काम महान।
(श्रीमन् नारायण रजनी में प्रभात का अंकुर, पृ. ११२)

देवर भावज मातृतुल्य

जानकी को मुख न विलोक्यो ताते कुंडल न,
जानत हौ वीर पाँय छुवो रघुराई के।
हाथ जो निहारे नैन फूटियो हमारे ता ते,
कंकन न देखे बल कहौं सत भाई के।
पाँय परबे को जाते दास लछमन या ते,
पहचानत हौ भूषन जे पाई के।
बिछुवा है एई और झाँझन है एई जुग,
नूपुर है तेई राम जानत जराई के॥
(हृदयराम हनुमान् नाटक, पृ. ५९)

देवरानी

रहती अनुकूल, प्रेम करती हृदय से,
न टाल रुचि, आज्ञा, अवज्ञा न करती।
मानती बड़ी, आदर सत्कार करती,
रहती प्रसन्न और तुष्ट उसे रखती॥
एक साथ खाती, सोती, नित आती,
पड़ी पर बात पग उसके में रचती।
करती न मन में दुराव दोरानी फिर,
जेठानी साथ छोटी बहिन सी रहती॥
(अतुल कृष्ण गोस्वामी नारी, पृ. २७५)

देविया

क्या न है फेर यह समय का ही, देवियाँ जाँय जो चुड़ैलें बन।
नाम के साथ व मिलें देवी, जो रखें नाम को न देवीपन॥
(हरिऔध चुभते चौपदे, पृ. १४६)

दैव (दै भाग्य होनहार ई)

क्या यह सोच करै मन मूढ़ अरे दिन ये दुख के टरिहैं कब।
त्यों दुख दायक आनन के यह पापी कबै अघ सों भरि हैं कब॥
मान ले तू निगरे जग मीत है एकहु ना हमरे अरि हैं सब।
जा दिन दैव दया करिहैं तब ता दिन 'मीर' मया करिहैं सब॥
(सं अ अ मीर)

देश और काल

देश कल्पना काल परिधि में होती लय है,
काल खोजता महाचेतना में निज क्षय है।

(प्रसाद : कामायनी, पृ. १९३)

देश और जाति

यद्यपि सब जग का हित-चिन्तन सबको आवश्यक है।
पर प्रत्येक मनुज पर पहला देश-जाति का हक है॥
पैदा कर जिस देश-जाति ने तुम को पाला-पोसा।
किए हुए है वह निज हित का तुम से बड़ा भरोसा॥
उस से होना उऋण प्रथम है सत्कर्त्तव्य तुम्हारा।
फिर दे सकते हो वसुधा को शेष स्वजीवन सारा॥

(रा. न. त्रि. : पथिक, पृ. ३४)

देश और जाति : मर्यादा-रक्षा

अभिमान मान का धनी रहे, मर्यादा अपनी बनी रहे।
हम रहें, रहें या न भी रहें, पर देश-जाति की बनी रहे॥

(राजेन्द्रदेव सेंगर : सारन्धा, पृ. १८)

देश : की दरिद्रता

फिरते हैं अशराफ़ गली में मारे-मारे।
कहीं अहले-औसाफ़ हुए कँगले बेचारे॥
थे अमीर पर आज बदन पर नहीं लँगोटी।
मिडिल कर लिया पास नहीं पर मिलती रोटी॥
जब सनअत हिर्फ़त खो गई, रोज़गार ग़ायब हुआ।
खुद कहो तुम्हीं इन्साफ़ से, यह न होय तो होय क्या ?

(राय देवीप्रसाद 'पूर्ण')

देश : निवास के अयोग्य

सेत सेत सब एक से, जहाँ कपूर कपास।
ऐसे देश कुदेस में, कबहुँ न कीजै बास॥
कोकिल वायस एक सम, पंडित मूरख एक।
इंद्रायन दाड़िम विषय, जहाँ न नेकु विवेक॥
बसिए ऐसे देश नहिं, कनक वृष्टि जो होय।
रहिए तो दुख पाइए, प्रान दीजिए रोय॥

(भारतेन्दु नाटकावली, पृ. ६९६)

देश न्याय-रहित

सेहुड बबूर को लगावें जो जतन करि,
काटत चमेली चम्पा चन्दन जुहिन को ।
हिंसा करि हंसन और कोकिल कलापिन की,
आदर समेत पालें बायस मलिन को ॥
गधे गजराज को समान मान होत जहाँ,
एक से मयूर औ मसान मानें जिनको ।
हमें 'कमलाकर' न देश दिखरावें वह,
दूर सो हमारे है प्रणाम कोटि तिन को ॥
(रूपनारायण पांडेय)

देश प्रेम

१ देश का मुँह गया बहुत कुम्हला, किस तरह मुँह रहा खिला तेरा ।
छिन रहा जाति का कलेजा है, पर कलेजा कहाँ छिना तेरा ॥
देश हित देख जो नहीं पाते, जाति हित है अगर नहीं भाता ।
आँख तो फूट क्यों नहीं जाती, किस लिए बैठ जी नहीं जाता ॥
(हरिऔध चुभते चौपदे, पृ ८१)

२ सच्चा प्रेम वही है जिसकी, तृप्ति आत्मबलि पर हो निर्भर,
त्याग बिना निष्प्राण प्रेम है, करो प्रेम पर प्राण निछावर,
देश-प्रेम वह पुण्य-क्षेत्र है, अमल असीम त्याग से विलसित,
आत्मा के विकास से जिसमें, मनुष्यता होती है विकसित ।
(रा न त्रि स्वप्न, पृ ७२)

३ रूप राशि की दीपशिखा पर मरने वाले परवाने ।
प्रेम प्रेम के मधुर नाम को रटने वाले दीवाने ।
वह भी क्या है प्रेम न जिसमें छिपी देश की आग रहे ।
जन्म भूमि के चरणों में मिट, अमिट ! तुझे दुनिया जाने ।
(सो ला द्वि युगाधार, पृ ५३)

देश भक्त

देश भक्त का हृदय बड़ा ही, होता है बलवान ।
शय्या काँटों की लगती है, उसको फूल समान ॥
विचलित उसे न कर सकता है, कभी मान-अपमान ।
उसे कहाँ सुधि कष्टों की है, है वह प्रेम निधान ॥
(रा न त्रि मिलन, पृ ५४)

देश : भक्ति

१. जाऊँगा जेल में जो, होगा न कष्ट कुछ भी;
अस्पष्ट शक्तियाँ हैं, होगा न स्पष्ट कुछ भी।
सर्वस्व त्यागने में, होगा न नष्ट कुछ भी;
चक्की के पीसने में होगा न कष्ट कुछ भी।
हो पुत्रहीन जननी, जोड़ू जवान वेवा।
छोड़ूँ मगर न फिर भी, निष्काम देश-सेवा॥

(रूप नारायण पांडेय : पराग, पृ. ४८)

२. पिता सदा सम्मान्य पुत्र का,
अटल जनक-आदेश बड़ा है।
किन्तु पिता से भी बढ़कर, उस
जगत्-पिता का देश बड़ा है।

(बलदेव प्रसाद मिश्र : साकेत-सन्त, पृ. १७१)

देश : में मेल-मिलाप

पुर्जे किसी मशीन के हों, कहने को साठ।
विगड़े उनमें एक तो हो सब बारह बाठ॥
हों सब बारह बाठ बंद हो चलना कल का।
छोटा हो या वड़ा किसी को कहो न हलका॥
है यह देश मशीन लोग सब दर्जे दर्जे।
चलें मेल के साथ उड़ें क्यों पुर्जे पुर्जे॥

(राय देवीप्रसाद 'पूर्ण')

देश : रक्षा

१. स्वर्गवास-सा देश निकाला, हमें मुक्ति-सी फांसी हो;
ईश्वर ! सजा नजरबन्दी की काशी-सी सुखराशी हो।
पुष्पवृष्टि-सी वृष्टि गोलियों की अगो पर हमें लगे;
जन्मभूमि की रक्षा से पर सपने मे भी नही भगें॥

(रा. च. उ. : राष्ट्र भारती, पृ. २९)

२. शक्ति प्रदर्शन को जब कोई, गर्वित शत्रु प्रवल दल सज कर।
या वह वैभव देख लोभवश, कोई निठुर दस्यु सीमा पर॥
आ कर धन-जन पर पड़ता है, निर्भय-सा दुन्दुभी बजा कर।
तब नवयुवक स्वतन्त्र देश के, क्या बैठे रहते है घर पर ?

क्रुद्ध सिंह सम निकल प्रकट कर अतुलित भुजबल विपय पराक्रम।
युद्ध भूमि मे वे बैरी का दर्पदलन कर लेते हैं दम॥
या स्वतन्त्रता की बेदी पर कर देते हैं प्राण निछावर।
तब नवयुवक स्वतन्त्र देश के क्या बैठे रहते हैं घर पर ?

(रा न त्रि स्वप्न, पृ ४५-४६)

देश सुखी

युवाओं को दिशि पथ का ज्ञान, प्रौढ़ धीरों को कर्म, विराम,
चाहिए सरक्षण, जो वृद्ध, स्त्रियो को शोभा शील ललाम।
जहाँ शिशुओ का हो सस्कार, राष्ट्र की जो भावी सपत्ति,
सगठित बहिरन्तर जो देश, न उस पर आती कभी विपत्ति।

(सु न ९ लोकायतन, पृ २६९)

देश सुधार

१ या स्वदेश ही मे जब कोई स्वेच्छाचारी निपट निरकुश।
शासक राजशक्ति से रक्षित लम्पट लोलुप क्रूर का पुरुष,
निज कर्तव्य विरुद्ध प्रजा पर करता है अन्याय घोरतर ?
तब नवयुवक स्वतन्त्र देश के क्या बैठे रहते हैं घर पर ?
व्यथित प्रजा के बीच वास कर निर्भय भावो का प्रचार कर,
सत्य शक्ति क अवलम्बन से शासन में निश्चित सुधार कर,
वे होते हैं हृदय मच पर या तो कारागृह के भीतर,
तब नवयुवक स्वतन्त्र देश के क्या बैठे रहते हैं घर पर ?

(रा न त्रि स्वप्न, ४६)

२ सुख-सुविधा पावहि श्रमिक बिनु, श्रम सहै न कोय।
माचे देश-सुधार को, हैं बस याते दोय॥

(रामेश्वर करुण करुण सतसई, पृष्ठ ३७)

देश सेवा

१ जिस पर गिरकर उदर-दरी से तुम ने जन्म लिया है।
जिसका खाकर अन्न सुधा-सम नीर समीर पिया है।
जिस पर खड़े हुये खेले, घर बसा बसे, सुख पाये।
जिस का रूप विलोक तुम्हारे दृग मन प्राण जुड़ाए।
वह स्नेह की भूमि दयामयि माता-तुल्य मही है।
उसके प्रति कर्तव्य तुम्हारा क्या कुछ शेष नहीं है ?

(रा न त्रि पथिक, पृष्ठ २९

२. यह प्रत्येक देशवासी सत् का कर्त्तव्य अटल है।
करे देश-सेवा में अर्पण उसमें जितना बल है।
किन्तु न बदले में जनता से मान सुभीता चाहे।
स्वार्थ-भाव को छोड़ उसे है उचित स्वधर्म निवाहे॥
कौड़ी से यदि वह बदलेगा निज अमूल्य मणिमाला॥
उससे बढ़कर जग में होगा कौन मूढ़ मतवाला॥

(रा. न. त्रि. : पथिक, पृ. ५८)

देश-हितैषी : झूठा

तह तक जिसकी आँख समय पर पर पहुँच न पावे।
थोड़ा सा कुछ करे बहुत सा ढोल बजावे॥
देश हितैषी नहीं चाहिये हम को ऐसा।
मरे नाम के लिये देश के काम न आवे॥

(हरिऔध : पद्यप्रसून, पृ. ४९)

देश-हितैषी : सच्चा

जो हो राजा और प्रजा दोनों का प्यारा।
जिसका बीते देश प्रेम में जीवन सारा॥
देश हितैषी हमें चाहिए अनुपम ऐसा।
बहे देश हित की जिस की नसनस में धारा॥

(हरिऔध : पद्य प्रसून, पृ. ४६)

दोष

१. यद्यपि गुण अनेकों आप में श्रेष्ठ पाते।
तदपि सब कलंकी आप को हैं बताते॥
अहह, सच कहा है पंडितों ने निशेश।
सब गुण हरता है एक भी दोष-लेश॥

(मै. श. गु. ; कमला कान्त पाठक : मै. श. गुप्त, व्यक्ति और काव्य, पृ.१५४)

२. लघु कलंक भी स्वच्छ में, समझ पड़े तत्काल।
दूरहि ते चुगली करत, ज्यों दर्पण में बाल॥

(सं. रामकवि : हिन्दी सुभाषित, पृ. १)

दोष अनर्थकारी

धन, यौवन, प्रभुता, अविवेकू।
जुरे सकल नहीं अकुश एकू॥
(द्वा प्र मि • कृष्णायन, पृ २४३)

दोष असाध्य

ग्रह ग्रहीत पुनि बात बस तेहि पुनि बीछी मार।
तेहि पिआइअ बारुनी कहहु काह उपचार॥
(दोहावली, दो० २७१)

दोष से निन्दा

मैंने पूछा दुनिया से, 'क्यो मुझे बुरा कहती है।
निश्चय तेरी आँखों में कुछ अह सुरा बहती है॥
दर्पण पुकार कर बोला, 'तू बुरा मान मत भाई।
टुक झाँक देख ले मुझ मे तेरी आकृति रहती है॥
(उ श म • कणिका, पृ १८)

दोष से बचाव

पाठक को मूर्खत्व नहि, नहीं जपी को पाप।
मौनी को झगडा नही, जागन हारे त्रास॥

—रसिकेश

द्रव्य (दे 'धन' भी)

सोई पुरुष दरब जेइ सेती। दरबहि तें सुनु बातें एती॥
दरब तें गरब करै जै चाहा। दरब तें धरती बैसरग साहा॥
दरब तें हाथ आव कविलासू। दरब तें अछरी छाड न पासू।
दरब तें निरगुन होइ गुनवता। दरब तें कुबज होइ रूपवता॥
दरब रहै भुई दिपै लिलारा। अस मन दरब देइ को पारा॥
दरब तें धरम करम औ राजा। दरब तें सुद्ध, बुद्धि, बल गाजा॥
(जायसी ग्र थावली, पृ १७२)

द्रव्य का गर्व

दरब भार सग काहु न उठा। जेइ सैंता ताही सौं रूठा।
गहे पखान पखि नहि उडै। मोर मोर जो करै सो बुडै॥
दरब जो जानहि आपना, भूलहि गरब मनाहि।
जो रे उठाइ न लेइ सके, बोरि चले जल माहि॥
(जायसी ग्र थावली, पृ १७३)

द्वार : द्वारहीन

द्वार के आगे
और द्वार :
यह नहीं कि कुछ अवश्य
है उनके पार—
किन्तु हर,बार
मिलेगा आलोक,
झरेगी रस—धार ।

(अज्ञेय : अरी ओ करुणा प्रभामय, पृ. १५१)

द्वेष—नाश

सभी श्रेष्ठ धर्मों के ऊपर है अच्छी बातों की छाप;
हिन्दू मुसलमान दोनों को पाप हमेशा से है पाप ।
प्रेम करोगे प्रेम मिलेगा, द्वेष करोगे तो विद्वेष;
उसी एक के बन्दे हैं सब, मन से दूर करो यह त्वेष ॥

(सि. श. गु. : आत्मोत्सर्ग, पृ. २१)

धन : अपना नहीं

हरिहि अर्पि जै फिरि संकल्प । जम के द्वार बंधे तै कंपै ।
हरि के चोर भए ते प्रानी । जिनि माया अपनी करि जानी ॥

(स्वामी रसिकदेव सिद्धान्त रत्नाकर)

धन और आनन्द

पागल हुए तुम आज धन के मद्य में ले नींद गहरी ।
झूठ रिश्वत ऐश में मानों छिपी आनन्द-लहरी ॥
भूलते हो तुम मनुज का रूप निर्मल, शुचि सनातन ।
स्रोत सुख का झरझराता हृदय में आनन्द चिन्तन ॥

(श्रीमन् नारायणः रजनी में प्रभात का अंकुर, पृ. १२८)

धन और गुण

होत वहुत धन होत तउ, गुन जुत भए उदोत ।
नेह भर्यो दीपक तऊ, गुन विनु जोति न होत ॥

(वृन्दसतसई, दोहा २५८)

धन और जन

जन से धन बढ़ गया कि जिस से जन ही जन को मार रहा,
महाजनों को हम लोगों का है कब कष्ट-विचार अहा !

प्रभुवर धन के लिए किसी का मैं न कभी अपकार करूँ ।
धन ही मिले मुझे तो उससे जनता का उपकार करूँ ॥
(मै श गु किसान, पृ १२)

धन और जीवन

मुद्राओ पर ही जीवन को क्यो आंका जाता है ?
क्या सोने के पिजडे म बन्दी पछी गाता है ?
(परमेश्वर द्विरेफ युगस्रष्टा प्रेमचन्द, पृ २०)

धन और दान

ऋद्धि लही अरु दान दीउ नहीं तो कहा ऋद्धि लही न लही हैं ।
गाली सही अरु काल मह्यो नहीं तो कहा गाल सही न सही हैं ॥
देह दही अरु नह दह्यो नही तो कहा देह दही न दहीं है ।
प्रीति रही बस प्रेम न्ह्यो नहीं तो कहा प्रीति रही न रही हैं ॥
(जसराज मातृका बावनी)

धन और दुख-सुख

दुखित हैं धन-हीन, धनी सुखी ।
यह विचार परिष्कृत है यदि ॥
मन ! युधिष्ठिर को फिर क्यो हुई ?
विभवता भव-ताप-विधायिनी ॥
(रा च उ विधि विडम्बना)

धन और दुर्जन

पाछे सुष्क हुती जो सरिता । उतरत चलीं बहुत जल भरिता ।
अजितेन्द्रिय नर ज्यों इतराइ । देह गेह धन संपति पाइ ॥
(नंददास ग्रन्थावली, पृ २८९)

धन और नैतिकता

रुपये मिलें तो कुछ नहीं दुनियाँ मे पाप है ।
लडकी के 'रोल' के लिए तैयार बाप है ॥
जीते हों मरते हों जो बस धन के वास्ते ।
बेकार उनके सामने सारा विलाप है ॥
(बेढब बनारसी बेढब की बहक, पृ ११०)

धन और मान

धन थोरो इज्जत बडी, कह रहीम का बात ।
जैसे कुल की कुलबधू, चिथडन माह समात ॥
(रहिमन विलास, पृ ११)

धन और सज्जन

मीठी धुनि सुनि अस मन आवै । मैन मनों चटसार पढ़ावै ।
फलन के भार नमित द्रुम ऐसे । संपति पाय बड़े जन जैसे ।।

(नंददास ग्रन्थावली, पृ. ११९)

धन और सुख

अर्थ-दास्य से मुक्तिमात्र क्या, फैला सकती है सुख जग में ।
जब कि अर्थ-एषणा घुसी है, इस मानवता की रग-रग में ।

(बा. कृ. श. न. : हम विषपायी जनम के, पृ. ६५)

धन : का अन्धकार

अद्‌भुत या धन को तिमिर, मो पै कह्यौ न जाइ ।
ज्यौं-ज्यौं मनिगन जगमगत त्यौं-त्यौं अति अधिकाइ ।। (मतिराम)

(सतसई सप्तक, पृ. १२२)

धन : का मद

१. कनक कनक तैं सौगुनी, मादकता अधिकाइ ।
उहिं खाएँ बौराइ इहिं, पाएँ ही बौराइ ।।

(बिहारी रत्नाकर, पृ. ८२)

२. जब तक कन्धों पर चढ़ा धन के मद का भार ।
सहज स्वर्ग की सीढियाँ कैसे होंगी पार ।।

(मै. श. गु. : बाबा और कर्बला, पृ. ३९)

धन : का सदुपयोग

१. माया माया करत हैं, खर्च्या खाया नाहिं ।
सो नर ऐसे जाहिंगे, ज्यों बादर की छाहिं ।।
ज्यों बादर की छाहिं जायगा आभा जैसा ।
जाना नहिं जगदीश प्रीति कर जोड़ा पैसा ।।
कहै 'दीन दरवेश' नहीं कोइ अम्मर काया ।
खर्च्या खाया नाहिं करत नर माया माया ।।

(सं. परशुरामः सूफी काव्य संग्रह, पृ. २२०)

२. खायो जाय जो खाय रे, दियो जाय सो देह ।
इन दोनों से जो बचै, सो तुम जानो खेह ।।
सो तुम जानो खेह किसे पुन काम न आवै ।
सर्व शोक को बीज पुनः पुनि तुझे रुआवै ।।
कह गिरधर कविराय, चरन त्रै धन के गायो ।
दान भोग बिन नाश होत जो दियो न खायो ।।

(गिरधर : कुण्डलिया, पृ. ४४)

३ धन से काम निर्धनों को दो, धन से सब के दुःख हरो।
धन न दबा गड्ढो मे रक्खो, धन का कुछ उपयोग करो॥
धन से करो कला को विकसित, भारत कलापूर्ण कर दो।
गोधन गज-धन और वाजिधन रत्नो से घर-घर भर दो॥
(रघुवीर शरण मित्र भूमि के भगवान, पृ ४८)

धन की गर्मी

हाय! अर्थ की उष्णता देगी किसे न ताप।
धनद—दिशा मे तप उठें, आतप-पति भी आप॥
(मै श गु साकेत, ९ सर्ग)

धन की *महिमा*

१ *दरबहि तें यह राज पसारा। दरब लागि जग आइ जोहारा॥*
(उसमान चित्रावली)

२ कारण गुण नह कोय, औगुण ही भरियो अनत।
हिक सम्पित घर होय, नमैं सकल जग नथिया॥
(नाथूराम . सिद्धासार)

३ जा घर नहि तव बास मात सोही घर सूनो।
द्वार द्वार बिडरात फिरे तव कृपा विहूनो॥
औरन की को कहे स्वजन जब धक्का मारें।
अपने घर के ही घर सो कर पकरि निकारें॥
नहि भ्रात मात अरु बन्धु कोउ, निरधन को आदर करें।
निज नारिहु मा, तव कृपा बिन आनन मोरि निरादरें॥
(बालमुकन्द गुप्त लक्ष्मीपूजा)

४ यह चली कहावत कब से—सुख देता बाप न भैया,
बस एक सहायक सबका, यह सबसे बडा रुपैया ?
नकदी मे भगवद् गीता, नकदी मे रामायण है,
नकदी मे ब्रह्म समाया, नकदी मे नारायण है,
कुछ हो सफेद कुछ पीले, सिक्के जिनके चमकीले,
दुष्कर्म सभी दब जाए, बन बैठे गुण गर्वीले!
पडित वेदज्ञ वही है, सज्ञान गुणज्ञ वही है,
पैसा है जिसके पल्ले, सच्चा सर्वज्ञ वही है!
(रामेश्वर करुण · तमसा पृ ३७१)

धन : की रक्षा

महि, धन, विभव, सुयस जब नासा। कवन हेतु जीवन-अभिलाषा ?

(द्वा. प्र. मि. : कृष्णायन. पृ. ५०५)

धन : की समाप्ति

खरचत खात न जात धन, औसर किये अनेक।
जात पुण्य पूरन भये, अरु उपजे अविवेक ॥

(वृन्दसतसई)

धन : कृपण का

गुरु सौंगोठि न करै, देव देहुरा न देखै ।
मांगणि भूलि न देइ, गालि सुनि रहै अलेखै ॥
सगी भतीजी भुवा बहिणि भाणिजी न ज्यावै ॥
रहै रूसड़ौ माड़ि आप न्यौतो जब आवै ॥
पाहुर्णौ सगौ आयौ सुणै, रहइ छिपिउ मुहु राखि करि ॥३॥
जिव जाय तबहि पणि नीसरइ हम धनु संच्यौं कृपण कर ॥

(कामता प्रसाद जैन : हिं. जै. सा. सं. इ., पृ. ६९)

धन : के लिए दौड़-धूप

रैन दिना (बस?) दाम सो कामु है, काहू सो लेकर काहू की दीबो।
'ब्रह्म' भनै जगदीस न जान्यो, न जानियो जी करि जे लगि जीवो ॥
भोर तें राति लों राति तें भोरि लों, कालि कियो सु तो आज ही कीबो।
खाइबो सोइबो बार ही बार, चमार के चामहि ज्यों जल पीबो ॥

—बीरबल

(अकबरी दरबार…पृ. ३५७)

धन : पैतक

पिता पितामह आदि की सम्पति जो चह लैन ।
तौ तू पहले बन अवशि, तिन के गुन को ऐन ॥

(म. प्र. द्वि. : द्वि. का.मा., पृ. २७७)

धन : भक्तिहीन

झूमत द्वार अनेक मतंग जंजीर जरे मद-अंबु चुचाते।
तीखे तुरंग मनोगति चंचल पौन के गौनहुं तें बढ़ि जाते ॥
भीतर चन्द्रमुखी अवलोकति बाहर भूप खरे न समाते।
ऐसे भए तो कहा 'तुलसी' जु पै जानकीनाथ के रंग न राते ॥

(तुलसी ग्रन्थावली २, पृ. १७५)

धन : लोभ और सरलता

वहाँ सरलता है कहाँ, जहाँ अर्थ का लोभ।
छन्दों को भी कर सका, क्षमा न उसका क्षोभ॥
(मै श गु हिन्दू, भूमिका, पृ १८)

धन सचय

१ जैसे मधुमाखी सच्यो, मरम न जान्यो भूरि।
लोग बटाऊ लै गए, मुख मे मेली धूरि॥
(साखी बाजिद)

२ मीत न नीति गलीतु ह्वै, जौ धरियै धनु जोरि।
खाएँ खरचे जो जुरै, तौ जोरियै करोरि॥ —बिहारी
(सतसई सप्तक, पृ ७८)

३ धन सँच्यो किहि काम के, खाउ खरच हरि प्रीति।
बँध्यो गधीलो कूप जल, कढ़ै बढ़ै इहि रीति॥
(सतसई सप्तक वृन्दसतसई, दोहा १४७)

४ दो पैसे यदि रहें पास मे, मौके पर आड़े आते हैं।
लोगो का क्या! ये तो यों ही, दुनिया को ठग ठग खाते हैं॥
(परमेश्वर द्विरेफ युगस्रष्टा प्रेमचन्द, पृ ३६)

धन साधु और गृहस्थ का

कौडी वाले साधु को, कौडी मिले न दाम।
कौडी बिना गृहस्थ का, कोई लेय न नाम॥
(गिरिधर कुडलिया, पृ ८५)

धन से गर्व

दरब ते गरब, लोभ बिषमूरी। दत्त न रहै, सत्त होइ दूरी।
दत्त सत्त हैं, दूनौं भाई। दत्त न रहै, सत्त पै जाई॥
जहाँ लोभ तहँ पाप सँघाती। सचि के मरै आन कै थाती॥
काहू चाँद, काहू भा राहू। काहू अमृत विष भा काहू॥
(जायसी ग्रन्थावली, पृ १७२)

(धन से प्रभु विस्मृत)

तौ लहि सोग बिछोह का, भोजन परा न पेट।
पुनि बिसरन भो सुमिरना, जब सपनि पै भेंट॥
(जायसी ग्रन्थावली, पृ २६)

धन : से प्रेम श्रेष्ठ

जाती जाती गाती गाती, कह जाऊँ यह बात।
धन के पीछे जन, जगती में उचित नहीं उत्पात ॥
प्रेम की ही जय जीवन में।
यही आता है इस मन में ॥

(मै. श. गु. साकेत, ९सर्ग)

धन : से बड़ाई

कौड़ी से किंकर आगे ही दौड़त, कौड़ी से काम करै सभ दौड़ी।
कौड़ी से कायर सूर सों होवत, जालिम आगे रहै हथ जोड़ी ॥
कौड़ी से नृत्य वाजित्र वजै अरु, कौड़ी से राग करै गान गौड़ी।
"ऊदल" एम कहै सम कौं, आज सोई वड़ो जाकी गाँठि है कौड़ी ॥

(उदैराज, स्फुट पद्य, पृ. २३)

धन : से यहीं स्वर्ग

'तुलसी' निरभय होत नर, सुनिअत सुरपुर जाइ।
सो गति लखिअत अछत तनु, सुख संपति गति पाइ ॥

(दोहावली, दोहा ४९७)

धनी

जिनके घर लक्ष्मी रहती है, वे नर अविचारी होते हैं।
लक्ष्मीपति को क्या कमती है, पर वे पन्नग पर सोते हैं ॥

(रामचरित उपाध्याय : लक्ष्मीलीला)

धनी और निर्धन

धनी पुरुष के रहत है, कां कां चारों ओर।
निर्धन के भाँ-भाँ रहै, मध्याह्न सांझ पुनि भोर ॥

(गिरिधर : कुंडलिया, पृ. ८६)

धनी : की निर्धनता

थोथे बादर क्वांर के, ज्यों रहीम घहरात।
धनी पुरुष निर्धन भये, करै पाछिली बात ॥

(रहिमन विलास, पृ. १०)

धनी : गुणी

वित्तवान गुनवान है, वित्तहीन गुनहीन।
महिमा वित्त—समान कहुँ, काहू की देखी न ॥

(रामेश्वर करुण : करुण सतसई, पृ. १०७)

धनी : से द्वेष

नग्न—ग्राम जिमि द्वेष्य अशुकी।
जगत दशा तिमि आद्य मनुज की॥
(द्वा प्र मि कृष्णायन, पृ ७८९)

धरा-स्वर्ग : अणुशक्ति से

तुम को अणु रचना करनी जीवन की नूतन।
शुभ्र शान्ति का फहरा नभ मे स्वर्णिम केतन॥
धरा—स्वर्ग की स्वप्न—कल्पना को अब निश्चय।
तुम्हें पूर्ण करना,—अणु दानव पर पाकर जय॥
(सु न प. वाणी, पृ १०४)

धर्म

१ है सबल जीव को सुखी करता, रस समय पर बरस बहुत प्यारा।
है भली नीति–चाँदनी जिसकी, धर्म है चाँद वह बड़ा प्यारा॥
तो न बनता सुहावना सोना, औ बड़े काम का न कहलाता।
जीव—लोहा न लौहपन तजता, धर्म—पारस न जो परस पाता॥
(हरिऔध चुभते चौपदे, पृ १७१—२)

२ है धर्म पहुँचना नहीं, धर्म तो जीवन भर चलने में है।
फैला कर पथ पर स्निग्ध ज्योति,दीपक समान जलने में है॥
(दिनकर की सूक्तियाँ, पृ. ४९—५०)

३ हमे चाहिए जीवन और विचार भी।
अम्बर का सपना भी, यह ससार भी॥
(दिनकर नये सुभाषित, पृ १६)

४ रोटी के पीछे आटा है क्षीर-सा,
आटे के पीछे चक्की की तान है,
उसके पीछे गेहूँ है, वृष्टि है,
वर्षा के पीछे अब भी भगवान है।
(दिनकर नये सुभाषित, पृ० १७)

५ अधिकार जब अधिकार पर शासन करे,
तब छीनना अधिकार ही कर्त्तव्य है,
सहार ही हो जब सृजन के नाम पर,
तब सृजन का सहार ही भविष्य है,
बस गरज यह गिरते हुए इन्सान को,
हर तरह हर विधि से उठाना धर्म है,
(गोपालदास 'नीरज' बादर बरस गयो पृ ६२)

धर्म : आज का

धर्म है आज यह और कोई नहीं,
सिर्फ इन्सान है और कोई नहीं,
तुम इसे त्राण दो प्राण दो जिंदगी,
और कोई नहीं और कोई नहीं ।

(उ. शं. भ. : कणिका. पृ०४९)

धर्म और जय

सिद्ध हो चुका है यह मर्म, जय है वहीं जहां है धर्म ।
अपना धर्म यहां तक ध्येय, कि है निधन भी उसमें श्रेय ।।

(मै. श. गु. : हिन्दु, पृ०७९)

धर्म और पशुबल

पशु-बल नहीं चाहता धर्म, नहीं कराता वह दुष्कर्म ।
लूट-मार या अत्याचार, करे लुटेरों की तलवार ।।

(मै. श. गु. : हिन्दू, पृ०३९)

धर्म और बाह्याचरण

बाह्य आचरण धर्म न होई । बसत मनुज-मानस महुँ सोई ।।
मन ही सब. कर्मन आधारा । मन संजात आचरण सारा ।
शुद्ध-अशुद्ध होत मन जैसा । तैसिहि वाणी, कर्महु तैसा ।

(दा. प्र. मि. : कृष्णायन, पृ० ८२६)

धर्म : का अनुशासन

हिन्दू-धर्म कि मानव-धर्म,
है अभिन्न दोनों का मर्म ।
उसका शासन सुनो सहर्ष,
जियो कर्म कर के सौ वर्ष ।।
कर्म-सम्भवा सिद्धि सदैव,
अपना पूर्व कर्म ही दैव ।
सुनो, कर्म-कौशल ही योग,
भोगो अनासक्त सब भोग ।
करो न औरों के प्रति भूल,
समझो जो अपने प्रतिकूल ।
समझो स्वात्मा सी सब सृष्टि,

धर्म—रथ

सुनहु सखा कह कृपानिधाना। जेहिं जय होइ सो स्यंदन आना॥
सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका॥
बल बिबेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे॥
ईस भजनु सारथी सुजाना। बिरति चर्म संतोष कृपाना॥
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा। बर बिग्यान कठिन कोदंडा॥
सखा धर्ममय अस रथ जाकें। जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताकें॥

(रा च मा पृ ९०७)

धर्म—विभिन्न

भिन्न भिन्न जो धर्म बने थे वह सुधार थे बार-बार के,
एक हुआ गौतम—पीछे से आया जब कि जीत हार थे।

(रांगेय राघव मेधावी, पृ २२६)

धर्म—विमुखता

मन्दिर और मस्जिदें गिरजा, धर्मक्षेत्र सुनसान पड़े।
पंडित—प्रवर बिना उपदेशक के मठ वीरान पड़े॥
बालिका के पद ध्यान में भक्त मुक्त हो जाते हैं।
नव जवान छोकड़े रंगीले नित्य सिनेमा जाते हैं॥

(पाठशाला पृ १०)

धर्म—श्रद्धा से

श्रद्धा बिना धर्म नहिं होई। बिनु महि गंध कि पावइ कोई॥

(रा च मा प्र पृ, ६४६)

धर्म—सन्देश

कहती है यह प्रकृति सदा तुम,
प्रेम करो केवल अपने पर।
गृह शिक्षा कहती है—अपने
कुल पर रक्खो प्रीति शक्ति भर॥
जनता कहती है—स्वदेश पर,
कर दो निज सर्वस्व निछावर।
और धर्म कहता है—रक्खो,
जीव मात्र पर प्रेम निरन्तर॥

(रा न त्रि स्वप्न, पृ ३५)

धर्म—सुख

जीवन यश-सम्मान धन-सन्तान सुख सब मर्म के,
मुझको परन्तु शतांश भी लगते नहीं निज धर्म के।

(मै श गु जयभारत, पृ ३०८)

धर्म :—सेवा

त्रिलोक को, या निज आयु को, तथा
सभी सुखों को सब लोक—द्रव्य को,
सदैव नाशोन्मुख जान देह को
स्वधर्म—सेवा करना यथार्थ है।

(अनूप : वर्द्धमान, पृ. ५६८)

धर्म :—स्थान

'बुल्ला' धर्मसाला विच धाड़वी रँहदे, ठाकुरद्वारे ठग्ग।
मसीतां विच कोस्ती रँहदे, आसिक रहन अलग्ग॥
'बुल्ला' मक्के गयाँ गल मुकदी नहीं, जिचर दिलों न आप मुकाय।
गंगा गयाँ पाप नहिं छुटदे, भावें सौ-सौ गोते लाय॥

(सन्त बानी संग्रह, भाग १, पृ० १५२)

धर्म : स्वरूप-परिवर्तन

थोथे आदर्शों में रत युग मन, बदल गई आध्यात्मिक परिभाषा—
अब न धर्म परलोक मुक्ति अर्जन, वह उन्नत भूजीवन अभिलाषा!

(सु. नं. पं. : लोकायतन, पृ. ५०९)

धर्म :—हीन जीवन

इंधन चंदन काठ करे सुर वृक्ष उपारि धतूरन बोवे।
सोवन थाल भरे रज ते सुधा रस सुकर पाव ही धोवे।
हस्ती महामद मस्त मनोहर भार वहाइ के ताइ विगोवे।
मूढ प्रमाद गयो जसराज न धर्म करे नर सोवत पोवे॥

(जसराज : मातृका बावनी)

धीरज (दे० धैर्य भी)

१. वे उठते भी है अवश्य ही जो गिरते हैं।
दुर्दिन के ही बाद सुदिन सब के फिरते हैं॥
देखे दारुण दुःख वही नर फिर सुख पावे।
अवनति के उपरान्त घड़ी उन्नति की आवे॥
रवि रात बीतने पर प्रकट होते प्रातः समय में।
बस यही सोचकर आप भी, धीरज रखिए हृदय में।
जीव मरण के बाद जन्म पाता है देखो।
कृष्णपक्ष के बाद शुक्ल आता है देखो॥

चलती है हेमन्त हवा जब जोर दिखाती।
तब होता पतझड़ न पत्ती रहने पाती।
फिर वही वृक्ष होते हरे, नवपल्लव शोभित सभी।
बस इसी तरह होंगे सुखी, उन्नति युत हम भी कभी॥
(रूप नारायण पाण्डेय आश्वासन)

धुन का पक्का

जिसे असम्भव कहते हैं यह समझ न पावे।
देख उलझनों को चितवन पर मैल न लावे॥
हमें चाहिए धुन का पक्का ऐसा प्राणी।
जो कर डाले उसे कि जिस में हाथ लगावे॥
(हरिऔध पद्य प्रसून, पृ ४७)

धैर्य (दे० धीरज भी)

१ अरे मन धीरज काहे न धरै।
सुभ और असुभ करम पूरवले, रती घटै न बढ़ै॥१॥
होनहार होवै पुनि सोई, चिन्ता काहे करै।
पसु पछी जिव कीट पतगा, सब की सुद्ध करै॥२॥
गर्भवास मे खबर लेतु है, बाहर क्यो बिसरै।
मात पिता सुत सम्पति दारा, मोह के ज्वाल जरै॥३॥
मन तू हसन से साहिब के, भटकत काहे फिरै।
सतगुरु छाड और को ध्यावै, कारज इक न सरै॥४॥
साधुन सेवा कर मन मेरे, कोटिन व्याधि हरै।
कहत 'कबीर' सुनो भाई साधो, सहज मे जीव तरै॥५॥
(कबीर शब्दावली, द्व भा, पृ १)

२ निरखो एक बार न आवै, निरख निरख निरखो गुन पावै।
होइ साहसिक साहस राखै, बकता होइ बाक मे भाखै॥
या नर जा मग राखै पाऊ, गौनत पूरा होइ बटाऊ।
पहले दीच्छित दिया दाही, अन गुरु कहवावै ओही॥४॥
(नूरमुहम्मद अनुराग बाँसुरी, पृ २०)

३ धीर होते कभी अधीर नहीं, क्यो न सिर पर विपत्त बिताम तने।
हाथ का आँवला न है अवसर, बावला मन उतावला न बने।
(हरिऔध चुभते चौपदे, पृ ३७)

४ आज जो नहीं हुआ, सिद्ध होगा कल-परसों।
जमती है क्या कहीं, हथेली पर भी सरसों॥
(मै श गु . राजा प्रजा, पृ ३४)

५. आकाश धरा से एक रात बोला यह,
'तेरी छाती पर बहुत बोझ रहता है'।
धरती बोली, 'तू रो देता पल भर में,
सामर्थ्यवान् ही सब दुख सुख सहता है'॥

(उ. शं. भ. : कणिका, पृ. १७)

६. गा रहा मैं गुनगुनाना सीख लो तुम,
आँधियों में झिलमिलाना सीख लो तुम।
कौंधती बिजली अँधेरी घाटियों में,
बेबसी में मुसकराना सीख लो तुम॥

(रूप नारायण त्रिपाठी : वनफूल, पृ. ६८)

धैर्य: ज्ञान से

भीतर जो धीरज क्या आया आसमान से,
यह जो आज फूल है फूला क्या वितान से।
समय के साथ-साथ धैर्य फल फूटता है,
धीरज की कोपलें खिलतीं शुद्ध-ज्ञान से॥

(उ. शं. भ. : कणिका, पृ. २७)

नकल

नकल साहब के खाने की जो की इक रोज होटल में।
कटा मुँह, धँस गये काँटे, दवा अब तक लगाते हैं॥

(बेढब बनारसी : बेढब की बहक, पृ. ३३)

ननद

स्व माँ की दृग पुतली, एक यह, एक भाभी,
एक मन एक रुचि, एक भाव वय सुकृति के।
केलि, कला, व्यवहार में सहोदरा सी युग,
अनुकूल उभय के दिव्य प्राण एक मति के॥
जीवन की, जग की, रस की, प्रेम की शिक्षा,
पाती अग जग के जान मार्ग सब प्रगति के।
साधु भाभी की सरल सखी, अनुजा तत्पति की,
चपल ऋजु ननद में प्रकट रूप रस प्रकृति के॥

(नवलकृष्ण गोस्वामी : नारी, पृ. १७२)

नफ़ाखोर

सोच रहा है नफा खोर कब गोली-गोले छूटें !
कब बरसें बम, कब बम के संग भाग्य अनेकों फूटें !
कब लालच की चीलें भू पर गोल बांध कर टूटें !
कब वह जीतों को धोखा दें और मरों को लूटें !

(नरेन्द्र अग्निशस्य, पृ १२५)

नम्रता

१ कर गुजरान गरीबी में, मगरूरी किस पर करता है ?
गोंदी काया देख भुलाया, दीन से क्यों डरता है ?
जगत पुकारै कूका मारै, हो हो कहि कर हलना है।
रूह जलाली करत हलाली, क्यों दोजग आगी जलना है ?
खाय खुराका पहिन पुसाका, जम का बकरा पलता है।
जम बदजाती तोड़ै छाती, क्यों नहिं उससे डरना है ?
तजि अभिमाना सीखो ज्ञाना, सतगुर संगत तरता है।
कहै 'कबीर' कोइ बिरला हंसा, जीवत ही जो मरता है ॥

(कबीर साहिब की शब्दावली, दू भाग, पृ १५)

२ सास ससुर गुरु मातु पितु प्रभु भयो चहै सब कोइ।
होनो दूजी ओर को, सुजन सराहिअ सोइ ॥—तुलसीदास

(दोहावली, दोहा ३९१)

३ नवै तुरी बहु तेज, नवै दाता धन देनो।
नवै अंबु बहु फल्यो, नवै घन जल बरसेनो ॥
नवै पुरुष गुनवान, नवै गज बैल सवारी।
नवै सो भारी होइ, नवै कुलवन्ती नारी ॥
कचन पै कमियो नवै, 'गग' बैन साचो कवै।
सूका काठ अजान नर, भाग पडै पर नहिं नवै ॥

(स बटे कृष्ण गग-कवित्त, पृ १२१)

४ होना है सिर को नवा, नर जग मे सिरमौर।
बनना है वन्दन किये, वदनीय सब ठौर ॥

(हरिऔध सतसई, पृ १०)

५ उसका गुण—स्मरण ही अच्छा जो जन चला गया,
सबके लिए रहे हम सब मे आदर और दया।

(मै श गु काबा और कर्बला, पृ ३६)

६. यह एक इकाई सत्ता की,
बस जन्म--मरण है इसका क्रम,
तू नहीं आज तक जान सका,
क्या सत्य और क्या है विभ्रम,
जीवन की गति में लय होकर,
तू सत्ता का भ्रम हर मानव !
अपना सर नीचा कर मानव !

(भगवती चरण वर्मा : रंगों से मोह, पृ. २०)

७. अहं को त्याग अणु से मित्रता कर लो;
गगन को भूल जग को अंक में भर लो;
इसी में हित निहित शिखरो तुम्हारा है;
झुको, झुक कर धरा की वन्दना कर लो।—जगदीश वाजपेयी

(सं. शिवदानसिंह चौहान : काव्यधारा १, पृ. १३८)

८. सभी गुणों की जननी महाशुभा
विनम्रता ही अतिपुष्ट नींव है,
समुच्च निर्माण विधेय हो जिसे
वही बने निम्न न अन्य मार्ग है।
अवश्य ही उन्नत पाँव, साधु का
पिपीलिका को करता विचूर्ण है,
बिना विचारे लघु जीव पीसना
विनम्रता का अति ही अभाव है।
सु-मान देना निज से समुच्च को,
असीस लेना निज से विनिम्न से,
मनुष्यता का ऋण है धरित्रि में,
इसे चुकाता नर उत्तमर्ण ही।

(अनूप : वर्द्धमान, पृ. ५५३)

९. जितना विनम्र हो, तू कठोर ! तू उतना ही जीवन-शोभन !
बन मत गर्वोन्नत शैल—शिखर, यह श्रेयस्कर
—जो धो दे जग के श्रान्त चरण—तू बन सागर
भू—भार न बन, ओ मन मेरे, बन रत्नाकर
तू द्रवीभूत हो जा, निष्ठुर ! तज कर निज जड़ता के बंधन !

(नरेन्द्र : पलाश--वन, पृ. ६०)

१० फुलके से फूले न रहो कुछ दबना सीखो।
बनो न सूखे पेड़ ऐंड के, नवना सीखो॥
(रामखेलावन वर्मा चन्द्रगुप्त मौर्य, पृ ९६)

११ मानव की लघुता भली, नहीं देव-सा मान।
लघुता में ही मनुज की, गुरुता का गुण गान॥
(श्रीमन् नारायण रजनी मे प्रभात का अंकुर, पृ १२०)

१२ क्यों नजर डाले पराये दोष पर, निज दिल दुखाये।
देख अन्तर—ज्योति साथी, नम्र हो मस्तक झुकाये।
(श्रीमन नारायण रजनी में प्रभात का अंकुर, पृ १३१)

नम्रता नम्र से

छोरि गरब्ब जु आवत देखि कैं आदर देइ कैं आसन दीजै।
प्रीति ही कै रस की मुख की मुख की दुख की मिलि बात कहीजै॥
दूर रहैं नित मीठी ही मीठी चीज रु चोठी तहाँ पठईजै।
साच यहै धरमसीउ कहै भैया चाह करै ताकी चाकरी कीजै॥
(धर्मसिंह धर्मबावनी)

नम्रता बनावटी

यह रहीम मानै नही, दिल मे नवा जो होय।
चीता चोर कमान के, नये ते अवगुन होय॥
(रहिमन विलास, पृ १७)

नर अंधे

कोई किसी के संग ना, रोग मरन दुख बंध।
इतने पर अपनो कहैं, सत्त जो ये नर अंध॥
—सहजो बाई
(स गिरिजादत्त शुक्ल हि का को, पृ ४६)

नर और नारी

१ नर नारी सब नरक हैं, जब लग देह सकाम।
कहै 'कबीर' ते राम के, जे सुमिरैं निहकाम॥
(कबीर ग्रन्थावली, पृ ३८)

२ नर है पीवर धीर वीर सयत्न श्रमकारी।
है मृदु तन उपराम मयी तरलित उर नारी॥
विपुल कायमय नर जीवन है प्रान्तर न्यारा।
नाना सेवा निरत नारिता है सरि धारा॥
मस्तिष्क मान साहस सदन वीर्यवान है पुरुष दल।
है सहृदयता ममतावनी पयोमयी महिला सकल॥

युगल मूर्ति सहयोग जनित है जग की सत्ता।
लालन पालन सृजन तथा संकलन महत्ता॥
निज निज कृति रत रहे युगल के सिद्धि मिलेगी।
किये अन्यथा प्रकृति चाल प्रतिकूल चलेगी॥
हो उदय गगन तल में तभी विधु ढालेगा रस घड़े।
जब सुधाधार सी चाँदनी तृण वीरुध तक पर पड़े॥

(हरिऔध : पद्यप्रमोद, पृ. १५८)

नर :—चतुर

जग मैं तेई चतुर कहावै।
जे सब विधि अपने कारज को नीकी भाँति बनावै॥
पढ़्यो लिख्यो किन होइ जु पै नहिं कारज साधन जाने।
ताही को मूरख या जग में सब कोऊ अनुमानै॥
छल मैं पातक होत जदपि यह शास्त्रन मैं बहुगायो।
पै अरि सों छल किए दोप नहिं, मुनियन यहै बतायो॥

(भारतेन्दु नाटकावली, पृ. ३३३)

नर :—जन्म हीरा

खोया उसी ने नर-जन्म-हीरा, जो भोग भोगे बन नर्क कीड़ा।
आदर्श ऊँचा गर सामने हो, यात्री अभागा पथभ्रष्ट क्यों हो ?

(सत्यदेव परिव्राजक : अनुभव, पृ. ११)

नर : देवों से श्रेष्ठ

अमर जो न कर सकें, उसे नर कर सकते है।
व्रत-साधन पर अमर भला कब मर सकते हैं॥

(मै. श. गु. : अप्रकाशित 'लीला' नाटक से)

नर :—नारी का मिश्रण

वह नर तो वानर है जिसमें नारीपन का अंश नहीं,
वह है उपल, नहीं हिय, जिसमें सह अनुभव का दंश नहीं ;
पर विपदा में यदि ये लोचन छलक-छलक भर आये ना,
तो फिर समझो कि बस हो चुका मनुष्यत्व का भ्रंश यहीं॥
नर-नारी दोनों में दोनों झलक उठें जब बरबस—से,
तभी समझिए कि यह हुआ है हृदय प्रपूर्ण एक रस से।
नर नारी हो, नारी नर हो, यही सुगति है जीवन की,
तभी विश्व-वेदना-भाव से हृदय खिचेंगे पर-वश—से॥

(बा. कृ. श. न. : हम विषपायी जनम के, पृ. २०८)

नर पशु

पशु कर रक्खें जो मनुज कहीं मनुजों को।
पशु क्यों न कहूँ उन मनुज रूप दनुजों को।।
(मैं श गु किसान, पृ ४२)

नर सिर-मौर

वही है भव में नर-सिरमौर।
नहीं छीनता रहता है जो कभी किसी के मुँह का कौर।।
लगती बातें कह करता है वह न किसी छाती में छेद।
जिससे पड़े बला में कोई नहीं खोलता है वह भेद।।
भरी जवानी में भी उससे हो न सकेगी ऐसी भूल।
जिससे बने कलंकित जीवन जो हो पूत भाव प्रतिकूल।।
पटी कपट से कभी न उसकी उसे न छूता है छल छन्द।
करके सेवा सकल लोक की पाता है वह परमानन्द।।
हिंसा—प्रतिहिंसा प्रवचना पामरता से रह कर दूर।
देश जाति हित व्रत रत रह वह बनता है पातक-तम-सूर।।
मुक्ति से अधिक विभुवर की शुचि भक्ति को करेगा वह प्यार।
प्राणि-मात्र का सुख-साधन ही होता है उसका संसार।।
धरा—धाम में परम प्राण ही जान सके हैं क्या है धर्म।
वह मानव ही मानव है जो समझ सके मानवता धर्म।
(हरिऔध मर्म स्पर्श, पृ १५)

नरक—*गामी*

१ आरत पुकारत हो राम-राम बार बार,
लीन्हो न छँडाय तुम सीता अति भीति मानि।
गाय द्विजराज तिय काज न पुकार लागै,
भोगवै नरक घोर चोर को अभयदानि।।
(केशवदास रामचन्द्रिका, प्रकाश १३)

२ नारी तज वन तप करै, तप तज करै जु नार।
ए दोनो नरकहि परै, कहि 'अनन्य' निर्धार।।
(अक्षर अनन्य निर्धार शतक)

नरक भूमि पर

जहाँ मनुष्यों को मनुष्य-अधिकार प्राप्त नहिं।
जन जन सरल सनेह सुजन व्यवहार प्राप्त नहिं।।

निर्धारित नर नारि उचित उपचार प्राप्त नहिं।
कलि-मल-मूलक कलह कभी होवे समाप्त नहिं॥
वह देश मनुष्यों का नहीं, प्रेतों का उपवेश है।
नित नूतन अघ उद्देश थल, भूतल नरक निवेश है॥
(श्रीधर पाठक)

नवयुग

भूमण्डल को एक करो हे, विश्व-प्रेम-अभिषेक करो हे।
मन मानव का नेक करो हे, उच्चादर्शोद्‌गार करो हे,
नव युग का निर्माण करो हे।
—राजेश्वर प्रसाद नारायण सिंह
(सं. शिवदानसिंह चौहान : काव्यधारा १, पृ. १४७)

नवयुवक और समाज-सुधार

नौजवान ? हाँ हाँ वहै, रूढ़ि-पहार पजार।
करिहैं मृतक-समाज महँ, नवजीवन-संचार॥
(रामेश्वर करुण : करुण सतसई, पृ. १७४)

नागरिक :—सुधार

ये धरती के नगर—विलासी,
क्षुधित हृदय, आकांक्षा प्यासी,
निज आत्मिक निधि से हों परिचित!
इन्हें भाव दो।

आत्म-जयी, भोगें जीवन—सुख,
जन समाज का दुख हो निज दुख,
हृदय न हो भू सत्य प्रति विमुख,
ध्येय एक जग जीवन, जन हित!
इन्हे भाव दो!

राष्ट्र वर्ग से निखरे मानव,
जाति वर्ण के क्षय हों दानव,
नव प्रकाश भव का हो अनुभव,
रहे न मन भौतिक तमसावृत!
इन्हे भाव दो!

सभ्य देश बाहर से संस्कृत,
भीतर बर्बर, आत्म पराजित,

घृणा द्वेष स्पर्धा भय पीड़ित,
काल—दंष्ट्र मे रे ये अणु मृत !
इन्हें भाव दो !
(सु न प वाणी, पृ ७९—८०)

नागरिक —स्वभाव

साँप !
तुम सभ्य तो हुए नही,
नगर मे बसना भी तुम्हे नही आया ।
एक बात पूछू—(उत्तर दोगे ?)
तब कैसे सीखा डँसना—
विष कहाँ पाया ?
(स ही वा अज्ञेय इन्द्रधनुष रौंदे हुए ये, पृ २९)

नागरी ! तेरी यह दशा !!

तेरे समान रुचिरा, सरला, रसाला ।
शोभायुता, सुमधुरा, सगुणा, विशाला ॥
भाषा न अन्य यहि काल अहो दिखाई ।
तोने निरक्ष हम यो स्वभुजा उठाई ॥
जाके बिना कचहरी घर लोग घेरे ।
तातै परारि मुख जाय बड़े सवेरे ॥
न प्रेम तासु जिनके मन माँहि जागै ।
हा ! हा ! विलोकि तिन पातक पुंज लागै ॥
जाको लिखै सहज बालक, वृद्ध, नारी ।
जामे न भूल इक बिन्दु-विसर्ग-वारी ॥
सद्धर्म जासु परिशीलन मे सदा ही ।
ताको करै स्तुति कहाँ लगि ? शक्ति नाही ॥
(म प्र द्वि द्वि का मा, पृ १९९-२००)

नाता

कैसा नाता—रिश्ता, बन्दे ! मुँह देखे की प्रीति यहाँ,
बस, आँखा की लाज निभाना यही रही है रीति यहाँ ।
पीठ फिरी तो बन्द हो गये अपनों के भी द्वार सभी,
तुम नवीन, अब तक न रच भी समझ सके यह नीति यहाँ ॥
(बा कृ शा न हम विषपायी जनम के, पृ ७)

नाता : जीवित ही का

जग में जीवत ही कौ नातौ।
मैं मेरी कबहूँ नहिं कीजै, कीजै पंच-सुहातौ ॥
साँच-झूठ करि माया जोरी, आपुन रूखो खातौ।
'सूरदास' कछु थिर न रहैगौ, जो आयो सो जातौ ॥

(सूरसागर, पृ. ९९)

नाते

नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं।
अञ्जन कहा आँखि जेहि फूटै, बहुतक कहौ कहां लौं ॥

(विनयपत्रिका, पृ. २८३)

नाम-नौका (दे० राम-नाम भी)

'व्यास' स्वपच बहु तरि गए एक नाम लवलीन।
चढ़े नाव अभिमान की बूड़े कोटि कुलीन ॥

(व्यास वाणी, पृ. १५७)

नाम-महिमा

सपनेहुँ में बर्राइके, धोखेहुँ निकरे नाम।
वाके पग की पैतरी, मेरे तन को चाम ॥

(कबीर वचनावली, पृ. ९७)

नारी

१. नारी माया ममता का बल,
वह शक्तिमयी छाया शीतल।

(प्रसाद : कामायनी, पृ. २३८)

२. दृग हैं विषाक्त बाण भौंहैं है कमान वंक,
चपला निवास करती है चारु हास में।
काली घुँघुराली लोल तेरी लट नागिन सी,
चमक रही है मुख-चंद्र के प्रकाश में ॥
रहता छिपा है विकराल तीव्र ताप सदा,
विरह-व्यथित तेरे उर की उसास में।

क्यों न नर तुझसे सदैव भयभीत रहें,
छूटता न कोई पड तेरे प्रेम-पाश मे ॥
(गोपाल शरण सिंह)

३ रोते हुए क्षुधित जग शिशु की है माता कल्याणी ।
सदा न्याय रक्षा के हित तू है रण में वीराणी ॥
दुखी जनो के लिए दया की तू है कोमल वाणी ।
सुधा-सिक्त रहते हैं तुझसे वसुधा के सब प्राणी ॥
अनुरागिनी त्यागिनी बन कर तू है कीर्ति कमाती ।
है मानवी, किन्तु देवी तू है जग मे कहलाती ॥
प्रेम देव के चरणो पर तू है सर्वस्व चढाती ।
पर वरदान दुग्ध-लेखा का तू सदैव है पाती ॥
(गो श सिंह मानवी, पृ २०५)

नारी आधुनिक

१ हम प्रीति शिखा
अति आधुनिका ।
हम पढी लिखी नव नागरियाँ,
गोरस न, सुरा की गागरियाँ,
हम नही गृहो की चाकरियाँ,
हम नृत्य निपुण गुण आगरियाँ,
हम प्रीति-शिखा ।
अगो पर देती विरल वसन,
जिसमे विमुक्त निखरे यौवन,
हम तोड प्रणय के कटु बधन
मोहित करती जन जन के मन,
हम प्रीति शिखा ।
(सु न प स्वर्णधूलि, पृ १५५)

२ यह प्रदर्शिनी की पुतली सी केवल चपल कामिनी कृत्रिम,
व्यस्त बाह्य तन की सज-धज मे अपने पन के प्रति जिसमे भ्रम ।
रहन-सहन मे है जिसका मन शान्त साधनाओ से वचित,
इधर उधर की हलचल मे रत जिसके अपने कृत्य उपेक्षित ॥
अनिश्च लक्ष्य के जो विरुद्ध चल पर वश विवश स्व को पाती है,
नर का कर अनुकरण, अनुगण अपना पन खोती जाती है ।

वाह्य समस्याओं में उलझी स्वयं समस्या-सी है युग की,
जयति देवि ! मूर्छा त्यागो तुम बनो सु-समाधान इस युग की ।।
(अतुलकृष्ण गोस्वामी : नारी, पृ. २७८)

२. तुमको कैसे प्यास डस गई तुम तो थी गंगा की धारा;
जात गई क्यों विकल वासना हार गया क्यों प्यार तुम्हारा;
तुम को एक मंत्र देता हूँ—धर कर ध्यान सुनो श्रद्धाओ !
पुजने का अभिमान छोड़ दो पूजा के उपकरण सँभालो ।
(सं. क्षेमचंद्र सुमन : रामावतार त्यागी, पृ. १०४)

नारी और कवि

नारी जब देखती पुरुष को इच्छा—भरे नयन से,
मन मे किसी कान्त कवि को भी जन्म दिया करती है ।
(दिनकर की सूक्तियाँ, पृ. ६१)

नारी और नर

१. नारी का तन मा का तन है,
जाति-वृद्धि के लिए विनिर्मित ।
पुरुप प्रणय अधिकार प्रणय है,
सुख विलास के हित उत्कंठित ।।
(सु. नं. पं. : स्वर्णकिरण, पृ. ३९)

२. पुरुष मन मे छवि का विस्तार,
नारी-मन मे सकोच अपार ।
पुरुप का हो अनन्त पर चाव,
नारी का एक कान्त पर भाव ।।
(वलदेवप्रसाद मिश्र : साकेत-सन्त, पृ. २६)

३. तुम पुरुप के तुल्य हो तो आत्मगुण को
छोड़ क्यों इतना त्वचा को प्यार करती हो ?
मानती नर को नही यदि श्रेष्ठ निज से
तो रिझाने को किसे शृंगार करती हो ?
(दिनकर : नये सुभाषित, पृ. ७)

४. नारी नर की आलोक-राशि, नारी नर की चिति का प्रसार ।
दोनों का न्यायोचित समत्व, उन्मीलित करता स्वर्ग द्वार ।।
(अतुलकृष्ण गोस्वामी : नारी, पृ. १९८)

नारी और नवयुग

जो चाटुकारिता की सीमा में तुमको
आबद्ध रखे, ठुकरा दो नर की माया।
युग-युग की प्रेरक शक्ति, उठो फिर, नारी!
देखो जग के आंगन में नवयुग आया।
(जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द : भूमि की अनुभूति, पृ. ३८)

नारी और नेतागिरी

महिला मंडल की केवल नेता बनने की भक है,
नहीं और माता या पत्नी, सीखा यही सबक है
जहाँ दोस के पार हुई मुख भूर हुआ मुनक्का।
इस जग की गति देख रह गया मैं पूरा भौचक्का॥
(बेढब बनारसी : बेढब की बानी, पृ. १२६)

नारी कवयित्री

यह कविता की विषय, गेय कवियों की, काव्य सुधा घन, कवि यश,
आज स्वयं कवि बनी, धरा की अमर गायिका, गीतकार चिर।
कोमल, मधुर, सरस छन्दों में गूँथ रही निज प्राण भाव-मन,
कविता करते—हुई स्वयं यह 'कविता' कला साधना रसनिधि॥
(अनुलकृष्ण गोस्वामी : नारी, पृ. २६४)

नारी का कर्त्तव्य

उर के कोमल तर प्यार से, अँखियों के करुणा-भार से
युग के कठ-प्रस्तर चित्त को, तिल तिल भी पिघलाती रहो॥
तुम मृदु-मृदु मुसकाती रहो।
(डा. देवराज : धरती और स्वर्ग, पृ. २८)

नारी का त्याग

नारि न तजहि मरे भरतारहि। ता मग सहहि धनजय भारहि॥
(केशवदास : रामचंद्रिका, प्रकाश ९)

नारी का पतन

सुख की ललक हिये में—
लेकर बिचरी मानव की बेटी,
मद्य, मांस, मैथुन की—
बन आयी वह घृणित भोगदासी।

क्या रोना आता है—
लख समाज का सस्ता नारीपन ?
रोना हो तो रो लो;
पर, न बनाओ अम्ल प्रेम-पय को।
(बा. कृ. श. न. : हम विषपायी जनम के, पृ. ३०)

नारी : का प्रभाव

हो गया मदिर दृगों ,को देख, सिंह-विजयी बर्बर लाचार।
रूप के एक तन्तु में नारि, गया बँध मत्त गयन्द कुमार ।।
एक इंगित पर दौड़े शूर कनक-मृग पर होकर हत-ज्ञान,
हुई ऋषियों के तप का मोल तुम्हारी एक मधुर मुस्कान ।
(दिनकर : चक्रवाल, पृ. ९६-९७)

नारी : का प्रेम उत्तम

पूरन सकल विलास रस, सरस पुत्र फल दान ।
अन्त होइ सहगामिनी, नेह नारि को मान ।।
चंदबरदाई : कविता कौमुदी, भाग १)

नारी : का मन

नारी के मन का रहस्य मैं अब तक समझ न पाया ।
विद्युत्-धारा सी अदृश्य है प्रिया-प्रेम की माया ।।
(गुरुभक्तसिंह : नूरजहाँ, पृ. १०३)

नारी : का महत्व

१. नारी विन नर मौन खड़ा है,
नर विन जीवन बहुत कड़ा है,
एक पख के साथ, कहो कब,
विहग भला उड़ सका गगन में।
कहते नारी जग मे माया,
मैं कहता हूँ शीतल छाया,
जीवन के मध्याह्न काल में,
हम सोते ले नीद नयन में।
(देवराज दिनेश : अन्तर्गीत, पृ. १९)

२. अन्तर की लय रस आत्मा का, प्राणों का सुख यौवन का मधु ।
जीवन का सन्तोष, जीव का तुम चैतन्य, लोक मंगल विधु ।।
(अतुलकृष्ण गोस्वामी : नारी पृ. ३)

नारी का स्वरूप

काम क्रोध लोभादि मद प्रबल मोह कै धारि।
तिन्ह महँ अति दारुन दुखद मायारूपी नारि॥
अवगुनमूल सूलप्रद प्रमदा सब दुख खानि।
तात कीन्ह निवारन मुनि मैं यह जिय जानि॥

(रा च मा गु पृ ४४० ८१)

नारी का हृदय

तू फिर भी समझ न पाया है हृदय अभी नारी का।
उस पर न विजय पा सकता छल बल अत्याचारी का॥
इस कोमल तन के भीतर है हृदय कोट का मडल।
जिसमे न कभी घुस पाये हैं विश्व लुटेरो के दल॥

(गुरुभक्तसिंह नूरजहाँ पृ ३२)

नारी किशोरी

उठ पडे जिस ओर पग रह सब अनूप अनन्त,
जहाँ पडती दृष्टि विलसित वहीं चैत्र वसन्त।
इङ्गित जिधर प्लावित उधर ही मुखर रस की धार,
झुकता है रस भार पर यह किशोर उभार॥

(अतुलकृष्ण गोस्वामी नारी, पृ २५५)

नारी की उच्चता

दीन न हो गोप, सुनो, हीन नहीं नारी कभी,
भूत दया-मूर्ति वह मन से, शरीर से।

(मै श गु यशोधरा, पृ १४५)

नारी की त्याग भावना

नारी लेन नहीं, लोक मे देने ही आती है।
अश्रु शेष रख कर वह उन से प्रभु पद धो जाती है।
पर देने मे विनय न हो कर जहाँ गर्व होता है,
तप त्याग का पर्व हमारा वही व्यर्थ होता है॥

(मै श गु जयभारत, द्रौपदी और सत्यभामा, पृ १८१)

नारी की शक्ति

सच है नारी कर सकती है विधि विधान के भी प्रतिकूल,
सच है प्रमदा भर सकती है सुमन राशि मे अगणित शूल,

बिजली-सी वह गिर सकती है घन के सजल हृदय को त्याग,
आग लगा सकती पानी में भर सकती जग में अनुराग;
हो सकती वह शक्ति सृष्टि की, हो सकती विनाश का मूल,
दृढ़ व्रत कर बन अचल हिमाचल, हो सकती इसके प्रतिकूल।
(गुरुभक्तसिंह भक्त : विक्रमादित्य, पृ. १०)

नारी : की सहनशीलता

पगली ! कौन व्यथा है, जिसको नारी नही सहेगी ?
(दिनकर की सूक्तियां, पृ. ५३)

नारी : के अवगुण

नारि सुभाउ सत्य सब कहहीं। अवगुन आठ सदा उर रहहीं।
साहस अनृत चपलता माया। भय अविवेक असौच अदाया॥
(रा. च. मा. गु., पृ. ५१५)

नारी : के गुण

१. सत्य, धैर्य, सुख, जो इसमें है वह न अन्य के पास।
धर्म इसी के मन का प्रहरी, कर्म इसी की श्वास॥
श्रेय प्रेय की मूर्ति ध्येय की यह आत्मा की ज्ञेय।
महाशक्ति ज्योति विभूति यह नारी सदा अजेय॥
(अतुलकृष्ण गोस्वामी : नारी, पृ. ६१)

२. नारी क्रिया नहीं, वह केवल क्षमा, शान्ति, करुणा है।
(दिनकर की सूक्तियाँ, पृ. ५४)

नारी : के त्याग में सुख

जहाँ भामिनी भोग तहँ, बिन भामिनि कहँ भोग।
भामिनि छूटे जग छुटै, जग छूटे सुख भोग॥
(केशवदास : रामचन्द्रिका, प्रकाश २४)

नारी : क्षत्राणी

निज वर निर्वाचन स्वतन्त्र चिर, स्वयम्वरा-स्वच्छन्द-श्रेष्ठ निधि,
धीर पुरुष की धीर प्रणयिनी जिसे बनाते वृद्ध हुआ विधि।
देख पुरुष छाया प्राँगण में जिसकी लज्जा से नत पलकें,
कभी मिलाकर आँख समर में भय से रिपु की छाती धड़कें॥
(अतुलकृष्ण गोस्वामी : नारी, पृ. २६६)

नारी —गौरव

विधि की सर्वोत्कृष्ट सृष्टि पुरुषत्व यहाँ है।
उसी सृष्टि पर पूर्ण विजय नारीत्व रहा है॥
अबला ही तुम किन्तु विपद मे बल हो तुम ही।
विश्व मरुस्थल है यह इसमे जल हो तुम ही॥

(ताराचन्द हारीत दमयन्ती, प्रस्तावना)

नारी ग्राम्या

निरुज, पुष्ट, सुडौल शरीर है,
अनघ दृष्टि, मन, स्मित प्राण है।
विदित है न इसे कुछ विश्व का,
ललित जीवन मे अति सादगी॥
प्रकृति, भाव, रुचि, स्थिर प्रेम है,
मित न कृत्रिम वेश विचार है।
चपलता, छलना, न विलासिता,
नगर के अभिशाप न हैं इसे॥

(अतुलकृष्ण गोस्वामी नारी, पृ २५१)

नारी चचल—से प्रेम त्याज्य

चचल नारि सो प्रीति न कीजिए, प्रीति किए दुख होत है भारी।
काल परे कछु आन बने कबु नारि की प्रीति है प्रेम कटारी॥
लोहे के घाव दवा से मिटे पर चित्त को घाव न जाय बिसारी।
'गग' कहे सुन साह अकब्बर, नारि की प्रीति अँगार ते छारी॥

(अकबरी दरबार पृ ४३३)

नारी —जित

नारी के निहारत विचार सब भूल जायँ,
नारी के निहारे परिणाम फिरे जात है।
नारी के निहारत अज्ञान भाव आय झप,
नारी के निहारत ही शील गुण धात हैं॥
नारी के निहारत न शूर वीर धीर धरें,
लोहन के मारे जे अडिग ठहरात हैं।
ऐसी नारी नागिन के नैन को निमेष जीत,
भये हैं अजीत मुनि जगत् विख्यात हैं॥

(जनार्णव, बाईस परीषा)

नारी :—तन सघन वन

कामिनि को तन मानों कहिये सघन वन,
उहां कोऊ जाइ सु तो भूलिकै परतु है।
कुंजर है गति कटि केहरी को भय जा मैं
वेनी काली नागनीउं फन कौं धरतु है॥
कुच हैं पहार जहां काम चोर रहै तहां
साधिकें कटाक्ष वान प्राण कौ हरतु है।
'सुन्दर' कहत एक और डर अति तामैं,
राक्षस बदन षाउं पाउं ही करतु है॥

(सुन्दरसार पृ. १७७)

नारी : ताडनीय

ढोल गंवार सूद्र पशु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी॥

(रा. च. मा. गु., पृ. ५०१)

नारी : देवी

सरल गुणमयी सौम्य शुभाचरण द्वारा,
नवादर्श भू पर करती संस्थापित नव।
प्रेम की क्षेम की विभूतियों के साथ अति,
अलौकिक शक्तियों का होता समुद्भव॥
कोई प्रतिकूल अनुकूल दुःख सुख में,
कब कर पाते व्रत से विचलित उसे लव।
पापी सुरापी तक होत पवित्र लख,
सुव्यक्तित्वमयि कहाती तनु देवी तव॥

(अतुल कृष्णगोस्वामी, नारी, पृ. २७५)

नारी : नागरी

नई वेश-भूपा में दर्शित, नव विधि से घन चिकुर प्रसाधित।
काया स्वच्छ परिष्कृत सुरभित आनखशिख सज्जित समलंकृत॥
कृश अतवन्द्र गृह-कुल शीलोचित, भद्र, विदग्ध, सुसंस्कृत, शिक्षित।
अनुशासित, मर्यादित, नियमित दृष्टि, हास, गति, रुचि, मति, संयत॥

(अतुल कृष्णगोस्वामी : नारी, पृ. २५२)

नारी :—निंदक

जो नारी में कामुकता ही देखें वे भी क्या मानव हैं।
वे तो हैं बस चाण्डाल अधम, वे तो बस पूरे दानव हैं॥

इनको नारी ने दी ठोकर, इस से चिढ़ है उनके मन में।
औ चले लगाने कालिख वे नारी के चरित्र सुहावन में॥
ये पण्ड समझते हैं कि हमी कर रहे कला का प्रणयन हैं।
जो नारी पर विष-वमन करें, धिक है ! ऐसे भी जग-जन हैं॥
ये पामर भूल गये हैं क्या, ये भी नारी के जाये हैं।
अपने शरीर मन प्राण सभी इन ने नारी से पाये हैं॥
नारी के बिन तो थे ये सब कुछ मूत्र—कीट का गुच्छ अहो।
नर बन निकले, तो नारी पर करते प्रहार ये तुच्छ अहो॥
ये हैं कृतघ्न, ये हैं कायर, ये निरे बुद्धि के वामन हैं।
ये लोग नरक के कीड़े हैं, दुर्बल मन हैं, दुर्बल तन हैं॥
ए कवियो, नारी को देखो, वह पत्नी है, वह माता है।
वह हिय की कणिका बेटी है, वह जग की भाग्य-विधाता है॥
वह महाशक्ति का मूर्त रूप, वह परम भक्ति कल्याणमयी।
वह सृजन-ब्राह्म क्षण की पावन सुन्दर ऊषा मुसकान मयी॥
ओ मार्ग-भ्रष्ट तुम कलाकार, क्या बन्द तुम्हारे लोचन हैं।
क्यों हृदय तुम्हारे कलुषित हैं ? क्यों दूषित तव अभिव्यंजन हैं॥

(बा कृ श न हम विषपायी जनम के, पृ ५२०-२२)

नारी निंदनीय

नारी के कारण जग में।
यदि हो पति अपयश का भाजन॥
तो सचमुच है घोर पाप का।
फल-स्वरूप यह नारी का तन॥
है धिक्कार योग्य नारी का।
हास्य कटाक्ष वचन वह यौवन॥
बनता है जिसके प्रभाव से।
पुरुष पतित अपकीर्ति निकेतन॥

(रा न त्रि स्वप्न, पृ ५०)

नारी निंदनीय नहीं

१ कई लोग नारी-समाज की निन्दा करते रहते हैं।
मैं कहता हूँ यह निन्दा है किसी एक ही नारी की॥

(दिनकर : नये सुभाषित, पृ ७)

२ सब देते गालियाँ, बताते औरत बला बुरी है,
मर्दों की है प्लेग भयानक, विष में बुझी छुरी है।

और कहा करते, "फितूर, झगड़ा, फसाद, खूंरेजी,
दुनिया पर सारी मुसीवतें, इसी प्लेग ने भेजी।"
मैं कहती हूँ, अगर किया करतीं ये तुम्हें तवाह,
दौड़ दौड़, कर इन प्लेगों से क्यों करते हो व्याह ॥ १ ॥

और हिफाजत से रखते हो इन्हें वद क्यों घर में,
जरा कहीं निकलीं कि दर्द होने लगता क्यों सर में ।
तुम्हे चाहिए खुश होना यह जान, प्लेग वाहर है,
दो घंटे ही सही, मुसीवत से तो फारिग घर है ।
पर उलटे, उठने लगता तुम में अजीब उद्वेग,
हमें अकेले छोड़ किधर को गई हमारी प्लेग ॥ २ ॥

और गजव, खिडकी से कोई प्लेग कहीं यदि झांके,
उठ जाती क्यों एक साथ वीसों ललचायी आंखें ।
अगर प्लेग छिप गयी, खड़े रहते सव आँख विछाये,
कव चिलमन कुछ हटे, प्लेग फिर कव झाँकी दिखलाये।
प्लेग, प्लेग कह हमें चिढ़ाओ, सको नहीं रह दूर,
घर में प्लेग वसाने का यह खूव रहा दस्तूर ।

(दिनकर : मृत्ति-तिलक, पृ. ४८)

नारी :—निन्दा

१. सुंदरि थै सूली भली, विरला वंचै कोइ ।
लोह निहाला अगनि मैं, जलि वलि कोइला होय ॥
(कवीर ग्रन्थावली, पृ. ४०)

२. काल कनक अरु कामिनी, परिहरि इन का अंग ।
'दादू' सव जग जलि मुवा, ज्यौं दीपक ज्योति पतंग ॥
(दादू सन्त सुधासार १, पृ. ४७६)

३. जे स्याने ह्वै जगत मैं, त्रिय सो करत पियार ।
ताहि महा जड़ समुझियै, चित भीतर निरधार ॥—गुरुगोविंदसिंह
(दशम ग्रन्थ, पृ. ८३८)

४. काने खोरे कूवरे, कुटिल कुचाली जानि ।
तिय विसेपि पुनि चेरि कहि भरत मातु मुसुकानि ॥
(रा. च. मा. गु., पृ. २४४)

५. निज प्रतिविम्वु वरुकु गहि जाई । जानि न जाइ नारि गति भाई ॥

काह न पावकु जारि सक, का न समुद्र समाइ ।
का न करै अबला प्रबल, केहि जग कालु न खाई ॥
(रा च मा गु पृ० २६१)

६ बिधिहुँ न नारि हृदय गति जानी । सकल कपट अघ अवगुन खानी ॥
(रा च मा गु, पृ० ३२०)

७ भ्राता पिता पुत्र उरगारी । पुरुष मनोहर निरखत नारी ।
होइ बिकल सक मनहि न रोकी । जिमि रविमनि द्रव रविहि बिलोकी ॥
(रा च मा गु, पृ० ४१९)

८ अधम ते अधम, अधम अति नारी । तिन्ह मे मैं मतिमन्द अघारी ॥
(रा च मा गु, पृ० ४३४)

९ नागनि-सी बेनि कारी, वागुरा-सी पाटी पारी,
मांग ज समारी चोर गली टोय टरना ।
तन-मर जा मो जम जोवन मु चप-भप
ग्रिव कंबु भुज जू मृनाल मन हरना ।
नासा सुक, दत दारुँ, नाभि कूप, कटि सिंह
'किसन' मुकवि जघ रग पग घरना ।
अहो मेरे मन मृग पोन देषि ग्याल-दृग
इहे बन छोरि काहू और ठौर चरना ॥
(किसन बावनी, पद्य २७)

१० नारी नागिनि बाघिनी, ना कीजै विश्वास ।
जो यावी मगन करै, अन्त जु होय विनास ॥
(व्यास वाणी, पृ० १६६)

नारी —निरादर का कुपरिणाम

निष्फल कबहुँ न होत खल ! कुल कान्ता अपमान ।
उमड़त जिनके अश्रु संग, प्रलय पयोधि महान ॥
(द्वा प्र मि कृष्णायन, पृ० ६२१)

नारी परित्यक्ता

१ हम चौराहे के पत्थर पर, सीखे दूध चढाना ।
घर के प्रकट देवता तनु पर अगारे सुलगाना ॥
इसके मन व्यक्तित्व सत्य से ऊँचा बड़ा न भारी ।
सब से श्रेष्ठ, ज्येष्ठ सुन्दर है, सार सकल की नारी ॥
(अतुलकृष्ण गोस्वामी नारी, पृ० १८३)

२. कोमल, करुणोन्मुख नव शिशु को कैसे क्या दुलराए।
भोली मति, विस्मित दुहिता को क्या कहकर समझाए॥
'गेह चलो! घर किधर हमारा?' 'पिता कहाँ? बोलो माँ।
मुँदने नयन मौन रह जाती, ज्यों पत्थर की प्रतिमा॥
(अतुलकृष्ण गोस्वामी : नारी, पृ. १८५)

३. तनया परिणय-योग्य हुई, अव घर वर उचित अपेक्षित।
उच्च वंश के वात न करते, जाल विछाते कुत्सित॥
जीर्ण वृद्ध धन से, छल, वल से व्याह ले गया दुहिता।
वह अयुक्त-पतिका चिर रोती जग ताली दे हँसता॥
(अतुलकृष्ण गोस्वामी : नारी, पृ. १८८)

नारी : पवित्र रूप

नर के वाँटे क्या नारी की नग्न मूर्ति ही आई।
माँ, वेटी या वहिन हाय, क्या संग नहीं वह लाई॥
(मै. श. गु. : द्वापर, पृ. ३०)

नारी : पुरुष के बिना

जहँ लगि नाथ नेह अरुनाते। पिय विन तियहि तरनिहु ते ताते।
तनु धनु धामु धरनि पुर राजू। पति विहीन सव सोक समाजू।
जिय विनु देह नदी विनु वारी। तैसिअ नाथ पुरुप विनु नारी॥
(रा. च. मा. गु., पृ. २७०)

नारी : प्राचीना

सरल सुशीला शुभ प्राचीना।
भगवद् भाव भाविता, आस्तिक, सलज स-सकुच कुलीना।
गुरुजन आज्ञाकारिणी, पति-सुख चिन्तारत, व्रत-लीना॥
साहस-शक्ति-सत्य निष्ठामयि, आडम्वर छल हीना।
भूपण रुचिरा, गेह इन्दिरा, कुल व्यवहार प्रवीणा॥
है इस में नारीत्व प्रकाशित मानवती अमलीना।
सादा, सीधी, शुचि, मर्यादित, विनय भाव से दीना।
जय नारी चिर जिसे सँजोये, शुचि अतीत की वीणा॥
(अतुलकृष्ण गोस्वामी : नारी, पृ. २७८)

नारी :—मति ओछी

ओछी मति युवतीन की, कहै विवेक भुलाय।
दशरथ रानी के वचन, बन पठए रघुराय॥
(वृन्द सतसई, दोहा ६६८)

नारी —महत्त्व

१ तुम भूल गये पुरुषत्व मोह में कुछ सत्ता है नारी की।
समरसता है सम्बन्ध बनी अधिकार और अधिकारी की।।
(प्रसाद कामायनी, पृ १६२)

२ जन्म लेती कोख से गतिप्रिय पुरुष की पीढ़ियाँ।
ऊर्ध्वगति में वह पुरुष के हित बनाती सीढ़ियाँ।।
(नरेन्द्र अग्निशस्य, पृ ४६)

नारी युवती

नाना कलाएँ लिपि, शिल्प, शास्त्र,
विद्या अनेकों रस ग्रन्थ सीखे।
कैसे करे सद् उपयोग जो हो
सन्तोष एवं स्व प्रकाश भू में।।
उत्साह-पूर्वक कर लोक-सेवा,
सौम्या सदाचारमयी सुशीला।
पाती समादर स्व स्वभाव द्वारा,
माँ के यहाँ, जा पति के यहाँ भी।।
(अतुलकृष्ण गोस्वामी नारी, पृ २५७ ८)

नारी —रक्षा

नारी के भीतर असीम जो एक और नारी है,
सोचा है, उसकी रक्षा पुरुषों में कौन करेगा ?
(दिनकर की सूक्तियाँ, पृ ५२)

नारी —वध

पातक जदपि नाथ ! जग नाना। अबल-वध सम पाप न आना।।
(द्वा प्र मि , कृष्णायन, पृ १८)

नारी विदुषी

उच्चतम शिक्षा इसे शुभ दी गई, है हुआ इसका प्रकाश विकास सब,
जो पढ़ा उसकी इसे उपयोगिता, और इसका देश को अति लाभ है।
ज्ञान है विज्ञान, दर्शन का इसे, निपुण बहु कोमल कलाओं में हुई,
भद्र नम्र सुशील सदय सुज्ञ है, सादगी इसको पसन्द विशेष है।
ध्यान से [illegible]य करती निसकुच, साथ में स्वाध्याय निज अभ्यास के,
सावित्री [illegible]क्षा मिली इसको सही, बनी विदुषी यश समृद्धि समाज की।।
(अतुल कृष्ण गोस्वामी नारी, पृ २७०)

नारी :—विषयक दुविधा

मन कहता है इस भूतल पर,
सकल सुखों की नारी है निधि।
इस संसृति के संचालन को,
नारी रच कर धन्य हुआ विधि।
किन्तु वहीं कोई कहता है,
नारी है इस जग का बन्धन।
जीव ब्रह्म के बीच आवरण,
विरचा है विधि ने नारी—तन ॥

(रा. न. त्रि. : स्वप्न, पृ. २१)

नारी : वृद्धा

सुना के कहानी, कथा बालकों को,
सजाती नये उच्च संस्कार धी में।
सदाचार के पाठ देती सचेष्ट,
स्व आचार से त्याग सौजन्य द्वारा ॥

(अतुल कृष्ण गोस्वामी : नारी, पृ. २५२)

नारी : वैश्या

निश्छला, शान्त, विश्वास श्रद्धामयी,
साधु, भोली, कृपालु स्वाभावा—मृदु।
रूढ़ियो, रीतियों, अर्चना में रता,
विश्व के छद्म का है इसे क्या पता ॥

(अतुल कृष्ण गोस्वामी : नारी, पृ. २६७)

नारी :—व्यथा का जानकार

नारी का उर ही नारी की व्यथा जान सकता है माँ।
नर का उर नारी उर की क्या कथा जान सकता है माँ ॥

(श्यामनारायण पांडेय : जौहर, पृ. २०२)

नारी : शूद्री

राष्ट्रीय—जातीय—समाज की ये,
काया अरुणा रखती सचेष्टा।
जन्मी हरिः श्रीपद से अतः क्यों,
पूज्या न ये तत्पद—तुल्य भू में ॥

(अतुल कृष्ण गोस्वामी : नारी, पृ. २६०)

नारी —शोषण

१ नारी तेरा नारी होना ही जग में है पातक भारी।
क्या न ईश ने सिरजी केवल नर को लेकर दुनिया सारी॥
(शरणबिहारी गोस्वामी पाषाणी, पृ ६४)

२ कष्ट तो नारी का ही भाग, बना है नर उसके हित नाग।
(शरणबिहारी गोस्वामी, पाषाणी, पृ ११३)

नारी श्रद्धामयी

नारी ! तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास रजत नग पग तल में।
पीयूष—स्रोत सी बहा करो,
जीवन के सुन्दर समतल में॥
(प्रसाद • कामायनी, पृ १३)

नारी श्रमिका

करती कठोर श्रम, तोड़ती शिला,
महि खोदती, विपुल बोझ लादती।
रहती स्वतन्त्र, नर सी उपार्जिका,
करती स्व कर्म सब स्वाभिमान से॥
(अतुल कृष्ण गोस्वामी • नारी, पृ २६९)

नारी सम्मान

नारी ही सम्पूर्ण राष्ट्र है, धर्म कर्म संस्कृति युग चेता।
जन्म सिद्ध जन की समाज की देश जाति मानव की नेता॥
प्राण दान कर भी न चुका सकते ऋण हम इस उपकारी का।
जब अपना अभिमान नष्ट हो, रक्षित स्वाभिमान नारी का॥
(अतुल कृष्ण गोस्वामी नारी, पृ ३०७)

नारी सबला

अबलाएँ है शक्ति रूपिणी आत्मिक बल में।
इस सिद्ध कर दिया उन्होंने समरस्थल में॥
आधे अधिकार उचित ही उन्हें मिला है।
मानव । पशु—भाव उन्हीं के हाथ हिला है॥
छोटों मां और बड़ों की वे बेटी हैं।
की बहन, कहा किस की चेटी हैं ?
(मै श गु राजा-प्रजा, पृ ३४)

नारी : सवाक् सुमन

सुमन मूक सौन्दर्य और नारियाँ सवाक् सुमन हैं।

(दिनकर की सूक्तियाँ, पृ. ५३)

नारी : सुंदर

रूपसी नारी प्रकृति का चित्र है सब से मनोहर।

(दिनकर की सूक्तियाँ पृ. ५५)

नारी : सुखवर्षिणी

नारी ! तुम इस धरती पर, सुख बरसाने आई हो।
सब के जीने का सम्बल, संगीत साथ लाई हो ॥

(अतुलकृष्ण गोस्वामी : नारी, पृ. ५०)

नारी : से कलंक

कदे न सौभै सुन्दरी, सनकादिक के साथि।
जब तब कलंक लगाइसी, काली हाँडी हाथि ॥

(गोरख बानी पृ. ७७)

नारी : स्फूर्तिदायिनी

बाहर चूर—चूर हो कर नर बहुधा घर आता है।
नारी का मुख वहाँ निरख वह फिर नवता पाता है ॥

(मै. श. गु. : जयभारत, पृ. १७९)

नाश और निर्माण

हर विनाश अपने में नव निर्माण लिए आता है।
इसी लिए तो हर नश्वर, अविनश्वर बन जाता है ॥

(बुद्धमल्ल : आवर्त, पृ. ११२)

नाश और विवेक

जब नाश मनुज पर छाता है, पहले विवेक मर जाता है।

(दिनकर की सूक्तियाँ, पृ. १०८)

निंदक

१. निन्दक नियरे राखिए, आँगन कुटी छवाय।
बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करै सुभाय ॥

(कबीर वचनावली, पृ. १३९)

२. (दादू) निंदक बपुरा जिनि मरै, पर उपगारी सोय।
हम कूँ करता ऊजला, आपण मैला होइ ॥

(सन्त दादू,'' पृ. १३१)

३ धोबी धोवै कापडा (रे), निंदक धोवै मैल।
भार हमारा ले चलै, (ज्यूं) मगिजाग को बैल ॥
(बषना जी की वाणी, पृ ६७)

४ औरन के जो बहुत है, तो सो दोस सुनाय।
यह औरन मा कहहिगो, दोस निहारहु जाय ॥
(म प्र द्वि वि का मा, पृ २७१)

५ मिले सभी में दोष, एक ईश निर्दोष है।
अपना जिन्हें न होश, दोष लगावें और को।
(मेलाराम शिक्षासहस्त्री, पृ ९२)

६ फूला म है वन भरा, गूलर टोहन गन्द।
गुण मे अवगुण लावते, जो नर है मतिमन्द ॥
(मेलाराम शिक्षा सहस्री, पृ ६५)

निंदक की हिंसा

निन्दक मारिए श्राम न कीजै।
यहै धर्म नित प्रति स्मृति गावै सन्तन को सुख दीजै ॥
(परमानन्द सागर, पृ १६७)

निंदा

१ आय कै जगत बीच काहू सो न करै बैर,
काऊ कछू काम करै इच्छा जो न जोई की।
ब्राह्मन की क्षत्रिन की बनिन की सूद्रन का,
अन्यज म्लेछ की न ग्वाल की न भाई की ॥
भले की बुरे की 'हरिचन्द' मे पतित हू की,
थोरे की बहुत की न एक की न दोई की।
चाह जो तू निन्दा भयो जग बीच मेरे मन,
तौन तू कबहूं कहूं निन्दा करू कोई की ॥
(भा ग्र दू ख, पृ १५७)

स गव करती प्रहार तो
न ... वचनो कदापि है,
न दुर्ग श्वेत-चरित्र जीव की
चरित्र है अपवाद से बचा।
(अनूप वर्द्धमान, पृ ५४१)

३. न वस्तु निन्दा-सम शीघ्रगामिनी,
तथैव ऐसी सरला न अन्य है,
प्रसार होता इस-सा न अन्य का,
न व्याप्ति होती पर-वस्तु की यहाँ।

(अनूप : वर्द्धमान, पृ. ५४१)

४. सन्त की बातें बहुत कर सत्य होती हैं।
एक का तो साक्ष्य किंचित् हम स्वयं भरते;
उन्हें भी निन्दा-श्रवण में रस उपजता है,
जो किसी की भी स्वयं निन्दा नहीं करते।

(दिनकर : नये सुभाषित, पृ. ३८)

निंदा : घोर पाप

निन्दा-सम पातक नहीं, नहीं सत्य सम धर्म।
लज्जा-सम भूषण नही, नही फ़र्ज सम कर्म ।।

(शिवदुलारे त्रिपाठी 'नूतन)'

नियति : नटी

नाचती है नियति नटी सी
कन्दुक क्रीड़ा सी करती,
इस व्यथित विश्व आंगन मे
अपना अतृप्त मन भरती।

(प्रसाद : आँसू, पृ. ५१)

निरर्थक

इन को मानुप जन्म दै, कहा कियौ भगवान।
सुन्दर मुख बोल न सकै, दै न सकै धनवान ।।

(वृन्दसतसई. दोहा ६४२)

निराशा

१. मनुष्य चाहे जितना सुखी रहे,
अनन्त चाहे उसका प्रमोद हो,
समाप्त आशा उसकी हुई जभी,
ज्वरा तभी आकर कंठ दाबती।

(अनूप : वर्द्धमान, पृ. ३२३)

२. जिसे न कोई सुख है न शान्ति है,
न जीवनाशा जिसमें स-कान्ति है,

जिसे किया वेष्टित नित्य भ्रान्ति ने,
हुआ न प्राणी वह दोष जो सना।

(अनूप वर्द्धमान, पृ ५४२)

निराशा—त्याग

१ मन हो निराश, यह महापाप, चिर आशा तेरा भव्य पुण्य !
जब विद्यमान उर में नर के, उस पर ब्रह्म की प्रखर कान्ति,
फिर क्या निराश हो विचलित हो, मानव ! फिरता खो अमर शान्ति ?

(श्रीमन् नारायण रजनी मे प्रभात का अकुर, पृ ३)

२ रोते हैं हँसने को, साथी, सोते हम जगने को।
मरते हैं जीवन को, भाई, गिरते हम उठने को ।।

(श्रीमन् नारायण रजनी मे प्रभात का अकुर, पृ ७३)

निर्गुण सगुण

तुम ईश को निगु ण समझते, हम सगुण भी जानते।
हा, अब इसी से हम परस्पर शत्रुता हैं मानते ।।

(मै श गु भारत भारती।)

निर्दोष कोई भी नहीं

शशि कलक रावण विरोध हनुमत से वनचर।
कामधेनु ते पशू जाय चिन्तामणि पत्थर ।।
अतिरूपा तिय बाँझ गुनी को निधन कहिये।
अलि समुद्र सो खारि कमल बिच कटक लहिये ।।
जाये जु व्यास मेअटूनी दुर्वासा आसन डिग्यो।
'कवि गद' कहे सुन रे गुनी कोउ न विधि निमल गढ्यो ।।

(स राम कवि हिन्दी सुभाषित, पृ १३३)

निर्दोष ही निर्भय

न भीति शक्ता न अनेक दर्प ही
हिला सके चित्त अदोष जीव का,
बना रहा सो अपराध-हीन ही
बडे भले ही नर अन्य हो यहाँ।

(अनूप वर्द्धमान, पृ ५५५)

निर्दोषता कहाँ ?

धर्म पाप-परिभूत, सभ्यता आडम्बर-जननी है।
लाञ्छन-सहित सुधाधर है, बाँसो में अग्नि बची है ।।

काञ्चन में काठिन्य, गुणों में दारिद बसा हुआ है ।
सत्यों में कटु-उक्ति, संयम में साधन फँसा हुआ है ॥
(उ. शं. भ. : तक्षशिला, पृ. ६४)

निर्धन और धनी

१. जो निरधन सरधन कै जाई। आगे बैठा पीठ फिराई।
जो सरधन निर्धन कै जाई। दीया आदर लिया बुलाई।
निरधन सरधन दोनों भाई। प्रभु की कला न मेटी जाई॥
—कबीर
(सन्तसुधासार, पृ. ९२)

२. निज सपनहुँ नहिं मानहीं निर्धन जन को कोय।
धनी जाय पर घर तऊ सुर सम पूजा होय॥
(दी. द. गि. ग्र., पृ. ७६)

निर्बल और सबल

१. कैसे निबहै निब्रल जन, करि सबलन सों गैर।
'रहिमन' बसि सागर विषै, करत मगर सों बैर॥
(रहिमन विलास, पृ. ५)

२. मर मिटे पिट गये सहा सब कुछ
पर निबल की सुनी गई न कहीं।
है सबल के लिए बनी दुनिया,
है निबल का कहाँ निबाह नहीं।
आप आँखें खोल करके देखिए,
आज जितनी जातियाँ हैं सिर धरी।
पेट में उनके पड़ी दिखलायेंगी,
जातियाँ कितनी सिसकती या मरी॥
(हरिऔध : पद्यप्रमोद, पृ. १३२-१३८)

३. सकत कि परसि कुरंग-सुत, कबहुँ सिंह-सुत केश।
सकत कि बंदी भेक करि, कबहुँ काल भुजगेश॥
(द्वा. प्र. मि. : कृष्णायन, पृ. ६७३)

निर्बल : में गुण दुःखद

होते अधिक गुण निबल पै, उपजत बैर निदान।
मृग मृगमद चमरी चमर, लेत दुष्ट हत प्रान॥
(सतसई सप्तक, वृन्द सतसई, दो. ५९८)

निर्बल रक्षा

शरणागत, मद-मत्त, तिय, क्लीब, निरस्त्र, अनाथ।
इन्हें घालिबे नहिं कबौं मरद उठायो हाथ॥
(वियोगी हरि वीर सतसई, पृ १०९)

निर्बल सहायक

अबल हु के अवलम्ब ते, पूर्ण होता है आश।
पाय सहारा मूल का, मोमहु करत प्रकाश॥
(स रामकवि हिन्दी सुभाषित, पृ १४४)

निर्बल से विरोध

हीन जानि न विरोधियैं, वह तो तन दुखदाय।
रजहू ठोकर मारियैं, चढ़ै सीस पर आय॥
(सतसई सप्तक, वृन्द सतसई, पृ ३२१)

निर्बलता दोष

हरत दैवहु निबल अरु, दुरबल ही के प्राण।
बाघ सिंह को छाडि कैं, देत छाग बलिदान॥
(सतसई सप्तक, वृन्द सतसई, दोहा १७८)

निर्भयता

१ 'कबीरा' मैं तो तब डरो, जो मुझ ही मे होय।
मौच बुढ़ापा आपदा, सब काहू में सोय॥
(सन्त सुधासार, पृ १७४)

२ जीना हो तो मरना सीखो, निज प्रण पर मर मिटना सीखो,
डर डर कर मत समय गवाओ, मर कर भी प्रिय अमर कहाओ।
(श्रीमन् नारायण रजनी मे प्रभात का अंकुर, पृ ६)

३ जग डराता है तभी तक, जिंदगी से मोह जब तक।
मैं मरण से प्यार करता, किस लिए जग से डरूंगा॥
(हरिकृष्ण प्रेमी रूपरेखा, पृ १८)

४ मत्यु द्वार पर खडी डराती, मरने से डरने वाले को।
और, अमरता पहना जाती, जयमाला मरने वाले को॥
(नरेन्द्र अग्निशस्य, पृ ३३)

निर्माण

इसी भूमि पर इसी धूलि पर स्वर्ग और अपवर्ग बनेगा,
इसी पंक मे इसी अंक मे पंकज मानव वर्ग खिलेगा।

इसी रंक से इसी अंक से जन-जन ही सम्राट बनेगा,
इसी दीन से इसी हीन से जन-जन रूप विराट बनेगा ॥

(ब्रह्मदत्त : जयमानव, पृ. १९९)

निर्वेद

अब जो गले का हार है, कल खटकता बन शूल है।
कब तक समय अनुकूल है ? कल फूल, अब वह धूल है।
यह नियम है इस वाटिका का, मन ! विजन वन में चलो ॥

(नरेन्द्र शर्मा : मिट्टी और फूल, पृ. १०)

निवास : के अयोग्य स्थान

आपन कोउ कुटुम्ब नहीं जहँ नाहिं सुभूपति की रजधानी।
नाहिं जहाँ पर वेद पढ़ो अरु नाहिं जहाँ पर-स्वारथ दानी ॥
ज्ञान की न चरचा जहाँ पै 'जिन्ह पै गिरधारी' न नीति की बानी।
भूलहुँ ना बसिये जेहि धाम न सागर औ गुन आगर प्रानी ॥

(गया-निवासी पण्डित गिरधारीलाल शर्मा)

निश्चिन्तता : साधन

हुन्नर हाथ अनालसी, पढ़िबो करिबो मीत।
सील पंच निधि ये अखय, राखे रहो नचीत ॥

(बुधजन सतसई, पृ. २८)

निष्ठा

मिटे राजभय जहाँ, मिले धन और प्रतिष्ठा,
रख सकते हैं वहाँ विरल जन ही निज निष्ठा।

(मै. श. गु. : काबा और कर्बला पृ. ७६)

निस्तेज : का अपमान

बिना तेज के पुरुष की, अवसि अवज्ञा होय।
आगि बुझै ज्यों राखि कौं, आनि छुवै सब कोय ॥

(वृन्द सतसई, दोहा ५१२)

निस्सन्तान : का कर्त्तव्य

यदि अपुत्र हो ले लो गोद, कोई संस्था संघ समोद।
जहाँ राष्ट्र-सुत सौ-सौ छात्र, श्रद्धांजलि दे बने सुपात्र ॥

(मै. श. गु. : हिंदू, पृ. १४९)

नीच

सिक्षा, श्रेष्ठ सगतिहु पायी । नीच कि सकत स्वभाव विहायी ?

(द्वा प्र मि . कृष्णायन, पृ ७४३)

नीच की कुटेव

लहसन गाठ कपूर के नीर मे बार पचासक धोइ मँगाई ।
केसर के पुट दे दे कै फेरि सु चन्दन ब्रिच्छ की छाँह सुखाई ॥
(गग जू) मोगरे माहि लपेट धरी पर बास सुबास जु आपन आई ।
ऐसे हि नीच कूँ ऊँच की सगत कोटि उपाय कुटेव न जाई ॥

(अकबरी दरबार · , पृ ४३५)

नीच छिद्रान्वेषी

गुण मे औगुण खोज ही हिये न समुझै नीच ।
ज्यो जूही के खेत मे सूकर खोजत कीच ॥ —अगरकवि

(शिवसिह सरोज)

नीच साधु निदक

साधुन की निदा बिना नही नीच विरमात ।
पियत सकल रस काग खल बिनु मल नही अघात ॥

(दो द गि प, पृ ७६)

नीति अत्याज्य

नीतिवान नीति न तजै, सहै भूख तिस त्रास ।
ज्यों हसा मुक्ता विना, वनसर करै निवास ॥

(बुधजन सतसई, पृ ३५)

नीति और धन

नीति तजै न सत पुरुष, जो धन मिले करोर ।
कुल तिय बनै न कचनी, भुगतै विपदा घोर ॥

(बुधजन सतसई, पृ ३५)

नीति · का सार

नीति-शास्त्र का सार यह, मन में जन निर्धार ।
सदा सर्वथा सब कहीं, सब का कर उपकार ॥

—रसिकेश

नीति सपूर्ण

हृदय-स्रोत बहता रहे, प्रेम-सलिल से पूर्ण ।
सेवा म नित रत रहे, यही नीति सम्पूर्ण ॥

(श्रीमन् नारायण रजनी मे प्रभात का अकुर, पृ १०९)

नीति : सर्वोत्तम

सब नीतिन की नीति यह, राज-रंक जो कोइ।
समय देखि कै अनुसरै, अन्त सुखी वह होइ ॥

(याज्ञिक संग्रह, ५७४।३१)

नूतन-पुरातन

पुरातनता का यह निर्मोक,
सहन करती न प्रकृति पल एक।
नित्य नूतनता का आनन्द,
किए है परिवर्तन में टेक ॥

(प्रसाद : कामायनी, पृ. ५५)

नृप-कर्त्तव्य

जिसका केवल ध्येय प्रजा का सुखमय प्राण नहीं है,
भाग्यहीन उस नृप का जग में थिर कल्याण नहीं है।
प्रजा-शक्ति ही राजशक्ति है प्रजा राज का धन है,
प्रजाशक्ति से हीन राज का निराधार जीवन है।
नृपति प्रजा का संरक्षक है नहीं निरंकुश स्वामी,
अपने नहीं प्रजा के सुख का राजा है अनुगामी ॥

(रा. न. त्रि. : पथिक ६७)

नेता

तुम सुकरात और लेनिन से, अक्षर-अक्षर में दीखो।
कर्णधार बनना है यदि तो, गाँधी जी से कुछ सीखो ॥
सीखो जीवन भर तप करना, छाती में गोली खाना।
तुम सुभाष की तरह देश का झंडा ऊँचा फहराना ॥
डरती रहे मौत ही तुम से तुम न मौत से कभी डरो।
तुम समाज के कर्णधार हो धरती का उत्थान करो ॥

(रघुवीर शरण मित्र : भूमि के भगवान्, पृ. ६७-८)

नेता : आधुनिक

वस्तु विदेशी पहिनो, खाओ, देश-दैन्य को खूब बढ़ाओ।
जैसे-तैसे कर लो नाम, यही लीडरों का है काम ॥

(रा. च. उ. : राष्ट्रभारती, पृ. ४८)

नेता और कवि

नेता निमग्न दिन-रात शान्ति-चिंतन में।
कवि-कलाकार ऊपर उड़ रहे गगन में॥
(दिनकर की सूक्तियाँ, पृ २३)

नेता का आडम्बर

बाहर सभा में देखिये गद्दर का ठाट है,
घर में मगर विलायती सब ठाट-बाट है।
मिलते हैं चुपके चुपके गवर्नर से लाट से,
लैक्चर में मुंह पे रहता सदा 'बायकाट' है॥
(बेढब बनारसी बेढब की बहक, पृ ९८)

नेता चतुर

बातें रख-रख बात-बात में बात बनावें।
रग बदल कर नये-नये बहुरग दिखावें॥
कर चतुराई परम चतुर नेता कहलावें।
मीठे मीठे वचन बोल बहुधा बहलावें॥
जो करें जाति हित नाम को, वह भूख हो नाम के।
वे बडे काम के क्यों न हो, हैं न देश के काम के॥
(हरिऔध पद्य प्रसून, पृ १८५)

नेता झूठा

१ घी मिलने की चाह रखे औ वारि विलोवे।
जिसकी नीची आँख जाति का गौरव खोवे॥
इस प्रकार का नहीं चाहिए हम को नेता।
जो हो रवि का दास नाम का भूखा होवे॥
(हरिऔध पद्य प्रसून, पृ ४९)

२ जोर जोर से वह चिल्लावे, माल दूसरों का खा जावे।
लेकर के फिर कभी न देता, ऐ सखी बन्दर, ना सखि नेता॥
(बरसाने लाल रग और व्यग्य, पृ ८)

नेता सच्चा

१ जिसके हो ऊँचे विचार पक्के मनसूबे।
जो होवे गम्भीर भीड के पडे न ऊबे॥
हमें चाहिए आत्म-त्याग-रत ऐसा नेता।
रहे जाति-हित मे जिसके रोयें तक डूबे॥
(हरिऔध पद्य प्रसून, पृ ४६)

२. जिसका ज्ञान भावनामय हो सदुद्देश्य-साधन में तत्पर,
जिसका धर्म लोक-सेवा हो जिसका वचन कर्म का अनुचर ;
सदा लोक-संग्रह में जिसकी हो प्रवृति हो वृत्ति अचंचल ;
सदा ध्येय के सम्मुख जिसका प्रगतिशील हो एक-एक पल।
सागर-सा गंभीर हृदय हो गिरि-सा ऊँचा हो जिसका मन,
ध्रुव-सा जिसका लक्ष्य अटल हो दिनकर सा हो नियमित जीवन;
जिसकी आँखों में स्वदेशी का अति उज्जवल भविष्य हो चित्रित,
इच्छा में कल्याण वसा हो चिन्ता में गौरव हो रक्षित।
तेज हास्य आनन्द सरलता मैत्री करुणा का क्रीड़ा स्थल,
हो सच्चा प्रतिविम्ब हृदय का प्रेमपूर्ण जिसका मुख मण्डल ;
उच्च विचार-भार से जिसके चरण मन्द पड़ते हों भू पर,
अन्तर्दृष्टि वहुत व्यापक हो भूमंडल हो जिसके भीतर।
वह समाज वह देश राष्ट्र वह जिसका हो ऐसा जननायक ॥
होगा क्यों न सकल सुख संकुल विश्ववंद्य आदर्श-विधायक ॥

(रा. न. त्रि. : स्वप्न, पृ. ६६-६७)

नैकटाई

काल-चाल से हैं खुले, तेरे भाग्य विचित्र ।
भारत में तू हो गई, कंठी तुल्य पवित्र ॥
तुझे कंठ में देखकर, बँधता है यह ध्यान।
बन्दी अपने हाथ से, हुई भरत-सन्तान ॥
पड़ी तुझ लख हृदय पर, जाता है हिय काँप ।
मानो छाती पर पड़ा, लोट रहा है साँप॥
गले लिपट तू कह रही, मानों वचन भविष्य।
ढाँकेंगे तन अन्त में तुझ से तेरे शिष्य ॥

(कामता प्रसाद गुरु)

नौकरशाही

कोई रहा न भू पर तू भी नही रहेगी नौकरशाही ।
फिर तेरे दुर्गुण को यह जग क्यों न कहेगा नौकरशाही ॥
स्वार्थ हेतु परमार्थ गँवाना भला नहीं है नौकरशाही।
अस्त्रहीन पर शस्त्र चलाना कला नही है नौकरशाही ॥

(रा. च. उ. : राष्ट्र भारती, पृ. ३६)

नौकरी बुरी

नृप सा सचिव सों मन मुसाहिब-गनन सों डरते रहो।
पुनि जिटहु जे अतिपास के तिनकों सदा कर्ते रहो॥
मुख लखत बीतत दिवस निसि भय रहत संकित प्रान है।
निज उदर-पूरन हेतु सेवा स्वान वृत्ति समान है॥
(भारतेन्दु नाटकावली, पृ २४७)

न्यायशील

बस, पक्षपात से न्यायशील डरते हैं।
आत्मा का कभी विरोध नहीं करते हैं॥
(मैं श गु किसान, पृ ४२)

न्यायाचरण

न्याय चलत बिगरै कछू, तो न करो अफसोस।
धार परत जो राजपथ, तो न देत कोउ दोस॥
(सतसई सप्तक, वृन्द सतसई, दोहा ४११)

न्यायाधीश

ऐसा न्याय करो तुम जैसा न्याय किया था जहाँगीर ने।
ऐसा न्याय करो तुम जैसा न्याय किया तुलसी कबीर ने॥
न्याय-तुला पर सभी मुकदमे तुम सोने की तरह तोलना।
खाकर शपथ फैसला देना, तुम कुर्सी पर सत्य बोलना॥
हुकुम सुनाते समय रंच तज पंचेश्वर ? ईश्वर से डरना।
हम ने तुम को पंच बनाया तुम हम पर अन्याय न करना॥
(रघुवीर शरण मित्र भूमि के भगवान, पृ ५८)

पंच

रंक करै राउ अरु राउ को करत रंक,
दूबल को मेटि देत आवति न अंच है।
काहू सो न सकै चाहै सोई करि सकै,
करि दया उपकार रहै पापन ते बच है॥
तिन को गुपाल राजा सौंपि देति न्याउ,
तिन्हैं माँझ आप बोलै परमेस्वर हूँ सच है।
आवति न अंच अरु करत न रंच नहीं,
जानै परपंच तिन्हैं कहियतु पंच है॥
(गुपाल राय दंपतिवाक्य विलास, पृ ४३)

पंडित

पर—गुण को गाते रहते हैं।
दोष किसी का नहिं कहते है॥
निज कुल को करते हैं मंडित।
क्यों सखि सुरगण ? नहिं सखि पंडित॥
(रा. च. उ. : पहेली)

पंडित : ज्ञान-प्रकाशन

पण्डित हो तो सुनावहु वेदू। बिन पूछे पाइय नहिं भेदू॥
हो बाह्मन औ पंडित, कहु आपन गुन सोइ।
पढ़े के आगे जो पढ़ै, दून लाभ तेहि होइ॥
(जायसी ग्रन्थावली, पृ. ३१)

पंडित : झूटा

बूझ न पावे धर्म—मर्म बकवाद मचावे।
सार वस्तु को वचन चातुरी में उलझावे॥
इस प्रकार का नहीं चाहिए हम को पंडित।
जो गौरव के लिए शास्त्र का गला दबावे॥
(हरिऔध : पद्य-प्रसून, पृ. ४८)

पंडित : नाम के

विद्या-दान न देत हैं, जो पंडित—पन धार।
छागी-गल-थन-से वृथा, तिनके जन्म असार॥
(सं. रामकवि : हिन्दी सुभाषित, पृ. ४०)

पंडित : सच्चा

देश काल को देख चले निजता नहिं खोवे।
सार वस्तु को कभी पखंडों में न डुबोवे॥
हमें चाहिए समझ बूझ वाला वह पंडित।
आखें ऊँची रखे कूप—मंडूक न होवे॥
(हरिऔध : पद्य प्रसून, पृ. ४५)

पगड़ी और सम्मान

पाघ बजाजाँ पूछ पी, लेसो मोल मँगाड़।
ईजत किण विध आँणसो, पूछूं हेला पाड़॥
(बाँकीदास ग्रन्थावली, ३, पृ.२६)

पड़ौसी

१. पाड़ोसी सू रूसणां, तिल तिल सुख की हांणि।
पंडित भए सरावगी, पाणी पीवें छाँणि॥
(कबीर ग्रन्थावली पृ. ३७)

२ रक्खो पडोसियो का ध्यान, है विधर्मियो मे भी ज्ञान ।
यही चाहते हैं भगवान, भजें उन्हे बहु-विध सन्तान ॥
दूर करो अनुचित आवेश, लो अतीत से कुछ उपदेश ।
पकड भूत—भावी के छोर, देखो वर्तमान की ओर ॥
(मै श गु हिन्दू, पृ १३२-३)

पडोसी क्रूर

मारै मोह निसोगा, डरै न अपने दोस ।
केरा केलि करै का, जौं भा बेरि परोस ॥
(जायसी ग्रन्थावली पृ. २१)

पडोसी से प्रेम

कहाँ खोजते फिरते प्रभु को, वह तो छिपा पडोसी घर ।
मित्र ! भूल कर जिस पर तुमने, कभी न डाली नेह-नजर ॥
(श्रीमन् नारायण रजनी मे प्रभात का अकुर, पृ ११२)

पति—कर्त्तव्य

जा सग ब्याह होत जग माहीं, पन्थ निबाहत सो धरि बाहीं ॥
जनम सघाती होत सो जा के सग बियाह ।
जैस परै तस अँगवै, धन को करे निबाह ॥
(नूर मुहम्मद इन्द्रावती, नहान खड, हिन्दी प्रेम गाथा काव्य सग्रह, पृ १०६)

पति—पत्नी

पतिनी पति बिनु दीन अति, पति पतिनी बिनु मन्द ।
चन्द बिना ज्यों जामिनी, ज्यो बिन जामिन चन्द ॥
(केशवदास रामचन्द्रिका, प्रकाश, पृ १३)

पति—पत्नी—समानता

पातिव्रत यदि पुण्य तत्त्व है, पत्नीव्रत क्यों नही धर्म है ?
नर—नारी की एक आत्मा, मन है सदृश, समान कर्म है ॥
एक जान कर भी मन—चाहे मुक्त—भोग का अधिकारी है ।
और विवशता से अभिशापित तो भी व्यभिचारिन नारी है ॥
(शरण बिहारी गोस्वामी पाषाणी, पृ ९३)

पति—वियोग

वारि विहीन मीन रह सकती ।
विधु—वियोग ज्योत्स्ना सह सकती ॥

रूप बिना रह सकती छाया।
रह सकती पति बिना न जाया॥
अर्द्धांगी नर की नारी है। वह कभी न उससे न्यारी है।
(मै. श. गु. : कविता कलाप, पृ. ४३)

पतिव्रता

१. पतिव्रता पति को भजै, और न आन सुहाय।
सिंह बचा जो लंघना, तौ भी घास न खाय॥
(कबीर वचनावली, पृ. ११८)

२. रंग होय तो पीव को, आन पुरुष विष रूप।
छांह बुरी पर घरन की, अपनी भली जु धूप॥ चरणदास
(संत सुधासार, २, पृ. १५६)

३. पवित्र से भी अति ही पवित्र जो
समुज्ज्वला मौक्तिक—ओस-बिन्दु-सी,
वही धरा में अकलंक चन्द्रमा
पतिव्रता चारु चरित्र स्तुत्य है।
(अनूप : वर्द्धमान, पृ. ५४८)

४. गंग, वर्ण्यो तू ने उदधि, मिली एक रस—रंग।
खारो जीवन ह्वै गयो, तदपि तज्यो नहिं संग॥
(किशोरीदास वाजपेयी : तरंगिणी पृ. १६)

पति—सेवा

१. जो अबला करती है अपने पति की सेवा में संकोच।
केवल भू पर भार—भूत है उस कुटिला का जीवन पोच॥
जिस ललना ने जान लिया है, सर्वोपरि पतिव्रत धर्म।
उस अनघा से कभी न होंगे, कुलटा के से घोर कुकर्म॥
(नाथूराम 'शंकर' : वायस विजय, पृ. १५)

२. फिरै चारिहु धाम करै व्रत कोटि, कहा बहु तीरथ तोय पिये तें।
जप होम करै अनगंत कछू, न सरै नित गंग नहान किये तें॥
कहा धेनु को दान सहस्रन वार तुला गज हेम करोर दिये तें।
'रघुवंश कुमारी' वृथा सब है जब लौं पति सेवै न नारि हिये तें॥
(गि. द. शु. : हिं. का. को, पृ. ९३)

पत्नी

दारा मरै गृहस्थ की, खाना तिसे खराव।
राखै रांड फकीर जो, रहै न तिनकी आव॥
(गिरिधर : कुंडलिया, पृ. ८५)

पत्नी और पति

'रत्नावलि' भवसिंधु मधि, तिय जीवन की नाव।
पिय केवट बिन कौन जग, खेइ किनारे लाव॥
(रत्नावली, दोहा ३३)

पत्नी —का अपमान

लखि निज तिय अपमान जासु मुख मषीवर्णन नहिं होय।
रोष—वेग—वश, मत्य कहहिं हम, जानहु मनुज न सोय॥
(म प्र द्वि द्वि का मा, पृ २५५)

पत्नी का त्याग अनुचित

सीय त्याग पाप ते हिये सुट्टो महा डरौं।
और एक अश्वमेध जानकी बिना करौं॥
(केशवदास रामचन्द्रिका, प्रकाश ३५)

पत्नी की रक्षा

१ यह तो अध बीसहूँ लोचन, छल बल करत आनि मुख हेरी।
आइ सृगाल सिंह-बलि चाहत, यह मरजाद जाति प्रभु तेरी॥
(सूरदास राम चरितावली, पृ १०१)

२ तेरी प्रिया की लाज जिसने सामने तेरे हरी।
तेरा स्वजन यदि है वही तो शत्रु तेरा कौन है॥
(रा च उ मुक्तिमंदिर, पृ ६)

पत्नी कुपत्नी

घरनियाँ हैं सभी सुखों की जड, रूठ सुख-सोत वे सुखायें क्यों।
निज कलेजा निकाल देवें जो, वे कलेजा कभी कपायें क्यों॥
(हरिऔध चुभते चौपदे, पृ १४६)

पत्नी जन्म सुख

पीयूष पुंज, रति-राशि, समूह श्री का,
कान्ता सदैव अधिकाधिक प्राण से है,
हो प्राण कंठ-गत तो तन हेय होना,
कान्ता स्व कंठ गत तो जग स्वर्ग ही है।
(अनूप शर्मा सिद्धार्थ, पृ २१८)

पत्नी पति अत्याज्य

नारी तजै न आपनो सपनेहु भरतार।
पंगु गुंग बौरा बधिर अंध अनाथ अपार॥

अंध अनाथ अपार वृद्ध बावन अतिरोगी ।
बालक पंडु कुरूप सदा कुवचन जड़ जोगी ।।
कलही कोढ़ी भीरूचोर ज्वारी व्यभिचारी ।
अधम अभागी कुटिल कुमति पति तजै न नारी ।।

(केशवदास : रामचन्द्रिका, प्रकाश ९)

पत्नी : पति की वशवर्तिनी

(क) रहै जो पिय के आयसु औ बरतै होइ हीन ।
सोई चाँद अस निरमल, जनम न होइ मलीन ।।

(ख) जो न कन्त के आयसु माही । कौन भरोस नारि कै वाही ?

(जायसी ग्रंथावली पृ. ३७, ३५)

पत्नी : सन्तानार्थ ही

१. रमा विलास राम-अनुरागी । तजत वमन इव जन बड़ भागी ।।

(तुलसीदास : तु. सू. सु, पृ. ३६७)

२. धर्म करत अति अर्थ बढ़ावत । सन्तति हित रति कोविंद गावत ।।
संतति उपजत ही निसि बासर । साधत तन मन मुक्ति महीधर ।।

(केशवदास : रामचन्द्रिका, प्रकाश १८, पद्य ८)

पत्नी : सहित धर्म कार्य

धर्म कर्म कछु कीजई, सफल तरुणि के साथ ।।
ता बिन जो कछु कीजई, निष्फल सोई नाथ ।।
करिये युत भूषण रूपरयी । मिथिलेश सुता इक स्वर्ण मयी ।।

(केशवदास : रामचन्द्रिका, प्रकाश ३५)

पत्नी-नृत्य

वेश्या का नृत्य भद्दा, टाट का जिस भाँति गद्दा,
भारतीय समाज पर है यह महान अशिष्ट रद्दा,
पर कला के हेतु पत्नी को नचाना कब मना है ।

(बेढब बनारसी : बेढब की बानी, पृ. ७०)

पत्नी-व्रत

१. सैंयां न ऐसी नचावो पतुरियाँ
गाने पै रीझौ बजाने पै रीझौ, बन्दी की छाती पै
छेदो न छुरियाँ ।
पापों की पूँजी पचेगी न प्यारे, खाते फिरोगे
हकीमों की पुड़ियाँ ।।

डोलोगे डाली डुलाते-डुलाते, हाथों में पूरी न होंगी
अँगुरियाँ।

जो हाथ शंकर दया होगी ऐसी, तो मेरी कैसे
बचा लोगे चुरियाँ॥
(नाथूराम शंकर शर्मा)

२ हर घट से अपनी प्यास बुझा मत ओ प्यासे।
प्याला बदले तो मधु ही विष बन जाता है।
(नीरज : आसावरी, पृ ३७)

पत्नीव्रत की प्रशंसा

१ दिवि दीपक लोय बनी वनिता, जड़ जीव-पतंग जहाँ परते।
दुख पावत प्रान गँवावत हैं, बरजे न रहैं हठ सों जरते॥
इहि भाँति विचच्छन अच्छन के वश, होय अनीति नहीं करते।
पर-ती लखि जे धरती निरखें, धनि हैं, धनि हैं, धनि हैं, नरते॥

२ दृढ शील शिरोमन कारज मैं, जग में जस आरज तेइ लहैं।
तिन के जुग लोचन वारिज हैं, इहि भाँति अचारज आप कहैं॥
पर कामिनी को मुख चंद चितै, मूँद जाहिं सदा यह टेव गहैं।
धनि जीवन है तिन जीवन कौं, धनि माय उनै उर मायँ वहैं॥
(भूधरदास जैन शतक, पृ २२)

पथ की पहचान

१ पूर्व चलने के, बटोही,
बाट की पहचान करले।
यह बुरा है या कि अच्छा,
व्यर्थ दिन इस पर बिताना,
जब असंभव छोड़ यह पथ
दूसरे पर पग बढ़ाना,
तू इसे अच्छा समझ,
यात्रा सरल इस से बनेगी,
सोच मत केवल तुझे ही,
यह पड़ा मन में बिठाना,
हर सफल पंथी यही,
विश्वास ले इस पर बढ़ा है,
तू इसी पर आज अपने,
चित्त का अवधान कर ले।
पूर्व चलने

२.

है अनिश्चत किस जगह पर
सरित, गिरि, गह्वर मिलेंगे,
है अनिश्चित किस जगह पर
बाग, वन सुन्दर मिलेंगे,
किस जगह यात्रा खतम हो
जायगी, यह भी अनिश्चित,
है अनिश्चित, कब कुसुम कब
कंटकों के शर मिलेंगे,
कौन सहसा छुट जाएँगे
मिलेंगे कौन सहसा;
आ पड़े कुछ भी, रुकेगा
तू न, ऐसी आन कर ले,
पूर्व चलने के······

(बच्चन : सतरंगिनी, पृ. ७७-७८)

पदार्थ : अच्छे

अच्छा
खंडित सत्य
सुघर नीरन्ध्र मृषा से,
अच्छा
पीड़ित प्यार सहिष्णु
अकंचित निर्ममता से।
अच्छी कुंठा-रहित इकाई
साँचे ढले समाज से
अपना अच्छा ठाठ फकीरी
मँगनी के सुख-साज से।

(अज्ञेय : अरी ओ करुना प्रभामय, पृ. १५-१६)

पदार्थ : त्याज्य

कोढ़ मांस, घृत जुर विषै, सूल द्विदल द्यौ टार।
दृगरोगी मैथुन तजौ, नवौ धान अतिसार॥

(बुधजन सतसई, पृ. ३०)

पर-काव्य-प्रेम

चतुर है चतुरानन-सा वही,
सुभग-भाग्य-विभूषित माल है।

मन ! जिसे मन मे पर काव्य की,
रुचिरता चिरलाप करी नाहों।
(रा च उ विधि-विडम्बना)

पर घर त्याज्य

आवत ही आदर नहीं, ठढी भोह कराइ।
"सेऊ" तहा न जाइये, जो कचन बरसाइ॥
(हि नी का वि पृ ६०९)

परतन्त्रता और धर्म

स्वदेश मे बसे महान नागरिक, उन्हे पता लगा कि हम गुलाम हैं।
गुलाम का न दीन है न धर्म है, गुलाम के रहीम है न राम है।
(देवराज दिनेश भारत माँ की लोरी, पृ ७९)

परतन्त्रता से मृत्यु अच्छी

लोथों पर लोथ गिरें कट कट,
फिर भी धुनि उट्ठे एक यही,
हम आजादी के दीवाने,
परतन्त्र रहेंगे कभी नहीं।
(उदय शकर भट्ट अमृत और विष, पृ १३)

पर-देश

ठौर-ठौर वास मन रहत उदास वास,
खास को गुपालदिय पर घर जायबो।
आपनी खबर पहुँचायबो कठिन अति,
घर की खबर बडे जतन से पाइबो॥
समझै न बाणी लगै देशन को पानी,
ठग चोर तनु हानी मिलै समय पै न खायबो।
हाय विष लाय मरि जायबो सहज परि,
जायके कठिन परदेश को कमाइबो॥
(गुपालराय दपतिवाक्य विलास, पृ ५)

परदेश के कष्ट

का परदेस चाव तोहि बाढा। है परदेश गवन अति गाढा॥
प्यार नगर पराय माँझा। अहै कठिन अध्व।कँ साझा॥
अपने देस परभु जो कोई। माया-रहित विदेसहि होई॥
हो तुम राजदुलारे, अति सुकुमार।
का जानहु परदेसैं, सकट भार॥
(नूर मोहम्मद अनुराग बासुरी, पृ १९)

पर-धन

कैसे कहे विन फूल चुनें मिथिलेश की वाटिका के मनहारन।
वस्तु विरानी को पूछे विना रघुराज जू लेव न वेद उचारन॥
(रघुराजसिंह संक्षिप्त राम स्वयंवर, पृ. ९५)

पर-नारी

परधन पर-दारा परिहरी। ताके निकट वसहिं नरहरी॥—नामदेव
(सन्तसुधा सार, १, पृ. ५४)

परनारी राता फिरै, चोरी विढ़ता खाँहि।
दिवस चारि सरसा रहें, अति समूला जाँहि॥
(कबीर ग्रंथावली, पृ. ३९)

२. रघुवंसिन्ह कर सहज सुभाऊ। मनकुपंथ पगु धरइ न काऊ॥
मोहि अतिसय प्रतीत मन केरी। जेंहि सपनेहुँ परनारि न हेरी।
जिन्ह कै लहहिं न रिपु रन पीठी। नहि पावहिं परतिय मन दीठी॥
मंगन लहहिं न जिन्ह कैं नाहीं। ते नरवर थोरे जग माहीं॥
(रा. च. मा. गु. पृ. १६२)

३. जननी सम जानहि पर-नारी।
धनु पराव विप तें विष भारी॥
(रा. च. मा. गु. पृ. ३०३)

पार की ही नारि सेती प्यार कियौ रावण नै
ताही को हवाल देखि मन माँहि डरियै।
फेर जिण कीयौ प्यार सोइ तौ खुवार हुवौ
मिलै नहीं जोग तो जंजाल माँहि पड़ीयै।
तन धन नेकी नाम ताही की तो हाणी होत,
फेर सांई सुं विमुख एह ठीक धरीयै।
'उदय' कहत मीत बार वार कहौ तोहि,
पार की ही नारि सेती प्यार ही न करीयै॥
(उदैराज, स्फुट पद्य, पृ. १०७)

५. तोहि कहौं सुन वात निशाचरि तू जननी मेरी तव ही ते।
काम को भाव धरै मन में रघुवीर के तीर गई जव ही ते।
कै अव जाहि तहि प्रभु पै चल आस तजौ हमरी अव ही ते।
जो चल पूरव को तटनी नटनी उलटी न वही कव ही ते॥
(हृदयराम : हनुमन्नाटक, पृ. ४५)

६. व्यास पराई कामिनी, कारी नागिन जान।
सूँघत ही मरि जायगो, गरुड़ मन्त्र नहिं मान॥

ब्यास पराई कामिनी, लहसुनि कैसी बानि ।
भीतर खाई चोरि कै, बाहिर प्रकटी आनि ॥
(व्यासवाणी, पृ १४३)

७ ऊँचो न लायत भाल उतै पर दारन के बिच धर्म विचारी ।
आये इतै मुनिशासन लै नहि जानी रही मरजाद हमारी ॥
रीति है धर्म धुरीनन की रघुवंसिन की जग जाहिर भारी ।
पीठि परै नहि संगर में नहि दीठि परै स्वपन्यो परनारी ॥
(रघुराज सिंह संक्षिप्त राम स्वयंवर, पृ ९८)

८ अपनी परतरु देखि कै, जैसा अपनै दर्द ।
वैसा ही पर नारि का, दुखी होत है मर्द ॥
(बुधजन सतसई, पृ ४३)

पर-तिय-रत रावन बध्यो, पर-धन-रत निमि कंस ।
राम कृष्ण जय सूर ससि, करत मोह-अघ धंस ॥
पर-नारी पैनी छुरी, ताहि न लाओ अंग ।
रावन हू को सिर गयो, पर-नारी के संग ।
(भारतेन्दु नाटकावली, पृ ५७७)

परमार्थ

कौन्हू को कठिन भार काठ औ कबार तापै,
काँधे पै सभार धायो तिन भुस खाय खाय ।
सूधो चलतो तो होती मंजिलैं विपुल पार,
नन्दीपुर जाय हरखानो सुख पाय-पाय ।
होनहार नाही इन तिलन मे तेल नेक,
'पूरन' सचेत होहु मित चित हित लाय ।
अजहूँ चखन खोलि सोच तो अनारी भला,
केती गैल काटी बैल रातौ दिन धाय धाय ॥
राय देवी प्रसाद 'पूर्ण'

परलोक

जो आता है वह जाता है, जो फूला वह कुम्हलाता है ।
यदि शाश्वत सत्य यही कुछ भी, तो क्या जाता क्या जाता है ?
है जन्म, यहाँ से मरण, जन्म फिर और नहीं कैसे होगा ?
यह छोर, अगर है सही भला, वह छोर नहीं कैसे होगा ?
(सागर मल कुछ कलियाँ कुछ फूल, पृ ७५)

परलोक-चिन्ता

यहां पधारे तव आप नग्न थे,
वहाँ सिधारे तव मोह-मग्न थे,
अपाय से जीवन में न मुक्त थे,
उपाय क्या सार्थक मृत्यु के परे ?

(अनूप : वर्द्धमान, पृ. ३०२)

पर-स्त्री-गामी

निज नारी तजि मलिन जन, करै अपर तिय राग।
पीवत सरिता-तीर ज्यों, घट के जल को काग ॥

(दी. द. गि. ग्रं. पृ. ७६)

पराधीन और स्वाधीन

बाँधेहूँ पालन करै, अंकुसधर को नाग।
फिरत स्वान स्वाधीन निज, भरै न उदर अभाग ॥

(दी. द. गि. ग्रं. पृ. ८०)

पराधीन : की पहिचान

पर-भाषा, पर-भाव, पर-भूषन, पर-परिधान।
पराधीन जन की अहै, यही पूर्ण पहिचान ॥

(वियोगी हरि : वीर सतसई, पृ ४५)

पराधीनता

शासन किसी पर जाति का चाहे विवेक-विशिष्ट हो।
सम्भव नही है किन्तु जो सर्वांश में वह इष्ट हो ॥

(मै. श. गु. : भारत भारती, पृ. ८१)

पराधीनता : की निन्दा

सौम्य—स्वरूप शिव ने सिर पै बैठाया।
सर्व—प्रकार अति आदर भी दिखाया ॥
तो भी महा-कृश कलाधर की कला है।
हा हा ! पराश्रय नहीं किस को खला है ॥

(म. प्र. द्वि. : द्वि. का. मा., पृ. ३०२)

पराधीनता : भारी दुःख

१. पराधीनता दुख महा, सुख जग मैं स्वाधीन।
सुखी रमत सुक वन विषै, कनक पींजरे दीन ॥

(दी. द. गि. ग्र., पृ. ७७)

२. पराधीन रह कर अपना सुख शोक न कह सकता है।
यह अपमान जगत मे केवल पशु हो सह सकता है॥
अपना शासन आप करो तुम यही शान्ति है सुख है।
पराधीनता से बढ़ जग में नही दूसरा दुख है॥
(रा न त्रि पथिक, पृ ४८)

परोपकारी

किसी और का दीप बुझाने वाले कब यह सोचते,
हर दीपक की लौ तो सूनी राहो का सिन्दूर है।
(रूप नारायण त्रिपाठी वनफूल, पृ ८१)

पराया धन (दे० पर धन भी)

जो पर पदार्थ के इच्छुक है, वे चोर नही तो भिक्षुक हैं।
हम को तो 'स्व' पद-विहीन कही, है स्वय राज्य भी इष्ट नही॥
(मै श गु स्वदेशसगीत, स्वराज्य, पृ ११२)

पराया भोजन

परि विरति अथवा बड़ प्रीती। खात परान्न सुजन जग-रीती॥
(द्वा प्र मि कृष्णायन, पृ ४६०)

पराये

राजा त्रिया सुनारि, चिडिया रोकय आगि जलु।
पांसा सांपिन हारि, ए दस होइ न आपने॥
(आलम माधवानलकाम कदला)

परिचय

सब के प्रति सौजन्य और बहुतो से रक्खो राम-सलाम।
मेल-जोल थोडे लोगो से, मैत्री किसी एक जन से॥
(दिनकर - नये सुभाषित, पृ ३१)

परिवर्तन

१ हम परिवर्तमान नित्य नये हैं तभी।
ऊब ही उठेंगे कभी एकस्थिति मे सभी॥
(मै श गु नहुष, पृ १६)

२ परिवर्तन है प्राण प्रकृति के अविकल क्रम का।
परिवर्तन क्रम आज मर्म है निगमागम का॥

परिवर्तन है हीर सृष्टि के सौन्दर्यों का।
परिवर्तन है बीज विश्व के आश्चर्यों का॥
निभ सकता नहिं प्रकृत धर्म-क्रम परिवर्तनबिन।
चल सकता नहिं प्रगति-कर्म-क्रम परिवर्तनबिन॥
पाय तत्त्व का ज्ञान तथ्य को स्वीय बना ले।
परिवर्तन—आदर्श आशुता से अपना ले॥

(श्रीधरपाठक : भारत गीत, पृ. ९७-८)

३. देखो यह जग का परिवर्तन !
रहती थी नित्य बहार जहाँ,
बहती थी रस की धार जहाँ,
था सुषमा का संसार जहाँ,
है वहाँ आज बस ऊजड़ वन,
देखो यह......
था जहाँ प्रेम—सागर मन में,
सुख की सरिता थी जीवन में,
गायन था उर के स्पन्दन में,
है वहाँ भयंकर सूनापन,
देखो यह......

(ठा. गो. श. सिं : आधुनिक कवि, पृ. १०८)

४. वे दीप बदलने होंगे जिनकी ज्योति पुरानी हो आयी,
फूंको तो वे बिजलियाँ जीर्ण जिनमें निष्प्राण चमक छायी,
तुम आज बुढ़ापे की रग-रग में खून जवानी का भर दो,
तुम नूतन अभयानों से ये चिर जर्जर मार्ग बदल डालो।

(रामेश्वर शुक्ल अंचल : विरामचिह्न, पृ. ७३)

५. अरे यह परिवर्तन का चक्र, चला ही करता है दिन-रात।
रोज ही होता दिन का अन्त, रोज ही होता दिव्य प्रभात,
बदलती ही रहती है सृष्टि, चक्र चलता रहता अविराम।
जिसे तुम बतलाते हो मृत्यु, वही तो नव जीवन का नाम॥

(मनोरंजन : गुनगुन, पृ. ७९)

६. कल की गंगा ? बह कर कितना आगे चला गया है पानी।
फिर भी उसको वही समझने की करता नर है नादानी॥

(शरण बिहारी गोस्वामी : पाषाणी, पृ. ९०)

परिवर्तन निष्ठुर

एक सौ वर्ष, नगर उपवन।
एक सौ वर्ष, विजन वन॥
—यही तो है असार संसार।
सृजन, सिंचन, संहार॥
आज गर्वोन्नत हर्म्य अपार।
रत्न दीपावलि, मन्त्रोच्चार॥
उलूकों के कल भग्न विहार।
झिल्लियों की झनकार॥
दिवस निशि का यह विश्व विशाल।
मेघ मारुत का माया जाल॥ —आधुनिक कवि
(सु न प, पृ ३९)

परिवर्तन समयानुसार

युग बदला है, अब मनमानी नहीं चलेगी।
आदर्शों में पाप—वृत्तियाँ नहीं पलेंगी॥
समझ जायगा, उसका मनपन रह जायेगा।
वरना, जबरन, कानूनी डंडा खायेगा॥
इस से अच्छा है पहले ही मन समझाओ।
बल बटोर कर, संयम का साधन अपनाओ॥
आंच लगे पानी को सहज उबलना होगा।
आज नहीं तो कल तक तुम्हें बदलना होगा॥
(सागरमल कुछ कलियाँ कुछ फूल, पृ ८३)

परिवार

१ नारी सेती नेह लगायो। कबहूँ हिरदै राम नहिं आयो॥
बंधे काल कीयो चौरगा। सुत बेटी नार कोइ नहिं संगा॥—स्वामी रामानन्द
(स पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल रामानन्द की हिन्दी रचनाएँ ग्यानलीला, पृ ६)

२ सुत-बनितादि जानि स्वारथरत न करु नेह सब ही तें।
अतहु तोहिं तजेंगे पामर, तू न तजै अब ही तें॥
(तुलसीदास विनयपत्रिका, पृ ३१९)

३ सुख संपति परिवार बड़ाई।
सब परिहरि करिहउ सेवकाई॥
ए सब राम भगति के बाधक।
कहहिं संत तव पद अवराधक॥
सत्रु मित्र सुख दुख जग माहीं।
माया-कृत परमारथ नाहीं॥—तुलसीदास
(रा च मा गु पृ ४५०)

४. जाके प्रिय न राम—वैदेही ।
तजिये ताहि कोटि वैरी सम, जद्यपि परम सनेही ।।
तज्यौ पिता प्रहलाद विभीषन बन्धु भरत महतारी ।
बलि गुरु तज्यो कंत ब्रजबनितन्हि, भये मुदमंगलकारी ।।
'तुलसी' सो सब भाँति परम हित पूज्य प्रान ते प्यारो ।
जासों होय सनेह रामपद, एतो मतो हमारो ।।
(तुलसीदास : विनयपत्रिका, पृ. २८२)

परिवार-नियोजन

अशिक्षित निर्धन रुग्ण अपांग ।
बढ़ाते व्यर्थ करुण भू-भार ।।
नरक क्यों बने न जन-भू स्वर्ग ।
नहीं जब प्रजनन पर अधिकार ।।
(सु. नं. पं., लोकायतन, पृ. २७०)

परिश्रम : से समान

जग में पूजा ना मिले, बिना घिसाये चाम ।
रगड़-रगड़ खा कर बने, पाहन शालिग्राम ।।
(सत्यदेव परिव्राजक : अनुभव, पृ. १३)

परोपकार

१. परहित सरिस धरम नहिं भाई, पर-पीरा सम नहिं अधमाई ।
(तुलसीदास)

२. 'रहिमन' रीति सराहिए, जो घट गुन सम होय ।
मीति आप पै डारि कै, सबै पियावै तोय ।।
(रहिमन विलास, पृ. २४)

३. हरि भजि साफिल जीवना, पर उपगार समाइ ।
दादू मरणां तहं भला, जंह पसु पंखी खाइ ।।
(सन्त दादू और उनकी वाणी, पृ. १३०)

४. मान्य योग्य नहिं होत कोऊ कोरो पद पाए ।
मान्य योग्य नर ते जे केवल परहित जाए ।।
नर सरीर में रत्न वही जो पर दुख साथी ।
खात पियत अरु स्वसत स्वान मंडुक अरु भाथी ।।
तासों अवलौं करो, करो सौ, पै अब जागिय ।
गो श्रुति भारत देस समुन्नति मैं नित लागिय ।।
(भारतेन्दु नाटकावली, पृ. ६८५)

५. चातक को दुख दूर कियो पुनि दीनो सबै जग जीवन भारी।
पूरे नदी-नद ताल-तलैया किए सब भाँति किसान सुखारी॥
सूखेहू रूखन कीने हरे जग पूर्यो महामुद दै निज बारी।
हे घन आसिन लौं इतनो करि रीते भए हूँ बड़ाई निहारी॥
(भारतेन्दु नाटकावली, पृ ७७६)

६ जन, समष्टि मे रमो, व्यष्टि को विकसित करके,
निजहित होगा स्वय सफल सब का हित करके।
(मै श गु - राजा प्रजा, पृ ४६)

७ वह शरीर क्या जिससे जग का कोई भी उपकार न हो।
वृथा जन्म उस नर का जिसके मन में दया-विचार न हो॥
उस जीवन से मृत्यु भली जिस मे यौवन का ज्वार न हो।
पत्थर है वह हृदय अरे जिस मे लहराता प्यार न हो॥
यों तो सभी मरण के राही, एक रोज मर जाते हैं।
किन्तु धन्य वे जो मर कर भी बधु, नाम कर जाते हैं॥
(आरसी प्रसादसिह आरसी, पृ ४४८)

८ स्व प्राण से या धन के प्रदान से।
निबाहता जो कि परोपकार है॥
धरित्रि में सो नर धन्य अन्यथा।
कभी न देता धन साथ प्राण का॥
परोपकारार्थ प्रसून फूलते।
परोपकारार्थ फली प्ररोहते॥
परोपकारार्थ नदी गवादि है।
परोपकारार्थ शरीर साधु का॥
(अनूप वर्द्धमान पृ ५६०-१)

९ स्वय न सरि पीती अपना जल, स्वय न तरु खाता अपना फल।
जन जन का हित ही अभीष्ट हो, स्वय शभु बन पियें हलाहल॥
(उमाकान्त मालवीय बाजी रणभेरी, पृ ११)

१० फिर गया था सिर उमर खैयाम का, जिसने कहा,
आज आओ मौज कर लें, कल तो मरना है हमें।
साथियो, इतिहास का सन्देश है बहुजन हिताय॥
आज मर लें, मार लें, कल मौज करना है हमें॥
(विजयदेव नारायण साही तीसरा सप्तक, पृ ३१४)

परोपकार : मानवता का धर्म

किये बिना कम पीर जगत की, जीवन भू पर एक भार है ।
मानवता का धर्म भूल कर अन्धकार ही अन्धकार है ।।
(श्रीमन् नारायण : रजनी में प्रभात का अंकुर, पृ. ७५)

पशु-दया

करुणा आर्य-धर्म-आधारा । मानव-सा पशु सँग व्यवहारा ।
(द्वा. प्र. मि. : कृष्णायन, पृ. ३८०)

पश्चाताप-कर्ता

शठ सनेह जे करहिं मान वेचहिं जे लुम्भ कहं ।
पिय वियोग सुख चहहि सांकरे तजहि स्वामि कहं ।।
नृपति मित्र कर गनहिं खेल दुर्जन संग खेल्लहिं ।
मनु वंधहिं पर रमनि सर्प मुख अंगुल मेल्लहिं ।।
चुक्कहि ते समय 'नरहरि' निरखि जड़ आगे विस्तरहिं गुनु ।
पछितांहि ते नरहरि भक्ति विन सु छितिपति अकवारशाह सुनु ।।
(सं. रा. न. त्रि. कविता कौमुदी, प्रथमभाग, पृ. २३७)

पहचान

नीति चले तो महीपति जानिये, भीर में जानिये सील धिया को ।
काम परे तो चाकर जानिए, ठाकुर जानिए चूक किया को ।।
पात्र तो बातन माँहि पिछानिए, नैन में जानिए नेह तिया को ।
'गंग' कहै सुन साह अकव्वर, हाथ में जानिए हेत हिया को ।।
(अकबरी दरबार···, पृ. ४३४)

पाखंडी : श्रुति-निन्दक

सदा शुद्ध श्रति जानकी, निंदक यों खल जाल ।
जैसे श्रुतिहि सुभाव ही, पाखडी सब काल ।।
(केशवदास : रामचन्द्रिका, प्रकाश पृ. ३३)

पातिव्रत

पतिवरता मैली भली, गले काँच की पोत ।
सब सखियन में यों दिपै, ज्यों रवि-ससि की जोत ।।
पतिवरता मैली भली, काली कुचिल कुरूप ।
पतिवरता के रूप पर, वारों कोटि सरूप ।।—कबीर
(संत सुधासार, १, पृ. १३१)

२ झूठा पाट पटवरा रे झूठा दिखणी चीर।
साँची पियाजी री गूदडी रे जामे निमल रहे शरीर।
छप्पन भोग बुहाई दे हे इन भोगनि मे दाग ।
लूण अलूणो ही भलो हे अपने पिया जी को साग ॥
(मीराबाई की पदावली, पृ १०२ ३)

३ बिरध अन्ध बिन भागहू को पतित जो पति होइ ।
जऊ मूरख होइ रोगी तजै नाहीं जोइ ॥
तजि भरतार और जो भजियै, सो कुलीन नहि होइ ।
मरै नरक, जीवन या जग मैं, भलो कहै नहि कोइ ॥
(सूरसागर, पृ ६११)

४ मातु पिता भ्राता हितकारी । मित प्रद सब सुनु राजकुमारी ।
अमित दानि भर्ता बयदेही । अधम सो नारि जो सेव न तेही ॥
धीरज धरम मित्र अरु नारी । आपद काल परिखिअहि चारी ।
वृद्ध, रोग-बस जड धन हीना । अन्ध बधिर क्रोधी अति दीना ।
ऐसेहु पति कर किएँ अपमाना । नारि पाव जमपुर दुख नाना ।
बिनु श्रम नारि परम गति लहई । पतिव्रत धर्म छाडि छल गहई ।
पति प्रतिकूल जनम जहँ जाई । विधवा होइ पाइ तरुनाई ॥
(रा च मा गु , पृ ४०९)

५ जग मे पतिव्रत सम नहि आन ।
नारि हेतु कोउ धम न दूजो जग मे यासु समान ॥
अनसूया सीता सावित्री इनके चरित प्रमान ।
पति-देवता तीय जग धन धन गावत वेद पुरान ॥
धन्य देस कुल जह निवसत हैं नारी सती सुजान ।
धन्य समय जब जन्म लेत ये धन्य व्याह अस्थान ॥
सब समय पतिबरता नारी, इन सम और न आन ।
याहि ते स्वर्गहु मे इनको करत सबै गुन गान ॥
(भारतेन्दु नाटकावली, पृ ७६२)

६ आर्य कन्या मान लेती स्वप्न मे भी पति जिसे,
भिन्न उससे फिर जगत मे और भज सकती किसे ?
(मै श गु रग मे भग, पृ १६)

७ मैं जलूँ तो राख को तू दे उडा क्षिति से गगन पर ।
पातकी रज छू न पावे, नभ हिले मेरे निधन पर ॥

और विधि से कह किसी को रूप दे तो शक्ति भी दे।
पति मिले तो पति चरण में भाव भी दे भक्ति भी दे॥

(श्याम नारायण पांडेय : जौहर, पृ. २१०)

पाप और पापी

पापी का उपकार करो, हाँ पापों का प्रतिकार करो।

(मै. श. गु : अनघ, पृ. ६३)

पाप : की कमाई

१. ऊँची हैं दुकान जा मैं फीके पकवान भरै,
खड़े हैं गिवांर लोग जाँणै हलवाई है।
बूर की मिठाई चाप चेप सूं बनाई,
नहीं भाव में भलाई घाट तोला सूं तुलाई है।
कपट कमाई क्षुधा खात हू न जाई,
दाम लेत है वजाई चाल चोर की चलाई है।
साध शरण पाई तोही साच नहि आई,
'रामचरण' राम बिना दुनी भरमाई है॥

(अणभै वाणी, पृ. १००)

२. यदि घड़ा पाप का खाली कुछ रह जायेगा,
तो छलकेगा, इसलिए उसे पूरा भर दो।
जो 'धूल' ग्राहकों की आँखों में झोंको तुम,
फिफ्टी परसैंट मिलावट उसमें भी करदो॥

(काका हाथरसी : दुलत्ती, पृ. ७२)

पाप : नहीं छिपते

पहाड चाहे गिर पाप पै पड़े,
निपात हो यद्यपि सप्त व्योम का,
परन्तु तो भी छिपते न है कभी
अवश्य होते सब व्याप्त दृष्टि में।

(अनूप : वर्द्धमान, पृ. ५३७)

पाप : से अशान्ति

मनुष्य आत्मा यदि पाप कारिणी,
प्रशान्ति पाती न कदापि स्वर्ग में,
वर च होती भयभीत दंड से,
अशान्त होता दिन-रात चित्त है।

(अनूप : वर्द्धमान, पृ. ५३६)

पाप से बचो

पापी पाप न कीजिए, न्यारा रहिए आप।
करणी आपो आपरी, कुण बेटो कुण बाप॥
(बांकीदास ग्रंथावली, भाग ३, पृ ८६)

पापी

बेचहिं बेद धरमु दुहि लेहीं। पिसुन पराय पाप कहि देहीं॥
कपटी कुटिल कलह प्रिय क्रोधी। बेद बिदूषक बिस्व बिरोधी॥
पावौं मैं तिन्ह कै गति घारा। जौ जननी यहु समत मोरा॥
(रा च मा गु पृ ३२२)

पारसियों के प्रति

सुनो पारसी बन्धु प्रवीण, क्या अपने सम्बन्ध नवीन ?
वेद अवस्ता दो ही नाम, पुरातत्त्व के हैं विश्राम॥
(मैं श गु हिन्दू, पृ १८८)

पितर

जहाँ पितर सन्तुष्ट हैं, प्रभु दुगने सन्तुष्ट,
जहाँ पितर जन रुष्ट हैं, प्रभु है दुगने रुष्ट।
(मैं श गु काबा और कर्बला, पृ ३१)

पिता का प्रतिशोध

रण खेती रजपूत री, वीर न भूलै बालु।
बारह बरसा बापरौ, लहै वैर लकालु॥
(सूर्यमल्ल : वीर सतसई, पृ ६६)

पिशुन

पनग लडो कीडो पडो, मडो भडो दुख सग।
जग चुगला री जीभडी, वायस भलो विहग॥
(बांकीदास ग्रंथावली २, पृ ५१)

पिशुनता

चदणा लपटै मिणधरण, रीझै साभल राग।
पिण मुख मामल जहर तै, निदवियो जग नाग॥
(बांकीदास ग्रंथावली ३, पृ ७६)

पीर और मुरीद

नाना लिप्सा हृदय मे, बन बैठे उलियाय।
ऐसे पीर मुरीद को, दोनों को जुनियाय॥
(गिरिधर कुंडलिया, पृ ८४)

पुण्य और पाप

पुण्य सोई कृत नीतिसंग, संग अनीति सोइ पाप ।
यथा स्वीकीया परकिया, तजे भजे अघताप ।

(सं. बलदेवदास गुप्त : नीतिनवनीत पृ. २१)

पुण्य-प्रभाव

पुण्य प्रबल जिहि होत दाहिने, ताहि हनत कै कोई ।
तीन लोक पर अमल चलावै, जो चाहै सो होई ।
दिन-दिन बढ़ै घटै नहिं कबहूँ, जो दिल में कोई रष्पै ।
पूवी करै पलक में अच्छा, खूब तमासा लष्पै ॥

(गोपाल चानक : पुण्य शतक, पद्य १०)

पुण्य-प्रयाग

तहँ पुष्कर, तहँ सुरसरी, तहँ तीरथ, तप, याग ।
उठ्यौ सुवीर-कवंध जहँ, तहँई पुण्य-प्रयाग ॥

(वियोगी हरि : वीर सतसई, पृ. १३)

पुण्य-भूमि

मेरी भूमि तो है पुण्य भूमि वह भारती,
सौ नक्षत्र-लोक करें आके आप आरती ।

(मै. श. गु. : नहुष, पृ. १६)

पुत्र : कर्तव्य

मात-पिता संग करहु भलाई । करता की आज्ञा अस आई ॥
जो अपने आगे विधहीं । उन्हें बात उह भाखौ नाहीं ॥
और न कीजे उन्हें निरासू । उन नित माँगु सरग सुख वासू ॥

(नूरमुहम्मद : इन्द्रावती)

पुत्र : कुपुत्र

१. साधु समाज न जाकर लेखा । राम भगत महुँ जासु न रेखा ।
जाँय जिअत जग सो महि भारू । जननी जौवन विटप कुठारू ॥

(रा. च. मा. गु. पृ. ३३४)

२. कबहुँ प्रबल वह मारुत, जहँ तहँ मेघ बिलाहिं ।
जिमि कपूत के ऊपजे, कुल सद्धर्म नसाहिं ॥

(रा. च. मा. गु. पृ. ४५५५)

३ फोरहिं मूरख मिल मदन, लागें उद्रुक पहार।
कायर कूर कपूत कलि, घर घर सरिस उहार॥
(तुलसी सतसई, पृ. २७०)

४ जो रहीम गति दीप की, कुल कपूत गति सोय।
बारे उजियारो लगै, बढ़े अँधेरो होय॥
(स. ब्रज रत्नदास रहिमन विलास, पृ. ९)

५ जिहिं कुल उपज्यो पूत कपूत।
ताको बस नाम ह्वै जैहै जिहिं गिरयो जम दूत॥
जो सु पितहिं विरोधै सोई है सबहिन को मूत॥
(व्यास वाणी पृ. ७१)

६ आलस-रत शोकातुर लम्पट, कपटी और सदा बलहीन।
मानस-मलिन सदा निद्रातुर, लोभी और अकारण दीन॥
ऐसे सुत से क्या फल होगा, हे चतुरानन दे वरदान।
कभी कपूत किसी को मत दे, चाहे कर दे निस्सन्तान॥
पर से प्रेम द्रोह अपने से, करते नित्य दुष्ट गुण-गान।
गुरुजन की निन्दा कर हँसते, अपने को कहत गुणवान॥
काला अक्षर भैंस बराबर, पर तो भी रखते अभिमान।
क्रोधानल मे जलते रहते, यही कपूतो की पहिचान॥
(रा च उ · कपूत)

पुत्र *पिता का बदला ले*

जो सुत अपने बाप को, वैर न लेइ प्रकास।
तासो जीवत ही मर्यो, लोग कहैं तजि आस।
(केशवदास रामचन्द्रिका, प्रकाश १६)

पुत्र *प्रियतम*

एक पिता के विपुल कुमारा। होहिं पृथक गुन सील अचारा॥
कोउ पंडित कोउ तापस ज्ञाता। कोउ धनवत सूर कोउ दाता॥
कोउ सर्वज्ञ धरमरत कोई। सब पर प्रीति पितहि सम होई॥
कोऊ पितु भगत बचन-मन-करमा। सपनेहुँ जान न दूसर धरमा॥
सो सुत प्रिय पितु-प्रान-समाना। यद्यपि सो सब भाँति अयाना॥
(रा च मा गु पृ. ६४५)

पुत्र :—प्रेम

पिता ग्रीष्म ने एक-एक कन जोड़ा।
भोग भाव से आप सदा मुँह मोड़ा॥
यही वासना एक, सरस कहलाये।
जग में पावस पूत नाम पा जाये॥

(गिरिजादत्त शुक्ल : तारकवध, पृ. १०१)

पुत्र : सुपुत्र

१. सुनु जननी सोइ सुत बड़ भागी। जो पितु मातु वचन अनुरागी॥
तनय मातु पितु तोषनिहारा। दुर्लभ जननी सकल संसारा॥

(रा. च. मा. गु., पृ. २५८)

२. धन्य जनमु जगती-तल तासू। पितहि प्रमोद चरित सुनि जासू।
चारि पदारथ करतल ताके। प्रिय पितु मातु प्रान सम जाके॥

(रा. च. मा. गु., पृ. २६०)

३. लरिका कहा बहुत सुत जाये जो न होयं उपकारी॥
एक सो लाख बराबर गिनियँ करैं जो कुल रखवारी।

(परमानन्द सागर, पृ. ९)

४. चंदन, चंद, उशीर, हिमोपल, हिम-रजनी भी और कपूर।
सब मिल कर भी नहीं करेंगे, मानव-हृदय-ताप को दूर॥
पर सपूत जिस कुल में होगा, उसका समय आप ही आप।
पलट जायगा, यश फैलेगा, मिट जावेगा, सब सन्ताप॥
विमलचित्त हो दानशील हो, शूरवीर हो सरल विचार।
सत्यवचन हो प्रेमयुक्त हो, करे सभी से समव्यवहार॥
ज्ञानी सहृदय हो उपकारी, और गुणी हो अपना धर्म।
कभी न छोड़े, देशभक्त हो, ये सब सत्पुत्रों के कर्म॥

(रा. च. उ. : सपूत)

पुत्र : से स्वर्ग प्राप्ति

है यदि पुत्र स्वर्गप्रद तो फिर धर्म निरर्थक ही है,
जिनके बहुत पुत्र हैं उनके जीवन सार्थक ही हैं।

बहु सुत जननी खरी कूकरी अधम शूकरी नारी,
मखी नागिनी आदि जीव क्या सभी स्वर्ग अधिकारी ?
क्षुद्र जीव समुदाय सभी यदि पुत्रवान होने से,
सहज ऊर्ध्वगति पा सकते हैं विषय-बीज बोने से,
तो फिर वृथा कर्म-साधन सब आश्रम-धर्म वृथा है,
स्वर्ग-लाभ करने की क्या ही सच्ची सहज प्रथा है।

(वियोगी हरि . गुरुदेव)

पुत्र -हीन का कल्याण

बिन पुत्र रही किहि विधि निशान, को दैहहि हाहा ! पिंडदान ?
ये राशि-राशि पोथी पुरान, किन जैहहि तजि तव वास-स्थान ?
छल छाडि करहु जउ शुद्ध प्रेम, स्वप्राणहु दै जउ चहहु क्षेम।
नउ अपनि होंहि नहि जे पारि, हे पुत्र ! सत्य वच ये हमारि॥
हे मातु ! वृथा कत करहु शोक ? सुनि कैहहि कह बुधिवन्त लोक ?
जामे न कछू अपनी बसाय, खेदित तदर्थ को होहि माय ?
सब होहि न जग में पुत्रवान, न तथा सिगरे धन धन्यवान।
बुधि, विद्या आदिक सब माहि, समता सदैव कहुँ होनि नाहि॥
जाकी दशा जु तिहि मे सुकर्म, करि तोप युक्त रहिबो ही धर्म।
इक पुत्र मात्र सब सौख्य-मूल, अस कहिबो भारी मातु ! भूल।
यदि दुष्ट, मूर्ख, व्यभिचारी चोर, नर पावहि निशिदिन दुख घोर।
यदि गुणी, तासु दीर्घायु हेत, पितु मातु बनै चिन्ता-निकेत॥
शत सहस माहि कहुँ इक सपूत, लखि परै, शेष सारे कपूत।
निज नैनन सो स्वयमेव नित्य, जननी ! तुम देखहु सत्य-सत्य॥
धन धाम देखि मो को न शोक, यदि होत हाथ मेरे त्रिलोक।
सब दै शरदिंदु मयूख-भास, हम लूटत यश बिन ही प्रयास॥
बहु पुत्रवान जन के निशान, मिट गये न कोऊ कतहुँ जान।
पै सुतावान, जउ पुत्रहीन, भे अमर विश्व बिच नाम कीन॥
सुत ही सुमुक्ति दाना प्रवीन, अस बोलहि केवल बुद्धिहीन।
जिहि आनि माहि नहि पिंडदान, सब जावै नरकहि ! कह प्रमान ?
सत्कर्म धर्म अहिंसाभाव उपकार सदा सरल स्वभाव
सन्मुक्ति हेत ये ही समर्थ, आडम्बर और विशेष व्यर्थ॥

(म प्र द्वि द्वि का मा, पृ. २४६-२५१)

पुत्रवती

पुत्रवती जुवती जग सोई । रघुपति भगतु जासु सुतु होई ।
नतरु बाँझ भलि बादि बियानी । रामविमुख सुत तें हित जानी ।।

—तुलसीदास

(रा. च. मा. गु. पृ. २७५)

पुत्री

१. कन्या की वर व्याह् वैस सुन्दर जब आवै ।
कहीं-कहीं कुछ सोक पिता के घर तब छावै ।।
जामाता का पिता दया तज दायज माँगै ।
नहिं उदारता करै स्वार्थ परता में रागै ।।
तब अति दरिद्र पुत्री पिता विपति पयोधि में गिरै ।।
तज लाज व्याह् के साजहित भीख जगत माँगत फिरै ।।

(श्यामविहारी : भारतविनय, पृ. ५८)

२. तुम बरसाती धरती पर, तन मन यौवन से कंचन ।
प्रति चरण उगाता पथ पर, मधु ऋतुओं के पाटल वन ।।

(अतुल कृष्ण गोस्वामी : नारी, पृ. ४५)

पुत्री : की विदाई

उस करुण विदा के क्षण में, विह्वल विरक्त हो जाते ।
आसक्त कहो फिर कितनी, मर्मान्तिक पीड़ा पाते ।।

(अतुल कृष्ण गोस्वामी : नारी, पृ. ४७)

पुत्री : को शिक्षा

होएहु संतत पियहि पियारी । चिरु अहिबात असीस हमारी ।।
सासु ससुर गुर सेवा करेहु । पति रुख लखि आयसु अनुसरेहु ।।

(रा. च. मा. गु. पृ. २२०)

२. चारिहु भगिनी मिलि रहियो नित, कबहुँ न होय विरोध ।
सब सासुन को मान राखियो, किह्यो न कबहू क्रोध ।।
पर दुख दुखी सुखी पर सुख सों, सब सों हँसि मुख भाख्यो ।
जथाजोग सत्कार सबन कौ, करि सनेह सुठि राख्यो ।।

(रघुराजसिंह : संक्षिप्त राम स्वयंवर, पृ. १८१)

३. गुरुओं की सम्मान-सहित शुश्रूषा करियो ।
सखी भाव से हृदय सदा सौतों का हरियो ।।

करे यदपि अपमान, मान मत कीजो पति से।
हूजो अति सन्तुष्ट स्वल्प भी उसकी रति से।।
परिजन को अनुकूल आचरण से सुख दीजो।
कभी भूल कर बड़े भाग्य पर गर्व न कीजो।।
इसी चाल से स्त्रियाँ सुगृहिणी-पद पाती हैं।
उलटी चलकर वश-व्याधियाँ कहलाती हैं।।

(मै श गु . शकुन्तला पृ २१)

पुत्री —सम्बन्धी चिन्ता

१ जब ते दुहिता ऊपनी, सतत हिये उतपात।
निकसे काटा तबहि जब आँगन आउ बरात।।

(उसमान चित्रावली, पृ १९६)

२, अति नये अपरिचित कर मे, अस्तित्व विसर्जन तब कर।
निश्चिन्त हमारी आँखें, चिंताओं से जाती भर।।

(अतुल कृष्ण गोस्वामी • नारी, पृ ४७)

पुनर्जन्म

१, व्याधि जरा मृत्यु है तो जन्म भी तो है नया।
आया फिर नूतन हो जीर्ण हो के जो गया।।

(मै श गु नहुष, पृ ३६)

२ धारत बसन नवीन जिमि, जर्जर मनुज उतारि।
तजि तिमि आत्महु जीर्ण तनु, लेत अन्य नव धारि।।

(द्वा प्र मि • कृष्णायन, पृ ५४०)

३ राजा वह ही आज वही कल बना भिखारी।
परसों वह ही चोर वही नरसों वनचारी।।
आज वही है आर्य दस्यु कल वह बन जाता।
रखता नट—सा जीव विविध देहों से नाता।।

(बलदेव प्रसाद मिश्र साकेत-सन्त, पृ ६८)

पुरुष

खम ठोक ठेलता है जब नर, पर्वत के जाते पाव उखड़।
मानव जब जोर लगाता है, पत्थर पानी बन जाता है।।

(दिनकर की सूक्तियाँ पृ ५८)

पुरुष और नारी

सूरज ने खींच लकीर लाल
नभ का उर चीर दिया।
पुरुष उठा, पीछे न देख मुड़ चला गया।
यों नारी का, जो रजनी है, धरती है,
वधुका है, माता है,
प्यार हर बार छला गया।

(अज्ञेय : इन्द्रधनुष : रौंदे हुए, पृ. ८०)

पुरुषार्थ

१. जो अमल हैं विकच कमल जैसे,
बुद्धि जिनकी बनी रही बिमला।
काम में जो कमाल रखते हैं,
मिल सकी कब उन्हें नहीं कमला॥
घेरती है जिन्हें न कायरता,
जो पड़े काम हैं न कतराते।
डर जिन्हें है नहीं विफलता का,
हैं सफलता सदा वही पाते॥
तब भला रीझती रमा कैसे,
साधनों में न जब रमा है मन।
जब न करतूत धन धनी होंगे,
तो धनद भी न दे सकेगा धन॥

(हरिऔध : पद्यप्रमोद, पृ. ६०-६१)

२. वीर भोग्या धरा है, है यह कथन यथार्थ।
प्रबल पराक्रम किये है, मिलता कलित पदार्थ॥

(हरिऔध सतसई, पृ. ४८)

३. ईश्वर का जीव से यही एक कहना—
तू निश्चिन्त होके कभी बैठ नहीं रहना।

(मै. श. गु. : नहुष, पृ. २१)

४. सच मुच जैसा मूल्य वैसा ही पदार्थ।
हाँ, हाँ, पुरुषार्थ, पुरुषार्थ, पुरुषार्थ है॥

(मै. श. गु. : नहुष, पृ. २१)

५ नित्य गतिमय इस जगत मे, हृदय की शान्ति कैसी ?
बैठने की चाह कैसी ? यह अलस विश्रान्ति कैसी ?
मानवो के पूत, बोलो, शान्ति की यह भ्रान्ति कैसी ?
याँ कहाँ विश्राम ? जग का नियम है चक्रमण
क्षण—क्षण यदपि हो अति थकित तन—मन।

(बा कृ श. म हम विषपायी जनम के, पृ १२)

६. तू क्यो बैठ गया है पथ पर ?
ध्येय न हो, पर है मग आगे,
बस धरता चल तू पग आगे,
बैठ न चलने वालो के दल मे तू आज तमाशा बन कर !
तू क्यो बैठ गया है पथ पर ?

(बच्चन अभिनव सोपान, पृ १३४)

७ नहीं विफलता चलकर गिरना, बैठे रहना महापाप है।
'अथक चलन' वरदान देव का, दीन निराशा घोर शाप है॥

(श्रीमन् नारायण रजनी में प्रभात का अंकुर, पृ ४)

८ ओ मनुष्य ! तू बैठ न थक कर, पथ के साथ साथ आगे बढ़।
रुक न देख कर चट्टानो को, सागर में घुस, पर्वत पर चढ़॥

(रघुवीर शरणमित्र जन नायक)

९ इस ससार समर प्रागण में जीवन है क्या ? इक सग्राम,
रग-मच पर नायक बन कर दिखलावें हम अपना काम।
हम मनुष्य हैं क्यो निराश हो बैठें, धरे हाथ पर हाथ,
यहाँ नही तो और देश मे परखें भाग्य धैर्य के साथ॥

(गुरुभक्तसिंह नूरजहाँ, पृ ७)

१० सब के हृदय मे शूल है
सबके पगो में धूल है
रुकना यहाँ पर भूल है
पथ पर कही विश्राम-हित
सोना यहा अच्छा नही
ससार है, ससार है।

(शिवमगलसिंह सुमन प्रलय-सृजन, पृ २)

पुरुषार्थ और परोपकार

लिखी हो भाल पर जो भाग्य-रेखा,
उसे क्षण-क्षण मिटा कर फिर बनाओ।
हिमालय और गंगा से शपथ लें,
बहो ऐसे कि सब के काम आओ ॥

(मा. ला. च. : वेणु लो गूंजे धरा, पृ. ८१)

पुरुषार्थ और सफलता

हर पग की छाया राह नहीं बन पाती,
हर नई राह कब है मंजिल तक जाती ?
यों तो हर राही कदम बढ़ाता है पर,
हर एक कदम को मंजिल सिर न झुकाती ॥

—गोपाल कृष्ण कौल

(शिवदानसिंह चौहान : काव्यधारा १, पृ. १३४)

पुरुषार्थ : काल से बली

काल कार्य, साधन मनुज, पुरुषार्थ ही बलवान ।
पुरुषोत्तम संतत करत, युग नवीन निर्माण ॥

(द्वा. प्र. मि. : कृष्णायन, पृ. ८२७)

पुरोहित : कुपात्र

जन्म की बधाई धर, नाम की धराई, पूजा,
मुंडन की और कर्ण-वेधन की पावेंगे ।
ब्रह्म-दंड देंगे, लेंगे चरण-पुजाई, आगे,
व्याह के अनेक नेग चौगुने चुकावेंगे ॥
लेते ही रहेंगे दान-दक्षिणा पुरोहित जी,
रोगी यजमान से दुधार धेनु लावेंगे ।
शंकर मरे पै माल मारेंगे त्रयोदशा के,
छोड़ेंगे न बरसी, कनागत भी खावेंगे ॥

(नाथूराम शंकर : अनुरागरत्न, पृ. २२१)

पुरोहित : झूठा

न तो पढ़ा हो न तो कभी कुछ कर्म करावे ।
कर सेवाएँ किसी भाँति जीविका चलावे ॥

कभी चाहिए नहीं पुरोहित हम को ऐसा ।
पूरा क्या जो हित न अधूरा भी कर पावे ॥

(हरिऔध पद्य प्रसून, पृ ४८)

पुरोहित स्वार्थी

पुरोहित पडे हो स्वार्थांध अन्धविश्वासो का बुन जाल,
नरक मे जन को गये ढकेल देश को अधकार में डाल ।

(सु न प . लोकायतन, पृ ३१८)

पुस्तक अनुपयोगी

१ जिस से सधे न काम, वह पुस्तक सड जात है ।
हाय प्रकट नहि नाम, लेखक पच पच के मरा ॥

(मेलाराम शिक्षा सहस्री, पृ ५२)

२ वह पुस्तक किस काम की, जिसकी माँग न होय ।
वन मे नाचा मोर है, देख सकै न कोय ॥

(मेलाराम शिक्षा सहस्री, पृ ५)

पूंजीपति

१ पूँजीपति का लक्ष्य कमाना केवल पैसा ।
करके कपट-प्रपच बढाना केवल पैसा ॥
'सेवा हो उद्देश्य'—श्रवण करके घबराता ।
उसे चाहिए लाभ, लाभ ही से बस नाता ॥

(गिरिजादत्त शुक्ल तारक वध, पृ ५२३)

२. तुम कुटीर-उद्योग बढाओ, बेकारी का शमन करो ।
जितना भी धन है सब खा कर तुम न अकेले हजम करो ॥
धन से भूत न बन कर चिपटो धन तुम को खा जायेगा ।
धन जितना भी दान करोगे, धन चरणो मे आयेगा ।
पूजी कर व्यय कर विकास मे, दुनिया को आबाद करो ॥
पूजीपति हो तुम भूतल पर नये-नये निर्माण करो ॥

(रघुवीर शरण मित्र भूमि के भगवान, पृ ५१)

३ वे व्यापारी, वे जमीदार,
वे हैं लक्ष्मी के परम भक्त,

वे निपट निरामिष सूदखोर,
पीते मनुष्य का उष्ण रक्त ।

(सं. अमृतलाल नागर : भगवती चरण वर्मा, पृ. ९७)

पूँजीपति और श्रमिक

हिमालय ? आक्रमण अहिंसा ला न सकेगा ।
प्रतिहिंसा का भ्रमण आप ही आप चलेगा ।।
पूंजीपति से अधिक पतित थे श्रमिक बनेंगे ।
जग-जीवन के हेतु क्लेश की खानि खनेंगे ।।

(गिरिजादत्त शुक्ल : तारकवध, पृ. ५०८)

पूँजीवाद

पुंजीवादी युग ने साजा है कुछ ऐसा साज ।
घर बाहर सब जगह लुटेरों का फिरता है राज ।।

(शिवमंगलसिंह सुमन : प्रलय-सृजन, पृ. ८२)

पूँजीवाद और साम्राज्यवाद

छल के मार्ग विचित्र खोजता ही रहता नित ।
पूंजीवाद विधान सोचता ही रहता नित ।।
कभी धर्म की ओट ग्रहण कर बाण चलाता ।
कभी जाति-सम्बन्ध-भाव को आगे लाता ।।
अतिलोलुप साम्राज्यवाद उसका प्रिय भाई ।
शनि सी उसकी दृष्टि मरण ही सबको लाई ।।
मीठा पूंजीवाद मारता मोहित करके ।
यह कराल साम्राज्यवाद आतंकित करके ।।
दोनों का उद्देश्य व्यक्ति का जीवन हरना ।
निराहार निर्वसन मृतक जीते ही करना ।।
दोनों का यह लक्ष्य त्रस्त हो जन साधारण ।
थोड़े ही से लोग करें सब सम्पत धारण ।।

(गिरिजादत्त शुक्ल : तारकवध, पृ. ५०४-५)

पूँजीवाद का प्रतिकार

पूंजीवाद-विनाश नहो हिंसा के द्वारा ।
फैलेगा विष घोर खेल बिगड़ेगा सारा ।।
भूले-चुके बन्धु राह पर उनको लाओ ।
तुमने पाया ज्ञान उन्हें भी ज्योति दिखाओ ।

(गिरिजादत्त शुक्ल : तारकवध. पृ. ५०५)

पूजा और सेवा

पूजा अपनी अनुराग-तृप्ति, सेवा बलि का आप्त विधान ।
पूजा के पद नही होते, सेवा छू लेती आसमान ॥
पूजा मन्दिर की मदिर गन्ध, सेवा पथ-ठोकर का निशान ।
पूजा उपवन का मधु गुलाब, सेवा भूखे का आत्मदान ॥

(मा सा च वेणु लो गूंजे धरा, पृ ५२)

पूजा का घर

पूजा का स्वर तो स्वैर नहीं होता है ।
पूजा के घर तो वैर नही होता है ॥

(मा. सा च वेण लो गूंजे धरा, पृ १५)

पूर्णता और यौवन

सदा पूर्णता पाने को सब
भूल किया करते क्या ?
जीवन मे यौवन लाने को
जी जी कर मरते क्या ?

(प्रसाद कामायनी, पृ १२३)

पूर्णता का स्वभाव

बाह्य सयोजन निस्सन्देह, मनुज को देगा सौख्य समृद्धि,
पूर्णता का स्वभाव सित ऊर्ध्व, विकृति-भगुर समतल अभिवृद्धि ॥

(सु न प लोकायतन, पृ ३८१)

पूर्व और पश्चिम

पश्चिम जग की दृष्टि न ऊर्ध्व गहन, बहिर्जगत विश्लेषण में सीमित,
वास्तवता से शून्य पूर्व की मति, अन्तर्मु-वनो के नभ में केंद्रित ।

(सु न प लोकायतन, पृ ५५५)

पृथिवी पुत्र

नही छोड सकते हैं यदि जन
देश राष्ट्र राज्यों के हित नित युद्ध करना ,
हरित जनाकुल धरती पर विनाश बरसाना ।
तो अच्छा हो छोड दें अगर
हम अमरीकन रूसी औ' इगलिश कहलाना ।

देशों से आए धरा निखर,
पृथिवी हो सब मनुजों का घर
हम उसकी संतान बराबर।

(सु. नं. पं. : स्वर्णधूलि, पृ. ३१)

पेट

१. पेट ते आयो तु पेट को धावत हार्यो न हेरत घामरु छाँही।
पेट दियौं जिहि पेट भरे सोइ 'ब्रह्म' भनैं तिहि ओर न जाहीं॥
पेट पयो सिख देतहि देत रे पापिउ पेटहि पेट समाहीं।
पेट के काज फिरै दिन राति सु पेटहु से परमेसर नाहीं॥ बीरबल

(अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, पृ. ३५३)

२. पेट ही कारन जीव हतै बहु।
पट ही माँस भखै रु सुरापी॥
पेट हि लै कर चोरि करावत।
पेट ही कौं गठरी गहि कापी॥
पेट हि पाँसि गरे गहि डारत।
पेट हि डारत कूपहु वापी॥
सुन्दर काहि को पेट दियो प्रभु।
पेट सो और नहीं कोउ पापी॥

(सुन्दर सार पृ. १७२)

३. आठ कठौती मट्ठा पीवै, सोरह मकुनी खाय।
उसके मरे न रोइये, घर का दरिद्द जाय॥

(घाघ और भड्डरी की कहावतें, पृ. २०)

पेट : की चपेट

कहूं जोगी भेष कै जगावत अलख कहूं,
सन्यासी कहाय मठ सन्यासी ठयौ फिरै।
बैरागी के रूप कहूं जंगम अनूप रस,
स्वांग हू बनाय संग रंग उतयौ फिरै।
छुधा छोभ छीन कहूं पंडित प्रवीन कहूं,
कहूं हरि रंग हीन तापन तयो फिरै।

लोभ की लपेट काम क्रोध की दपेट पेट,
पेट की चपेट लगे चेटक नयौ फिरे ।।
(देव शतक पद्य २४)

पेट —*निन्दा*

सूंघन बास कौ नाक दई, अरु आंख दई जग जोवन को।
दान के काज दिये दोऊ हाथ, सो पांव दिये पृथ्वी घूमन को ।।
कान दिये सुनिवे कौं पुरान, सु जीभ दई भज मोहन को।
गंग कहे सब नीक दियो, पर पेट दियो पत खोवन को ।।
(स मटे कृष्ण गंग-कवित्त, पृ १३०)

पेट —*पूर्ति*

उदर भरन के कारने, प्रानी करत इलाज ।
नाचै बाचै रन भिरै, राचै काज अकाज ।।
(सतसई सप्तक, वृंद सतसई, पृ ३३०)

पेट —*महिमा*

साधो पेट बडा हम जाना।
यह तो पागल किये जमाना ।।
मात पिता दादा दादी घरवाली नानी नाना ।
सारे बने पेट की खातिर बाकी फकत बहाना ।।
पेट हमारा हड्डी पुर्जा पेटहि माल खजाना ।
जब से जन्मे सिवा पेट के और न कुछ पहचाना ।
लड्डू पेडा पूरी बरफी रोटी सावूदाना ।
सर्व ज्ञान है इसी पेट में हलवा ताल मखाना ।।
यही पेट चट कर गया होटल पी गया बोतल खाना।
केला मूली आम सन्तरे सब का यही खजाना ।।
पेट भरे लाड कर्जन ने लेक्चर देना जाना ।
जब जब देखा तब तब समझे जहँ खाना तहँ गाना ।।
बाहर धर्म भवन शिवमन्दिर क्या ढूंढे दीवाना ।
ढूंढो इसी पेट में प्यारो तब कुछ मिले ठिकाना ।।
(बालमुकुन्द गुप्त)

पेट से अपमान

१ भलो भयो घर ते छुट्यो हँस्यो सीस परि खेत ।
काके काके नवत हम अपन पेट के हेत ।।—रहीम
(रहिमन विलास पृ १४)

२. 'रहिमन' अपने पेट सों, बहुत कह्यो समझाय।
जो तू अनखाये रहे, तो सों को अनखाय ॥

(रहिमन विलास, पृ. १८)

पेट :—स्तोत्र

नमामि पेटं नमामि पेटं, पेटं परमाराध्य प्रभो !
पांडे पानी—पाँड़े बनते। चौबे जी चपरास पहनते ॥
द्वारपाल हैं बने द्विवेदी। तेल बेचते बैठ त्रिवेदी।
बिड़ी बनाते हैं सांई जी। बड़ी बेचती है बाई जी ॥
तज हथियार तराजू धारी। क्षत्री बन बैठे पंसारी।
कोई शूद्र दुर्व्यसनी पाजी। बन बैठे जग में बाबा जी ॥
पृथिवी भर के सकल जीवगण। साहब बाबू सेठ महाजन।
लगा रंक से महाराज तक। सभी आपके हैं आराधक ॥
किसी को परधर्मी बनवाया। किसी को लंदन तक पहुँचाया।
लिए तुम्हारे लोग झगड़ते। पैर पकड़ते नाक रगड़ते ॥
ज्ञान तभी तक ध्यान तभी तक। ईश्वर का गुणगान तभी तक।
रहते भरे आप हैं जब तक। खाली में है कोरी बक बक ॥
घर में कोई भी मर जावे। रोना धोना भी मच जावे।
तो भी होती है तव पूजा। कौन समर्थ आप सा दूजा ॥
जन्म काल से जीवन भर तक। उषा काल से अर्द्ध रात्रि तक।
लेकर मन में विविध वासना। करते सब तव नित उपासना ॥
करे न जो नित तव आराधन। महामूर्ख पापी रह दुर्जन।
शीघ्र अवज्ञा फल पाता है। कुछ दिन ही में मर जाता है ॥
मैं ने स्तुति की है तब ऐसी। होगी न की किसी ने जैसी।
बस वरदान यही मैं पाऊँ। तेरा दुःख कभी न उठाऊँ ॥

(शुकलाप्रसाद पाण्डेय)

प्रकाश : नया

नया प्रकाश चाहिए, नया प्रकाश चाहिए
अतीत का सुवर्ण स्वर
सजीव और लाभकर,
वही रखें, न रूढ़ि के निरर्थ दास चाहिए

× × ×

गिरा, विचार, तर्क पर हमें न पाश चाहिए
विनाश की प्रथा मृषा हटे तथा विकास चाहिए
(प्रभाकर माचवे · अनु-क्षण पृ ७२)

प्रकृति-नियम

कुछ भी हो ससार आप चलता नही।
मर जाओ पर प्रकृति-नियम टलता नही।
(मै श गु किसान, पृ २४)

प्रगति

१

साँस चलती है तुझे
चलना पड़ेगा ही मुसाफिर।
चल रहा है तारकों का
दल गगन मे गीत गाता,
चल रहा आकाश भी है
शून्य मे भ्रमता भ्रमाता,
पाँव के नीचे पडी
अचला नही, यह चचला है,
एक कण भी, एक क्षण भी
एक थल पर टिक न पाता,
शक्तियाँ गति की तुझे
सब ओर से घेरे हुए हैं,
स्थान से अपने तुझे
टलना पडेगा ही, मुसाफिर।
साँस चलती
(बच्चन, सतरगिणी, यात्रा और यात्री, पृ ६७ ७०)

२ हो गया फिर जो उसे पाषाण कहना चाहिए,
एक गतिमय जीव को इन्सान कहना चाहिए,
जिन विचारो को बदलने की कभी आदत नहीं,
उन विचारो को सदा श्मशान कहना चाहिए।
(स क्षेमचन्द्र सुमन रामावतार त्यागी, पृ ३५)

प्रजा के लिए राजा

प्रजा के लिए ही नृपोद्योग है, इसी के लिए राजा का योग है।
प्रजा-श्रेय ही सर्वदा ध्येय है, इसी से प्रजा-सम्मति ज्ञेय है।।

(मै. श. ग. : चन्द्रहास, पृ. ५३)

प्रजा :—प्रेम

रहा न रावण-सा अभिमानी, रहे न राम लोक-अभिराम।
रहा न कोई कौरव-कुल में, रहे न अर्जुन गुरु-घनश्याम।।

खोटे और खरे सब खाये, काल व्याल ने वदन पसार।
ऐसा सोच प्रजा पर प्यारे, करना पूरा-पूरा प्यार।।

(नाथूराम 'शंकर' : वायसविजय, पृ. २६)

प्रजा :—शिक्षा

अपराधी की ओर प्रेम का हाथ बढ़ाओ।
केवल उसका दोष द्वेष का पात्र बनाओ।।

ले अपने ही आप दंड अपराधी सिर पर—
शिक्षा दो दनुजेश! राज्य में ऐसी हितकर।

(गिरिजादत्त शुक्ल : तारसवध, पृ. ५०६)

प्रजातंत्र : गुण

हो सकती हैं प्रजातंत्र में भी कुछ त्रुटियां,
प्रासादों से हीन न होंगी उसमें कुटियाँ।
एक श्रमिक जो आज भूमि ही खन सकता है,
कल सुयोग्य हो वही राष्ट्रपति बन सकता है।।

(मै. श. ग. : राजा-प्रजा, पृ. २६)

प्रजातंत्र : दोष

प्रजातंत्र के दोष वस्तुतः स्वयं हमारे।
होते हम क्यों पतित न परवशता के मारे।।

(मै. श. गु. : राजा-प्रजा, पृ. २७)

प्रणय (दे० प्रेम भी)

कहते हैं, धरती पर सब रोगों मे कठिन प्रणय है।

(दिनकर की सूक्तियाँ, पृ. ६०)

प्रणय अनार्य

'आलम' ते नर तुच्छ मति, जे पर रूप मनु देहि।
सुख सरति लज्जा तजै, दुख बिरहा सोइ लेहि॥

(आलम माधवानल कामकन्दला)

प्रणय का परिणाम

नेह लगाने का जग में परिणाम यही होता है।
एक भूल के लिए आदमी जीवन भर रोता है॥

(दिनकर सामधेनी, पृ. १३)

प्रतिकार

जिनमेउ दोष न करि प्रतिदोषा। भयेउ रोष ते शान्त न रोषा।
निबल कबहुँ न होत उदारा। तुम बलहीन तजहु प्रतिकारा॥

(द्वा प्र मि कृष्णायन, पृ. ७७७)

प्रतिज्ञा-पालन (दे० सत्य भी)

१ सूर समन्त चढ़ै रन ऊपर, ते पुनि कोटि करो बिचलै ना।
. बात यहै सिरदारन की, मुंह ते कहि कै कबहूँ बदलै ना॥

—अज्ञात

(स सी ए इलियट : आल्हखंड, पृ २३)

२ या तन बचन सार स्रुति भाखैं। तन मन धन दै बचन जु राखैं॥
तन धन मात पुत्र अरु नारी। हरि बिधु त्यागि बचन प्रतिपारी॥

(जोधराज हम्मीर रासो, पृ. ११८)

३ प्रथम प्रतिज्ञा करी शासन कह्यो सब,
सुत के सनेह बस सब बिसराइये।
यह बिपरीत रघुबसिन उचित नहिं,
आजु लौं न ऐसी ‸ से पाइये॥

भनै 'रघुराज' जो कल्यान होइ रावरे को,
त्यौं तो हम आये जस तैसे फिर जाइये।
मिथ्यावादी ह्वै के भूप भोग भोगिये अनूप,
बंधुन समेत सुख संपति कमाइये ॥
(महाराज रघुराजसिंह : संक्षिप्त राम स्वयंवर, पृ. ५७)

४. वरु सूरज पच्छिम उगे, विंध्य तरै जल माहिं।
सत्यवीर जन पै कबहुँ, निज बच टारत नाहिं ॥
(भारतेन्दु नाटकावली, पृ. ४६६)

प्रतिभाशाली

कैसे समझोगे कि कौन प्रतिभाशाली है ?
प्रतिभा के लक्षण अनेक है, किन्तु, कभी जब
सभी गधे जब एक व्यक्ति पर लात चलायें,
अजब नहीं, वह व्यक्ति महा प्रतिभाशाली हो।
(दिनकर : नये सुभाषित, पृ. १३)

प्रतिष्ठा-रक्षा

पतिहि गएँ मति जाय, गएँ मति मान गरै जिय।
मान गरे गुन गरै, गरै गुन लाज जरै जिय ॥
लाज जरे जस भजै, भजे जस धरम जाइ सब।
धरम गए सब करम, करम गए पाप बसै तब ॥
पाप बसे नरकन परै, नरकन 'केशव' को सहै।
यह जानि देहुं सरवसु तुम्हें, सुपीठ दएं पति ना रहै ॥
(केशव पंचरत्न, रत्नावली, पृ. ७)

प्रभाव : पश्चिमी

ईस गिरिजा जो छोड़ यीशु गिरिजा में जाय,
'शंकर' सलोने मैन मिस्टर कहावेंगे।
बूट पतलून कोट कम्फटर-टोपी डाट,
जाकट की पाकट में 'वाच' लटकावेंगे ॥
घूमेंगे घमंडी बने रंडी का पकड़ हाथ,
पियेंगे बरण्डी मीट होटल में खावेंगे।
फारसी की छारसी उड़ाय इंगरेजी पढ़,
मानों देव नागरी का नाम ही मिटावेंगे ॥
(नाथूराम शंकर शर्मा)

प्रभु का अपमान

पूरी कोशिश किये कराये, अपनी ताकत बिन अजमाये।
रटन लगाना राम नाम की, है प्रभु का अपना अपमान ॥
सुख मे याद भले कर उसको, दुख मे मत ले प्रभु का नाम ॥

(श्रीमन् नारायण रजनी मे प्रभात का अंकुर, पृ. २१)

प्रभु का दर्शन

१ जूआ चोरी मुखबिरी, ब्याज घूस परनार।
जो चाहै दीदार को, एती वस्तु निवार ॥—कबीर

(सन्त-सुधा-सार, पृ. १७५)

२ मधरात्रि की काली-काली, अलकों मे उषा छिपती है,
इस नश्वर जीवन मे ही तो, शाश्वत की गरिमा दिखती है।

(श्रीमन् नारायण : रजनी में प्रभात का अंकुर पृ. ५२)

प्रभु की पहचान

दया दीनता दास भाव बिनु 'श्याम' न हरि पहिचानी ॥

(श्यामवाणी पृ. १३१)

प्रभु के चोर

हरिहि बरि जे फिरि सरकये। जम के द्वार बँधे ते नये।
हरि के चोर भये ते प्रानी। जिनि माया अपनी करि जानी ॥

(स्वामी रसिकदेव भक्ति सिद्धान्त मणि)

प्रभु—गति अगम्य

सुभ अरु असुभ करम अनुहारी। ईसु देइ फलु हृदय बिचारी।
करइ जो करम पाव फल सोई। निगम नीति असि कह सबु कोई ॥
औरु करै अपराधु कोउ, और पाव फल भोगु।
अति विचित्र भगवन्त गति, को जग जानै जोगु ॥

(रा च मा गु. पृ २७६)

प्रभु चिंतन

बहुत शेष बहुत शेष है, बहुत शेष है,
हम मत भूलें, मत अपना गुण-गान करें।

जिस घर को छूने, सागर की लहरें दौड़ रही हैं,
आओ, उस घर के मालिक से कुछ पहचान करें ॥

—माखन लाल चतुर्वेदी
(सं. अजित कुमार : कविताएँ १९६३)

प्रभु :—छवि

सुषमा उसी की अवलोक के सुधाकर में,
रूप सुधा पीकर चकोर न अघाते हैं ।
घन की घटा में नव निरख उसी की छटा,
मंजुल मयूर होते मोद मद माते हैं ।
फूलों में उसी की शोभा देख के मिलिन्द-वृन्द,
फूले न समाते 'गुन-गुन' गुण गाते हैं ।
दीप्यमान दीपक में देख वही छवि बाँकी,
प्रेम से प्रफुल्लित पतंग जल जाते हैं ॥ १ ॥
वन उपवन में सरोज में सरोवर में,
सुमन सुमन में उसी की सुघराई हैं ।
चम्पक चमेलियों में नवल नवेलियों में,
ललित लताओं में भी उसकी लुनाई है ॥
पाई जाती वही रंग रंग के विहंगमों में,
कान्तिपुंज कुंज-कुंज मे वही समाई है ।
जहां देखो वहाँ वही छवि दिखलाई देती,
उर में समाई तथा लोचनों में छाई है ॥ २ ॥

(गोपाल शरणसिंह)

प्रभु : दूर नहीं

देह-देवरा पूजियो, तीन लोक तिन माँह ।
तीरथ षटदर्सन सँच्यो, नेरे वैठे नाँह ॥

(बरकत उल्लाह पेम : पेमप्रकाश, पृ. १५)

प्रभु :—प्राप्ति

दुनिया ने कायर बन कर ही, बना लिया प्रभु-नाम अफीम;
खुद को खोज ईश को पाले, मानव ! तेरी शक्ति असीम !

(श्रीमन् नारायण : रजनी में प्रभात का अंकुर, पृ. ९२)

प्रभु :—प्राप्ति का पथ

आतम ही रथवान प्रमान शरीरहिं जो रथ रूप बनावै ।
बुद्धि बने वर सारथी आय सु मानस केरि लगाम लगावै ॥

इन्द्रिय बाजि जुते जब जाय कुचाल सयन्त सुचाल चलावैं।
हाय 'विनायक' विष्णु समीप अजासहि मारग पार सु पावैं॥

(विनायक राव)

प्रभु प्रेमी दुर्लभ

यन यन नग न होंहि जेहि जोती। जल जल सीप न उपनहि मोती॥
वन वन विरिछ न चदन होई। तन तन बिरह न उपनै सोई॥

(जायसी ग्रंथावली, शू., पृ १७१)

प्रभु —भक्ति

जीवत सुख दुख मे दिन भरै, मुआ पछै चौरासी परै।
जन दरिया जिन राम न ध्याया, पसुवा ही ज्यो जनम गवाया॥

(—मारवाड़ी दरिया, सरलाशुक्ल जायसी के परवर्ती पृ ३१०)

प्रभु —लीला के दर्शन

देखा चाहो प्रभु की लीला, आओ देखो शिशु की क्रीड़ा!
पैदा होते कौन सिखाता, पीना पय माँ के अचल में?
सोना रोना फिर मुसकाना, कौन सिखा देता पल-पल में?
कौन जगा देता उत्कंठा, सुन-सुन सब कुछ देख समझना,
पूछ-पूछ कर प्रश्न अनोखे, नई चीज से नित्य सुलझना,
ब्रह्म ज्ञान के लिए जरूरी, नहीं योग-साधन तन-पीड़ा,
देखा चाहो प्रभु की लीला, आओ देखो शिशु की क्रीड़ा।

(श्रीमन् नारायण रजनी मे प्रभात का अंकुर, पृ १०१)

प्रभु —विश्वास

चिड़ियों को दाना मिले, शिशु को पय की धार,
प्रभु सब की चिन्ता करे, नाहक तू बेजार।

(श्रीमन् नारायण रजनी में प्रभात का अंकुर, पृ १०१)

प्रभु सब का दाता

मोर मेरु पर चुगै, चुगै पच्छी बहु तरुवर।
केहरि चुगै अरण्य, हंस—गन मान—सरोवर॥
मच्छ कच्छ जल चुगहि चुगहि पाताल उरगहि।
कदली-बन गज चुगहि, चुगहि पर बँधे तुरंगहि॥
जग माँझ चुगहि सब जीव दृढ, तिन न पास कछु गंथ है।
चिन्ता न करहु निश्चिन्त ह्वै, देनहार समरत्थ है॥

(स० बटे कृष्ण गंग कवित्त, पृ ११७)

प्रभु :—स्मरण दुःख में

सुख में न तुम को याद करता है मनुज की गति यही,
पर नाथ पड़ कर दुःख में किसने पुकारा है नहीं।
सन्तुष्ट बालक खेलने से तो कभी थकता नहीं,
कुछ क्लेश पाते, याद पड़ जाते पिता-माता वहीं॥
(प्रसाद : कानन—कुसुम, पृ. १३)

प्रभुता का मोह

इस प्रभुता के हेतु न जाने,
कहाँ—कहां है छिड़ी लड़ाई।
इस प्रभुता के हेतु भिड़ पड़ा,
इस जग में भाई से भाई॥
(बलदेवप्रसाद मिश्र : साकेत-सन्त, पृ. १६४)

प्रयाग

को कह सकइ प्रयाग प्रभाऊ।
कलुष पुंज कुंजर मृगराऊ॥
(रा. च. मा. गु. : पृ. २९१)

प्रयोग

त्रिगुणात्मक है जगत, यहाँ है,
कोई नहीं पदार्थ हानिकर,
भला बुरा उनका प्रयोग ही,
है सुख दुख का हेतु यहाँ पर।
सदुपयोग से विष पावक भी,
हो जाते है सुख-उत्पादक,
किन्तु अबुध अनुचित प्रयोग से,
कर लेते हैं उन्हें विघातक
(रा. न. त्रि. : स्वप्न, पृ. ७२)

प्रवास

जा पर होइ तासु अनुकंपा, तापर होइ सुमन सम संपा।
जनम भूमि मों जब लगि कोई, तब लगि गुनी-विदग्ध न होई।
सुमन तोरि जब बाहर आवै, उन्नत ठौर पाग तब पावै॥
गएं विदेश बहुत कुछ, आवै दिस्टि।
सहि परदेस-सरम, नर, देखे सिस्टि॥
(नूरमुहम्मद : अनुराग बाँसुरी, पृ. २०)

प्रवेश और निकास

करिये तहँ पैसार जहँ, जो जानियै निसार।
चक्रव्यूह अभिमन्यु को, गुन्यो सबनि ससार॥
(वृन्द सतसई दोहा ६३१)

प्रसिद्धि

मरणोपरान्त जीने की है यदि चाह तुझे।
तो सुन बतलाता हूँ सीधी राह तुझे॥
लिख ऐसी कोई चीज कि दुनिया डोल उठे।
या कर कुछ ऐसा काम जमाना बोल उठे॥
(दिनकर नये सुभाषित, पृ २८)

प्राचीन—नवीन

१ प्राचीन बातें ही भली हैं, यह विचार अलीक है।
जैसी अवस्था हो जहाँ, वैसी व्यवस्था ठीक है॥
(मै श गु भारतभारती, भविष्यत खण्ड)

२ न तो श्रेष्ठ है सब प्राचीन, और निकृष्ट न सभी नवीन।
करें परीक्षा गुणिगण गूढ, करें रूढि पर-मत पर रूढ॥
(मै श गु हिन्दू, पृ १७२)

प्राण

न प्राण लेना अति क्लिष्ट कार्य है,
पिपीलिका भी हरती करीन्द्र को,
परन्तु देना वश मे न अन्य के,
नरेन्द्र के या कि नरेन्द्र-नाथ के।
(अनूप वर्द्धमान, पृ ३०५)

प्राणी अवध्य

सी [illegible]-स्थावर प्राणि विश्व में,
अवध्य ही हैं न, अदडनीय हैं,
विभीत होते सब दड—नाम से,
कदापि प्राणी मरना न चाहते।
(अनूप वर्द्धमान, पृ १७७)

[कालिदास के निम्नलिखित पद्य से तुलना करें—
पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते, मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः॥]

प्राप्ति : किससे किसकी

जाचक लघुपद लहै, काम आतुर कलंक पद।
लोभी अपजस लहै, असन-लालची लहै गद।
उन्नत लहै निपात, दुष्ट परदोष लहै तकि।
कुमति विकलता लहै, लहै संसै जु रहै चकि।
अपमान लहै निरधन पुरुष, ज्वारी वहु संकट सहै।
जो कहै सहज करकस वचन, सो जग अप्रियता लहै।

(बनारसीदास : बनारसी विलास, पृ. १७४)

प्रार्थना

१. प्रभु सौं बात दुरी न लउ, करिये अरज मुखेन।
रुक्मिनि आतुरता लिखी, हरि कह जानत है न॥

(सतसई सप्तक : वृन्द सतसई, दो० ६७७)

२. प्रार्थना से जो उठा है पूत हो कर।
प्रार्थना का फल उसे तो मिल गया।

(दिनकर : नये सुभाषित, पृ. १८)

प्रार्थना—निषेध

प्रार्थना मत कर, मत कर, मत कर!
युद्ध--क्षेत्र में दिखला भुज--वल,
रह कर अविजित अविचल प्रतिपल,
मनुज—पराजय के स्मारक हैं,
मठ, मस्जिद, गिरिजा घर!
प्रार्थना...
झुकी हुई अभिमानी गर्दन,
बँधे हाथ, नत निष्प्रभ लोचन!
यह मनुष्य का चित्र नहीं है,
पशु का है, रे कायर!
प्रार्थना...

(बच्चन : अभिनव सोपान, पृ. १४८)

प्रार्थना में नम्रता

हृदय नम्र होता नहीं, जिस नमाज के साथ।
ग्रहण नहीं करता कभी, उसको त्रिभुवन नाथ॥

(मै. श. गु. : काबा और कर्बला, पृ. ४०)

प्रियतम

यद्यपि अवनि अनेक है, कूपवत सरि ताल।
'रहिमन' मान-सरोवरहि, मनसा करत मराल॥
(रहिमन विलास पृ १६)

प्रीति

प्रीति तौ काहू सों न कीजै।
बिछुरत कठिन परै मेरी माई ! कहु कैसें कैं जीजै॥
रति रति कै करि जोरि-जोरि कैं हिलि-मिलि सरबसु दीजै।
एक निमिष सम सुख के कारन जुग-समान दुख लीजै॥
(कुंभनदास, पृ ८२)

प्रीति अतिनीच से

पन्नगारि असि नीति, स्रुति सम्मत सज्जन कहहिं
अति नीचहु सन प्रीति, करिय जानि निज-परम-हित॥
—तुलसीदास

प्रीति झूठी

रहिमन प्रीति न कीजिए, जस खीरा ने कीन।
ऊपर से तो दिल मिला, भीतर फाँकें तीन॥
(रहिमन विलास, पृ ३२)

प्रीती से प्रियतम प्राप्ति

प्रीतम प्रीत ही तें पैये।
जदपि रूप गुन सील सुघरता इन बातनि न रिझैये॥
सत कुल जनम करम सुभ लच्छन वेद पुरान पढैये।
'गोविन्द' प्रभु बिना स्नेह सुवा लों रसना कहा नचैये॥
[(गोविन्द स्वामी', पृ १४४)

प्रेम

१ प्रेम सरोवर नीर है, यह मन कीजो ख्याल।
परे रहैं प्यासे मरैं, उलटो ह्या की चाल॥
(भारतेन्दु ग्रन्थावली, द्वि स, पृ १०३)

२ लोक लाज की गाँठरी पहिले देइ डुबाय।
प्रेम सरोवर पथ मैं पाछें राखै पाय॥
जिन पाँवन सो चलत तुम लोक वेद की गैल।
सो न पाँव या सर धरौ जल व्है जैहै मैल॥

प्रेम सकल श्रुति-सार है, प्रेम सकल स्मृति-मूल।
प्रेम पुरान प्रमाण है, कोउ न प्रेम के तूल ॥
काम-क्रोध भय लोभ मद सबन करत लय जौन।
महा मोह हूसों परे प्रेम भाखियत तौन ॥

(भारतेन्दु ग्रन्थावली, द्वि. खं., पृ. १०४—५)

३. न प्रेम प्रालेय, विदाह भी यही,
न प्रेम राकेश, दिनेश भी यही,
न प्रेम है रुग्ण, अमर्त्य भी यही,
न हार ही, प्रत्युत प्रेम जीत है।

(अनूप : वर्द्धमान, पृ. १५९)

४. भूल नहीं,
शूल नहीं,
चिन्ता की मूल नहीं।
चाल नहीं,
जाल नहीं,
दुर्दिन की माल नहीं।
पाप नहीं,
शाप नहीं,
संकट सन्ताप नहीं।
प्रेम अजर, प्रेम अमर
जो कुछ भी सुन्दर तर
जगती में, जीवन में
लाता है मंथन कर,
मंथन से सिहर-सिहर
उठते हैं नारी-नर !

(बच्चन : सतरंगिनी, पृ. १६१)

५. प्रेम कितना उन्मादक प्रेम ! सुखद भी अवसादक भी प्रेम !
मधुर भी और तिक्त भी प्रेम ! पूर्ण भी और रिक्त भी प्रेम !

(राजेन्द्र देव सेंगर : सारन्धा, पृ. ३१)

प्रेम : अनन्य

बरपि परुष पाहन पयद, पंख करौ टुक टूक।
तुलसी परी न चाहिए, चतुर चातकहि चूक ॥

बध्यो बधिक पर्यो पुन्यजल, उलटि उठाई चोंच।
तुलसी चातक प्रेम पट, मरतहुँ लगी न खोंच॥
(तुलसीदास दोहावली, दोहा २८२, ३०२)

प्रेम अमर

का सो प्रीति तन माँह बिलाई।
सोई प्रीति जिउ साथ जो जाई॥
(जायसी ग्रन्थावली, पृ २२)

प्रेम ईश्वर और जीवन

पर्याय प्रेम, ईश्वर, जीवन—, सेवक जिसके श्रुति स्मृति दर्शन,
देखो गल मन आवरण उठा, यह धरा स्वर्ग शोभा प्रांगण।
(सु न प लोकायतन, पृ ६७२)

प्रेम उद्भव और प्रसार

जगता प्रेम प्रथम लोचन में, तब तरंग—निभ मन में।
प्रथम दीखती प्रिया एक—वही, फिर व्याप्त भुवन में॥
(दिनकर की सूक्तियाँ, पृ ६२)

प्रेम और कर्त्तव्य

वस्तुत प्रेम और कर्त्तव्य,
एक ही पथ के हैं दो छोर।
ज्ञान ही हमें कराता भान,
कि हों वे किस सुलक्ष्य की ओर॥
(बलदेवप्रसाद मिश्र साकेत-सन्त, पृ १५४)

प्रेम और काम

प्राणों के स्तर स्तर में पुलकित।
अमर भावनाएँ हों विकसित॥
प्रीति—पाश में बँधे सुन्दरता।
काम भीति से हो सकलंकित॥
(सु न प स्वर्ण किरण, पृ ७)

प्रेम और द्वेष

अमृत प्रेम, द्वेष विष जानी। नव पथ पथिक होहु नव प्राणी॥
(द्वा प्र मि कृष्णायन, पृ ७६८)

प्रेम और बलिदान

उद्दाम प्रीति बलिदान—बीज बोती है।
तलवार प्रेम से और तेज होती है॥

(दिनकर की सूक्तियाँ, पृ. ६४)

प्रेम और मोह

यह जो केवल रूप-जन्य है मोह न उसका स्पर्धी है
यही व्यक्तिगत होता है; पर प्रेम उदार अनन्त अहो
उसमें इसमें शैल और सरिता का—सा कुछ अन्तर है।

(प्रसाद : प्रेमपथिक, पृ. २२३)

प्रेम और विषय—सुख

विषय सुख नव यौवन का सत्व,
महत् तन से हृदयों का प्यार,
मत्त वह क्षण मदिरा आवेश,
नित्य यह, मधुर सुधा रस धार!
बाह्य साधन से गर्भ निरोध,
बुद्धि—संगत,—कुसुमास्त्र अजेय,
शुभ्र नर नारी उर का प्रेम
जयी हो स्मर पर,—जीवन ध्येय!

(सु. नं. पं. : लोकायतन, पृ. २७१)

प्रेम : कहाँ है?

प्रेम नहीं मिलता पैसे से, सब को सुलभ हमेशा रहता!
मानवता से सिंचे मनों में, प्रतिक्षण अविरल निर्मल बहता!

(श्रीमन् नारायण : रजनी में प्रभात का अंकुर, पृ. ९३)

प्रेम : का अपात्र

उस निष्ठुर दीपक देवता से वरदान की आशा लगाना बुरा।
करते हो उपासना खूब करो पर चौगुना चाव चढ़ाना बुरा॥
उससे न मिलेगा तुम्हें कुछ भी भ्रम में मन को उलझाना बुरा।
सुख साथ है जीवन के जग में, जल के कहीं प्राण गँवाना बुरा॥
तुम को कर भस्म समूल पतंग वो दीपक तो जलता ही रहा।
परवाह न प्रीति की की उसने वह नित्य तुम्हें खलता ही रहा।

अपनी विष से भरी सुन्दरता को दिखा तुमको छलता ही रहा ॥
तुम ने किया प्रेम औ प्राण दिये उसका क्रम तो चलता ही रहा ॥
—रामेश्वरी देवी 'चकोरी'
(गि द घु हि का को, पृ २१२)

प्रेम का उदय

ज्यों-ज्यों छूटै अयानपन त्यों-त्यों प्रेम प्रकास ।
जैसे केरी आँब की पकरत पकै मिठास ॥
(वृन्द सतसई, दोहा ६५९)

प्रेम का उपहार

पाना क्या शेष रहे फिर जब
मन को मन का उपहार मिले !
(बच्चन अभिनव सोपान, पृ २५३)

प्रेम का औषध नहीं

प्रेम-व्याधि औखद सों, नाही जाति ।
हरति जाति सुख तन सों, दिन औ राति ॥
(नूर मुहम्मद अनुराग बाँसुरी, पृ ५८)

प्रेम का कारण अज्ञेय

कैसे किस पर मन चल जाता यह रहस्य कुछ है दैविक ।
आखों के काँटों पर तुल कर, हृदय तुरत जाता है बिक ॥
इस ताले की कुंजी अब तक खोज-खोज कर हार गये ।
इस रहस्य को समझ न पाये कितने खो ससार गये ॥
(गुरु भक्तसिंह भक्त विक्रमादित्य, पृ ५)

प्रेम का प्रवाह

इच्छा नहीं हमें हे भगवन ! हो सम्पत्ति हमारे पास ।
नहीं चाहिये प्रासादों का, वह विलासमय सुखद निवास ॥
सोयें भूखी तृण शय्या पर, कर फल-पत्तों पर निर्वाह ।
पर ममता का हृदय भूमि पर, सचालित हो प्रेम प्रवाह ॥
(गोकुल चन्द शर्मा)

प्रेम का महत्व

१ गन्ध विहीन फूल है जैसे, चन्द्र चन्द्रिका हीन ।
यों ही फीका है मनुष्य का, जीवन प्रेम-विहीन ॥

प्रेम स्वर्ग है स्वर्ग प्रेम है, प्रेम अशंक अशोक।
ईश्वर का प्रतिबिंब प्रेम है, प्रेम हृदय—आलोक ।।
(रा. न. त्रि. : मिलन. पृ. २३)

२. प्रेम बिना जन हैं जीवन्मृत,
प्रेम बिना अपने में सीमित,
मिलता जहाँ प्रणय चरणामृत,
मृत्यु न आती पास तहाँ !
प्रेम नहीं प्राणों का बन्धन,
प्रेम नहीं अस्थिर विरह मिलन,
प्रेम मुक्ति है प्रेम ही सृजन,
सुख दुख में आनन्द जहाँ !
(सु. नं पं. : स्वर्णधूलि, पृ. १४४)

३. घृणा घाव नित करती,
प्रीति घाव शत भरती,
स्नेह—स्पर्श से ही रे,
हरी भरी यह धरती !
(सु. नं. पं. : वाणी, पृ. ३७)

४. प्रेम की महिमा अकथ अपार,
प्रेम है मानवता का सार ।
प्रेम का हमें चखाता स्वाद,
विविध रूपों वाला संसार ।
प्रेम ही रख 'मदीय' का रूप,
और फिर 'अस्मदीय' की छाप ।
दिखा कर फिर 'त्वदीय' का रूप,
निखरता है 'तदीय' बन आप ।।
(बलदेव प्रसाद मिश्र : साकेत-सन्त, पृ. १४८)

प्रेम : का मूल्य

समक्ष स्वर्गीय-प्रभाव प्रेम के
समृद्धि सारी अति तुच्छ भूमि की,
न प्रेम के है अतिरिक्त प्रेम का
सुना गया मूल्य समस्त विश्व में
(अनूप : बर्द्धमान, पृ. १६१)

प्रेम का राज्य

स्थिर, पवित्र, आनन्द-प्रवाहित, सदा शान्त, सुखकर है।
अहा! प्रेम का राज्य परम सुन्दर अतिशय सुन्दर है॥

(रा न त्रि पथिक, पृ १८)

प्रेम का शासन

गौर श्याम, उत्तम जघन्य, कुत्सित कुरूप सुन्दर का।
होता नहीं विचार प्रेम के शासन में निज पर का।
घृणित अछूत अकिंचन जग में जो जन है जितना ही।
तुम से है वह प्रेम प्राप्ति का पात्र अधिक उतना ही॥

(रा न त्रि, पथिक, पृ ३३)

प्रेम की अनोखी रीति

यह अनोखी रीति है क्या प्रेम की,
जो अपांगो मे अधिक है देखना,
दूर होकर और बढ़ता है, तथा
वारि पीकर पूछता है घर सदा?

(सु न प आधुनिक कवि, पृ २२)

प्रेम की कथा

स्मृति सुमृति वेदपुरान कहत मुनि विचारी।
'परमानन्द' प्रेमकथा सबहिन ते न्यारी॥

(परमानदसागर, पृ ११८)

प्रेम की डोरी

अद्भुत डोरी प्रेम की जामें बांधे दोय।
ज्यों ज्यों दूर सिधारिये त्यों-त्यों लांबी होय॥
त्यों त्यों लांबी होय अविश्वर राग कमिकैं।
नेह पून हूँ सकै नेक नहि दूरहु बसि कैं।
विधिना देत बिछोह, कहूँ तासो कर जोरी।
रचियो छेम गमीर प्रेम की अद्भुत डोरी॥

(राय देवी प्रसाद 'पूर्ण')

प्रेम की पीड़ा

'परमानन्द' प्रभु पीर प्रेम की काहू सों नहिं कहिए।
जैसे व्यथा मूक बालक की अपने तन मन सहिए॥

(परमानन्द सागर, पृ १५१)

प्रेम : की बाजी

'मुहमद' बाजी पेम की ज्यों भावै त्यों खेल।
तिल फूलहिं के संग ज्यों होइ फुलायल तेल ।।
(जायसी ग्रंथावली, पृ. २५)

प्रेम : गोप्य

बात हिलग की कासों कहिये।
सुनु री सखी विवस्था तन की, समुझि मनहिं मन चुप करि रहिये।
मरमी बिना मरमु को जाने, इहि बातें सब जिय हीं सहिये ।।
('चतुर्भुजदास', पृ. १२७)

प्रेम : जन्मान्तर तक

कासो प्रीति तन माँह बिलाई ? सोइ प्रीति जिउ साथ जो जाई ।।
(जायसी ग्रन्थावली, पृ. २२)

प्रेम :—जन्य दाह

नेह जरावत दुहुन को, दीपक और पतंग ।
जरिवो और जराइवो, याही रहत उमग ।।
(प्रसाद : चित्राधार, पृ. २४)

प्रेम : जीवन-सार

प्रेम ही मानव जीवन सार,
प्रेम, हरि कहता, सर्व समर्थ,
प्रेम के बिना न जीवन-मूल्य
समझता मन, न सृष्टि का अर्थ !
(सु. नं. पं. : लोकायतन, पृ. २७१)

प्रेम : तुल्यों में

मूसा ने मंजार, हित कर बैठा हेकठा।
सब जाणों संसार, रह न रहसी 'राजिया' ।।
(राजिया के सोरठे, पृ. २१)

प्रेम : दूषित

बाधाओं का अतिक्रमण कर
जो अबाध हो दौड़ चले,

वही स्नेह अपराध हो उठा
जो सीमा बन्धन तोड चले ।

(प्रसाद कामायनी, पृ २०८)

प्रेम दोनों ओर से

नारी होवे नर हुए युवा वृद्ध जो कोय ।
जो जाको चाहै नही, ताको चहै न सोय ॥

(गिरिधर · कुडलिया, पृ ११०)

प्रेम *द्विविध*

ससारी परमार्थी द्वैविधि को यह प्रेम ।
दुहू भाँति कौं देतु है, महामुक्ति को छेम ॥

(देवीदास प्रेमरत्नाकर, पृ २)

प्रेम *नहीं छिपता*

नागरि ! छाडि दै चतुराई ।
अन्तर गति की प्रीति परस्पर, नाहिन दुरनि दुराई ॥
ज्यो ज्यो ठानति मान मौन धरि, मुख रस राखि रुखाई ।
त्यो-त्यो प्रगट होत उर अन्तर, काच कलस जस भाई ॥

(चतुर्भुजदास, पृ १४६)

प्रेम *निःस्वार्थ असम्भव*

फलहीन महीरुह त्यागि पखेरु बनानल मे मृग दूरि पराहीं ।
रसहीन प्रसूनहि त्याग करैं अलि सुष्क सरोवर हस न जाहीं ॥
पुरुषै निरद्रव्य तजै गनिका न अमात्य रहैं बिगरे नृप माहीं ।
शिवसम्पति रीति यही जग की बिन स्वारथ प्रीति करै कोउ नाहीं ॥

(शिवसम्पति)

प्रेम —पथ

१ जो सनेह मग पर पग राखै, सो करेज को सोनित चाखै ।
जिय सो गरु होइ जो कोई, सो सनेह को पथिक होई ॥
यह मैदान न जीते पारे, अर्जुन भीम अस्त्र जहँ डारे ।
है सनेह के कठिन लडाई, सक्ती पाइ लखन मरि जाई ॥

(नूरमुहम्मद अनुराग बाँसुरी, पृ २९)

२ "कवि बोधा" अनी घनी नेजहु ते चढि तापै न चित्त डरावनो है ।
यह प्रेम को पथ कराल महा तरवारि की धार पै धावनो है ॥

प्रेम : पुरुष और स्त्री का

पुरुष का प्रेम तब उद्दाम होता है,
प्रिया जब अंक में होती।
त्रिया का प्रेम स्थिर अविराम होता है,
सदा बढ़ता प्रतीक्षा में॥

(दिनकर : नये सुभाषित, पृ. २)

प्रेम : बाहरी

'रहिमन' प्रीति न कीजिए, जस खीरा ने कीन।
ऊपर से तो दिल मिला, भीतर फाँकें तीन॥

(सं. ब्र. र. दा : रहिमन विलास, पृ. २२)

प्रेम : में अतृप्ति

पाँव बढ़ते, लक्ष्य उनके साथ बढ़ता,
और पल को भी नहीं यह क्रम ठहरता,
पाँव मंजिल पर नहीं पड़ता किसी का,
प्यार से, प्रिय, जी नहीं भरता किसी का॥

(बच्चन : मिलनयामिनी, पृ. ५०)

प्रेम : में निर्भयता आदि

जो पें चोंप मिलन की होइ।
तौ कत रह्यौ परै सुनि सजनी! लाख करै जो कोइ॥
जो पें विरह परस्पर व्यापै तौ इह बात बनै।
डरु अरु लोक-लाज अपकीरति एकौ चित न गनै॥

(कुंभनदास, पृ. ८२)

प्रेम : में निर्लज्जता

लोकवेद-मरजाद सब, लाज काज संदेह।
देत बहाए प्रेम करि, विधि निषेध को नेह॥

(रसखानि, पृ. ७५)

प्रेम : में परिवर्तन

दिन भर प्रेम जलज-सा रहता शीतल शुभ्र असंग।
पर धरने लगता होते ही साँझ गुलाबी रंग॥

(दिनकर : नये सुभाषित, पृ. ४)

प्रेम : में मनमानी

१ ऊधो, मन माने की बात ।
दाख छुहारा छाँड़ि अमृत फल विस कीरा विस खात ।
'सूरदास' जा को मन जासो सोई ताहि सुहात ॥
(सूरसागर २, पृ १५१८)

२ जो जेहि रस निन है मकरंदी, ता चरचा सुनि होइ अनन्दी ।
तपी तपस्या सन सुख पावै, मदिरा बात मदूपहि भावै ॥
विद्यारागी विद्या सुनै, फूल सनेही फूलै चुनै ।
जो जाको मन भावन होइ, ता गुन सन मुद मानै सोइ ॥
(नूर मुहम्मद अनुराग बाँसुरी, पृ २४)

३ जो जा को प्यारो लगै, सो तिहि करत बखान ।
जैसे विष को विषभखी, मानत अमृत समान ॥
(वृन्द सतसई, दोहा ७)

४ जा को जा सो मन लग्यो, सो तिहि आवै दाय ।
भाल भस्म विष मुंड शिव, तोऊ शिवा सहाय ॥
(वृन्द सतसई, दोहा १०)

प्रेम में मिलन और बिछोह

न इतने पास आ जाना मिलन भी भार हो जाये,
न इतने दूर हो जाना कि जीवन भर न मिल पाऊँ !
(भारत भूषण सागर के सीप, पृ ४)

प्रेम यथायोग्य

हिलि मिलि जानै तासो मिलि कै जनावै हेत,
हित को न जानै ताको हितू न बिसाहिये ।
होय मगरूर तापै दूनी मगरूरी कीजै,
लघु ह्वै चलै जो तासा लघुता निबाहियै ।
"बोधा कवि" नीति को नबेरो यही भाँति अहै,
आप को सराहै ताहि आपहू सराहिये ।
दाता कहा सूर कहा सुन्दर सुजान कहा,
आप को न चाहै ताके बाप को न चाहिये ॥
(कविता कौमुदी, १, पृ ५१६)

प्रेम : विद्या से ऊँचा

पढ़ि पढ़ि के पत्थर भये, लिख लिख भए जो ईंट ।
कबिरा अन्तर प्रेम की, लागी नेक न छींट ।।

(कबीर वचनावली, पृ. १३३)

प्रेम : शक्ति

निखिल शक्तियों में जगती की, प्रेम-शक्ति ही निश्चय अविजित ।
नम्र, लोक जीवन रचना रत, मंगलमयी, सृजन रस संस्कृत ।।

(सु. नं. पं.; लोकायतन, पृ. ५३५)

प्रेम : शारीरिक

दो मन इक होते सुन्यौ, पै वह प्रेम न आहि ।
होइ जबै द्वै तनहुँ इक, सोई प्रेम कहाहि ।।

(रसखानि, पृ. ७८)

प्रेम : शुद्ध

१. दंपति-सुख और विषय रस, पूजा निष्ठा ध्यान ।
इन तें परे बखानिये, शुद्ध प्रेम रसखान ।।
इक अंगी बिनु कारनहिं, इक रस सदा समान ।
गनै प्रियहि सर्वस्व जो, सोई प्रेम प्रमान ।।

(स. वि. ना. प्र. मि. : रसखानि, पृ. ७६)

२. मित्र कलत्र सुबन्धु सुत, इनमें सहज सनेह ।
शुद्ध प्रेम इनमें नही, अकथ कथा सविसेह ।।

(रसखानि, पृ. ७६)

प्रेम : सच्चा

जलहि मिलाय 'रहीम' ज्यों, कियो आपु समछीर ।
अँगवहि आपुहि आप त्यों, सकल आँच की भीर ।।

(रहिमन विलास, पृ. ७)

प्रेम : साम्प्रदायिक

१. हिन्दू, यवन, ईसाइयों से क्यों नही मिल जायँगे,
जब तक नहीं मिल जायँगे तब तक न कुछ कर पायँगे ।
क्या सत्त्व रज या तम अकेला सृष्टि करता है कही ?
जब तक न वे सम हो मिलें तब तक प्रकृति बनती नही ।।

(रा. च. उ. : राष्ट्रभारती प. २७)

२ छोड नही सकते रे यदि जन
जाति वर्ग औ धर्म के लिए रक्त बहाना,
बर्बरता की संस्कृति का बाना पहनाना,—
तो अच्छा हो छोड दें अगर
हम हिन्दू मुस्लिम औ, ईसाई कहलाना!
मानव हो कर रहें धरा पर,
जाति वर्ग धर्मों से ऊपर,
व्यापक मनुष्यत्व में बँध कर।
(सु न प स्वर्णधूल पृ ३१)

३ क्यो कहते हो कौम अलग है,
मुसलमान हिंदू न एक हैं,
एक खून है एक जबा है
जमी एक है गगन एक है।
(देवेन्द्रदत्त तिवारी अग्नि शिखा, पृ ९७)

प्रेम से प्रगति

विपुल मस्तक में भर बहु ग्रंथ,
करे कितना ही तर्क प्रसार।
गले से ऊपर चक्कर मार,
उड़ेंगे उसके शुष्क विचार॥
हृदय से होगा जब तक नही
प्रेम का नियामीत शुचि योग।
जगत के कर्मक्षेत्र में कभी,
न आगे बढ पावेंगे लोग॥
(बलदेव प्रसाद मिश्र साकेत सन्त, पृ १४८)

प्रेम में बधन

ससनेही बधन परै, निसनेही कौ मोष।
सिर के बंध को बाधियै, नेह धर्यो का दोष॥
(जिन रग सूरि रग बहुत्तरी, दोहा ३२)

प्रेम से लौटना निन्द्य

जात औ कुजात कहा हिन्दू औ मुसलमान,
जाने कियो नेह फेर ताते भजनो कहा।
या तो रग काहू के न रगिये सुजान प्यारे,
रगे तो रगेई रहै फेर तजनो कहा॥ (ग्वाल)
(कविता कौमुदी, १, पृ ५३२)

प्रेम : से विजय

घृणा घृणा से, द्वेष द्वेष से,
हो सकते हैं नहीं विजित ।
करते हैं दुर्भाव विश्व में,
दुर्भावों को ही वर्धित ॥
विकृत हृदय में भी होता है,
प्रेम प्रेम से उत्पादित ।
होता है ज्यों रवि-प्रकाश से,
कंज पंक में भी विकसित ॥

(ठा. गो. श. सिं. : जगदालोक, पृ. १२१)

प्रेम : से ही प्रेम

दाह रही दिल में दिन द्वैक, बुझी फिर आपै कराह नहीं अब ।
मानि कै रावरे रूरे चरित्र, गुन्यो हिय में कि निवाह नहीं अब ।।
चाहक चारु मिले तुम को, चित माँहि हमारे भी चाह नहीं अब ।
जो तुम में न सनेह रहा, हम को भी नही परवाह रही अब ।।

(गया प्रसाद शुक्ल)

प्रेम : ही एक रत्न

सब मिलि गाओ प्रेम-बधाई ।
यह संसार रतन इक प्रेमहि और बादि चतुराई ।।
प्रेम बिना फीकी सब बातें कहहु न लाख बनाई ।
जोग ध्यान जप तप व्रत पूजा प्रेम बिना बिनसाई ।।
प्रेमहि सो हरि हू प्रगटत है जदपि ब्रह्म जगराई ।
तासों यह जग प्रेमसार है और न आन उपाई ।।

(भारतेन्दु नाटकावली, पृ. ४४५-६)

प्रेम : ही सर्वस्व

क्यों जग, क्यों जन्म मरण, सुख-दुख, ये व्यर्थ प्रश्न—रस सृजन स्वयम्,
कर देती प्रीति निरुत्तर मन—वह लक्ष्य, सिद्धि, पथ, गति, उपक्रम ।

(सु. नं. पं. : लोकायतन, पृ. ६६३)

प्रेम: ही सार

कभी-कभी सोचा करती हूँ 'यह संसार असार' ।
कौन यहाँ अपना जीवन भी दुःखद कारागार ।।

मर्मभरी वाणी मे कहती कोई स्मृति सस्नेह।
पगली खोज शक्ति तू अपनी, अपना वैभव प्यार॥
—रामेश्वरी देवी 'चकोरी'
(गि द शु हि का को, पृ २१०)

प्रेमी

१ एक प्रान मन, दोय तन, आपिन की सी प्रीति।
जदपि न्यारे रहत है, देखत एकै रीति॥
(ध्रुवदास मनसिक्षा)

२ नाड, जोल, भन, भेख, वाज मे मेला बसे।
इमकी मँवरो हेक, रस को जाणे 'राजिया'॥
(राजिया के सोरठे, पृ १६)

३ प्रेमी प्रीत न छांडही, होत न प्रन ते हीन।
मरे परे हू उदर मे, जल चाहत है मीन॥
(वृन्दसतसई, दोहा ६४१)

प्रेमी अमर

हजारों बार मर कर भी न मर पाया कभी प्रेमी।
मरण हर बार आ आकर नये ही प्राण देता है॥
(हरिकृष्ण प्रेमी रूपरेखा, प ३७)

प्रेमी का मन

नेहिन के मन काँच मे, अधिक कारने आयें।
दृग ठोकर के लगत ही, टूक-टूक ह्वै जायँ॥
(बुन्देलखड के कवि रसनिधि का दोहा)

प्रेमी की पहचान

प्रेमी की यह पहचान, परपता को न जीभ पर लाते हैं,
दुनिया देती है जहर, किन्तु, वे सुधा छिडकते जाते हैं।
(दिनकर चक्रवाल, पृ ७३१)

प्रेमी मूर्ख

'आलम' ते नर तुच्छ मति, ज पर हय मनु देहि।
सुख सपनि लज्या तज, दुख विरहा सोइ लेहि॥
(आलम माधवानल कामकदला)

प्रेमी : स्वार्थी

सुमन, तुम कली बने रह जाओ,
ये भौंरे केवल रस-लोभी इन्हें न पास बुलाओ।
(प्रसाद : झरना, पृ. ९४)

प्रेय और श्रेय

प्रेय न छोड़ो किन्तु उसी से फूल न जाओ,
चरम लक्ष्य है श्रेय भाइयो भूल न जाओ।
विश्व-विजय का विभव दान कर दिया जिन्होंने,
राज भोग तज लोक मुक्तिपथ लिया जिन्होंने।
उन पुरखों की परम्परा का भार तुम्हीं पर,
पड़े हाय, क्या लोभ-मोह की मार तुम्हीं पर !
(मै. श. गु.: राजा-प्रजा, पृ. ४५)

प्रेयसी

रोष तुम्हारा तरल फाग का किंशुक,
तिरस्कार शत-शत स्वागत से सुखकर।
मौन मधुर, कटुता शुभ, वरद उपेक्षा,
सुन्दरि ! तुम में कुछ भी नहीं असुन्दर॥
(अतुल कृष्ण गोस्वामी ; नारी, पृ. ७७)

प्रेरणा : मानवोन्नति का उपाय

विना सदाशय-मय प्रणोदना के न समुन्नत होगा मानव,
कैसे हिंसा से हो सकता, पराभूत जन-हिय का दानव ?
(बा.कृ. श. न. : हम विषपायी जनम के, पृ. ६९)

फूट

१. रहिमन, अँसुआ नैन ढरि, जिय-दुःख प्रगट करेइ।
जाहि निकारो गेह ते, कस न भेद कहि देइ॥
(सं. व्रजरत्न दास : रहिमन विलास, पृ. १८)

२. कहि 'गिरिधर कविराय' फूट जेहि के घर जाई।
हिरणाकश्यप कंस गये बलि रावण भाई॥
(कुंडलिया : पृ. २७)

३. जग में घर की फूट बुरी।
घर की फूटहि सों विनसाई सुबरन लंकपुरी॥

फूटहि सो सब कौरव नासे भारत युद्ध भयो।
जाको घाटो या भारत मे अवलो नहिं पुजयो ॥
फूटहि सो जयचद बुलायो जवनन भारत धाम।
जाको फल अबलो भोगत सब आरज होइ गुलाम ॥
जो जग में धन मान और बल आपुनो राखन होय।
तो अपने घर में भूलेहू फूट करौ मति कोय ॥

(भारतेन्दु नाटकावली, पृ. ३३३)

४ फूट जब फूट पडती है, प्रीति की गाँठ जोडते क्या हैं।
जब मरोडी न ऐंठ की गरदन, मूँछ तब मरोडते क्या हैं ॥
दम सुनाने मे नहीं जिसके रहा, है नही उसकी सुनी जाती कही।
खोलने तो कान कैसे खोलते, एक सुर से बोलते ही जब नहीं ॥

(हरिऔध चुभते चौपदे, पृ १०८,११०)

५ धन-बल, जन-बल, बाहु-बल, नहिं काहू ते घाट।
एकहि एका-बल बिना, सब बल बारावाट ॥

(रामेश्वर करुण करुण सतसई, पृ ७२)

फूल और जीवन

चिन्ताओ से भरा हुआ जीवन वह भी किस काम का,
विरम सके दो घडी नही यदि हम फूलो के सामने ?

(दिनकर नये सुभाषित, पृ. १३)

फूल और फल

फूल, रूप-गुन मे कही मिला न तेरा जोड।
फिर भी तू फल के लिए अपना आसन छोड ॥

(मै श गु साकेत, ९ सर्ग)

फूल न तोडो

फूल न तोडो ऐ माली तुम, भले डाल पर मुरझायें,
बना नहीं सकते जिनको हम, तोड उन्हें क्यो मुस्कायें।

(श्रीमन् नारायण रजनी मे प्रभात का अकुर, पृ ११४)

फैशन

फैशन पलटा आपने, शकल न पलटी जाय।
गोरों मे भी मिल लिया, काला रहा कहाय ॥

(मेलाराम शिक्षा सहस्री, पृ ९९)

बँटवारे की तैयारी

हाथ की जिसकी कड़ी टूटी नहीं, पाँव में जिसके अभी जंजीर है।
बाँटने को हाय तौली जा रही, बेहया उस कौम की तकदीर है॥
(दिनकर : चक्रवाल, पृ. ६९)

बन्धु-विरोध

जब बन्धु विरोधी होते है, सारे कुलवासी रोते हैं।
(दिनकर की सूक्तियाँ, पृ. १०८)

बकरी : का विलाप

दूध देत नित तृन चरत, करत न कछू बिगार।
ताहू पैं मम यह दसा, रे निर्दय करतार॥ (१३)
मानुष—जन सों कठिन कोउ, जन्तु नाहिं जग बीच।
विकल छोड़ि मोहिं पुत्र लै, हनत हाय सब नीच॥ (२०)
वृथा जवन को दूसहीं, करि बैदिक अभिमान।
जो हत्यारो सोइ जवन, मेरे एक समान॥ (२१)
धिक् धिक् ऐसो धरम जो, हिंसा करत विधान।
धिक्-धिक् ऐसो स्वर्ग जो, वध करि मिलत महान॥ (२२)
(भारतेन्दु : बकरी विलाप)

बचपन

जाकू मचलत ताहि करिके रहत होइ।
चंचल सुभाय तन धूरि में सने रहै।
सुकवि गुपाल जू लराई लेत मोल औ,
उराहनेन लाइ ज्यान करत घने रहै॥
सिख की लहै न भूख-प्यास की रहै न औ,
गहन गुण खेल औढ पाउ के ठने रहैं।
गारि रारि मार धार और फोर फार सदा,
इतने विकार बालपने में बने रहैं॥
(गुपाल राय : दंपति वाक्य विलास, पृ. ११९)

बचपन और यौवन

चिंता-रहित खेलना-खाना वह फिरना निर्भय स्वच्छन्द।
कैसे भूला जा सकता है बचपन का अतुलित आनन्द॥
माना मैंने युवा-काल का जीवन खूब निराला है।
आकांक्षा, पुरुषार्थ, ज्ञान का उदय मोहने वाला है॥

किन्तु यहाँ संकट है भारी युद्ध—क्षेत्र संसार बना।
चिन्ता के चक्कर में पड़कर जीवन भी है भार बना॥

—सुभद्रा कुमारी चौहान

(हि द मु हि सा को, पृ १६०–१६१)

बचपन के दुख

है पितु मातन सों दुख भारे। श्री गुरु ते अति होत दुखारे।
भूख न व्यापत नींद न जोवें। केशव गो बहु भाँतिन रोवें॥

(केशवदास रामचन्द्रिका, प्रकाश २४)

बड़े और छोटे

१ बड़े सनेह लघुन्ह पर करहीं। गिरि निज सिरनि सदा तृन धरहीं।
जलधि अगाध मौलि बह फेनू। संतत धरनि धरत सिर रेनू॥

(रा च मा सु, पृ १७७)

२ तुलसी मगरा बड़न के, बीच परहु जनि धाय।
बड़े साहु पाहन दोऊ, बीच रहै जन जाय॥

(तुलसी सतसई, पृ ३५८)

३ दीपक उजरे साँझ तेरे ही रह्यो हो छिति,
जिनकू प्रकाश लाग दिन करि हीं गयो।
चन्द के प्रकाश साँझ आन सो रह्यो भो नैर,
घट बगि होत जानि मानि मुख सौं भयो॥
'भारती' कहत अभरानो सों किरन रही व,
आगे हा समझि देखि चीर दिग गो दयो।
आनि न रहेगो तिन जाय धै दुरैगो दौरि,
एरे तम जानि अब भानु को उदय भयो॥

(गणपति भारती अन्योक्ति प्रकाश, पृ १)

बड़े का कथन शिरोधार्य

बड़े बचन को कीजिए, ढरै सो रखिये नाहिं।
हर ज्यों पवन में फिरे, और जो जिकर न्हाहिं॥

(सतसई सप्तक, वृन्द सतसई, दोहा १९८)

बड़े का धन

बड़ेन की सम्पति बढ़ै, लघु जिनमन अनन्त।
रवि जल धन, घन जल धरा, धर जन अग विलसन्त॥

(सतसई सप्तक, वृन्द सतसई, दोहा ७०१)

बड़े : का यश

थोरो किए बड़ेन की, बड़ी बड़ाई होय।
ज्यों 'रहीम' हनुमंत को, गिरधर कहत न कोय ॥

(रहिमन विलास, पृ. १०)

बड़े : की आज्ञा शिरोधार्य

गुरु पित मात स्वामि हित बानी। सुनि मन मुदित करिय भल जानी।
उचित कि अनुचित किये बिचारू। धर्म जाइ सिर पातक भारू ॥

—तुलसीदास

(कविता कौमुदी, १, पृ. २८६)

बड़े : की नम्रता

१. बडे बड़ाई न करैं, बड़ो न बोलैं बोल।
'रहिमन' हीरा कब कहै, लाख टका मेरो मोल ॥

(रहिमन विलास, पृ. १४)

२. फलन कै भार नमित द्रुम ऐसे। संपति पाय बड़े जन जैसे।

(नंददास ग्रन्थावली, पृ. ११९)

बड़े : नाम मात्र के

फूल सुगन्ध न फल मधुर, छाँह न आवत काम।
सेमर तरु को जगत में, बढ़िबो निपट निकाम ॥

(कन्हैयालाल पोद्दार)

बड़े : परोपकारी

बड़े बिपत में हूँ करैं, भले बिराने काम।
किय बिराट तनु की विजय, अर्जुन करि संग्राम ॥

(वृन्द सतसई, दोहा ३३५)

बड़े : सहिष्णु

१. नीति अनीति बड़े सहैं, रिस भरि देत न गारि।
भृगु उर दीनी लात की, कीनी हरि मनुहारि ॥

(सतसई सप्तक, वृन्द सतसई, दोहा ६६१)

२. व्यथित मन होना अगर वातावरण प्रतिकूल हो,
धन्य वे जन सह गये चुप-चाप जो भवशूल को।
सर्वस्व देकर भी महत् कहते किया कुछ भी नहीं,
निस्सार होगा जन्म यह यदि कष्ट मनु काटे नहीं ॥

(दिनेशनन्दिनी : परिछाया पृ. ४२)

बनावट से बचो

ढोग बनावट से न, किसी का काम चलेगा।
कृत्रिम नीरस वृक्ष, न कोई फूल फलेगा॥
बना न वाहन—राज, कभी लकडी का हाथी।
सार—विहीन असत्य, सत्य का गुना न साथी॥
कुछ मिथ्या से होता नही, आँख उघार निहार लो।
सुख चाहो तो सद्भाव से, शकर को उर धार लो॥
(नाथूराम शकर अनुराग रत्न, पृ १२२)

बनिया

जग अपजस देखै नही, देखै स्वारथ दाय।
जिम तिम कर वणियो रहै, वणियो तेण कहाय॥
(बाँकीदास ग्रन्थावली, २, पृ ५९)

बनिया दगाबाज

दगो पालडा डाढियाँ, तोला मझ तणियाह।
गुर सू ही गुदरे नही, वणिक बँत वणियाह॥
(बाँकीदास ग्रन्थावली, २, पृ ५२)

बनिया धन-सचय

जोडै नाणो जगत मे, कर कर करडा काम।
विवना जीवे वाणियो, नाणा रो सुण नाम॥
(बाँकीदास ग्रन्थावली, वैस वार्ता, पृ ६६)

बनिया व्यापार-विधि

वणक कहै वोपार विध, सीखो गुरु सू सोझ।
ऊट मुआ नहि औरतो, कापड ऊपर बोझ॥
(बाकीदास ग्रन्थावली, वैस वार्ता, पृ ६४)

बनिये

तुलना इनकी किस कुटिल कराल कठिन से।
युद्धोपधियाँ सब प्राप्त कहाँ अब इनसे॥
कल मरता हो सो आज मरे इनको क्या।
जैसे हो इनका काज सरे, इन को क्या॥
दे सकते हैं ये तुम्हे बडा—सा चन्दा।
पर उस चारे के साथ बडा सा फन्दा॥

इन में भी अच्छे भले मानता हूँ मैं।
पर वे थोड़े हैं यही जानता हूँ मैं॥

(मै. श. गु. : राजा-प्रजा, पृ. १)

वल—महिमा

चमर ढुलै न सीह सिर, छत्र न धारै सीह।
हाथल रा बल सूं हुबौ, औ मृगराज अबीह॥

(बाँकीदास ग्रन्थावली १. पृ. २४)

वलिदान

यह विस्मय वड़ा प्रवल है, वल को वलहीन रिझाते,
मरने वाले हँसते है, आँसू हैं वधिक वहाते।

(दिनकर की सूक्तियाँ, पृ. ८७)

वलिदान : से अमरत्व

वही लोक-संमान-भागी वनेंगे, वही विश्व में नित्य जीवंत होंगे।
जिन्होंने यथाप्राण कर्मस्थली में, स्वयं देह दे के न दी आत्मवत्ता॥

(आनंद कुमार : अंग राज, पृ. २६५)

वली

जोरावर कौं होति है, सब के सिर पर राह।
हरि रुक्मनि हरि लै गयौ, देखत रहे सिपाह॥

(सतसई सप्तक, वृन्द सतसई, दो० ५६८)

वली और निर्वल

तुम अपने को पहचानो तो
फिर न रहेगा यह दुख दैन्य,
निर्वल की सब वलि देते हैं
वली सजाते है रण-सैन्य।

(सो. ला. द्वि. : युगाधार, पृ. ३७)

वहिन

१. साथी खेलों की, हार-जीत की संगिनि।
माँ की गोदी, ममता की तुल्य विभाजक॥
हँसने गाने रोने की चिर सहयोगिनि।
मेरी भूलों की, भ्रम की परम प्रशंसक॥

(अतुल कृष्ण गोस्वामी : नारी, पृ. ६३)

२ बन जाती एक चुनौती जो मानव की,
ललकार कभी देती निज पौरुष को यह।
देती जय का विश्वास, युद्ध का साहस,
जीने का शुभ वरदान, जगत् का आग्रह ॥
(अतुलकृष्ण गोस्वामी नारी, पृ ५४)

बहु (दे० अति भी)

बहु गुन बहु रुचि बहु वचन, बहु अचार व्यवहार।
इनको भलो मनाइवो, यह अज्ञान अपार ॥
(तुलसी सतसई पृ २३६)

बहू का धर्म

आयसु मोर सास सेवकाई। सब विधि भामिनि भवन भलाई।
एहि ते अधिक धरमु नहिं दूजा। सादर सास ससुर पद पूजा ॥
(रा च मा गु, पृ २६८)

बात अपनी

अपनी-अपनी बात सभी के मन को भाती है,
हर कोई अपने जीवन को ही अपनाती है।
(बुद्धमल आदर्श पृ ३३)

बात दो

दोय बातु तें जगत में, अति उत्तम कछु नाहिं।
निश्चय ईश्वर भाव पै, दया जीव के ठाहिं ॥
द्वै बातन तें अधम नर, नाही जगत प्रसिद्धि।
अहंकार भगवान तें, जन अपकारी बुद्धि ॥
(श्यामदास हितोपदेश)

बात बनी बुरी

और उमगें बना दुगूना दिल, रंग बड़े मान साथ मुँह लाली।
बेतुकी और मोल देती है, बात तोली हुई तुली ताली ॥
(हरिऔध चुभते चौपदे, पृ १४०)

बात पंडितों की

पंडित पंडित मिलै जो कोई। बहुत सबाद बात कर होई ॥
(जायसी के परवर्ती पृ ४२७)

बाबा-वाक्य

चढ़ें न क्यों जन जाति के, नव उन्नति-सोपान।
पढ़ें न पाठ कुपाठ ये—"बाबा-वाक्य प्रमान"॥
(रामेश्वर करुण : करुण सतसई, पृ. ७५)

बाबू

१. काम हाथ से हो नहीं, रहा अन्य मुख देख।
परवशता में धँस गया, अच्छा बाबू वेष॥
(मेलाराम : शिक्षासहस्री, पृ. ९५)

२. बिना परिश्रम के नहीं, सिद्ध हो सकें काम।
भारतीय बाबू चहें, खाना माल हराम॥
(मेलाराम : शिक्षा सहस्री, पृ. ८८)

३. लम्बे-लम्बे रख बाल-जाल बाबू जी पान चबाते हैं,
पर एक कोस चलना हो तो मस्तक में चक्कर आते हैं।
(परमेश्वर द्विरेफ : युगस्रष्टा प्रेमचन्द पृ. ८९)

बालक

१. लड़कों ही पैं निर्भर है किसी देश की सब आस।
बालक ही मिटा सकते है निज देश की सब त्रास।
चाहें तो किसी देश को बस स्वर्ग बना दें।
निज धर्म से हट जायँ तो मिट्टी में मिला दें॥
(भगवान दीन : वीर पंचरत्न, पृ. ४७)

२. माता-तन का सार, पिता का तू सर्वस है,
दोनों का संसार, वंश का विस्तृत यश है।
माता-पितानुराग, प्रकट यह तेरा तन है,
मूर्तिमान सौभाग्य, पुत्र तू अद्‌भुत धन है॥
जब तू जग में आय, भूमि पर गिर कर रोया।
माँ ने हिये लगाय, कष्ट सब अपना खोया।
सुन तेरा प्रिय रुदन, पिता का मन यों जागा,
हुई झोपड़ी भवन, मिला सब को मुँह-माँगा॥
तेरा जीवन-भेद बुद्धि में नहीं समाता,
तो भी मान अभेद, मानता है मन नाता।
यह सम्बन्ध अटूट, एक ही धर्म जगत में,
सच्चे सुख की लूट, संग है सदा विपत में॥

तेरे सुख के लिए, कष्ट सहती है माता,
तुझे लगाये हिए, उसे दुख नहीं सताता।
खान पान व्यवहार, नींद श्रम सब कुछ मित है,
है नित यही विचार, पुत्र का किस में हित है॥
विद्या कला प्रकाश सभी कुछ माँ का तू है,
तू ही उसकी आस सदा सर्वत्र हितू है।
पद भूषण छवि साज रूप वय तू है सब है,
तू ही राज समाज पुत्र तू ही उत्सव है॥
सत्य सनातन धर्म पिता-माता की सुत है,
पालन है शुभ कर्म पढ़ाना मंगलयुत है।
सदाचार उपदेश तीर्थ का पुण्य अक्षय है,
देह निरोग सुवेश मुक्ति का निश्चित पथ है॥
जिनके धोये वसन न बिगड़े शिशु पद-रज से,
चूमे कोमल कर न जिन्होंने खिले जलज से।
थके न जो बकवाद, बोल कर बालक-भाषा,
उनका विभव प्रमाद, वृथा है शुभगति-आशा॥

(कामता प्रसाद गुरु)

२ परशुराम श्री राम भीम अर्जुन उद्दालक।
गौतम शंकर सरिस धर्म सतु के सचालक॥
उत्साही दृढ़-अंग प्रतिज्ञा के प्रतिपालक।
शारीरिक मस्तिष्क शक्ति-बल अरिगण-घालक॥
काज करें मन लाय बनें शत्रु न उर सालक।
अब भारत माताहि चाहिए ऐसे बालक॥ १॥
बल अरु भय-भीत सदा जो कहत पुकारी।
अरे बाप! यह काज हमैं सूझत अति भारी॥
"मैं नाही कर सकत" शब्द मुख तें न उचारें।
"हाँ करिहौं ..." सहित उत्साह पुकारें॥
सत्यभाव ते ... करै अरु बनै न टालक।
अब भारत माताहि ... हि ऐसे बालक॥२॥—गुजराती बाई
(गि द शु हि का सो, पृ ११२)

बाल-मृत्यु

नित खवाय बहु ... बदन बनायो चारु।
चिता जरायो सो पिता, चुनि चंदन दारु॥
(... करुण करुण सतसई पृ १२७)

बाल-विधवा

जहाँ बाल-विधवा-हियें, रहे धँधकि अंगार।
सुख-सीतलता कौ तहाँ, करिहौ किमि संचार ? ।।
(वियोगी हरि : वीरसतसई, पृ. ७६)

बाल-विधवा-विलाप

मेरे दिनेश तुमही, तुमहीं निशेशा,
तारादिहू तुमहिं नाथ ! रहे अशेषा।
प्राणेश ! अस्त तव होतहि लोक माही,
सारे प्रकाश मम अस्त भये लखाही ।।
उच्छिष्ट, रूक्ष, अरु, नीरस अन्न खैहौं,
चाण्डालिनीव मुख बाहर मूँदि जैहौं ।।
गाली-प्रदान निशि-वासर नित्य पैहौं,
हा हन्त ! दुःखमय जीवन यों वितैहौ ।।
रंडे ! तुही अवशि मत्सुत लीन खाई।
त्वन्मातु नाथ ! जब तर्जिहि यों रिसाई।
ह्वै है इहै तव मदीय मताऽधिकाई।
पृथ्वी फटै त्वरित जाहुँ तहाँ समाई ।।
वाणी सुहात नहि मोरि, न दीठि मोरी,
ताने कहै तिय, तथा शिशु, वृद्ध, छोरी।
सासु प्रदत्त चरखा तजि और कोई,
रैहै न पास दिन जैहहि रोय रोई।।
धिक्कार तोहि हत, भारतवर्ष देश;
धिक्कार सभ्यसमुदायहु निर्विशेष !
धिक्कार बुद्धि बल वैभव को हमेशा ?
पावै जहाँ निर्बल नारि इतो कलेश ।।
(म. प्र. द्वि. : द्वि. का. माला : पृ. २१०-१५)

बाल-विवाह

हो गया ब्याह लग गई जोकें, फूल से गाल पर पड़ी झांई।
सूखती जा रही नसें सब हैं, भीनने भी मसें नहीं पांई ।।
पड़ गया किस लिए खटाई में, क्यों चढ़ी रूप रंग की बाई।
फिर गई काम की दुहाई क्यों, मूँछ भी तो अभी नहीं आई ।।
(हरिऔध : चुभते चौपदे पृ. १६२)

बाल्य

संस्कार सब उठ गये, नहीं समय का ध्यान ।
बैसे बाल वशिष्ठ हो, ब्याह करत नादान ॥
(मेलाराम शिक्षालहरी, पृ ९३)

बिना

बिना सीने चाकरी, बिना बुद्धि की देह ।
बिना ज्ञान का जोगना, फिरै लगाय खेह ॥
(कबीर वचनावली पृ १४७)

बीती सो बीती

(१)

जो बीत गई सो बात गई !
जीवन में एक सितारा था,
माना, वह बेहद प्यारा था,
वह डूब गया तो डूब गया,
अम्बर के आनन को देखो,
कितने इसके तारे टूटे,
कितने इसके प्यारे छूटे,
जो छूट गये फिर कहाँ मिले,
पर बोलो टूटे तारों पर,
कब अम्बर शोक मनाता है !
जो बीत गई सो बात गई !

(२)

मृदु मिट्टी के हैं बने हुए,
मधुघट फूटा ही करते हैं,
लघु जीवन लेकर आये हैं
प्याले टूटा ही करते हैं,
फिर भी मदिरालय के अंदर,
मधु के घट हैं मधुप्याले हैं,
जो मादकता के मारे हैं,
वे मधु लूटा ही करते हैं,
वह कच्चा पीने वाला है,
जिसकी ममता घट प्यालों पर

जो सच्चे मधु से जला हुआ

कब रोता है चिल्लाता है !

जो बीत गई सो बात गई !

(बच्चन : सतरंगिनी. पृ. ८६, ८८)

बुढ़ापा

१. जरा अवस्था सदृश नहिं, नीच अवस्था आन।
अभिव्यंजक सब रोग की, किरपणता की खान ॥
किरपणता की खान, करै तृष्णा को जारा ।
वैराग्य तोष पुरुषार्थ, काटने को है आरा ॥
कह 'गिरधर कविराय', उदारता को है गरा ।
लोभ मोह युग पुष्ट होय जब आवै जरा ॥

(गिरिधर : कुडलिया, पृ. ८७)

२. कैसो कठिन बुढ़ापौ आयौ ॥
बल बिन अंग भये सब ढीले, सुन्दर रुप नसायौ ।
पटके गाल गिरे दाँतन कौ, केशन पै रंग छायौ ॥ कैसो ··
हालै शीश कमान भई कटि, टाँगन हू बल खायौ ।
काँपें हाथ बोदरी के बल, डगमग चाल चलायौ ॥ कैसो ··
ऊँचो सुने धूंधरौ दीखे, वस्तु बोध हलकायौ ।
मन में भूल भरी त्यों तन में, रोग-समूह समायौ ॥ कैसो ··
डील भयौ बेडौल डोकरा, नाम खोय पद पायौ ।
नाना आदि बालमंडल में नाना भाँति कहायौ ॥ कैसो ··
नातेदार कुटुम्ब परौसी, सब ने मान घटायौ ।
कढ़त न प्राण पेट पापी ने, घर-घर नाच नचायौ ॥ कैसो ·
पास न झाँकत पूत-पतोहू, पौरी में पधरायौ ।
बूंद-बूंद जल टूक-टूक को, ताँस ताँस तरसायौ ॥ कैसो ··

(नाथूराम शंकर : अनुरागरत्न, पृ. १३८)

३. बुढ़ापा नातवानी ला रहा है,
ज़माना जिन्दगी का जा रहा है ।
किया क्या खाक, आगे क्या करेगा ?
अख़ीरी वक्त दौड़ा आ रहा है ॥

(नाथूराम शंकर शर्मा)

४. आज बचपन का कोमल गात जरा का पीला पात ।
चार दिन सुखद चाँदनी रात और फिर अंधकार अज्ञात ॥

(पन्त : पल्लव, पृ. ७८)

बुढ़ापा कलियुगवत्

श्रुति हुई शिथिला, स्मृति भी मिटी,
गति हुई कुटिला, द्विज भी गिरे।
विरस गो गरिमा क्षय हो गई,
जरठता कलिकाल-समान है।
(अनूपशर्मा सिद्धार्थ, पृ १२७)

बुढ़ापा —का नाश

आछा खावै सुख सुवै, आछा पहिरै सोद।
अति आछी रहणी रहै, मरै न बुड्ढा होइ ॥ अदंराज

बुढ़ापा के कष्ट

१ बल जो गएउ कै खीन सरीरू। दिस्टि गई नैनहिं देइ नीरू ॥
दसन गए कै पचा कपोला। बैन गए अनरुच देइ बोला ॥
बुद्धि जो गई देइ हिय बौराई। गरब गएउ तरहुँत सिर नाई ॥
जो लहि जीवन जोबन साथा। पुनि सो मीचु पराए हाथा ॥
बिरिध जो सीस डोलावै, सीस धुनै तेहि रीस।
बूढ़ी आऊ होहु तुम्ह, केइ यह दीन्ह असीस ॥
(जायसी ग्रन्थावली, पृ ३०२)

२ कंपै उर बानी डगै वर डीठि त्वचा अति कुचै सकुचै मति-बेली।
नवै नवग्रीव थकै गति केशव बालक ते सग ही सग खेली ॥
लिये सब आधिन व्याधिन सग जरा जब आवै ज्वरा की सहेली।
भगै सब देह-दसा जिय साथ रहै दुरि दौरि दुराशा अकेली ॥
(केशवदास रामचन्द्रिका, प्रकाश २४)

३ गात गरे जात सब दाँत झरे जात सग—
साथ टरे जात बात मुहाति थापे में।
हानु है निवल जान रहे बुद्धि बल तन,
अचलह होत वहु भोजन के थापे मे।
भोग के करै पै रोग दावत है आय औ,
सफेदी छाय जाय मन रहत न आपे मे।
सब सुख दीपे रूप रहतु न तापे पर,
घर देह काँप्यो करै आवत बुढ़ापे मे ॥
(गुपाल राय दपति वाक्यविलास, पृ १२०)

बुढ़ापा : के सुख

बड़ो करि जाने पुरिषान करि मानें मिलै,
बैठे खान पानै ताकी सब ही सहत है ।
करत सहाय दंड देत नहीं ताय मन,
हरि में लगाय सुकरम को चहत है ।
सुकवि गुपाल जू कुटुम्ब सुख देखे सदा,
कारे महुडेते मुख ऊजरो लहत है ।
साँच को गहत काम क्रोध को दहत या ते,
एते सुख सदा वृद्धताई में रहत हैं ।।

(गुपालराय : दंपति वाक्यविलास, पृ. १२०)

बुढ़ापा : निंदनीय

करें प्रशंसा अति ही मुनीन्द्र या
कवीन्द्र चाहे रच दें गुणावली,
सुकीर्तिता शेष-सहस्र मौलि से,
भले रहे, किन्तु जरा विदूष्य है ।

(अनूप : वर्द्धमान, पृ. ३२४)

बुढ़ापा : से सुख-नाश

जगत के सर-मध्य मनुष्य का, अचिर जीवन पंकज-तुल्य है,
समय का अलि कोश-निविष्ट हो, निगलता सुख का मकरन्द है ।

(अनूपशर्मा : सिद्धार्थ, पृ. १२७)

बुद्धि और भावना

बुद्धि-भावना-संतुलन, आर्य—धर्म-आधार ।
नष्ट भावना आज प्रभु, शेष बुद्धि-व्यभिचार ।।

(द्वा. प्र. मि. : कृष्णायन, पृ. ३१५)

बुद्धि और विज्ञान

बुद्धि तृष्णा की दासी हुई, मृत्यु का सेवक है विज्ञान ।
चेतना तक भी नहीं मनुष्य, विश्व का क्या होगा भगवान ।।

(दिनकर : चक्रवाल पृ. ३६४)

बुद्धि और सदाचार

जब तक वैयक्तिक-सामाजिक
आचरणों में भेद रहेगा—

जब तक व्यष्टि-समष्टि धर्म का
स्रोत अलग से यहाँ बहेगा,
जब तक बुद्धि और नैतिक बल
गलबहियाँ डाले न चलेंगे,
तब तक ईति-भीति के दानव
मानवता को सतत खलेंगे।
(बा कृ श न हम विषपायी जनम के, पृ ६७)

बुद्धि का बल

जाकी बुद्धिबल होत है, ताहि न रिपु को त्रासु।
घन बूंदे कहु करि सकें, सिर पर छतना जासु॥
(सतसई सप्तक, वृन्द सतसई, दोहा ५३०)

बुद्धि का महत्त्व

बुद्धि-वखान-अंत को पावै, मनुज काज लागि नित धावै।
बुद्धि के मतें चलै जो कोई, ताके काज निरेपस होई।
मंत्री बुद्धि समा जेहि पासा, कार बन घलै सुख-आसा॥
(नूरमुहम्मद अनुराग बाँसुरी, पृ ८)

बुद्धि के नाशक

घिरत तेल तंडुल लवण, तन्त्र रु इंधन रास।
निसिदिन चिंतन जो करें, विपुल बुद्धि हो नास॥
(गिरिधर कुंडलिया, पृ ६०)

बुद्धि निकली नहीं

जैसी जाकी बुद्धि है, तैसी कहै बनाय।
ताको बुरा न मानिए, लेन कहाँ सो जाय॥
(रहिमन विलास, पृ ८)

बुद्धिमान आदरणीय

जहाँ न आदर है चतुरों का, पूजे जाते हैं मतिहीन।
वास-विनास वहाँ करते हैं, भय दुर्भिक्ष मरण ये तीन॥
(नाथूराम 'शंकर' वायसविजय, पृ २०)

बुरे से दूर

आप भले तो सबहि भलो है, बुरा न काहू कहिये।
जाके मन कछु बसै बुराई, तासों भागे रहिये॥—मलूकदास
(सन्त सुधासार, २, पृ ३३३)

बुरे : से भला

होत बुरे हूँ तें भलो, काहू समै प्रकास।
अधिक मास तें त्यों मिट्यो, पांडव फिर वनवास॥

(वृन्द सतसई, दोहा ३३३)

बेकारी

१. दानवता की महतारी, मानवता की हत्यारी।
सुख-साधन-हीन बनाती, यह व्याधि बुरी बेकारी॥
इस के सम कौन कहाँ है, उर-अन्तर की बीमारी ?
चिर-चिन्ता से सुलगाती, यह व्याधि बुरी बेकारी।
तन-मन-धन समय लगाकर, दर-दर के बने भिखारी॥
बी. ए. की पदवी पाकर, वरदान मिला बेकारी।
चल सका न कोई चारा, हट सकी न यह बेकारी।
अब दूर करेगी इसको, गोली अफीम की भारी॥

(रामेश्वर करुण : तमसा, पृ. २२९-३१)

२. व्याधि न वैरिनि विश्व महँ, बेकारी सम आन।
है बेकार मनुष्य कौ, जीवन स्वान समान॥

(रामेश्वर करुण : करुण सतसई, . ५५)

३. नौकरी की खोज में यों घूमते है ग्रेजुएट,
घूमता है जिस तरह धोबी का कोई खर खुला।

(बेढब बनारसी : बेढब की बहक, पृ. ४७)

बेटियाँ

बेटियाँ छिलते कलेजे को कभी, सामने आ खोल भी सकती नहीं।
किस लिए हम फेरदें उन पर छुरी, जो कि मुँह से बोल भी सकती नहीं॥
बाप ही ढाह जो विपद देवे, तो किसे वह पुकारने जातीं।
आह सारी विपत्तियों में ही, जो रही बाप बाप चिल्लातीं॥
क्यों न यह सोचा गया, हम किस लिए, सुख सदा विलसें सदा वे दुख सहें।
क्यों कराते हम फिरें काया कलप, क्यों कलपती बेटियाँ बहनें रहें॥

(हरिऔध : चुभते चौपदे, पृ. १२५-७)

बेटी की विदा

प्यारी बहिन, सौंपती हूँ मैं अपना तुम्हें खजाना,
है इस पर अधिकार तुम्हारे बेटे का मनमाना।
रक्त मांस हड्डी, तन मेरा है यह बेटी प्यारी,
करो इसे स्वीकार, हुई यह अब सब भाँति तुम्हारी ॥१॥
पूजे कई देवता हमने तब है इसको पाया,
प्राण समान पाल कर इसको इतना बड़ा बनाया।
आत्मा ही यह आज हमारी हम से बिछुड़ रही है,
समझाती हूँ जी को तो भी धरता धीर नहीं है ॥२॥
बहिन ढिठाई माता की तुम मन में नेक न धरियो,
इस कोमल बिरवा की रक्षा बड़े चाव से करियो।
है यह नम्र मेमने से भी, भीरु मृगी से बढ़ कर,
कड़ी बात या चितवन से यह कँप जाती है थर-थर ॥३॥
है गँवार यह भोली इसने नहीं शिष्टता जानी,
तिस पर भी गुरु-जन की आज्ञा बड़े प्रेम से मानी।
साँचे में तुम इसे ढालियो, कभी न यह तड़केगी,
बहिन! सिखाने से चतुराई बेटी सीख सकेगी ॥४॥
यह गुड़िया यह लक्ष्मी अपनी, जीवन मूल दुलारी,
हृदय थाम कर करती हूँ मैं अब आँखों से न्यारी।
माता-स्नेह सोच तुम मन मे दुख मेरा अनुमानो,
ममता छिपती नहीं छिपाये, बहिन सत्य यह जानो ॥५॥
इसका रूप निहार दिव्य मैं पल पल मे सुख पाती थी,
गान समान सुरीली बोली इसकी मनको भाती थी।
बहिन तुम्हें भी ये सब बातें जान पड़ेंगी आगे,
अपने नैन रखोगी इस पर जब तुम नित अनुरागे ॥६॥
इसकी मद हँसी से मेरा मन अति सुख पाता था,
कठिन घाव भी जिससे दुख का अच्छा हो जाता था।
इसे उदास देख आँखों में भर आता था पानी,
छिपी नही है, बहिन किसी से माता प्रेम कहानी ॥७॥
बड़ी लालसा भी निज मन की इसने नही बताई,
कर सकोच कठिन पीड़ा भी अपनी सदा छिपाई।
तो भी मैं सब लख लेती थी इसके बिना कहे ही,
यो ही तुम इसकी सब बातें लखियो बहिन सनेही ॥८॥

अपना मांस पिंड देती हूँ मैं तन से कर न्यारा
है यह जीवन मेरे जी का, आँखों का है तारा।
इस अनाथ बच्चे का पालन माता सम तुम कीजो,
मेरी इस बलहीन दशा में बहिन, बांह गह लीजो ॥९॥
करो बहिन, स्वीकार दया कर मेरी इतनी विनती,
बच्चों में अपने तुम करियो इस वेटी की गिनती।
दीजे वहिन, भरोसा मुझको हाथ हाथ में देकर,
वेटी सम पालेंगे इसको हम माता-सम से कर ॥१०॥
मेरी ये आँखें पीती थीं नित जो रूप मनोहर,
क्या उसके दर्शन का मुझको फिर न मिलेगा अवसर।
जिस बोली से धीरे-धीरे इसे बुलाती थी मैं,
क्या वह भी अब मूक रहेगी रह जी की ही जी मैं ॥११॥
हा मेरी अनमोल लाड़ली! प्राणाधार दुलारी,
क्या तू मुझे नही समझेगी अब अपनी महतारी?
तुझे नई माता मिलती है मैं तुमको खोती हूँ,
यही सोच सुख में भी तेरे, वेटी मैं रोती हूँ ॥१२॥
हाय! आज से हुआ हमारा यह घर भरा अँधेरा,
होकर निपट निरास न क्यों अब हृदय फटेगा मेरा।
अब मेरे इस सूने घर को उजला कौन करेगी?
कौन मधुर बातों से मेरा रीता हृदय भरेगी? ॥१३॥
कौन सुरीली बीन बजा कर मधुर गीत गावेगी?
घर में कौन लड़कियाँ छोटी न्योत-न्योत लावेगी?
सखियों के संग कौन खायगी, खेलेगी झूलेगी?
किसको सुन रामायण पढ़ते यह छाती फूलेगी ॥१४॥
हा वेटी! हा गुड़िया मेरी! हा मेरी सुकुमारी!
तेरे बिना हृदय यह मेरा पावेगा दुख भारी।
केवल देव दयामय जो दुख लख सकता है जन का!
वही धीर दे दूर करेगा संकट मेरे मन का ॥१५॥
जाकर वहाँ दूर, हे वेटी, भूल मुझे मत जाना,
कभी कभी इस दुखिया की भी सुध निज मन में लाना।
रो मत वेटी! जा अपने घर संग नई माता के,
लीजे बहिन, इसे अब देती हूँ मैं सीस नवा के ॥

(कामता प्रसाद

बैल

तुम्ही अन्नदाता भारत के सचमुच बैलराज ! महाराज ।
बिना तुम्हारे हो जाते हम, दाना दाना को मुहताज ।
तुम्हें खड़ कर देते हैं जो महानिर्दयी जन निरलाज,
धिक उनको, उन पर हँसता है बुरी तरह यह सकल समाज ॥
(म प्र द्वि द्वि का मा पृ २७४)

ब्रह्म ही सब कुछ ?

जो पै सर्व ब्रह्म ही होय ।
तो तुम जोरू जननी मानो एक भाव सो दोय ।
ब्रह्म ब्रह्म कहि काज न सरतो, वृथा मरो क्यो रोय ।
'हरीचन्द' इन बातनसो नहिं ब्रह्महि पैहो कोय ॥
(भा ग्र, दू ख, पृ १२८-९)

ब्रह्मचर्य

१ रहे जन्म से मृत्यु लो, ब्रह्मचर्य व्रत धार ।
समझो ऐसे वीर को, पौरुष पुरुषाकार ॥
बाल ब्रह्मचारी जहाँ, उपजें परमोदार ।
शंकर होना है वहाँ, सब का सर्वसुधार ॥
(नाथूराम शंकर अनुराग रत्न, पृ ९३)

२ ऋषियो ने व्रत ब्रह्मचर्य को नित सनमाना ।
सकल व्रतो का इसे सदा सिरताज बखाना ॥
चढ़ती है जो कान्ति बदन पर इस व्रत वर से ।
मिलती है जो शक्ति भुजो को इस जसधर से ॥
वह नही स्वप्न मे भी कही और भांति नर पा सके ।
वह खाय हजारो औषधें, सब मनो की इमि तर्के ।
यह व्रत वर पच्चीस बरस तक जो नर पाले ।
सिंह सरिस वह गर्जे सदा रोगो को घाले ॥
लम्बी जियो और सुनो चलो सत बरस अधीना ।
विदित प्रार्थना है जु वेद मे यह कामीना ॥
वह जग मे ऐसे मनुज की, पूरन होती है सदा ।
जो पहले कर व्रत पूर्ण यह करता है पत्नि तदा ॥
बाल ब्याह कर करै अथ जो भोग विलासा ।
कर विवाह बहु रमै सदा जो मनसिज दासा ॥

आतमहत्या सरिस पाप वे लहैं सदा ही।
अरु उनके सन्तान महानिरबल हो जाहीं ॥
जो निज तन तिय तन पुत्र तन, तनया तन का बल हरै।
इस बूढ़े पितु की दीन रट वह कुपुत्र कब मन धरै ॥

(मिश्र बन्धु)

३. दनुज-दलन सौमित्रि-सर, मारुति-मुष्टि-प्रहार।
भीष्म-अतुल-विक्रम तिहूँ, ब्रह्मचर्य-व्रत-सार ॥

(वियोगी हरि : वीरसतसई पृ. १०१)

ब्रह्मचर्य : अखंड

मन मुषि जाता गुर सुपि लेहु। लोही मास अगनि मुप देहू।
मात पिता की मेटो धात। ऐसो होइ बुलावै नाथ।

(गोरखबानी, पृ. १६३)

ब्राह्मण

१. हे ब्राह्मणो! फिर पूर्वजों के तुल्य तुम ज्ञानी बनो,
भूलो न अनुपम आत्मगौरव, धर्म के ज्ञानी बनो।
कर दो चकित फिर विश्व को, अपने पवित्र प्रकाश से,
मिट जाय फिर सब तम तुम्हारे देश के आकाश से।

(मै. श. गु. : भारत भारती पृ. १६७)

२. ब्राह्मण सो जो ब्रह्म पिछानै, बाहर जाता भीतर आनै।
पाँचों वस करि झूठ न भाखै, दया जनेऊ अन्तर राखै।—चरणदास

(सं. वियोगीहरि : संतबाणी, पृ. ७१)

३. तुम अंधकार की अतल गुहा, अब
तुम प्रकाश का नाम शेष।
तुम ज्ञान - कर्म-हत, धर्म-च्युत
युग-युग की जड़ता के निवेश।
क्या ला सकते हो नहीं पुनः
तुम अपना वह खोया अतीत?
क्या गा सकते हो नहीं त्याग तप
सयम का वह मधुर गीत?

(शम्भू दयाल सक्सेना : मन्वन्तर पृ. २७-२८)

ब्राह्मण का कोप

विप्रकोप है और्व, जगत जलनिधि का जल है
विप्रकोप है गरल-वृक्ष, क्षय उस का फल है ॥
विप्रकोप है अनल, जगत यह तृण-समूह है ।
विप्रकोप है सूर्य, जगत यह धूकव्यूह है ॥

(रामचरित उपाध्याय)

ब्राह्मण का पतन

ब्रह्म जानि ब्राह्मण भये, गये काल के गाल ।
अब हैं पूंजीवाद के, रक्षक भृत्य दलाल ॥

(रामेश्वर करुण करुण सतसई, पृ ८५)

ब्राह्मण का वचन मान्य

द्विज मांगै सो देय, विप्र को वचन न लगिय ।
द्विज बोलै सो करिय, विप्र को मान न भगिय ॥
परमेस्वर अरु विप्र, एक सम जानि सु लिज्जिय ।
विप्र-वैर नहिं करिय, विप्र कहुं सर्वसु दिज्जय ॥
मुनि रतन सेन मधुशाह सुव, विप्र बोल किन लिज्जियहु ।
कहि 'केशव' तन मन वचन करि, विप्र कहय सोइ किज्जयहु ॥

(केशवपचरत्न, रतनबावनी, पृ ७)

ब्राह्मण के लक्षण

न स्वप्न मे भी कहना असत्य है,
तथैव पूजा-रत ब्रह्म ध्यान मे,
न लोभ क्रोधादिक के अधीन जो,
वही सुना ब्राह्मण शास्त्र मे गया ।

(अनूप वर्द्धमान, पृ ५३१)

ब्राह्मणी

सत्त्व-सत्त्वा, निर्विषया, धर्मशीला,
श्रद्धामयी, भावमयी, कर्मकुशला ।
परहितरता, स्वाध्याय निरता, मुक्तिचित,
सर्वतोभद्र विग्रहा ब्राह्मणी जयति ॥

(अतुल कृष्ण गोस्वामी नारी, पृ २६५)

भंग

घर छप्पर घूम्यौ करै, फाटि जात मुख नैन ।
होइ बावरो भंग ते, हँसत कटै मुख बैन ।
(गुपालराय : दंपतिवाक्य विलास. पृ. १४)

भक्त : अमर

मित्र जो हैं करतार के, मरत नाहिं हैं सोइ ।
एक मंदिर तजि दूसरें, गवनत हैं वे लोइ ।।
(नूर मुहम्मद : इन्द्रावती)

भक्त और विषय

रमा-विलास राम-अनुरागी । तजत बमन इव जन बड़भागी ।।
(तुलसीसूक्ति सुधा पृ. ३६७)

भक्त : विभव-इच्छुक नहीं

सदा स्वामि-सांनिध्य उपासी । भक्त न नाथ विभव-अभिलाषी ।।
(द्वा. प्र. मि. : कृष्णायन, पृ. ४६९)

भक्ति : नौ प्रकार की

प्रथम भगति संतन्ह कर संगा । दूसरि रति मम कथा प्रसंगा ।।
गुरु-पद-पंकज-सेवा, तीसरि भगति अमान ।
चौथि भगति मन गुन गन, करइ कपटि तजि गान ।।
मंत्र-जाप मम दृढ़ विस्वासा । पंचम भजन सो वेद प्रकासा ।।
छठ दम सील विरति बहु करमा । निरत निरन्तर सज्जन धरमा ।।
सातवँ सम मोहिमय जग देखा । मो तें संत अधिक करि लेखा ।।
आठवँ जथालाभ संतोषा । सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा ।।
नवम सरल सब सन छलहीना । मम भरोस हियँ हरष न दीना ।
(रा. च. मा. गु., पृ. ४३४-५)

भक्ति : भावहीन

लगन बिना कोरा भजन, देत न हरि को संग ।
एक पक्ष सों गगन में, उड़ नहिं सकत विहंग ।।
(सं. रामकवि : हिन्दी सुभाषित, पृ. ४६)

भक्ति : में बाधाएँ

१. सुख सम्पति परिवार बड़ाई । सब परिहरि करिहउँ सेवकाई ।।
ए सब राम भगति के बाधक । कहहिं संत तव पद अवराधक ।।
(रा. च. मा. गु. पृ. ४५०)

२ तजो कुटुम को हेत हित, करत प्रेम की हान।
सोना कहा लै कीजिये, जासों टूटे कान ॥
(पेमी पेम प्रकाश, पृ २४)

३ मोह कोह मन में भरे, प्रेम पन्थ को जाय।
चली बिलाई हज्ज को, नौ सै चूहे खाय ॥
(पेमी पेम प्रकाश, पृ २१)

भक्तिरस अनुपम

यह संसार झूठ, थिर नाही। उठहिं मेघ जेउ जाइ बिलाही ॥
जो एहि रस के बाए भएउ। तेहि कह रस विष भर होइ गएउ ॥
तेइ सब तजा अरथ बेवहारू। औ घर बार कुटुम परिवारू ॥
खीर खाँड तेहि मीठ न लागै। उहै बार होइ भिच्छा मागै ॥
(जायसी ग्रंथावली, पृ २१८)

भगवान भव में

बार बार हैं किस लिए, आँखें करते बंद।
सदा नहीं क्यों देखते, भव में परमानंद ॥
(हरिऔध सतसई, पृ १६)

भय

निश्चय ही भय द्वारा निज मन भाव कराना,
अथवा भय के सम्मुख निज सिर हृदय झुकाना,
पाशुबल भय को शासन का आधार बनाना,
भयवश ही अत्याचारी के गुणगण गाना,
दोनों ही हैं घोरतम, पाप प्राणियों के लिए।
लाञ्छन हैं सभ्यता के, दुरभिमानियों के लिए।
(वियोगीसिंह पथिक, प्रह्लाद विजय, पृ ३३-४)

भय का प्रभाव

निबद्ध होना पद है विभीत का,
विराव होना अवरुद्ध कंठ में।
विभीषिका-संवृत नेत्र पुत्तली,
विलीन पानी जल को न भूमि को ॥
(अनूप वर्द्धमान, पृ २६२)

भय का घोर शत्रु

"त्यागहु नीति"—कहेउ भगवाना। "भय-सम मानव-अरि नहीं आना" ॥

(द्वा. प्र. मि. : कृष्णायन, पृ. २४)

भय : जन्म-मरण का

यथा डराता डर मृत्यु का हमें,
तथा न देती भय मृत्यु भी कभी ;
स-तर्क पूछो यदि प्रेत जीव से
भय-प्रदा मृत्यु, यथैव जन्म है ।

(अनूप : वर्द्धमान, पृ. ३२५)

भय : पापों का मूल

रचे विरंचि पाप जग नाना। भीति समान न गर्हित आना ॥
भीति सकल अघ-अवगुण-मूला। प्रकृति आप कातर प्रतिकूला ॥
छमत ईश बहु अघ नर माहीं। छमत कबहुँ कायरता नाही ॥
निश्चित मृत्यु-मुहूर्त जो, सकत ताहि को टारि।
जो नहिं निश्चित, जानि को कब केहि जइहै मारि ॥
दुहु विधि व्यर्थ मृत्यु हित शोचू। धरत भीति उर मनुजहि पोचू ॥

(द्वा. प्र. मि. : कृष्णायन, पृ. ३८१)

भय : बड़ों का

सेवक प्रभु सों डरत सदाहीं। पराधीन सपने सुख नाहीं ॥
जे ऊँचे पद के अधिकारी। तिनको मनहीं मन भय भारी ।
सब ही द्वेष बड़न सों करहीं। अनुछिन कान स्वामि को भरही ॥
जिमि जे जनमे ते मरैं, मिले अवसि बिलगाहि ।
तिमि जे अति ऊँचे चढ़ें, गिरिहैं संसद नाहि ॥

(भारतेन्दु नाटकावली, पृ. २९४)

भय : सात प्रकार का

यह भय, भय परलोक, भय, मरण, वेदना जात।
अन्य रक्षा अन्यगुप्त भय, अकस्मात् भय सात ॥

(गिरिधर : कुण्डलिया पृ. १५६)

भला

कीन्ह कृपालु बड़े नतपालु गए खल खेचर खीस खलाई।
ठीक प्रतीत कहैं 'तुलसी' जग होई भले को भलाई भलाई ॥

(तुलसी ग्रन्थावली २, पृ. १९३)

भव भक्ति हरिभक्ति

भव-भक्ति है हरि-भक्ति।
प्रेम प्राणि-समूह है विभु वास्तविक अनुरक्ति॥
सर्वभूतो मे भरित है भूतपति की शक्ति।
है सगुण ससार निर्गुण ब्रह्म की अभिव्यक्ति॥
हैं बताते वह विबुध विज्ञान-ज्ञाता व्यक्ति।
है अवांछित सर्वदा विभुता-विभूति-विरक्ति॥

(हरिऔध मर्म स्पर्श पृ १०)

भवितव्यता प्रबल (दे० होनहार भी)

हजारो भरे हुए सामान,
करोड़ो मन के ले अरमान,
डूबता क्षण मे यत्न-जहाज,
नियति की जब गिरती है गाज॥

(बलदेव प्रसाद मिश्र साकेत-सन्त, पृ ६०)

भविष्य अदृश्य

भविष्य का दृश्य न दृष्टि आता, हा क्या दिखा के विधि क्या दिखाता!

(मै श गु, कमलाकान्त पाठक मै श गु व्यक्ति और काव्य पृ १५९)

भविष्य आशामय

सत्प्रवृत्तियाँ दुष्प्रवृत्तियों से न मरेंगी,
जाग एक दिन अकस्मात उठकर उभरेंगी।
आगे की पीढ़ियाँ प्रवर होगी क्रम-क्रम से,
कर लेंगी वे हो न सकेगा जो कुछ हम से।
स्वय पतित भी पतन न चाहेंगे सतति का,
साधेंगे सब शुभ विकास उसकी मति-गति का॥

(मै श गु राजा प्रजा, पृ ४४)

भविष्य का निर्माता

वर्तमान के पजो से होनी जो जकड सका है—
और आज ही आने वाले कल को पकड सका है,
गरल बनाती अमृत कीमियाँ जिस की साँसे—
उसके आगे मेरे कवि का अह झुका है।

(उ श. भ कणिका पृ ३७)

भविष्य : की चिन्ता

प्राणी निज भविष्य-चिन्ता से
वर्तमान का सुख छोड़े,
दौड़ चला है बिखराता-सा
अपने ही पथ में रोड़े।

(प्रसाद : कामायनी, पृ. २१०)

भाई : दुलभ

जो जनतेउं वन बन्धु बिछोहू। पिता वचन मनतेउं नहिं [ओहू ।।
सुत वित नारि भवन परिपारा। होहिं जाहिं जग बारहिं बारा ।।
अस विचारि जिय जागहु ताता। मिलइ न जगत सहोदर भ्राता ।।

(रा. च. मा. गु., पृ. ५४५)

भाई : निर्गुण भी भला

निज भाई निरगुन भलौ, पर गुनजुत किहि काम।
आँगन तरु निरफल जदपि, छाया राखै घाम ।।

(बुधजन सतसई, पृ. २०)

भाई : बड़ा और छोटा

१. आए भरत, दीन ह्वै बोले, कहा कियौ कैकई माइ।
हम सेवक, वे त्रिभुवनपति, कित स्वान सिंह बलि खाइ ।।

(सूरराम चरितावली, पृ. ४४)

२. जेठ स्वामि, सेवक लघु भाई। यह दिनकर-कुल रीति सुहाई ।।

(रा. च. मा. गु., पृ. २४४)

भाई-भाई

जहाँ तक है आपस की आँच, वहाँ तक वे सौ हैं, हम पाँच।
किन्तु यदि करे दूसरा जाँच, गिनें तो हमें एक सौ पाँच ।।

(मै. श. गु. : वनवैभव, पृ. ३३)

भाई-भावज

तात ! तुम्हारि मातु वैदेही। पिता रामु सब भाँति सनेही ।।

(रा. च. मा. गु. पृ. २७४)

भाग्य

१. जाकौ जेता निरमया, ताको तेता होइ।
रत्ती घटै न तिल बढ़ै, जो सिर कूटै कोइ ।।

(सं. मुंशीराम : कबीर वचनामृत, मू. पृ. ६५)

२ बिन उठाये न जायगा मुँह मे, सामने अन्न जो परोसा है।
है भरी भूल चूक रग-रग मे, भाग का ही अगर भरोसा है॥
पाँव पर अपने खडे जो हो सके, ताव पर-मुख के कभी सहते नहीं।
बाँह के बल का भरोसा है जिन्हें, व भरोसे भाग के रहते नहीं॥
(हरिऔध चुभते चौपदे, पृ ४७-८)

३ भाग्य! तुम केवल भ्रामक भ्रान्ति,
पराजय—असफलता के नाम।
तुम्हीं जडता क आश्रय एक,
अज्ञता क गृह, अघ के ग्राम।
(सुधीन्द्र . सतनाद, पृ २२)

भाग्य . अटल

करम गति टारे नाहि टरी।
मुनि वसिष्ठ स पंडित ज्ञानी सोध के लगन धरी।
सीता हरन मरन दसरथ को बन म बिपति परी॥
कोटि गाय नित पुन करत नृप, गिरगिट जोन परी।
पाण्डव जिनके आप सारथी, तिन पर बिपति परी॥
(कबीर वचनावली, पृ २१५)

भाग्य और पुरुषार्थ

१ ब्रह्मा स कुछ लिखा भाग्य में मनुज नहीं लाया है।
अपना सुख उसने अपने भुजबल से ही पाया है॥
(दिनकर की सूक्तियाँ पृ ६८)

२ नर-समाज का भाग्य एक है, वह श्रम, वह भुजबल है।
(दिनकर की सूक्तियाँ पृ ६८)

कहने को तो स्वय रहा है मानव अपना भाग्य-विधाता।
किन्तु साथ ही भावी के भी साथ रहा है इसका नाता॥
—शान्ति सिहल
(शिवदान सिह चौहान काव्यधारा १ पृ १४५)

भाग्य की प्रबलता

भाग्य सवत्र फलत है, न च विद्या पौरुष सरल।
हरि हर मिल सागर मथ्यो, हरको मिल्यो गरल॥
(गिरधर कविराय · कुडलिया पृ ३९)

भाग्य की प्रबलता

१. बालि विध्यो, बलिराज वँध्यो कर सूली के सूल कपाल थली है।
काम जर्यो जग, काल पर्यो वन्दि, सेप धरै विप हालाहली है॥
सिंधु मथ्यो, किल काली नथ्यो, कहि 'केसव' इन्द्र कुचालि चली है।
राम हू की हरी रावन वाम चहूँ जुग एक अदिष्ट वली है॥

(केशव ग्रन्थावली १, पृ. १२६)

२. हानि अरु लाभ ज्यान जीवन अजीवन हू,
भोग हू वियोग हू संयोग हू अपार है।
कौन दिन कौन छिन कौन घरी कौन ठौर,
कौन जाने कौन को कहां धौं होनहार है॥

(पद्माकर पंचामृत, पृ. २३१)

३. गंजा नर शिर भानु ताप तें दग्धन लाग्यो।
विधिवश छाया हेत ताड़ तरवर तर भाग्यो॥
ताहि जात तिहि ठौर वृक्ष तें फल इक टूट्यो।
भयो भयानक शब्द गिरत गंजा शिर फूट्यो॥
श्री शिव सम्पति कवि भनै, सुनो मुख्य यह वात है।
विपति संग लगि जात तहँ, भाग्यहीन जहँ जात है॥

(शिव सम्पति)

भाग्य : की रेखा अमिट

१. लिखा जो करता को, सोइ होइ।
जनम पत्र को अक्षर जात न धोइ॥

(नूर मुहम्मद ; अनुराग बाँसुरी)

२. काहू सों नाही मिटै, अपरावत के अंक।
वसत ईस के सीस तउ, भयो न पूर्न मयंक॥

(सतसई सप्तक, वृन्द सतसई, दोहा ३०४)

३. इक छत्र की छाँह विनोद करै, इक धान के काज फिरै जु दुखारी।
एक त्रिया वहु पुत्र रमै, एक छोटी सों कंत वझी वहो नारी॥
एक चंचल तेज तुरंग चढ़ै, इक माँगत भीख फिरै जु दुखारी।
'ब्रह्म' भनै गिर मेरु टरै, पर कर्म की रेख टरै नहिं टारी॥

—बीरबल ; अकबरी दरबार..., पृ. ३५४)

भाग्य से लड़ो

अच्छा है कि रहे अपठित ही ये विधि-अक्षर वाम,
पढ़ लोगे तो भी क्या होगा ? कौन करेगा काम ?
जो होनी है वह तो होगी, अनहोनी होगी न,
यदि यह नियम अटल है तो, तुम क्यों होते हो श्याम ?
क्या है नियति ? नियति है केवल कर्म समुच्चय, मित्र,
और क्रिया की प्रतिक्रिया है निश्चय अक्षय, मित्र,
कर्म तुम्हारे पच न सके जो के बन नियति कठोर,
तुम्हे विवश सा नचा रहे हैं जीवन नाच विचित्र।
चिर तितिक्षा धैर्य साहस शान्ति क्षान्ति अपार,
नित्य निज कर्तव्य-पालन, हृदय-भाव उदार,—
दोष—दर्शन—शून्य आँखें, स्नेहमय मन प्राण,—
ये मिलें तब स्वयं होगा नियति का संहार।

(बा कृ श न श्रम विषपायी जनम के, पृ २२—२५)

भाग्यवाद शोषण-शस्त्र

भाग्यवाद आवरण पाप का और शस्त्र शोषण का।

(दिनकर की सूक्तियाँ, पृ ६८)

भाग्यवान् कौन ?

फूलो ही की सेज सदा जिनको मिली,
भाग्यवान मैं उन्हें कदापि न मानता,
जिनको पथ मे बिछे खड़े काँटे मिले,
मैं तो उनका भाग्य सदैव बखानता।

(गिरिजादत्त शुक्ल तारकवध, पृ १६३)

भाग्यहीन

भाग्यहीन को जो मिलै, चिन्तामणि कहुँ ठौर।
देखत हू देखत नहीं, जान लेत कछु और॥

(गिरिधर कुण्डलिया, पृ १२५)

भाभी

शाश्वत माँ की सरसता की सार मूर्ति सी,
भगिनी भाव की विभूति भरी सुहृति सुधा।
है तो पूर्ण माँ ही वात्सल्य विलासमयी,
किन्तु साथ इसके स्वभाव मे सख्य विधा॥

चरण वन्दना का अधिकार मान अविनश्वर,
मिलती वरद कर शीष रखने की सुविधा ।
प्रिय भाभी हैं ये जिनका पुण्य स्नेह नद,
संतत पति-अनुज हेतु वहता है शतधा ।।

(अतुल कृष्ण गोस्वामी : नारी, पृ. २९५)

भारत

१. जितने गुणसागर नागर हैं, कहते यह वात उजागर हैं ।
अव यद्यपि दुर्वल भारत है, पर भारत के सम भारत हैं ।।

(मै. श. गु.; सरस्वती, अगस्त १९०९)

२. भवन हेतु है भारतवर्ष,
सव का है उसका उत्कर्ष ।
साधन-धाम मुक्ति का द्वार,
हिन्दू का स्वदेश संसार ।।

(मै. श. गु. : हिन्दू, पृ. २०१)

३. भारत है ऐसा भूभाग, पद पद पर है जहाँ प्रयाग ।
और कही भेजे हों दूत, हुए यहाँ प्रभु प्रादुर्भूत ।।
जन्मे हो तुम जहाँ निदान, वह प्रभु का भी जन्मस्थान ।
प्रभु पर है भारत का भार, हुए जहाँ अनेक अवतार ।।

(मै. श. गु. हिन्दू, पृ. ४७-४९)

भारत : एक गुण

भारत नहीं स्थान का वाचक, गुण विशेष नर का है,
एक देश का नहीं, शील यह भू मंडल भर का है ।
जहाँ कहीं एकता अखंडित, जहाँ प्रेम का स्वर है ;
देश-देश में वहाँ खड़ा, भारत जीवित भास्वर है ।।

(दिनकर : चक्रवाल, पृ. ३५९)

भारत : एक वड़ी कविता

गांधी, वुद्ध, अशोक नाम हैं वड़े दिव्य सपनों के ;
भारत स्वयं मनुष्य जाति की वहुत वड़ी कविता है ।

(दिनकर की सूक्तियाँ, पृ. ७०)

भारत और भारतीय

तुच्छ नहीं समझो अपने को, तुम हो पृथ्वी वासी,
फिर तुम भारतवासी जो वसुधैव कुटुम्व प्रकाशी ;

देखो, माँ के अचल मे जो रत्न बँधा अविनाशी,
जगत-तारिणी भरत-भूमि, वह नही भिखारिन, दासी।
(सु न प, स्वर्णकिरण, पृ १२५)

भारत और भारतीयता

भारत जब तक जग मे होगा,
भारतीयता तब तक होगी।
भारतीयता होगी जब तक
जग होगा तब तक नीरोगी॥
जग-नैरुज्यवती मानवता,
फिर से इस भू पर छा जावे।
जो जिस थल पर हुआ नियोजित,
वह उस थल से सुख पहुँचावे॥
(बलदेव प्रसाद मिश्र साकेत-सन्त, पृ १८२)

भारत का आदर्श

लोक-मगल, भू-रचना, शान्ति, सत्य ईश्वर के युग प्रति रूप।
इन्हीं मूल्यो की रक्षाहेतु, लडे भारत—सह झझा धूप॥
(सु नं प लोकायतन पृ ४१२)

भारत की मिट्टी

भरत-भूमि की मृत्ति सिक्त,
मानस के सुधा—क्षरण से।
भरत-भूमि की मृत्ति दीप्त,
नरता के तपश्चरण से॥
गधवती, शुचि रसा कुक्षि से,
मलय उगाने वाली।
कामधेनु-कल्पद्रुम सी यह,
वर दायिनी निराली॥
पारिजात से भी सुरभित,
यह अरुण कही कुकुम से।
यह मिट्टी अनमोल कनक से,
मणि-मुक्ता-विद्रुम से॥
(दिनकर मूर्ति तिलक, पृ २७)

भारत पुण्य भूमि

भारत-सम महि पुण्य न आना। उपजे युग-युग पुरुष महाना॥
(द्वा प्र. मि कृष्णायन, पृ ४४४)

भारत : प्रेम

१. तृण हों तरु हों मेरु हों, कृमि हों या हों खेह।
हों भारत जन हित-निरत, हो भारत से नेह ॥
रोम नुचे बोटी कटे, खिचे सकल तन चाम।
हम उमंग में भर करें, भारत भूतल काम ॥
चाह स्वर्ग की है नहीं, है न लोभ अपवर्ग।
है कामना स्वदेश पर, हो जीवन उत्सर्ग ॥

(हरिऔध सतसई, पृ. ४३)

२. भारतीय मेरे बान्धव है, घर है मेरा सारा देश
बस यह मेरा आत्मचरित ही, है मेरा अन्तिम सन्देश ॥

(मै. श. गु. : किसान, पृ. ४७)

भारत : मधुवन

जहाँ देश-द्रोही की गरदन ही मरोड़ दी जाती,
खुले वक्ष से संगीनों की नोक तोड़ दी जाती।
जहाँ, जवानी नहीं देखती अड़चन और सुभीते,
जहाँ बीज, अंकुर, बिरवे सब अग्नि पान कर जीते।
जहाँ हथेली पर सर रख कर होता माँ का पूजन,
वह धरती कुछ और नही है, वह भारत का मधुवन ॥

(उमाकान्त मालवीय : बाजी रणभेरी, पृ. ३२)

भारत : में झगड़ों का कारण

भारत में सब भिन्न अति, ताही सों उत्पात।
विविध देस मनहू विविध, भाषा विविध लखात ॥

(भारतेन्दु ग्रंथावली, दूसरा खंड, पृ. ७३४)

भारत-महिमा

यह भरत खण्ड समीप सुरसरि, थल भलो संगति भली।
तव कुमति कायर ! कलप-बल्ली चहति है विष फल फली ॥

(तुलसीदास : विनय पत्रिका पृ. २१३)

भारत-रक्षा

१. अहिंसा, माना, आज अशक्य,
क्योंकि हम प्राकृत-जन सामान्य।
बनें हम गांधी से चाणक्य,
सुरक्षित करने गृह-धन-धान्य।

दुग्ध से नहीं, रक्त से आज,
कृत्य पूरे हो तर्पण के।
आज तन पर हैं गहरे घाव,
भाव भी गहरे हैं मन के।
—नरेन्द्र शर्मा
(स रामदत्त भारद्वाज ऋतम्भरा, पृ ५१)

२ बहुत दिन से तुम्हारी बरछियों की नोक है टूटी,
बहुत दिन से तुम्हारी सिंजनी की डोर है छूटी,
खिवैया राष्ट्र नैया के कि क्या यह भूल बैठे हो,
बहुत दिन से तुम्हारे हाथ की पतवार है फूटी,
कि फूटी देश की किस्मत बनानी है अगर फिर से
तमक चमका निकालो बन्द म्यानो से दुधारों को।
सुनो यदि सुन सको तो नौजवा इस की पुकारों को।
—चिरंजीव शास्त्री
(स रामदत्त भारद्वाज . ऋतम्भरा, पृ ३६)

३ सूर्य संस्कृति का गहन तम मे ढंका है,
स्रोत जीवन काव्य का, उलझा रुका है।
अभी माँ के केश रूखे, अधर सूखे,
दृग सजल हैं, कोटि उसके पुत्र भूखे।
लाज से हिमगिरि न अब निज सिर उठाता,
उदधि भी उठ-उठ न अब जयगान गाता।
हुआ लाछित पुन आज स्वदेश अपना,
विघुत सीमा-प्रान्त—पौरुष-तेज सपना।
तोडनी है शत्रुओं की लौह कारा
ध्येय ने बलिदान के पथ पर पुकारा॥
—चन्द्रप्रकाश सिंह
(स रामदत्त भारद्वाज ऋतम्भरा, पृ २७)

भारतीयता

जो कुछ मनुष्य का, मनुष्य का नहीं है वह,
आँखें मुंदती हैं तो रहस्य खुल जाता है।
न्यास जो मिला है, उसकी समृद्धि ही के लिए,
नर निज आयु के बरस कुछ पाता है॥

शान्ति तज क्रान्ति का बटोही बना विश्व जब,
तामसी तमिस्रा में विकल विललाता है।
तव भावना में भारतीयता का भव्य रूप,
भर कर भारत भरत-गुण गाता है।
(बलदेवप्रसाद मिश्र : साकेत-संत पृ. १७)

भावना

भावना ही वह स्वर्णिम रज्जु, जनों को करती भगवत् युक्त,
मनुज उर में ईश्वर का वास, मनुज के प्रति हो उर उन्मुक्त !
(सु. न. सं. पं. : लोकायतन पृ. ४२२)

भावना : सामाजिक

बिन दो के होता प्यार नहीं धरती पर,
यह दुनिया आदम के बेटों का है घर;
यह धरती कितनी ही ऊँची-नीची हो,
पर है इस पर सब का अधिकार बराबर।
—गोपाल कृष्ण कौल
(सं. शिवदान सिंह चौहान : काव्यधारा, पृ. १३५)

भावावेश

जो कि भावावेश में ही प्रण कर लेते हैं,
उनका सौभाग्य सदा बनता कुभाग्य है।
(रामकुमार वर्मा : एकलव्य, पृ. २९३)

भावी (दे० होनहार, दैव, भाग्य आदि भी)

१. भावी काहू सौं न टरै।
कहँ वह राहु कहां वह रवि ससि, आनि सँजोग परै।
मुनि वसिष्ठ पंडित अति ज्ञानी, रचि पचि लगन धरै।
तात मरन, सिय हरन, राम बन-बपु धरि बिपति परै॥
(सूर सागर, पृ. ८५)

२. सुन्दर नारी ताहि बिवाहै, असन बसन बहु बिधि सो चाहै।
बिना भाग सो कहाँ तैं आवै, तब वह मन मैं बहु दुख पावै॥
(सूर सागर, पृ. १३६)

३. अपना कीया दूर कर, हरि का कीया देख।
मिटे न काहू के किये, 'परसुराम' हरि-लेख॥
(परशुराम सागर, पृ. १९)

४ यह भावी कछु और काज है, को जो याको मेटनहारो ।
या को कहा परेखो निरखो, मधु छीलर गरिनापनि खारो ॥
(सूर रामचरितावली, पृ ३३)

५ निज कर क्रिया 'रहीम' कहि, सुधि भावी के हाथ ।
पाँसे अपने हाथ में, दाँव न अपने हाथ ॥
(स ब र दा रहिमन विलास, पृ १२)

६ काहे को सोवत है सुन सुन्दरि जे कछु अङ्क लिखे न मिटाहीं ।
रामु को सेव भलें करियो और ही कछु चल्यो हौं बिदा को तहीं ही ॥
(हृदयराम हनुमन्नाटक, पृ २५)

७ भावी से कब कहाँ किसी का वश चले ।
भावी ने ये सुजन, सौम्य, निश्छल छले ॥
(ताराचन्द हारीत दमयन्ती, पृ १८७)

८ रावण ने कर बन्धुविरोध लखो निज सम्पति जान गँवाई ।
बालि ने व्यथ सुकण्ठ को कष्ट दे खोई स्वजीवन राज बड़ाई ॥
भूल से भी न कभी करिये निज भाइयों से इस हेतु लड़ाई ।
काम हैं आते विपत्ति के काल में गाँठ का कंचन पीठ का भाई ॥
(लोचनप्रसाद पाण्डेय)

भावुक और ज्ञानी

भावुक जन से ही महत्कार्य होते हैं,
ज्ञानी संसार असार मान रोते हैं ।
(मै. श गु साकेत अष्टम सर्ग, पृ १८९)

भावों की प्रबलता

रक्त बुद्धि से अधिक बली है और अधिक ज्ञानी भी,
क्योंकि बुद्धि सोचती और शोणित अनुभव करता है ।
(दिनकर की सूक्तियाँ, पृ ११६)

माया

जो ही एक बार सुनै मोहै सो जनम भरि,
ऐसी न असर देख्यो जादू के तमासा मैं ।
अरिहू नवावै सीस छोटे बड़े रीझै सब,
रहत मगन नित पूर होइ आसा मैं ॥
देखी ना कबहूँ मिसरी मैं मधुहू मैं ना,
रसाल ईख दाख मैं न बनिक बतासा मैं ॥

अमृत मैं पाई ना अघर मैं सुरंगना के,
जेती मधुराई भूप सज्जन की भासा मैं ॥
(भा. ग्रं., दू. खं. पृ. ८२४)

भाषा और अर्थ

(क) का भाखा का संसक्रित, विभव चाहिए साच।
काम जो आवै कामरी, का लै करिय कमाच ॥
(तुलसी-सतसई पृ. ११०)

(ख) ताकूं गनिये प्राक्रति बानी।
जामधि नित्य निकुंजविहारी कीरति तनक न आंनी ॥
भाषा निंदि संसकृत वंदित वनि पंडित अभिमानी।
विन विवेक मरम न पावत सठ हठता वसि अग्यानी ॥
(महन्त किशोरदास : सिद्धान्तरत्नाकर पृ. ११८)

भाषा : भावों का लँगड़ा अनुवाद

भौतिक हैं ये शब्द कि जिनसे बनती है यह भाषा,
भावों के फिर प्रातिनिध्य की क्या कर सकते आशा ?
कहते हैं हम, जो कि सोचते, कह पाते कब पूर्ण ?
कहते जितना, उतना कब समझा पाते हैं तूर्ण ?
समझे ? यही प्रश्न का देता मन में खड़ा विवाद,
भाषा क्या है ? भावों का लँगड़राता-सा अनुवाद।
(बुद्धमल्ल : मंथन, पृ. २३)

भिक्षा

बिन प्रपंच लखु भीख भलि, नहिं फल किये क्लेश।
बावन-बलि सों तीन छल, दीन सबहिं उपदेश ॥
(तुलसी सतसई, पृ. २१२)

भिन्नता

भिन्न रुचि भिन्न देश औ काल,
विनिर्मित जग का वस्तु स्वरूप,
असुन्दर भी सुन्दर है कहीं,
और सुन्दर भी कही कुरूप।
(गोपालदास 'नीरज' : दो गीत, पृ. ५२)

भीतर से बदलो

खड़ा आज जग नाश छोर पर,
धूमिल रे भावी के अक्षर !

मानव भूत कपालों था पर,
मानव दाव, भू जीवन खण्डहर!
अहे बहिर्गामी, युग के मन,
'भीतर से बदल' था यह रण!
घोर बवण्डर घुमड रहे अब,
भू के उदर सिन्धु में भीषण!
विश्व प्रकृति पर क्या विजयी तुम?
मूढ़! न होंगे क्या मन्न स्थित?
बाह्य प्रकृतिजित आत्म पराजित,
आत्मजयी ही विश्व जयी नित!

(सु न पंत वाणी, पृ ११४ ५)

भुज-दंड निकम्मे

काम न आये आजु लौं, है अनाथ-रखवार।
दिये तोहि भुजदण्ड ए, कहा जानि करतार॥

(वियोगी हरि वीर सतसई, पृ १००)

भुज बल और आत्मबल

जिनको सहारा नहीं भुज के प्रताप का है,
बैठते भरोसा किये वे ही आत्मबल का।

(दिनकर की सूक्तियाँ, पृ १०९)

भू —दान

१ सुरम्य शान्ति के लिए, जमीन दो, जमीन दो।
महान् क्रान्ति के लिए, जमीन दो, जमीन दो॥

(१)

जमीन दो कि देश का अभाव दूर हो सके।
जमीन दो कि द्वेष का प्रभाव दूर हो सके॥
जमीन दो कि भूमि हीन लोग काम पा सकें।
उठा कुदाल बाजुओं का जोर आजमा सकें॥
महाविकास के लिए जमीन दो जमीन दो।
नये प्रकाश के लिए जमीन दो, जमीन दो॥

(२)

जमीन दो कि शांति से नया समाज ला सकें।
जमीन दो कि राह विश्व को नयी दिखा सकें॥

जमीन दो कि प्रेम से समत्व सिद्धि पा सकें।
जमीन दो कि दान से कृपाण को लजा सकें ॥
सुरम्य...

(दिनकर : मूत्तितिलक, पृ. २०-२१)

२. अपने को ही नहीं देख, टुक, ध्यान इधर भी देना।
भूमि—हीन कृषकों की कितनी बड़ी खड़ी है सेना ॥
बाँध तोड़ जिस रोज फौज खुल कर हल्ला बोलेगी।
तुम दोगे क्या चीज ? वही जो चाहेगी सो लेगी ॥

(दिनकर : चक्रवाल, पृ. ३५७)

३. धरती—वालो ! धरती उसको दे दो जो खेती करता है।
वह भू का भगवान खेत पर जो कि दुपहरी में मरता है ॥
जो श्रम के मोती पहिना दे धरा-वधू उसको वरती है।
खिला गोद में फूल सुगन्धित, भू उसकी पूजा करती है ॥

(रघुवीर शरण मित्र : भूमि के भगवान, पृ. ४५—६)

भू :—विकास

भू विकास मानव स्तर पर रे
चेतन मनसों पर अवलंबित,
बहिरन्तर उन्नति हो युगपत्
मिटे दैन्य तन मन का गर्हित !
बाग डोर जीवन की थामें
भू जन, हों परिवार नियोजित,
ज्योतिवाह बन सकें नवागत,
हृष्ट पुष्ट स्मित, शिक्षित, संस्कृत!

(सु. नं. पं. : वाणी, पृ. १७३)

भू :—स्वर्ग

१. काम दाम आराम को, सुघर समनवय होय।
तौ सुरपुर की कलपना, कवहूँ करै न कोय ॥

(दुलारेलाल : दुलारे दोहावली, पृ. ७०)

२. जागो, हे जागो, धरा चेतने, जागो !
युग युग की ईर्ष्या, कुंठा, स्पर्धा त्यागो !
अब दिशा काल उड़कर आ रहे निकट तर,
यह देश जाति में बँटने का क्या अवसर ?

आ रहे निकट बहु भू-भागो के जनगण,
मत धर्मों संस्कृतियों का हो सम्मिश्रण !
भू निखरे राष्ट्रों की सीमा अतिक्रम कर,
मानवता भोगे धरा-स्वर्ग जीवन भर !

(सु न पं लोकायतन, पृ २२०)

भूख

१ भूख म राज को तेज सबै घटै, भूख मे सिद्ध की बुद्धि हारी।
भूख मे कामिनी काम तजै अरु, भूख मे तज्जत पुरुष नारी ॥
भूख मे कोऊ रहै व्यवहार न, भूख मे कन्या रहत कुमारी।
भूख मे 'गग' बनै न भजन्नहु, चारहु वेद तें भूख न्यारी ॥

(स बटे कृष्ण गगकवित्त, पृ १३०)

२ भूख विधाता ने रची, सब का हरै गुमान।
क्षुधा निवारण के अरथ, क्या नहिं करै पुमान ॥

(गिरिधर कुडलिया, पृ ९४)

३ 'धान हमको चाहिए !' यह है क्षुधित की माँग।
देख लेंगे बाद में वैधानिकों के स्वाग !

(प्रभाकर माचवे अनुक्षण पृ ६९)

४ भूखा धर्म न रख सके, डगमगात ईमान।
कलुषित करती आत्मा, भूख बडी शैतान ॥

(मेलाराम शिक्षा सहस्री, पृ ९०)

भूत और भविष्य

१ जिनका कुछ भी न था अतीत, गावें क्या वे उसके गीत ?
भूलें हम क्यो उसकी याद, जिसमे है अपना आह्लाद,
कर लो वर्तमान को साथ, है भविष्य तो अपने हाथ।

(मै श गु हिन्दू पृ ४२, ४४)

२ घिसा घिसा सा जो कि पुराना अनुपयोग से जो निरर्थ सा,
जिसका नाम रूप अनजाना, जिसे जानना अभी व्यर्थ-सा
उस अतीत-भावी-सगम हित, वर्तमान मे चाव नये भर !
चचल चित, नित भाव नये भर !

—जानकी वल्लभ शास्त्री

(स शिवदान सिंह चौहान काव्यधारा १)

भूप : प्रभुरूप क्यों ?

भूप इस से ही प्रभु का रूप,
कि उसके सिर है इतना भार।
न अपने किन्तु लोक के लिए,
सदा उसका जीवन - संचार ॥

(बलदेव प्रसाद मिश्र : साकेत-संत, पृ. १५०)

भूमि और आकाश

भूमि अपनी गोद में सब को बिठा लेती सदय,
किन्तु धरती पर पटक देता निठुर आकाश है।

(हरिकृष्ण प्रेमी : रूपरेखा पृ. १२८)

भूमि : के उपकार

पहिले सरीर तेरो चीर लोह-सीरन से
खोदत कुदाल दीप दगे उतपात के।
दई हरी सबी दई लई सो उखार चुंट,
कीच बीच डारि कीये कैसे रंग गात के।
ऐसे करें लोक हाल तो पें तु दयाल ह्वै कै,
करत निहाल देत नाज जात-जात के।
कहै 'विनै' धरा तेरे जे हैं उपगार गुन,
गिने कैसे जात जैसे तारे सब रात के ॥

(विनय भक्ति : अन्योक्ति बावनी, पृ. १५)

भूल

एक भूल करके नहीं, होता कोई भ्रष्ट :
अनुचित है देना उसे, कुछ सामाजिक कष्ट।

(मै. श. गु. : काबा और कर्बला, पृ. १०)

भूषण

स्वाभाविक सौन्दर्य जो, सोहै सब अँग माहिं।
तो कृत्रिम आभरन की, आवश्यकता नाहिं ॥

(म. प्र. द्वि : द्वि. का मा., पृ. २७६)

भूषण : कौन किसका

रैन को भूषन इंदु है, दिवस को भूषन भानु।
दास को भूषन भक्ति है, भक्ति को भूषन ज्ञान।

ज्ञान को भूषन ध्यान है, ध्यान को भूषन त्याग ।
त्याग को भूषन शान्तिपद, तुलसी अमल अदाग ॥
(तुलसीदास वैराग्य सदीपिनी)

भेष

१ द्वादस तिलक चित्रकार लौ बनावत है,
कठ विर्षं माल समै पाय कै नपत है।
अनविधि आचार अनाचार की अनेक विधि,
पुत्रवधू पुत्रिन के गात कू लपत है।
भेष धरे भक्तन की भक्तन कू दगा देत,
भक्ति भगाय देखि भक्तनि तपत है।
माता पिता कूटि गुरु साधन को लूटि,
सेव्य धमनि तें टूटि विप्र मास को भपत है।
(किशोरदास सिद्धान्त रत्नाकर, पृ २७६)

२ जपमाला छापैं तिलक, सरैं न एको कामु।
मन काचैं नाचैं वृथा, साँचैं राँचैं रामु ॥
(बिहारी रत्नाकर, पृ ६३)

३ एक भेष के आसरे, जाति बरन छिप जात।
ज्यो हाथी के पाँव मे, सब को पाँव समात ॥
(वृन्दसतसई, दोहा १५१)

भोग से शान्ति नही

भोगने से कब घटे हैं रोग-रूपी राग ?
और बढती है निरतर इधनों से आग ॥
(मै श गु जयभारत, पृ २०)

भोजन और शरीर

खाई वस्तु समान है, होना तन अवदात।
बतलाता है ग्रन्थ कृमि, निचय सिनासित गात ॥
(हरिऔध मर्मस्पर्श, पृ २७)

भोजन विधि

अरु भोजन सो ईहि विधि करै। आधो उदर अन्न सौं भरै।
आधे मे जलवायु समावै। तब तिहि आलस कबहुँ न आवै ॥
(सूरसागर, पृ १३४)

भौतिकवाद से नैतिक पतन

भौतिकवाद कर रहा है अब,
मानव जीवन पर शासन।

वह करना चाहता जगत से
नैतिकता का निर्वासन ।।
जब तक होता दूर सांस्कृतिक,
यह मानसिक विकार नहीं।
तब तक हो सकता है जग में,
प्रेम—दया—संचार नहीं ।।
(ठा. गो. श. सिं. : जगदालोक, पृ. १२०)

भ्रमण : प्रातः का

घूम रहा था मैदानों में एक दिवस मैं प्रातः काल,
तब तक फैला था न तरणि की अरुण-करुण किरणों का जाल।।
प्रकृति परी बोली मुसका कर मुझ से—अरे पथिक नादान।
जाते हो इस ओर कहाँ तुम नंगे पैर और मुख म्लान?
मैंने कहा-यहीं पर मेरा स्वास्थ्य खो गया है अनजान।
करता हूँ मैं आज उसी का इस पथ में सखि अनुसन्धान ।।
(आरसी प्रसाद सिंह : आरसी पृ. १३२)

भ्रमर

भ्रमर, इधर मत भटकना, ये खट्टे अंगूर।
लेना चम्पक-गन्ध तुम, किन्तु दूर ही दूर ।।
(मै. श. गु. : साकेत, ९ सर्ग)

भ्रष्टाचार

मर गये कहाँ वे आज गुप्तचर सारे।
वह देश-भक्त बच सके न जिनके मारे ।।
अधिकारिवर्ग को तनिक वही यदि जांचें।
तो इतने भ्रष्टाचार न नंगे नाचें ।।
(मै. श. ग. : राजा-प्रजा)

भ्रातृप्रेम

जो जनतेउँ वन बन्धु बिछोहू। पिता वचन मनतेउँ नहिं ओहू ।।
सुत वित नारि भवन परिवारा। होहिं जाहिं जग बारहिं बारा ।।
अस विचारि जिय जागहु ताता। मिलइ न जगत सहोदर भ्राता ।।
(रा. च. मा.ग. पृ. ५४२)

मंडन

नरपति मंडन नीति, पुरुष मंडन मन धीरज।
पंडित मंडन विनय, ताल सर मंडन नीरज।

कुल तिय मंडन लाज, वचन मंडन प्रसन्न मुख।
मति मंडन कवि कर्म साधु मंडन समाधि सुख।
भुज बल समर्थ मंडन छमा, गृहपति मंडन विपुल धन।
मंडन सिंघानरुचि संत कहँ, काया मंडन भवन धन॥
(बनारसी विलास, पृ १७५)

मंदिर

जहाँ मनुष्य का मन रहस्य में खो जाये,
जहाँ लीन अपने भीतर नर हो जाये,
भूल जाय जन जहाँ स्वकीय इयत्ता को
जहाँ पहुँच नर छुए अगोचर सत्ता को।
धर्मालय है वही स्थान, वह हो चाहे सुनसान में।
या मंदिर-मस्जिद में अथवा जूते की दूकान में।
(दिनकर नये सुभाषित, पृ १९)

मंदिर-सुधार

मठ-मन्दिर सच्चे हों सिद्ध, न हों वहाँ वे कर्म निषिद्ध।
उनका ऐसा करो सुधार, बहे स्वयं श्रद्धा की धार॥
(मैं श गु हिन्दू, पृ १३२)

मजदूर-महत्व

नंगी घूमा करती दुनिया
मिलता न अन्न भूखी मरती,
मजदूर भुजायें जो तेरी
मिट्टी से नहीं युद्ध करतीं।
(सो ला द्वि युगाधार, पृ ३९)

मजहब

मौला एकला मजहब है, जा में मजहब फनाह।
जेते मजहब जहान में, सब शैतान के राह॥
(गिरिधर कुंडलियाँ पृ ८२)

मजहब खोखले

धर्म बन गये रक्षक इन पापी काले बजार वालों के,
मन्दिर में जप-जाप-'अहिंसा', शोषण में दामिनी जोंकें।
ऐसा यह मजहब जो अन्दर से सड गल कर हुआ खोखला,
वह डूबा क्या, और बचा क्या ? वह बे असर, फरेब, दोगला
(प्रभाकर माचवे अनुक्षण पृ ८६)

मजहब : घृणा-मूलक

दोनों के मजहब अलग-अलग माना ! पर
मानवता के विकास का साधन मजहब,
जो नफरत की बुनियादों पर कायम है,
वह नहीं खुदा का, वह शैतां का करतब ।

(भगवती चरण वर्मा : रंगों से मोह, पृ. ८२)

मजहब : से हानि

मिले सुजल-पय प्रेम सों, हिन्दू-मुस्लिम भाय
मजहब की काँजी परे, बहुरि गये बिलगाय ।।

(रामेश्वर करुण : करुण सतसई, पृ. १६२)

मत : अनेक, ध्येय एक

अपने अपने मत लगे, वाद मचावत सोर ।
ज्यों त्यों सबको सेवनें, एकै नंद किशोर ।।

(व्यास वाणी. पृ. १५८)

मत और धर्म

मतवारे सब ह्वै रहे, मतवारे मत माहि ।
सिर उतारि सतधर्म पै, कोउ चढ़ावत नाहिं ।।

(वियोगीहरि : वीर सतसई. पृ. १०३)

मत : मतान्तर

रचि बहु विधि के वाक्य पुरानन माहिं घुसाए ।
शैव शाक्त वैष्णव अनेक मत प्रगटि चलाए ।।
बहु देवी देवता भूत प्रेतादि पुजाई ।
ईश्वर सों सब विमुख किए हिन्दू घबराई ।।

(भारतेन्दु नाटकावली. पृ. ६०५)

मत :—वाले

बातन में सब सिद्धि है, बातन में सब योग ।
ये मतवाले होय गए, मतवाले सब लोग ।।

(सुधाकर द्विवेदी)

मत (वोट) : की स्वतंत्रता

अपनों का भी अन्ध चुनाव, है मकड़ी का जाल बुनाव ।
उससे क्या होगा उद्धार, उलटा बन्धन है तैयार ।
मत-दाता माली अनुकूल, चुन लें काँटों से भी फूल ।।

(मै. श. गु.: हिन्दू, पृ. ९४-९५)

मत —दाता

मत देने वाले हुए यहाँ जो इतने, उन में इसके उपयुक्त पात्र हैं कितने।
अज्ञ को आयुध दिया जाय तो भय है, वे कटें न उस से आप, यही विस्मय है॥

(मै श गु राजा प्रजा, पृ १६)

मतलब (द 'स्वार्थ' भी)

मतलब होय पुमान को, वर्स स्वरच वे धाम ।
बिना प्रयोजन मित्र को, वयात धरें नहिं नाम ॥

(गिरिधर कुडलिया, पृ ९६)

मतान्धता

भये मत मतवारे मतवारे ।
अपुनो अपुनो मत लै—लै मद झगरत ज्यों भठिहारे ॥
काउ कछु कहत ताहि कोऊ दूजो मदत निज हठ धारे ।
वह भगड़े ही में तेहि मान्यो पागल भये विचारे ।
आपुस मे पहिले सब मिलि निरनै करि होइ न न्यारे ॥
'हरीचन्द' आयो तो भाखें जामैं मिलैं पियारे ॥

(भा ग्र , दू ख , पृ १३९)

मत्स्य न्याय ही सत्य नहीं

यदि मत्स्य-न्याय ही जग में,
अधिपति एकाकी होना ।
शफरी के लिए तरसता,
प्रत्येक सलिल का सोता ॥

(बलदेव प्रसाद मिश्र साकेत सन्त, पृ ३९)

मद का त्याग

इतने मत उन्मत्त बनो ।
जीवन मधुशाला से मधु पी
बन कर तन-मन मतवाला,
गीत सुनाने लगा झूमकर
चूम-चूम कर मैं प्याला—
शीश हिला कर दुनिया बोली,
पृथ्वी पर हो चुका बहुत यह,
इतने मत उन्मत्त बनो ।

(बच्चन अभिनव सोपान, पृ १५७)

मद : का परिणाम

धन के मद में दृष्टि न रहती, सुख के मद में ध्यान।
कुल के मद में दया न रहती, जन के मद में कान ॥
यौवन मद में भावी चिन्ता, छवि के मद में ज्ञान।
विद्या मद में विनय, शक्ति के मद में पर सम्मान ॥

(अतुलकृष्ण गोस्वामी : नारी, पृ. २२४)

मद्य

१. टूटि जात पाँय छर्दि आवति है ताय भूख
लगति न जाइ वुरी आवति नियति में ।
सुकवि गुपाल दोष सहस उदोत होत
लगत शराप पाप हाथन छियत में ॥
लाज और धरम धन-विद्या शौच भूलि जात
अति दुरगति होति मरत जियत में ।
जाति सुधिबुधि गिरि परै लदपद सदा
होत उनमद बहुमद के पियत में ॥

(गुपाल राय : दंपति वाक्यविलास, पृ. १५)

२. मद्य करै मति भृष्टि, मद्य लक्ष्मी निरवारै।
मद्य दिखावै दु:ख, महा अपयश विस्तारै ॥
मद्य पुण्य को शत्रु, मद्य अकुली जन पीवत ।
मद्य सौचता हरे, मद्य कुलवान न छीवत ॥
मनरंग कहैं लखि दोष दुख, जे दर्शन प्रतिमा धनी।
नहिं जात पास ताके कदा, 'धनि ते धनिते' यों भनी ॥

(मनरंगलाल : सप्तव्यसनचरित, पृ. ३७)

मधु और विष

जो मधु दीन्हें ते मरे, माहुर देउ न ताउ।
जग जिति हारे परसुधर, हारि जिते रघुराउ ॥

(तुलसी सतसई, पृ. २६६)

मधु :—मक्खी

कठिन परिश्रम कर सारा दिन करती है वह मधु एकत्र ;
पर हम नीच उसे लाते है, चुरा तोड़ कर मधु का छत्र ।
एक ओर वह मजदूरों-सी मिहनत करती है अविराम ;
और दूसरी ओर लोग हैं, करते उसका काम तमाम ॥

(आरसी प्रसाद सिंह : आरसी, पृ. ३४३)

मधु —शाला

समझ रहे मधु-सागर जिसको, है 'सागर' मादक प्याला ।
चंद दिनों में चौपट करती, सत्यानाशी मधुशाला ॥
(घटशाला पृ १६)

मधुर भाषण हानि

सचिव वैद्य गुरु तीनि जो, प्रिय बोलहिं भय आसु ।
राज धर्म तनु तीन कर, होइ बेगि ही नासु ॥
(तुलसी साहित्य रत्नाकर, पृ ३११)

मन और प्रेम

ऊधो मन माने की बात ।
दाख छुहारा छाडि अमृत फल, विष कीरा विष खात ।
ज्यों पतंग हित जानि आपनो दीपक सों लपटात ॥
'सूरदास' जाको मन जासों सोइ ताहि सुहात ॥
(सूरसागर, पृ १५१८)

मन का उल्लास

मानस का उल्लास मुखर कब हो पाएगा ?
जब कि उसे हर पग पर सुखदुख उलझाएगा ।
(बुद्धमल्ल आवर्त, पृ १६)

मन का निग्रह

१ मनुवा चंचल ढाप, बरजे अहथिर ना रहै ।
पाल पटोरे साप, 'मुहमद' तेहि विधि राखिए ॥
(जायसी ग्रन्थावली, पृ ३२९)

२ बडा भया तो कहा बरस सौ आठ का ।
घणा पढ्या तो कहा चतुर्विध पाठ का ॥
छापा तिलक बनाय कमंडल काठ का ।
हरिहा 'वाजिन्द' एक न आया हाथ पंसेरी आठ का ॥
(स मंगलदास पंचामृत, पृ ९९)

३ कहा मुँडाये मूँड बसे कहा मट्ठ का ।
कहा नहाये गंग नदी के लट्ठ का ॥
कहा कथा के सुने बचन के पट्ठ का ।
जो बस नाहिं तोहि पसेरी अट्ठ का ॥
(भैया भगवतीदास ब्रह्मविलास, पृ २६४)

मन : का बल

होगा अरि का नाश, प्रदीपित होंगे अपने तारे,
वनते विगड़े काम मनोवल से, न रहो मन मारे।

(राम खेलावन वर्मा : चंद्रगुप्त मौर्य, पृ. १४८)

मन : की कैद

अजव मुसीवत ! पहले तो रोटी को जन विललाता है,
और रोटियाँ मिली अगर तो मन कैदी हो जाता है।

(दिनकर : चक्रवाल, पृ. ३६८)

मन : की गतिविधि

मन जव निश्चित सा कर लेता
कोई मत है अपना;
वुद्धि दैव-वल प्रमाण का
सतत निरखता सपना।

(प्रसाद : कामायनी, पृ. ११०)

मन : की चंचलता

१. यही कदीमी हाल है, मन का सुन रे मीत।
क्षण में वर्तें नीति में, क्षण में हो विपरीत॥
क्षण में हो विपरीत, क्षणक में चहे दूशाला।
क्षण में ओढ़्यो कँवल, चाहै क्षण में मृगछाला॥
कह गिरिधर कविराय, क्षणक में वन है गेही।
क्षण विरक्त विपरीत ख्याल मनके हैं ये ही॥

(गिरिधिर : कुंडलिया, पृ. १२८)

२. थिर न छिनहु घन-आकृति जैसे। प्रति-पल अन्य मनुज-मन तैसे।

(द्वा. प्र. मि. : कृष्णायन, पृ. १३१)

मन :—की भूख

भूख है तन की तनक सी, मन की भूख महान।
जगत विभ (ौ) सों न मिटै, मिटै न अमृतपान॥

(मानिकदास : संतोष सुरतरु, पृ. २१)

मन :—की व्यथा

'रहिमन' निज मन की विथा, मन ही राखो गोय।
सुनि अठिलैहैं लोग सव, वांटि न लैहै कोय॥

(रहिमन विलास, पृ. २१)

मन - पर विजय

जो मन पूरो जीति हो, भीति न साँझ सवेर ।
नेक न नीचो करि सकें, मिलि षालिस हू सेर ।।

(किशोरीदास वाजपेयी तरंगिणी, पृ १०)

मन बड़ा मौजी

बड़ा मौजी है मानव-मन ।
रंग बदलता ही रहता है तरल तरंगित सोयधि वन ।।
है कुबेर का कान काटता कभी धराधिप बनता है ।
कभी विहँसता है वह, आँसू कभी आँख से छनता है ।।
कभी रीझता कभी खीजता पुलकित कभी जनाता है ।
कभी गिराता है वह ओले सुधा कभी बरसाता है ।।
कभी मधुर से-मधुर कभी बहु कटु बातें वह कहता है ।
कभी प्रेम धारा-प्रवाह में बड़े वेग से बहता है ।।
है तारे तोड़ता गगन के दिवि को आग दिखाता है ।
कभी नाक-नायक को भी वह चिढ़ चिढ़ घना चिढ़ाता है ।।

(हरिऔध मर्मस्पर्श, पृ १३३)

मन मग्न

म
१ कोटि-कोटि "मनिराम' कहि जतन करौ सब कोइ ।
फाटे मन अरु दूध में, नेह न कबहू होइ ।।

(सतसई सप्तक, पृ १२२)

२ वर्ग का

इनके मन में अजब कुहासा
जिस में मिश्रित-मीलित, स्पष्ट नहीं कोई भी मारग,
जग में इन का नहीं भरोसा
ये सभी लोग, ये भी चलते उस दिशि में डगमग ।

(प्रभाकर माचवे अनुक्षण पृ ५७)

३. व
का
कह
जो आतमाराम-मन, नहि भय-भोगन जाल ।
-प्रसिक्त वन, दहति न जिमि दव ज्वाल ।।

(डा प्र मि कृष्णायन, पृ ७९९)

मन : शुद्ध

कह 'गिरिधर कविराय', शुद्ध जिनका मन चंगा।
भोगत ब्रह्मानन्द कठौती तिन की गंगा।
(कुंडलिया, पद्य २७९)

मनमुखी

परसा जो नर मन मुखी, चाले स्वान सुभाइ।
सिंहासन बैठाइये, चाकी-चाट न जाइ।।
(परशुराम सागर पृ. २२)

मनुष्य (दे. मानव भी)

१. देव सदा देव तथा दनुज दनुज हैं,
जा सकते किन्तु दोनों ओर ही मनुज हैं।
(मै. श. गु. : नहुष, पृ. ११)

२. यह मनुष्य आकार चेतना का है विकसित,
एक विश्व अपने आवरणों में है निर्मित।
(प्रसाद : कामायनी, पृ. १६)

मनुष्य : अभिनव

यह प्रगति निस्सीम ! नर का यह अपूर्व विकास।
चरण-तल भूगोल ! मुट्ठी में निखिल आकाश।
किन्तु है बढता गया मस्तिष्क ही निःशेष,
छूट कर पीछे गया है रह हृदय का देश।
(दिनकर : चक्रवाल, पृ. २०५)

मनुष्य : आलसी

कुछ न करूँ मैं और कोई सब कर दे,
लाके इष्ट वस्तु मेरे आगे बस धर दे।
ऐसा क्लीव कापुरुष सब का सहेगा शाप,
भोग क्या करेगा जो न अर्जन करेगा आप ?
(मै. श. गु. : नहुष पृ. २०)

मनुष्य : एक गेंद

पति कोऊ कहै पित कोऊ कहै सुत कोऊ कहै तिहूँ ताप तयौ हों।
प्रभु कोऊ कहै जन कोऊ कहै सु कहो तुम ही तुम काहि दयो हों।
'ब्रह्म' भनै जित ही कित ही तित ही तित हाथ की गेंद भयो हों।
पालौ तिहारो कियो तुम ही इन बीच के लोगन बांटि लियो हों।।—बीरबल
(अकबरी, दरबार···पृ. ३५७)

मनुष्य और ईश्वर

व्यक्ति रहे ईश्वर के संग नित,
वही साध्य भू-जीवन साधन,
उससे युक्त जगत सत्, सुखमय,
उससे विरत मृषा, दावा वन ।

(सु न प वाणी, पृ १७६)

मनुष्य कठपुतली

तेरी है कछु गति नहीं, दारु चीर को मेल ।
करै कपट पट ओट मे, वह नट सब ही खेल ।।

(दी द गि ग्रं पृ २३८)

मनुष्य का विकास

उभय जीवन मुद्रा के पक्ष,—
वस्तुगत—अन्न, वस्त्र, आवास,
स्वच्छता, सुंदरता पावित्र्य
मूल्यगत सुख—श्रद्धा विश्वास ।
समन्वित कर दोनों ही रूप
मनुज का संभव पूर्ण विकास,
वस्तु सुख ईश्वर का बहिरंग
भाव सुख भगवत् हृदय प्रकाश ।
उभय मे अंतर्मुख ही श्रेष्ठ
हृदय का करता जो संस्कार,
बिना संस्कृत मन के भूभोग,
जगत म मूर्त नरक का द्वार ।

(सु न प लोकायतन, पृ २६१)

मनुष्य —का श्रेय

श्रेय होगा सुष्ठु विकसित मनुज का वह काल,
जब नहीं होगी धरा नर के रुधिर से लाल ।
श्रय होगा धर्म का आलोक वह निर्बन्ध,
मनुज जोडेगा मनुज से जब उचित सम्बन्ध ।

(दिनकर चक्रवाल, पृ २११)

मनुष्य की एकता

सत्यों मे हो मनुज सत्य विजयी, जयी शक्तियों मे हो अन्तर्बल,
संकल्पों मे जन भू रचना व्रत, मनु संकट मे मनुज ऐक्य सबल ।

(न प लोकायतन पृ २५०)

मनुष्य :—के सहज शत्रु

सहज शत्रु हैं मनुज के, चिरनिद्रा तनरोग।
ऋण लालच सन्ताप छल, क्रोध मदादिक भोग।।

(शिवदुलारे त्रिपाठी 'नूतन')

मनुष्य : गौरववान्

वपुष वस्त्र वाणी अमल, विद्या विभव महान।
पँच वकार से युक्त यदि, तो नर गौरववान।।

—रसिकेश

मनुष्य : त्रिविध

१. संसार महँ पूरुष पुत्रिविध, पाटल रसाल पनस समा।
एक सुमन प्रद, एक सुमन फल, एक फलइ केवल लागहीं।।
एक कहहिं, कहहिं करहिं अपर, एक करहिं कहत न वागहिं।

(रा. च. मा. गु. पृ. ५६३)

२. इक वाहर इक भीतरैं, इक मृद दुह दिसि पूर।
सोहत नर जग त्रिविधि ज्यों, वेर वदाम अँगूर।।

(दी. द. गि. ग्रं. पृ. ८५)

मनुष्य : पवित्र

वरसा कर प्रेम-सुधा-रस को, मजहव का जहर मिटाता है।
सम भाव सिखा सव जनता को, देशों के भेद भगाता है।।
जो दीन-हीन के दुःखों पै, निज करुणा स्रोत वहाता है।
इस विश्व-चराचर रचना में, वह मनुज पुनीत कहाता है।।

(सत्यदेव परिव्राजक : अनुभव, पृ. ५)

मनुष्य : हन्तव्य

पूत कपूत कुलच्छनि नारी, लराक परोस लजाय न सारो।
वन्धु कुवुद्धि पुरोहित लम्पट, चाकर चोर अतीय धुतारो।।
साहव सूम अराक तुरंग, किसान कठोर दिवान नकारो।
'व्रह्म' भनै सुनु साह अकव्वर, वारहो वांधि समुद्र में डारो।।—बीरवल

(अकवरी दरवार...पृ. ३५६)

मनुष्यत्व

२. मैं मनुष्यता को सुरत्व की जननी भी कह सकता हूँ।
किन्तु पतित को पशु कहना भी कभी नहीं सह सकता हूँ।।

(मैं. श. गु. : पंचवटी, पद्य १५)

२ होड ईश्वर से लगाई, मनुज भी बनना न सीखा !
विश्व को वामन-पगों से नापने की कामना है !

(नरेन्द्र अग्निशस्य, पृ १३)

मनुष्यत्व की सर्वश्रेष्ठता

१ हम स्वदेश पर प्यार करें तो गर्व धरा पर।
देश अतल सर्व, सर्व है विश्व चराचर।।
जो मनुष्य बन सके आर्य वह बना बनाया।
मनुष्यत्व से श्रेष्ठ और क्या किसने पाया।।

(मै श गु राजा प्रजा, पृ ४८)

२ हिन्दू हो या मुसलमान हो, नीच रहेगा फिर भी नीच।
मनुष्यत्व सब के ऊपर है, मान्य महीमण्डल के बीच।।

(मै श गु गुरुकुल, उपोद्घात, पृ ३१)

मर्यादा—रक्षा

मर्यादा ही मे सब अच्छे,
पानी हो वह या कि हवा हो।
इधर मृत्यु है, उधर मृत्यु है,
मध्य मार्ग का यदि न पता हो।।

(बलदेवप्रसाद मिश्र साकेत-सन्त, पृ १५९)

मस्तक और हृदय

ऊँचे रहे स्वर्ग, नीचे भूमि को क्या टोटा है ?
मस्तक से हृदय कभी क्या कुछ छोटा है ?

(मै श गु नहुष, पृ १५)

महत्वाकांक्षा

पुरुषहि चाहिए ऊँच हियाऊ। दिन दिन ऊँचे राखै पाऊ।।
सदा ऊँच पैसेइय बारा। ऊँचे सौं कीजिये बेवहारा।।
ऊँचे चढ़ै, ऊँच खड सूझा। ऊँचे पास ऊँच मति बूझा।।
ऊँचे सग सगति निति कीजै। ऊँचे काज जीउ पुनि दीजै।।
दिन दिन ऊँच होइ सो, जेहि ऊँचे पर चाउ।
ऊँचे चढ़त जो खसि परै, ऊँच न छाडिय काउ।।

(जायसी ग्रन्थावली, पृ ६९)

महाजन

१. कहते नहीं महज्जन पहले करके ही दिखलाते हैं,
कार्य-सिद्ध करने से पहले बातें नहीं बनाते हैं।

(मै. श. गु : जयभारत पृ. २७१)

२. महाजनों को कभी न ओछे भेद-भाव ये भाते,
जाति-धर्म के पाश बाँध कर उन्हें नहीं रख पाते।

(रामखेलावन : चन्द्रगुप्त मौर्य, पृ. १५६)

महाजन : क्रोध-रहित

कोप न करैं महान हिय, पाय खलन ते दूष।
लौन सींचि कर पीडिए, तऊ मधुर रस ऊष ॥

(दी. दा. ग्र. पृ. ७७)

महा पापी

जीव के वधैया वामविद्या के सधैया, दावा-
नल के दधैया वन आखेटक करमी।
जुआरी लवार परधन के हरनहार,
चोरी के करनहार दारी के अशरमी ॥
मांस के भखैया सुरापान के चखैया,
परवधू के लखैया जिनके हिये न नरमी।
रोष के गहैया पर-दोष के कहैया येते,
पापी नर नीच निरदै महा अधरमी ॥

(बनारसी विलास, प्रास्ताविक फुटकर कवित्त, पृ. १९७

महापुरुष

जैसे तारे टूट, भस्म हो उज्ज्वल जग कर जाते,
वैसे महापुरु खुद तप कर राष्ट्र सजग कर पाते।

(श्रीमन् नारायण : रजनी में प्रभात का अंकुर पृ. १२३

महापुरुष : लक्षण

वे नर पुंगम हैं महा, वही शाह सिरताज।
जो निज विमल चरित्र से, उन्नत करें समाज ॥
उन्नत करें समाज यथा चंदन करता है।
चहुँ दिशि चारु सुगन्ध वृक्षगण में भरता है ॥

कहे देव उत्थान, हो जिनके सतसंग से।
जो भरदें समभाव, महापुरुष है सत्य वे॥
(सत्यदेव परिव्राजक अनुभव, पृ २२)

मगना अनिवार्य

कन्यादान लेत सब छत्रपति छत्रधारी,
हयदान गजदान भूमिदान भारी है।
राजा मांगे रावन पै राव मांगे खानन पै,
खान सुलतानन पै भिच्छु छाक डारी है॥
भिच्छा ही के काजै कवि 'गग' कहै ठाडे द्वार,
बलि से नृपति तहां बावन बिहारी है।
सपदा के काजै कहो को ने नही ओड्यो हाथ,
जहां जैसो दान तहा तैसो ही भिखारी है।
(अकबरी दरबार पृ ४४३)

मागना सब से बुरा

बुरो प्रीति को पथ, बुरो जगल को वासो,
बुरो नारि को नेह, बुरो मूरख सो हांसो।
बुरो सूम की सेव, बुरो भगनो घर भाई,
बुरी नारी कुलच्छ, सास घर बुरो जमाई॥
बुरो पेट चडाल है, बुरो सूर को भागनो।
गग कहै, अकबर सुनो, सब से बुरो है मांगनो॥
(अकबरी दरबार पृ ४३५)

मास-भक्षण

१ अवधू मास भषत दया धरम का नास। मद पीवत तहां प्राण निरास।
भांगि भषत ग्यान ध्यान पोवन। जम दरबारी ते प्राणी रोवत॥
(गोरखबानी, पृ ५६)

२ खुस खाना है खीचरी, मांहि परा टूक नोन।
मांस पराया खाय कर, गरा कटावे कौन॥
(कबीरवचनावली, पृ १४८)

३ पुनि बाम्हन जिनवा जिरिहारू। करि परिन्ह कहें मसा न माहू।
निठुर होई जिउ वधसि परावा। हत्या केर न तोहि डर आवा॥
कहसि पंखि का दोस जनावा। निठुर तेइ जे परमस खावा।
आवहि रोइ जात पुनि राना। तबहु न तजहि भोग सुख सोना॥

औ जानहिं तन होइहि नासू । पोखैं माँसु पराये माँसू ॥
जो न होहिं अस परमंस-खाघू । कित पंखन्हि कहँ धरै वियाधू ।
जो व्याधा नित पंखन्हि धरई । सो बेचत मन लोभ न करई ॥
(जायसी ग्रंथावली, पृ. ३१)

४. खाय न मारे जीव को, तजै हराम हलाल ।
'परसा' दोजख परहरे, व्हिश्ति मिले दर हाल ॥
खायो जो मुरदार कर, सो हलाल क्यों होय ।
'परसा' कर्म हराम कर, गये वहिश्तहिं खोय ॥
(परसुराम सागर, पृ. ११९)

५. आपण मारे हक कहे, करता हती हराम ।
'परसा' स्वारथि जीभ के, बूड़ि मुए वेकाम ॥
करतें करदी डारि दे, सबदां करे हलाल ।
'परसा' दरगह दीन की, व्हिश्ति लहै दर हाल ॥
(परसुराम सागर, पृ. १५६-७)

मांस-भक्षण : बकरे की पुकार

साहिव के दरबार पुकार्या बाकरा,
काजी लीयाँ जाय कमर सों पाकरा ।
मेरा लीया सीस उसी का लीजिये,
हरि हाँ 'वाजिन्द', राव रंक का न्याव बराबर कीजिये ।
(सं. मंगलदास : पंचामृत, पृ. १५)

मांसाहारी को हंटर

रे मांस-भोज-रत ! निर्दयता-अगार !
रे ज्ञान-शून्य नर ! सभ्य-समाज-भार !
सुस्वच्छ शीघ्र करिकै निज दोउ कान,
हौं जो कहौं कछु अरे ! सुनु सावधान ॥१॥
अत्यन्त मिष्ठ अमृतोपम दुग्धधारा,
देवै जो पुष्टि नित सेवन सों अपारा ।
सन्तुष्ट देवगण जा बिनु होत नाहीं,
न प्राप्त सो कह अरे ! यहि देश माहीं ? २ ॥
पीयूप-दर्प-हर वर्फ-सम-स्वरूप,
हा हा ! कहा नसि गयो दधिहू अनूप ?
माधुर्य-मूर्ति कह मंजुलहू मलाई ;

वीभत्स भक्ष्य तव देखि कहूँ सिधाई ॥ ३ ॥
रे रे अजान ! रसना रत ! बोलु बोलु,
मौनावलम्ब क्त ? रे ! मुख खोलु खोलु।
मिष्ठान्नहू न यह एकहु तोहि भावै ?
स्वादिष्ठ मूल-फलहू न कहा सुहावै ? ४ ॥
आरक्त रक्त ऐहि माहि मुयो घनेरो,
मज्जा प्रपुंज सन जो सब ओर घेरो ।
जा मे भरो अति अपावन अस्थि-जाल,
तू सोई मास गटकै नित लाल लाल ॥ ५ ॥
सर्वप्रकार निरुपद्रव-कार दीन,
वाणी विहीन बलहीन सहाय-हीन ।
ऐसे अनेक बकरे बलिदान होवै,
तेरेहि हेत अपने प्रिय प्राण खोवै ॥ ६ ॥
माता-समान पय-पान सदा करावै,
बेरी पलाश अरु आक जवास खावै ।
सोई अजा भखत तोहि न लाज आई,
हा हन्त ! हा ! इतिक घोर कृतघ्नताई ॥ ७ ॥
नाई जु भूलि नख जीवित काट देवै,
तू आर्तनाद करिकै कर खैंचि लेवै ।
तो कंठ काटि पशु-मारन मे कितेक,
होवै व्यथा शठ ! हिय महँ सोचु नेक ॥ ८ ॥
रे आत्मदाश ! यह निन्दित मासु त्यागु,
हत्यादि पाप सब पमर ! भागु भागु ।
घी दूध अन्न यदि है तन पुष्टि कारी,
ता मास खाय केन लूटत पाप भारी ॥

(म प्र द्वि द्वि का मा, पृ २७८-२८१)

माता

दूसरे मोड मुँह भले ही लें, मा किसी की कभी न मुँह मोडे ।
रग बदले तमाम दुनिया का, देवतापन न देवता छोडे ॥

(हरिऔध चुभते चौपदे, पृ १४६)

२ है जग-जीवन की जननी तू तेरा जीवन ही है त्याग ।
है अमूल्य वैभव वसुधा का तेरा मूर्तिमान अनुराग ॥

मानवता है मूर्तिमती तू भव्य-भाव-भूषण-भण्डार ।
दया क्षमा ममता की आकर विश्वप्रेम की है आधार ।।
(गो. श. सिं. : मानवी, पृ. ५०, ५२)

माता और पुत्र

१. नारी की पूर्णता पुत्र को स्वानुरूप करने में ;
करते हैं साकार पुत्र ही माता के सपने को ।
(दिनकर की सूक्तियाँ, पृ. ७३)

२. किसने अपने स्तन से मुझ को सुमधुर दूध पिलाया था ?
लेकर गोद प्रेम से थपकी दे दे मुझे सुलाया था ?
चूम-चूम कर किसने मेरे गालों को गरमाया था ?
मेरी मैया ! मेरी मैया !

बिलख बिलख कर रोता था जब नीद न मुझको आती थी ।
आरी निंदिया ! आरी निंदिया ! कह कर कौन सुलाती थी ?
और प्यार से पलने मे रख मुझको कौन झुलाती थी ?
मेरी मैया ! मेरी मैया !

व्यथित और बीमार देखकर मुझे कौन अकुलाती थी ?
बैठी-बैठी मेरे मुख पर आँखे कौन गड़ाती थी ?
औ मेरे मने के डर से आँसू विपुल बहाती थी ?
मेरी मैया ! मेरी मैया !

कमर जायेगी जब झुक तेरी और बाल पक जावेगा ।
मेरा भुज लंबा बलशाली तेरी टेक कहावेगा ।
और बुढ़ापे का दुख तेरा क्षण भर में बिनसावेगा ।
मेरी मैया ! मेरी मैया !

जब तेरा शिर शय्या ऊपर पड़े पड़े झुक जावेगा ।
तब इस सेवक की आवेगी बारी, तुझे उठावेगा ।
और उस समय प्रबल प्रेम से उमँगे अश्रु बहावेगा ।
मेरी मैया ! मेरी मैया !
(जैनेन्द्रकिशोर)

माता का वात्सल्य

माता का वात्सल्य धन्य है, धन्य-धन्य उसकी उदारता।
सब कुछ हो पर मां न रहे तो जीवन में सारी असारता ।।
(परमेश्वर द्विरेफ : युगस्रष्टा प्रेमचंद, पृ. ३१)

२ मा के मधु वात्सल्य स्नेह से दिनकर-सा जीवन हँसता है।
जननी के अभाव मे जीवन को नित काल-राहु ग्रसता है॥
(वही पृ ३३)

माता का हृदय,

मणि सा अमल, धवल मुक्ता सा, हिम सा शीतल।
तरल ओस सा, घन सा सरल, कुरल सा निश्छल॥
सान्ध्य राग रंजित सुरसरि धारा सा झिलमिल।
माँ का हृदय मृदुल माखन सा पय सा फेनिल॥
(अतुल कृष्ण गोस्वामी नारी, पृ २१)

माता के चरण

स्वर्ण तरणि माँ चरण तरण को भव वरुणालय।
निज अक्षय मणि दीप तिमिर जिससे मन का क्षय॥
कोटि वर्ग-अपवर्ग मातृपद पर न्योछावर।
जननी ही निज तीर्थ प्रकट जिससे तीर्थंकर॥
(अतुलकृष्ण गोस्वामी नारी पृ ३०)

माता धन्य

पुत्रवती जुवती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुतु होई॥
नतरु बाँझ भलि बादि बियानी। राम बिमुख सुत तें हित हानी॥
(रा च मा ग्र पृ २७५)

माता पिता से बडी

जौं केवल पितु आयसु ताता। तो जनि जाहु जानि बडी माता॥
जौं पितु मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना॥
(रा च मा ग्र पृ २६५)

माता महापुरुष जननी

शुभे! सदा शिशु के स्वरूप मे ईश्वर ही आते हैं।
महापुरुष की ही जननी प्रत्येक जननि होती है।
(दिनकर की सूक्तियाँ, पृ ६०)

माता सौतेली का सम्मान

प्रथम राम भेंटी कैकेई। सरल सुभाय भगति मति भेई।
पग परि कीन्ह प्रबोध बहोरी। काल करम बिधि सिर धरि खोरी॥
(रा च मा ग्र पृ ३६१)

२. प्रभु जानी कैकई लजानी। प्रथम तासु गृह, गये भवानी ॥
ताहि प्रबोधि बहुत सुख दीन्हा। पुनि निज भवन गमन हरि कीन्हा ॥

(रा. च. मा. गु. पृ. ५९९)

माता-पिता

मात पिता दाया की छाहें, पाएउ सुख नित मया निबाहें ॥
जौ पितु मातु मया जस गाऊँ, हारे रसना अन्त न पाऊँ ॥
जहाँ रहौ तहँ सिमरौ नाऊँ, आयसु मेटि कहाँ मैं जाऊँ ॥
मात पिता पग रेनु, देइ दृग जोति।
दोऊ मन के रूठें, मुकति न होति ॥

(नूरमुहम्मद : अनुराग बाँसुरी, पृ. ३६)

माता पिता : का महत्व

सुत पाता है पूत पद, पाप पुंज को भूँज।
माता पद-पंकज परस, पिता कमल-पद पूज ॥
मिला न खोजे भी कहीं, सकल खोजा जहान।
माता सी ममतामयी, पाता पिता समान ॥

(हरिऔध सतसई, पृ. ११, १२)

माता पिता : की सेवा

१. मात-पिता सँग करहु भलाई, करता की आज्ञा अस आई ॥
जो अपने आगे बिर्धाहीं, उन्हें बात उह भाखौ नाहीं ॥
और न कीजै उन्हें निरासू, उन नित माँगु सरग सुख बासू ।।—नूरमुहम्मद

(जायसी के परवर्ती, पृ. ४८१)

२. हाथ पकड़ कर प्रथम जिन्होंने चलना तुम्हें सिखाया।
भाषा सिखा हृदय का अद्भुत रूप स्वरूप दिखाया ॥
जिनकी कठिन कमाई का फल खा कर बड़े हुए हो।
दीर्घ देह ले बाधाओं में निर्भय खड़े हुए हो।
जिनके पैदा किये बुने वस्त्रों से देह ढँके हो ॥
आतप-वर्षा-शीतकाल में पीड़ित हो न सके हो ॥
क्या उनका उपकार-भार तुम पर लव-लेश नहीं है ?
उनके प्रति कर्तव्य तुम्हारा क्या कुछ शेष नहीं है ?

(रा. न. त्रि. : पथिक, पृ. २९)

माता पिता नरदेवता

नृदेव ही हैं जननी तथा पिता, न पुत्र चूके निज धर्म में कभी,
उपासना से उनकी मनुष्य को, अवश्य निःश्रेयस-प्राप्ति शक्य है।
(अनूप शर्मा सिद्धार्थ, पृ २७९)

मातृभूमि

१ जिसकी रज मे लोट-लोट कर बडे हुए हैं,
घुटनो के बल सरक सरक कर खडे हुए हैं।
परम हंस सम बाल्यकाल मे सब सुख पाये,
जिसके कारण 'धूल भरे हीरे,' कहलाये।
हम खेले कूदे हर्ष-युत, जिसकी प्यारी गोद मे,
हे मातृ भूमि तुझको निरख, मग्न क्यों न हो मोद मे।
जिस पृथिवी मे मिले हमारे पूर्वज प्यारे,
उस से हे भगवान कभी हम रहें न न्यारे।
लोट-लोट कर वही हृदय को शान्त करेंगे,
उस मे मिलते समय मृत्यु से नहीं डरेंगे।

उस मातृभूमि की धूल मे जब पूरे सन जायेंगे,
होकर भव बन्धन-मुक्त हम आत्मरूप बन जायेंगे।
(मै श गु)

२ जैन, बौद्ध, पारसी, यहूदी, मुसलमान, सिख, ईसाई,
कोटि कंठ से मिलकर कह दो—"हम सब हैं भाई-भाई।
पुण्य भूमि है, स्वर्ग भूमि है, जन्म भूमि है देश यही,
इस से बढ़ कर या ऐसी ही दुनिया भर मे जगह नहीं।
(रूपनारायन पांडेय पराग, पृ २५)

३ माता केवल बाल काल में निज अंकम मे धरती है।
हम अशक्त जब तलक तभी तक, पालन पोषण करती है॥
मातृ-भूमि करती है मेरा लालन सदा मृत्यु पर्यन्त।
जिसके दया प्रवाहों का नहि होता सपने में भी अन्त॥
मर जाने पर कण देहो के, इसमे ही मिल जाते हैं।
हिन्दू जलते, यवन ईसाई, दफन इसी मे पाते हैं॥
ऐसी मातृ-भूमि मेरी है, स्वर्ग लोक से भी प्यारी।
जिसके पद कमलो पर मेरा तन मन धन सब बलिहारी॥
(मन्नन द्विवेदी)

४. सदैव स्वर्गादपि जो गरीयसी, त्रिलोक की संपति से महीयसी,
वरिष्ठ है आदर जन्मधाम का, गरिष्ठ है गौरव मातृ-भूमि का।

(अनूपशर्मा : सिद्धार्थ, पृ. २७९)

मातृ-भूमि : का ऋण

मृत्यु होते ही स्वजननी फेंकती है गोद से;
तो हमें हा जन्म-धरती चूमती है मोद से।
जो हमारी अस्थि को भी फेंक सकती है नहीं;
स्वप्न में भी हम उऋण उस से कभी होंगे नहीं।

(रा. च. उ. : राष्ट्र भारती, पृ. २०)

मातृ-शिक्षा : पुत्र को

चूर-चूर व्है अन्त लौ, रखियौ कुल की लाज।
जननि-दूध-पितु-खड्ग की, अहै परिच्छा आज ॥

(वियोगी हरि : वीर सतसई, पृ. २९)

मान

१. अधम न करि मान मान किय होहि हानि,
मानि मेरी सीष मांनि सुखग्राही मांनि रे।
मान तैं रावण राजि लंका सौ गयो बैकाज
कियौ है अकाज लाज गई सब आनि रे।
दुर्योधन मान करि हारी सब धर अरि
मान तैं गयो है मुंज चातुरी री षानि रे।
कहै 'जिन हर्ष' मान, मन में न आणि मान
आणितो दशानभद्र जैसे मान आणि रे।

(जसरास : उपदेश बत्तीसी, पद्य ८)

२. मान सहित विष खाय के, संभु भये जगदीस।
बिना मान अमृत पिये, राहु कटायो सीस ॥

(रहिमन विलास, पृ. १६)

३. यद्यपि अवनि अनेक है, कूपवंत सरि ताल।
'रहिमन' मान सरोवरहि, मनसा करत मराल ॥

(रहिमन विलास पृ. १६)

मानव : का सौन्दर्य

सुन्दर हैं विहग, सुमन सुन्दर,
मानव ! तुम सब से सुन्दरतम,
निर्मित सब की तिल—सुषमा से,
तुम निखिल सृष्टि में चिर—निरुपम !
यौवन—ज्वाला से वेष्टित तन,
मृदु त्वच, सौन्दर्य प्ररोह अंग,
न्योछावर जिन पर निखिल प्रकृति,
छाया प्रकाश के रूप रंग !

(सु. न. पं. : आ. क., पृ. ६९)

मानव : की आत्मा

जग के भाग्य-विधाता बन कर, निर्मित कर दो नव-भगवान ।
धन्य धन्य मानव की आत्मा, मंगल, मंजुल, मृदुल, महान ।।

(श्रीमन् नारायण : रजनी में प्रभात का अंकुर, पृ. ३३)

मानव : की एकता

१. रंग के रूप के देश के रक्त के, भेद हों दूर इन्सान इक राह हो ।
तुम सभी के लिए, हम तुम्हारे लिए, बाँह में बाँह डाले जियें चाह हो ।

(उ. शं. भ. : कणिका, पृ. ४७)

२. स्वर्ग नरक, इह पर लोकों में,
व्यर्थ भटकते धर्म मूढ़ जन,
ईश्वर से इन्द्रिय जीवन तक
एक संचरण रे भू पावन !
जन भू पर निर्मित करना नव
जीवन बहिरन्तर संयोजित,
एक मनुज हो एक धरा हो,—
यही भागवत जीवन निश्चित !

(सु. नं. पं. : वाणी, पृ. १७६)

३. मनुज एकता ही नव युग आत्मा, महत् धरा जीवन में हो स्थापित,
जाति धर्म वर्गों से कढ़ भू मन, लाँघ राष्ट्र-सीमा—हो
दिग् विस्तृत !

(सु. नं. पं. : लोकायतन, पृ. ५७५)

४ राष्ट्र-भेदों मे धरा विदीर्ण, मनुज जग को होना अब एक,
बहिर्मुख खोए मन मे नव्य चेतना का कर सित अभिषेक।

(सु न प सोवायतन, पृ ४१०)

५ न रक्त मे वर्ण-विभेद है, सखे,
न अश्रु होते बहु जाति-पाँति के,
समस्त भू-मडल मे विलोक तू
समान-सू मानव जाति एक है।

(अनूप शर्मा सिद्धार्थ, पृ. २०८)

मानव स्तुति

नजर तुम्हारी जाली है,
सिक्का तो टकसाली है।
इस सिक्के को गढा प्रकृति ने निज धरती की माटी मे,
इस सिक्के को गढा पुरुष ने अपनी ही परिपाटी से,
इस सिक्के पर अक पडे हैं स्वय नियति के हाथो से,
यह सिक्का तो चलता आया जनम-मरन की घाटी से।
इसे बजाओ, यह गाता है गीत खुशी के, मातम के,
इस सिक्के में ऐब देखना केवल खाम खयाली है,
सिक्का तो टकसाली है।

(स अमृतलाल नागर भगवती चरण वर्मा, पृ ४०)

मानव को नमस्कार

हो चाहे नामी नेता या पडित सन्त कहाओ,
यह माथा तो तभी झुकेगा, मानव बन जब आओ।

(श्रीमन् नारायण रजनी में प्रभात का अकुर, पृ ११४)

मानव गगा-पावन

पर-दारा पर-द्रव्य से, पर-द्रोह से दूर।
गगा इच्छुक, सुजन मम मैल करे काफूर॥

(रसिकेश)

मानव : गुण-दोष-युक्त

सब जिसकी निन्दा करते हैं, उसमे भी कुछ गुण हैं।
सब सराहते जिसे, बडे उसमें भी कुछ दुर्गुण हैं।

(दिनकर नये सुभाषित, पृ २१)

मानव : धन्य

जो अँधेरे में पड़ा है ज्योति में लाना उसे :
जो भटकता फिर रहा है पंथ दिखलाना उसे ।।
फँस गया जो रोग में है पथ्य बतलाना उसे ।
सीखता ही जो नहीं कर प्यार सिखलाना उसे ।।
काम है उनका जिन्हे पा पूत होती है मही ।
इस विषम संसार पादप के सुधा फल है वही ।।
(हरिऔध : पद्य प्रसून पृ. ९५)

मानव : नवीन दृष्टिकोण

मानव गठरी नहीं राग की,
नहीं विकारों का अनुगामी;
काम, क्रोध, भय, लोभ, मोह, मद,
अचरज, वह इन सब का स्वामी ।
(बा. कृ. श. न. : हम विषपायी जनम के. पृ. १२६)

मानव : से प्रेम

कर्म वचन मन ही हो पूजन,
निखिल-सुकृत-फल भव को अर्पण,
मानव प्रति हो प्रीति अकारण
प्रभु अभिन्न, वक ध्यानी !
लोक-मुक्ति ही व्यक्ति-ध्येय हो,
आत्मोन्नति का स्वर्ग हेय हो,
प्रीति-ग्रथित जीवन अजेय हो,
हठ न करें शठ, मानी !
मानव एक, विविध मुख विम्बित,
धरती एक, दशों दिशि खंडित,
मनुज ऐक्य वैचित्र्य विनिर्मित,
जन न करें मन मानी !
(सु. नं. पं. : वाणी, पृ. ७४)

मानवता

१. मानव सदा मानव रहे !
उर प्रेम-पारावार हो,
मन उच्च और उदार हो,
मति दृढ़ तथा अविकार हो,

वह दुग्ध चाहे जो रहे।
रवि-तुल्य तेज निधान हो,
विश्वेश सम समान हो,
नरेश-सा बलवान हो,
तो भी न वह दानव रहे,
मानव सदा मानव रहे।

(डा गो श सि आधुनिक कवि, पृ ११४)

२ इंद्रिय विमुख मनुज आत्मा ज्यों
द्वार रहित मृत गृह तमसावृत,
आत्महीन मानवता त्यों ही
दानवता की प्रतिमा कुत्सित!
देश खंड में भू मानव का
परिचय देने का क्या क्षण यह?
मानवता में देश जाति हो
लीन, नए युग का सत्याग्रह!

(सु न प वाणी पृ १७१-२)

मानवता की विजय

शक्ति के विद्युत्कण, जो व्यस्त
विकल बिखरे हैं, हो निरुपाय।
समन्वय उसका करे समस्त
विजयिनी मानवता हो जाय।

(प्रसाद कामायनी, पृ ५९)

मानवता नवीन

१ मात्र मानवता रे अब देश, और सब देश प्रगति-पथ रोध,
निखिल संस्कृतियों का नवनीत, शुभ्र नव मनुष्यत्व का बोध।

(सु न प लोकायतन पृ ४०९)

२ जाति-योनि धर्मों में पथराई, क्षुद्र मनुजता को मिटना निश्चित,
रीति-नीतियों में खंडित भू को, नव मानवता में होना विकसित।

(सु न प लोकायतन, पृ ५५६)

मायका और सुसराल

१ उभै कुलदीप सिरोमनि जानकी लोक रु वेद की मेड न मेटी।
भरी सुख संपति औधपुरी रजधानि सबै लछना सो लपेटी।

करैं मिथिला चित 'सूरकिशोर' सनेह की वात न जात समेटी।
कोटिन सुख्ख जो होइ ससुरारि तो वाप को भौन न भूलति वेटी ॥
(सूरकिशोर : मिथिला विलास पृ. १९)

२. ए रानी ! मन देखु विचारी । एहि नैहर रहना दिन चारी ॥
जौ लगि अहै पिता कर राजू । खेलि लेहु जो खेलहु आजू ॥
पुनि सासुर हम गवनव काली । कित हम कित यह सरवरपाली ॥
सासु ननद बोलिन्ह जिउ लेही । दारुन ससुर न निसरै देहीं ॥
पिउ प्यारे सिर ऊपर, पुनि सो करै दहुँ काह ।
दहुँ सुख राखै की दुख, दहुँ कस जनम निवाह ।
(जायसी ग्रंथावली, पृ. २३)

माया

माया की झल जग जल्या, कनक कामिनी लागि ।
कहु धौ किहि विधि राखिये, रुई लपेटी आगि ॥
(कबीर ग्रन्थावली, पृ. ३५)

माया : का कटक

गुन कृत सन्निपात नहिं केही । कोउ न मान मद तजेउ निवेही ।
जोवन-ज्वर केहि नहिं वलकावा । ममता केहि कर जसु न नसावा ॥
मच्छर काहि कलंक न लावा । काहि न सोक समीर डोलावा ॥
चिन्ता साँपिन को नहि खाया । को जग जाहि न व्यापी माया ॥
कीट मनोरथ दारु सरीरा । जेहि न लाग घुन को अस धीरा ॥
सुत वित लोक ईषना तीनी । केहि कै मति इन्ह कृत न मलीनी ॥
व्यापि रहेउ संसार महँ, माया कटक प्रचंड ।
सेनापति कामादि भट, दंभ कपट पाखंड ॥
(रा. च. मा. गु, पृ. ६३५)

माया : नटी

माया नटी लकुटि कर लीन्हे, कोटिक नाच नचावै ।
दर-दर लोभ लाग लिये डोलति, नाना स्वाँग बनावै ॥
महा मोहिनी मोहि आत्मा, अपमारगहि लगावै ।
ज्यों दूती परवधू भोरि कै, लै पर पुरुष दिखावै ॥
(सूर सागर पृ. १५)

माया मिली न राम

पाया था सो खोया हम ने, क्या खोकर क्या पाया ?
रहे न हम मे राम हमारे, मिली न हम को माया।
(मं श गु साकेत, ९ सर्ग)

माया वाद

छोडो मौखिक माया-वाद, अलं विषाद और अवसाद।
भव असार ही सही सदैव, कटक किन्तु कटकेनैव।
जहाँ कर्म करके भी लोग, नहीं चाहते थे फल भोग।
वही आज प्रतिकूल प्रवाह, कर्म न करके फल की चाह॥
(मं श गु हिन्दू, पृ १४४)

मार्ग अपना

अपनी राह न छाडिये, जो चाहहु कुसलात।
बडी प्रबल रेलहु गिरत, और राह मे जात॥
(सुधाकर द्विवेदी)

मार्ग माध्यम

स्वामी बन पडि जाउं तो पुध्या व्यापै, नग्री जाउं त माया।
भरि भरि पाउं त विन्दे वियापै, क्यो सीझति जल व्यद की काया॥
घाये न षाहिबा भूषे न मरिबा, अहनिसि लेबा ब्रह्म अगनि का भेव।
हठ न करिबा पड्या न रहिबा, यू बोल्या गोरष देव॥
(गोरखबानी, पृ १२)

मित-भाषण

दूना सुन आधा कहो, सीखो प्रकृति विवेक।
कान दिये दो ईश ने, बाणी बकसी एक॥
(स रामकवि हिंदी सुभाषित पृ ३७)

मित-व्यय

मितव्ययी हो, कृपण न, आर्य।
नहीं अपव्यय है औदार्य।
ऋण ले ले कर करो न नाम।
यह है चार्वाकों का काम॥
न दो आज तुम ऐसा भोज,
कल ही पडे अन्न की खोज।

सुनकर कहीं एक दिन 'वाह'।
करनी पड़े न चिर दिन 'आह'।
रखो घर की ऐसी चाल,
सको दृष्टि वाहर भी डाल।
अपनी ही चिन्ता से व्यस्त,
भूल गये तुम और समस्त ॥

(मं. श. गु. : हिन्दू पृ. १५१-२)

२. कण भर कोई वस्तु व्यर्थ जाने न दीजिए,
तथा समय पर लोभ कहीं कुछ भी न कीजिए।

(पद्य प्रवन्ध, पृ. ११७)

पैसे सात कमाय कर, खर्च करेगा पाँच।
सदा सुरक्षित वह रहे, कभी न आवे आँच।

(मेलाराम : शिक्षा सहस्री पृ. ७८)

४. शास्त्र विधि छूते नहीं, रहे रसम को पीट।
पिट जाते वे खर्च में, वने हुए हैं कीट ॥

(मेलाराम : शिक्षा-सहस्री, पृ. ७३)

मित्र : आलसी

साथी मिलै जो आलसी, ठनै कर्म सों वैर।
एक पाँव सो जात तव, चलै न दूजो पैर ॥

(सं. रामकवि : हिन्दी सुभाषित, पृ. १०)

मित्र : कपटी

आगें कह मृदु वचन वनाई। पाछें अनहित मन कुटिलाई ॥
जाकर चित अहि गति सम भाई। अस कुमित्र परिहरेंहि भलाई।
सेवक सठ नृप कृपन कुनारी। कपटी मित्र सूल समचारी।

(रा. च. मा. गु. पृ. ४५०)

मित्र : के दोष गोपनीय

मित्रक अवगुण मित्र को, पर यह भाषत नाहिं।
कूप छाँह जिमि आपनी, राखत आपहि माहिं ॥

तुलसी सतसई, पृ. २६२)

मित्र : महान

जो मुख पर ऐगुन कहे, महामित्र है सोइ।
ताको मित्र न जानिये, ऐगुन राखे गोइ ॥

(नूरमुहम्मद : इन्द्रावती)

मित्र मूर्ख

जो पै अपनो मित्र है, मुग्ध निपट अजान ।
तो ताना शत्रुहि भलो, बुद्धिमान गुणवान ॥
(म प्र द्वि द्वि का भा, पृ २७७)

मित्र त्रिविध

१ मीनहि होइ मीत की चिन्ता, चारि भाति जग कहिये मिता ।
नैन मीन एक जग आवा, नैन देखि के मीत कहावा ॥
मुख फेरत भा औरे लेखा, गयो भूमि जनु सपना देखा ।
इच्छा मीत होइ एक दूजा, तो लहु मीत इच्छा जब पूजा ॥
हीरो पूजी गई मिनाई, बहुरि बार नहि झाके आई ।
बैन मीन बैन रस रमा, बैनहि लागि रहै मन बसा ॥
प्रान मीत बहि कठिन है, पर न सबै निरवाहि ।
सो दुख औनि आप जिय, जो महँ गुप्त हो ताहि ॥
(उसमान चित्रावली पृ ३१)

२ 'जिनरंग' रोगी मित्र को, दीजै रोटी घीउ ।
वचन मित्र को वचन द, जीउ मित्र को जीउ ॥
(जिन रग सूरि रग बहत्तरी, दोहा १३)

मित्र सहरी

लक्षण—आमन बहोत बनाय कै, पात पराये वित्त ।
मिलनै मन मिलिवत नही, वे कहि सहिरी मित्त ॥

उदाहरण—आप जिहां जाय तिहां आसन अपार करै,
मिलै कहूँ राह मैं तो दीठ न मिलावैगे ।
जइयँ घर तार्के मानु सोक पर्यो वाकै,
कहो आए इहां वाके कछू सौदा लै सिधावैगे॥
मेरे पिण एक बडो काज है बाजार माझ,
चालीयै अपुन जाय फिर घर आवैगे ।
कर मनुहार वहि उलटो सकोच पारि,
प्यावत न वार ए दरस कब पावैगे ॥
(रघुराम सभासार नाटक, पत्र ५)

मित्र सच्चा

१ जे न मित्र दुख होहिं दुखारी । तिन्हहि बिलोकत पातक भारी ।
निज दुख गिरि सम रज करि जाना । मित्रक दुख रज मेरु समाना ॥

जिन्ह कें असि मति सहज न आई। ते सठ कत हठि करत मिताई ॥
कुपथ निवारि सुपंथ चलावा। गुन प्रगटै अवगुनन्हि दुरावा ॥
देत लेत मन संक न धरई। बल अनुमान सदा हित करई ॥
बिपति काल कर सतगुन नेहा। श्रुति कह संत मित्र गुन एहा ॥

(रा. च. मा. गु., पृ. ४४९)

२. मथत मथत माखन रहै, दही मही बिलगाय।
'रहिमन' सोई मीत है, भीर परे ठहराय ॥

(रहिमन विलास, पृ. १५)

३. हृदय खोल कर मिलने वाले बड़े भाग्य से मिलते हैं,
मिल जाता है जिस प्राणी को सत्यप्रेममय मित्र कहीं।
निराधार भवसिंधु बीच वह कर्णधार को पाता है,
प्रेम-नाव ले कर जो उसको सचमुच पार लगाता है ॥

(प्रसाद : प्रेमपथिक, पृ. १६)

मित्र : स्वार्थी

स्वार्थ-सिद्धि का सीधा साधन वाचिक मैत्री,
भाषा में सारल्य और भावों में धोखा।
गोबर की बर्फी पर वरक लगा सोने का,
बक-ध्यानी बन, मित्र, मित्र का देखे मौका।

(सागरमल : कुछ कलियां कुछ फूल, पृ. २)

मित्रता

कौन करे दासों को मित्र ? वहाँ चाहिए तुल्य चरित्र।
किया जा सके जिन पर क्रोध, कौन करे उनसे अनुरोध ॥

(मै. श. ग्र., हिन्दू पृ. २०५)

मित्रता : की रक्षा

हाथ मिला कर, साथ छोड़ना ठीक नहीं होता है,
नाता पहले जोड़, तोड़ना ठीक नहीं होता है।

(रामखेलावन वर्मा : चन्द्रगुप्त मौर्य, पृ. १५१)

मित्रता : तुल्यों में ही

१. मूसा ने मंजार, हित कर बैठा हेकठा।
सब जाणें संसार, रह न रहसी राजिया ॥

(राजिया के सोरठे, पृ. २१)

२ दक्षन के हित दक्ष सौं, शठ कै शठ सौं प्रीत।
अलि अम्बुज पै देखिये, दर्दुर कर्दम-मीत ॥
(भैया भगवतीदास, ब्रह्मविलास पृ २६१)

मित्रता योग्य से

जिनके हितकारक पंडित हैं, तिनको कहा सत्रुन को डर है।
समुझैं जग मैं सब नीतिन्ह जो, तिन्हैं दुर्ग विदेस मनोघर है ॥
जिन मित्रता राखी है लायक सो, तिनको तिनकाहू महासर है।
जिनकी परतिज्ञा टरै न कबौं, तिनकी जय ही सब ही थर है ॥
(भारतेन्दु नाटकावली पृ ३३२-३)

मिथ्याभिमान

थोथा चना बाजे घना, नहीं ठोस है काम।
शान बढावे खर्च कर, रहे कहाँ तक नाम ॥
(मेलाराम शिक्षासहस्री, पृ १०२)

मिलन और विरह

हौं जानौं पिय मिलन ते, बिरह अधिक सुख होय।
मिलने मिलिये एक सौं, बिछरें सब ठौं होय ॥
(नंददास ग्रंथावली, पृ १३९)

मिलन से हर्ष

कब, कहाँ, यह नहीं।
जब भी जहाँ भी हो जाय मिलना।
केवल यह कि जब भी मिलो तब खिलना ॥
(स ही वा अज्ञेय इन्द्रधनु रौंदे हुए ये, पृ ५२)

मुकदमा-बाजी

जीतना हार बराबर है, हारना मौत सरासर है,
कोई झगड़ा तुम मे गर है, फैसला घर का बहतर है,
करो पंचायत फिर जारी, अदालत लड़ना भ्रमगारी।
(रूपनारायण पाण्डेय पराग, पृ ११४)

मुक्ति जगत में ही (दे 'मोक्ष' भी)

पण्डित पूत सपूत सुधी पतिनी पति प्रेम-परायन भारी।
जानै सबै गुन मानै सबै जन दानविधान दया उरधारी ॥
'केसव' रोगनि ही सों वियोग सजोग सुभोगन सो सुखकारी।
साँच कहै जग माँहि लहै जस मुक्ति यहै चहु वेद विचारी ॥
(केशव ग्रंथावली १, कविप्रिया, पृ १२२)

मुक्ति : जीवन में ही

जीवन मुक्त सोइ मुक्ता हो।
जब लग जीवन मुक्ता नाही, तब लग दुख-सुख भुगता हो ॥ टेक ॥
देह संग ना होवै मुक्ता, मुए मुक्ति कहाँ होई हो ।
तीरथवासी होय न मुक्ता, मुक्ति न धरनी सोई हो ॥ १ ॥
जीवन भर्म की फाँसी न काटी, मुए मुक्ति की आसा हो।
जल प्यासा जैसे नर कोई, सपने फिरै पियासा हो ॥ २ ॥
ह्वै अतीत बंधन तें छूटै, जहँ इच्छा तहँ जाई हो ।
विना अतीत सदा बंधन में, कितहूँ जानि न पाई हो ॥ ३ ॥
आवागवन से गये छूटि के, सुमिरि नाम अविनासी हो।
कहै कबीर सोई जन गुरु है, काटी भ्रम की फाँसी हो ॥ ४ ॥
(कबीर शब्दावली, भा. दू., पृ. १०-११)

मुक्ति : प्रभुभक्ति से

भजि ले सिरजनहार, सुघर तन पाइ के।
काहे रहौ अचेत, कहाँ यह औसर पैहौ ।
फिर नहिं ऐसी देह, बहुरि पाछे पछितैहौ ॥
लख चौरासी जोनि में, मानुष जन्म अनूप ।
ताहि पाइ नर चेतत नाहीं, कहा रंक कहा भूप ॥ १ ॥
गर्भ वास में रह्यो कह्यो मैं भजिहौं तोही।
निसि दिन सुमिरौं नाम, कष्ट से काढ़ो मोही ॥
चरनन ध्यान लगाइ के, रहौ नाम लौ लाय।
तनिक न तोहिं बिसारिहौं, यह तन रहै कि जाय ॥ २ ॥
इतना कियौ करार, काढ़ि गुरु बाहर कीन्हा ।
भूलि गयौ वह बात, भयौ माया आधीना ॥
भूली बातैं उद्र की, आनि पड़ी सुधि गए ।
बारह बरस बीतगे या विधि, खेलत फिरत अचेत ॥ ३ ॥
विषया बान समान, देह जोबन मद माते ॥
चलत निहारत छाँह, तमक के बोलत बाते ॥
चोवा चंदन लाइके, पहिरे बसन रँगाय ।
गलियाँ गलियाँ झाँकी मारै, पर तिरिया लखि मुसकाय ॥ ४ ॥
तुरनापन गइ बीत, बुढ़ापा आन तुलाने ।
काँपन लागे सीस चलत दोउ चरन पिराने ॥
नैन नासिका चूवन लागे, मुख तें आवत बास।

चक बिन बढ़े घर लियो है, छुटि गइ घर की आस ॥ ५ ॥
मातु पिता सुत नारि, कहो काके सँग जाई ।
तन धन घर औ काम, धाम सब ही छुटि जाई ॥
आखिर काल घसीटि है, परि हो जम के फन्द ।
बिन सतगुरु नहिं बाचिहौ, समुझि देख मतिमन्द ॥ ६ ॥
मुक्त होन यह देह, नेह सतगुरु से कीजे ।
मुक्ति मारग जानि, चरन सतगुरु चित दीज ॥
नाम गहौ निरभय रहो, तनिक न व्यापै पीर ।
यह लीला है मुक्ति की, गावत दास कबीर ॥

(कबीर शब्दावली, दू भा पृ २-४)

मुक्ति सब की

व्यक्ति की मुक्ति, पूर्णता व्यर्थ, जगत यदि बंधन ग्रस्त, अपूर्ण,
सब के संग ही सम्भव श्रेय, सब ही में अभिव्यंजित पूर्ण ।

(सु न पं लोकायतन, पृ ३१९)

मुख छोटा

लघु मुख मोटी बात तें, ताको न देख्यो ओंख ।
मरणपकठे आवहीं ज्यों चींटी के पाँख ॥

(ज्ञानसार ग्रंथावली, पृ १९४)

मुद्रण

वचना, मुद्रण है महाजन्तु इस युग का, वह संघ पला था जाय न जिस
युग-युग का ।
भूकेगा उस पर जो न खिलाता होगा, टुकड़ा दो तो पूँछ हिलाता होगा ।

मै श गु राजा-राजा, पृ १२)

मुनि

धीरज तात क्षमा जननी परमारथ मीत महारुचि मासी ।
ज्ञान सुपुत्र सुता करुणा, मति पुत्रवधू समता अतिभासी ॥
उद्यम दास विवेक सहोदर बुद्धि कलत्र शुभोदय दासी ।
भाव कुटुम्ब सदा जिनके ढिग यों मुनि को कहिये गृहवासी ॥

(बनारसी विलास, पृ १९८)

मुनि स्थितप्रज्ञ

जो उद्विग्न नाहिं दुख माही । सुख महँ जाहि लालसा नाही ।
राग क्रोध भय जेहि न सतावत । सोई मुनि स्थितप्रज्ञ कहावत ॥

(द्वा प्र मि कृष्णायन, पृ ५४४)

मुमुक्षु

धाता ने भी सरल-हृदया कामिनी को बना के,
विश्वासों की निर्वित रच के, भक्ति को देह दे के ;
कैसा प्यारा भवन विरचा पुत्र का, प्रेम का भी,
तो भी कोई विरत बनते, मुक्ति को चाहते है।
(अनूप शर्मा : सिद्धार्थ, पृ. २१३)

मुल्ला

'बुल्ला' मुल्ला ते मसालची, दोहांदा इको चित्त।
लोकां करदे चानना, आप हनेरे विच्च ॥
(संत वाणी संग्रह, भाग १, पृ. २१३)

मुसलमान

जो मन मूसै आपनो, साहिब के रुख होय।
ज्ञान मुसल्ला यह टिकै, मुसलमान है सोय ॥
(बनारसी विलास, पृ. २०२)

मुसलमानों और हिन्दुओं के प्रति

मुसलमान भाई, हो शान्त,
सोचो तनिक तुम्हीं एकान्त !
तुम निज हेतु करो सब कर्म,
और छोड़ दें हम निज धर्म ?
डालो अपने ऊपर दृष्टि,
तुम अधिकांश यहीं की सृष्टि।
तुम हिन्दू हो धार विधर्म,
भूल गये हो निज कुलकर्म ॥
हुए हमारे मन्दिर नष्ट,
करते गये उन्हें तुम भ्रष्ट !
किन्तु मिले जब हमें प्रसंग,
हुईं मसजिदें कितनी भंग ?
पढ़ो जरा टरकी का हाल,
क्या काफिर हो गया कमाल ?
नहीं नहीं वह हुआ प्रबुद्ध,
तुम्हीं रूढ़ियों में हो रुद्ध !

पुण्य भूमि है यही पुनीत,
गाते हो तुम किसके गीत ?
उच्चादर्श कौन किस ठौर,
पा न सको जो तुम इस ठौर।
रक्खो तुम अमि का अभिमान,
है उसका भी उच्च स्थान।
किन्तु नहीं है यह ईमान,
कि बस रहे अपना ही ध्यान।
हमें तुम्हें रहना है साथ,
सुख-दुख सब सहना है साथ।
हिल-मिल कर रहने में श्रेय,
और उसी में अपना प्रेय।
सुविदित है एकेश्वरवाद,
सुनो और भी सोऽहं नाद।
गूँजा यहीं तत्त्वमसि गान,
निकली वहाँ अनलहक तान॥
गोवकुशी ? मरजी की बात !
सोचो किन्तु तनिक हे तात !
अर्थ—धर्म का है यदि कार्य,
तो गोकुशी नहीं अनिवार्य॥
ऊटों की कुर्बानी बन्द,
की थी हजरत ने सानन्द।
क्योंकि अरब का धन ये ऊट,
वहाँ सर्व साधन धन ये ऊँट॥
भारत का धन गोधन मात्र,
है पहले रक्षा का पात्र,
पियो न प्यारे उसका खून,
कि जो दूध दे दोनों जून॥
काबुल में भी गोवध बन्द,
वह काफिर है या स्वच्छन्द ?
नहीं वहाँ बाजों की रार,
नये मुसलमाँ तुम हो यार !

कर दें हम निज कीर्तन बन्द,
तुम्हीं अजानें दो स्वच्छन्द।
करो भाइयो तुम्हीं विचार,
चल सकते हैं ये व्यापार?
सावधान हिन्दू सन्तान,
लड़ो न तुम अनुचित हठ ठान।
अपने सहवासी की काँख,
लगने देगी किसी आँख?
पर अपने समुचित अधिकार,
न हो छोड़ने को तैयार।
थी अधिकारों की ही बात
हुआ महाभारत संघात॥

(मै. श. गु. : हिन्दू, १८९—२०१)

मूढ़

आउ वित्त गृहछिद्र तप, मैथुन औषध दान।
मंत्र प्रकासै मूढ नर, महत अनै अपमान॥

(मूर्खभेद चौपई)

मूढ़ और विद्या

कहे ते समझ नाहि समझाये समझे नहिं,
कवि लोग कहै काहि के अविस्तार सी।
काक को कपूर जैसे मरकट को भूपन जैसे,
ब्राह्मन को मक्का जैसे मीर को बनारसी॥
बहिरे के आगे तान गाए को सवार जैसे,
हिजरे के आगे नारि लागत अंगार सी।
कहै कवि गंग मन माहि तो विचार देखो,
मूढ़ आगे विद्या जैसे अन्ध आगे आरसी॥

(अकवरी दरवार...पृ. ४३३)

मूर्ख

१. मूरख को समझावते, ज्ञान गाँठि को जाय।
कोइला होय न ऊजरो, नौ मन सावुन लाय॥

(कबीर वचनावली, पृ. १४८)

२ ग्यानवत हठ गहै, निधन परयार बढावै ।
विधवा करै गुमान, धनी सेवक हुय ध्यावै ।।
वृद्ध न समुझै धर्म, नारि भर्ता अपमानै ।
पडित क्रिया विहीन, राव दुर्बुद्धि प्रमानै ।।
कुलवत पुरुष कुलविधि तजै, बधु न मानै बधु हित ।
सन्यास धार धन सग्रहै, ते जग मैं मूरख विदित ।।

३ मूरट लँगर मजार, सिध सूवर सेहल मिलो ।
मिलज्यो मती मुगर, नाई मूरख नाथिया ।।

(नाथूराम सिध्यासार)

४ चतुर सभा मे कूर नर, सोभा पावत नाहिं ।
जैसे वक सोभित नहीं, हस मडली माहिं ।।

(सतसई सप्तक, वृन्दसतसई, दोहा २३१)

५ जो हँसता पानी पियै, चलता खावै खान ।
द्वै बनरावन जात जो, सो सठ ढीठ अजान ।।

(बुधजन सतसई, पृ २८)

६ काग ! भले मोतीन चुगु, वसि मानस सर माहिं ।
नीर-छीर बिलगाइबो, तेर बस को नाहिं ।।

(किशोरी दास वाजपेयी तरगिणी, पृ ४)

मूर्ख श्रति

ठाकुर मित जु जाणि मूढ हरषइं जे चित्तह ।
निज तिय तणउ विसास करहिं जियमहि जे मित्तह ।।
सरब सुनार जु पारस रस जे प्रीति लगावहिं ।
वेस्या अपणी जाणि छयल जे छद उछावहिं ।।
विरचार वार इनकहु रही, मूरिख नर जे रूचिया ।
छीहलु कहै ससार महि, ते नर अति विगूचिया ।।

(छीहल बावनी, छप्पय ३१)

मूर्ख और परोपकार

बुद्धि हीन जानत नही, पर-हित कारक रीति ।
निजमुख ही ते करत है, जिमि बालक-कर प्रीति ।।

(स रामकवि हिन्दी सुभाषित, पृ ४)

मूर्ख के सामने विद्या

कहै कवि 'गंग' मन माहि तो विचार देखो
मूढ़ आगे विद्या जैसे अंध आगे आरसी ।

(अकबरी दरबार···पृ. ४३३)

मूर्ख: को ज्ञान कठिन

फूलइ फरइ न बेंत, जदपि सुधा बरषसिं जलद ।
मूरख हृदयँ न चेत, जो गुर मिलहिं बिरंचि सम ।।

(रा. च. मा. गु, पृ. ५१५)

मूर्ख:—शिरोमणि

कूप खनहिं मन्दिर जरत, लावहि धारि बबूर ।
बोये लुन चह समय विन, कुमति शिरोमणि कूर ।।

(तुलसी सतसई, पृ. २२५)

मूल

कीरति को मूल एक रैन दिन दांन देवो,
धर्म को मूल एक सांच पहिचांनिवो ।
वढ़िवे को मूल एक ऊँचो मन रापिवो है,
जानिवे को मूल एक भली वात मांनिवो ।
व्याधि वहु भोजन उपाधि मूल हाँसी,
'देवी' दारिद को मूल एक आलस वपांनिवो ।
हारिवे को मूल एक आतुरी है रन मांझ,
चातुरी को मूल एक वात कहि जानिवो ।।

(देवीदास, याज्ञिक संग्रह, प्रतिसंख्या ५२२/१२, पद्य ८)

मृतक : के तुल्य

कौल कामवस कृपिन विमूढ़ा । अति दरिद्र अजसी अति बूढ़ा ।।
सदा रोनवस संतत क्रोधी । विष्णु विमुख श्रुति संत-विरोधी ।।
तनुपोपक निदंक अघ-सानी । जीवत सव तम चौदह प्राणी ।।

(रा. च. मा. गु., पृ. ५२४)

मृत्यु

१. कांची काया मन अथिर, थिर थिर काज करन्त ।
ज्यों ज्यों नर निधड़क फिरत, त्यों त्यों काल हसन्त ।।

(कबीर वचनावली, पृ. १३०)

२. इस चाँदनी वाद आयेगा यहाँ विकट अंधियाला ।
यही बहुत है छलक न पाया जो अव तक यह प्याला ।।

(दिनकर की सूक्तियां, पृ. ७५)

मृत्यु अकाल

अकाल की मृत्यु विलोक दुख से
मनुष्य रोते मति-हीन सर्वथा,
किया गया निश्चित मृत्यु-काल क्या ?
कही गयी किन्तु अकालकी न क्या ?

(अनूप : वर्द्धमान, पृ ६२)

मृत्यु अनिवार्य

१ बहुत रही बाबुल घर दुलहिन, चल तेरे पी ने बुलाई।
बहुत खेल खेली सखियन सो, अन्त करी लरिकाई॥
हाथ धोय के बसतर पहिरे, सबहि सिगार बनाई।
बिदा करन को कुटुम्ब सब आये, सिगरे लोग लुगाई॥
चार कहारन डोली उठाई, संग पुरोहित नाई।
चले ही बनैगी होत कहा है, नयनन नीर बहाई॥

(खुसरो सु का स, पृ २०२)

२ चलती चक्की देखि के, दिया कबीरा रोय।
दुइ पट भीतर आइके, साबित गया न कोय॥

(कबीर वचनावली, पृ १३०)

३ दस दुवार जेहि पींजर माहा। कैसे बाच मजारी पाहा ?

(जायसी ग्रंथावली, पृ २६)

४ कोउ दिन दस आगे कोउ पाछे। है नित काल सो काछे-काछे॥
जे कोइ जनम लीन्ह जग माही। सो जायो एक दिन है नाही॥

(निसार यूसुफ जुलेखा)

५ बजे नगारा कूँच का, करहु सुचेत सभार।
अगम पंथ साथी नही, केहि विधि उतरब पार।

(निसार : यूसुफ जुलेखा)

६ या जग बीच बचै नहि मीचु पै, जे उपजे ते मही मे मिलाने।
रूप कुरूप गुनी निगुनी जे जहा जनमे त तहांई बिलान॥

(देव सुधा, पृ ३५)

७ जाने कहावत है जग मे जन जाने नही जम फासि जरी को।
आपुन काल के गाल पर्यो अरु चाहत और की राजसिरी को।

देव सु दौरता दूर तें नीच नगीच न देखत मीच रिरी कौ।
हौं तकौ स्वान को स्वान बिली को बिली तके चूहा कौ चूहा रिरी कौ ॥
(देवशतक, जगद्दर्शन पच्चीसी, पद्य १५)

८. जन क्यों जी छोटा करता है ।
जो जनमा वह मरा एक दिन किस को मिली अमरता है ॥
जिनके जप-तप-योग ज्ञान-विज्ञान आदि की गरिमाएँ।
केवल गिरा गान कर सकती है यदि गौरव से गाएँ ॥
बड़े-बड़े भूपाल जो धरातल में नहीं समाये थे।
जिनके गौरव-ग्रथित गीत वृन्दारक तक ने गाये थे ॥
यम भी जिन से शंकित था, थी मृत्यु भी सहमती जिनसे।
वे भी मिले धूल में बुल्ले के समान वे भी विनसे।
पवि-निपात रवि पर भी होगा बचेंगे सुधाधाम नहीं ॥
तारक रहित गगनतल होगा मिल न सकेगा पता कहीं ॥
जीवन ऐसी पूँजी है जो पाकर खोई जाती है।
भव की यह लीला ही है किसलिए दहलती छाती है ॥
(हरिऔध : मर्मस्पर्श, पृ. २४)

९. धनिक, निर्धन, ब्राह्मण, शूद्र, या
नृपति, भिक्षु, सुखी अथवा दुखी ।
मर गये, मरते, मर जायेंगे,
मरण तो सब का अनिवार्य है।
(अनूपशर्मा : सिद्धार्थ, पृ. १५८)

१०. शुनी-समा मृत्यु सदैव घूमती
सतर्क प्रत्येक निवेश-द्वार पै ;
कहाँ नही है यह प्राण सूंघती ?
कहाँ न जाती, जन कौन छोड़ती ?
(अनूप: वर्द्धमान, पृ. ३२४)

११. भीपम करण अरु द्रोण के भी सामने आकर खड़ी।
तू भीम अर्जुन कृष्ण तक को हाय दुप्टा ले उड़ी।
तेरी कुटिल नीति की हम ने वक्रता देखी कड़ी ।
खोली जिधर आँखें उधर पाया तुझे संमुख खड़ी ॥
(राधा मोहन : नीति छंदावली, २ भाग, पृ. १५)

मृत्यु उत्तम

मरना हो तो मरो देश पर पराधीनता काटो।
नही स्वार्थ के लिए देशद्रोही का तलवा चाटो॥
राना सा दाना दाना को तरसो घाटे वन में।
पर जीते जी पड़े न पीछे पग स्वतन्त्रता रन में॥
मरना हो तो मरो जाति पर अरियों से लोहा ले।
मातृभूमि की धाक जमा दो अपना बल दिखला के॥
मरना हो तो मरो धर्महित दोनों लोक बनाओ।
और विधर्मी अत्याचारों से सद्धर्म बचाओ॥
नस-नस में जिनके स्वधर्म का यश गौरव भीना है।
उनका पावन धर्म युद्ध में मरना भी जीना है।

(गुरुभक्त सिंह नूरजहाँ, पृ १०१-२)

मृत्यु और अमरता

यह मौत नहीं परिवर्तन है, इस काया के कल पुर्जों का।
हो अमर नाम के अभिलाषी, तो जीवन-ज्योति जलाता जा॥

(सत्यदेव परिव्राजक अनुभव, पृ ४)

मृत्यु और जीवन

१ मृत्यु का तन आग है, अंगार है।
जिंदगी हरियालियों की धार है॥

(दिनकर की सूक्तियाँ, पृ ४०)

२ मौत से जो भागते हैं, जिंदगी पाते नहीं वे।
फूल कल फल बन सकेगा इसलिए कुम्हलाय जीवन॥

(हरिकृष्ण प्रेमी रूपरेखा, पृ ६९)

मृत्यु और पुनर्जन्म

शरीर में तस्कर-तुल्य मृत्यु था
न खींचती केवल श्वास अगला,
वरंच ताली नव जन्म की लगा
दिखा रही नूतन आत्म-धाम है।

(अनूप वर्द्धमान, पृ ३३२)

मृत्यु और बुढ़ापा

आसण दिढ अहार दिढ जे न्यद्रा दिढ होई।
'गोरष, कहै सुणौं रे पूता मरै न बूढा होई॥

(संतसुधासार, पृ० ३३)

मृत्यु : का अंक शीतल

मृत्यु, अरी चिरनिद्रे ! तेरा
अंक हिमानी सा शीतल,
तू अनंत में लहर बनाती
काल-जलधि की-सी हलचल !
(जयशंकर प्रसाद : कामायनी, पृ. १८)

मृत्यु : का गूढ़ रहस्य

सब घड़ी, सबको, सब भाँति से
भय लगा रहता भव-व्याधि का ;
मर रहस्य-निदर्शक भी गये
निधन का पर, भेद न पा सके।
(अनूप शर्मा : सिद्धार्थ, पृ. १५४)

मृत्यु : का दुःख अनुचित

किसका तुम को दुःख ? देह का ? वह रज-कण है।
जीवन उसकी विकृति, और बस, प्रकृति मरण है ॥
(बलदेव प्रसाद मिश्र : साकेत-सन्त, पृ० ६७)

मृत्यु : का भय

मनुष्य को जीवन-भीति से महा
कठोर है मृत्यु-विभीषिका सदा,
विभीत ऐसा द्रुत भागता, कि है
क्षण-प्रभा आकर पांव चूमती।
(अनूप : वर्द्धमान, पृ. २६२)

मृत्यु : का विनोद

मन भरमता मानसी धूप मे, आँख उलझी रही ऊपरी रूप में।
शक्ल संसार की जब लगी दीखने, डाल हँस कर दिया मृत्यु ने आवरण।
(सं. क्षेमचन्द्र सुमन : रामावतार त्यागी, पृ. ११०)

मृत्यु : का समय

१. जिनकी बदी है मीच अब, तिनकी न इत-उत बचहिगी।
जिनकी नहीं है विधि रची, तिन के न तन कों तचहिगी।
(पद्माकर : हिम्मत बहादुर विरुदावली, पृ. के. १७)

काल्ह करै सो आज कर, आज करै सो अब्ब।
पल में परलै होयगी, बहुरि करैगा कब्ब। (कबीर)
(कविता कौमुदी, भाग १)

करना होय सो आज कर, काल परों दे छाड़।
'हाजी' दुनहिन सासरे, सास न माने लाड़। (हाजीबली)
(सूफी-काव्य-संग्रह, पृ २२७)

मृत्यु का स्थान

भेटै धनन्तर-से जु बैद, सु यों अनेक विधै करै।
पर काल है जिहि को जहाँ, तिहि को तहाँ ते नहिं टरै।
(पद्माकर हिम्मत बहादुर विरदावली)

मृत्यु का स्वागत

निर्भय स्वागत करो मृत्यु का, मृत्यु एक है विश्राम-स्थल।
जीव जहाँ से फिर चलता है, धारण कर नवजीवन-सम्बल।
मृत्यु एक सरिता है जिसमें, श्रम से कातर जीव नहाकर।
फिर नूतन धारण करता है, काया रूपी वस्त्र बहाकर।
(रा मा त्रि स्वप्न, पृ ७१)

मृत्यु के कारण

वैद्यों के मत से त्रिदोष नर के पचत्व का हेतु है,
ज्योतिर्नीति-विदग्ध वृन्द ग्रह के दुष्टत्व को मानता।
जो भूतज्ञ स-तन्त्र-मन्त्र कहते हैं 'भूत-बाधा लगी',
किन्तो का अनुमान है, फुरन है प्राचीन सस्कार का।
(अनूपशर्मा सिद्धार्थ, पृ १५५)

मृत्यु के लक्षण

१

चतुर्दिशा में धुँधला प्रकाश हो,
प्रलम्ब छाया गिर भूमि में पड़े,
थकान हो, निर्बलता महान हो,
विचार देखा, तब मृत्यु आ गई।
(अनूप वर्द्धमान, पृ ३२३)

२

विनष्ट होता पहले प्रमोद है,
पुनश्च आशा करती प्रयाण है,

विभीति होती फिर नष्ट अन्त में,
स-धैर्य आती जब मृत्यु सामने,
(अनूप : वर्द्धमान, पृ. ३३८)

मृत्यु : के लाभ

मृत्यु न होती तो जग रोता !
हँस-हँस कर फिर लड़ भिड़ कर नित
ऊब-ऊब कर गाता रोता !
अनाचार का सिक्का चलता
नीति, धर्म का मान न होता !
नीरस तो जग ही हो जाता
मानव प्रेम-रतन भी खोता !
मृत्यु न होती तो जग रोता !
(श्रीमन् नारायण : रजनी में प्रभात का अंकुर, पृ. ७४)

मृत्यु :—दुख में सान्त्वना

जिसने दिया लिया भी उस ने,
मन, तुम को क्यों पीड़ा होती ?
टिकता भी कितने दिन प्यारे,
ममता का वह मोमी मोती ?
पर क्यों उसका सोच-फिकर, मन,
ऐसा ही होता आया है !
सब पर पड़ती सुख दुख-की यों
ही चलती फिरती छाया है।
व्यथा बहुत हैं, और व्यथा की
कथा बहुत हैं इस जीवन में !
हाँ, अभाव के भाव रहे है
कभी-कभी सब के ही मन में !
पति मर जाता, पत्नी जीती,
पत्नी मरती पति पति रहता ;
वृद्ध पिता, विधवा माँ रहती
पुत्र छोड़ सब को चल बसता !
जब इतना तक सहता चलता
मृत्यु-ग्रास बनने तक जीवन,
तो इतने से दुख के कारण
काँप उठे तुम क्यों, मेरे मन ?

उठो, मुक्ति-पथ के अनुगामी,
अब न कभी पीछे पग धरना।
मन अब सोच फिकर मत करना,
जीवन को निधन न समझना।
जिस ने दिया

(नरेन्द्र पलाशवन पृ ३६—४१)

मृत्यु निर्भय

१

करो न अटल मृत्यु-भय-व्यर्थ,
रहो समुद्यत उसके अर्थ।
हो जाओ व्रत पर बलिदान,
क्षय हो जय हो उभय समान।
या तो स्वर्ग, कीर्ति, गुण-गान,
या नव गौरव सुख-सम्मान।
बढ़ें मृत्यु का भय जो ठेल,
रखते हैं उन से सब मेल।
वैसी ही गति जैसी मृत्यु,
त्यागो ऐसी वैसी मृत्यु।
तुम मे पुनर्जन्म विश्वास,
और अन्त मे स्वर्ग निवास।
तुम स्वधर्म पर हो उत्सर्ग,
पाओ स्वर्ग और अपवर्ग।
पर न करो अपना अपघात,
वह है महा पाप विख्यात।।

(मै श गु हिन्दू, पृ १२७—८)

२ पर, जो मन भोग के साथ ही योग के काम पवित्र किया करता।
परिवार से प्यार भी पूर्ण रखे, पर-पीर परन्तु सदा हरता।।
निज भाव न भूल के, भाषा न भूल के, विघ्न व्यथा को नही डरता।
इन द्वन्द्व हुआ हँसते-हँसते, वह सोच-सकोच बिना मरता।।
प्रिय पाठक आप तो विज्ञ ही हैं, फिर आपको क्या उपदेश करें।
शिर पै शर ताने बहेलिया काल खडा हुआ है, यह ध्यान धरें।।
दशा अंत को होनी कपोत की एसी परन्तु न आप जरा भी डरें।
निज धर्म के कर्म सदैव करें, कुछ चिह्न यहाँ पर छोड मरें।।

(रूप नारायण पाडेय)

(स सु न पत कवि भारती, पृ १३१)

३. मनुष्य को जीवन दे रही ज्वरा
तथा रही ले वह एक प्राण ही,
अत: डरे क्यों नर मृत्यु से कि जो
नितान्त आदान-प्रदान-कार्य है।

(अनूप : वर्द्धमान, पृ. ३३५)

४. जिस दिन मृत्यु की विभीषिका की ईति-भीति—
मानव के हिय से समूल हर जायेगी,—
जिस दिन मृत्यु-जीवनैक्य की विचित्र छटा,—
मानव के हिय में समुद भर जायेगी,—
पर-हित अर्थ प्राण-अर्पण की इच्छा जब,—
मानव के हिय को स्ववश कर पायेगी,—
तब मृत्यु-बन्ध-शैल-खंड खंड-खंड होगा,—
चेतन की रुद्ध धार झर-झर आयेगी !—

(वा. कृ. श. न. : हम विषपायी जनम के, पृ. ६१८)

मृत्यु :—पथ में साथी नहीं

द्वारहि पै लुटि जायगो बाग औ आतिसबाजी छिनै मैं जरैगी।
ह्वै हैं विदा टका लै हय-साथिहु खाय पकाय बरात फिरैगी॥
दान दै मान-पिता छुटिहैं 'हरिचन्द' सखीहु न साथ करैगी।
गाय-बजाय जुदा सब ह्वै है अकेली पिया के तू पालें परैगी॥

(भारतेन्दु ग्रंथावली, दू. खं. पृ. ५४५)

मृत्यु : प्रशंसनीय

प्रशान्त शूली पर मृत्यु भेंट ले,
नितान्त त्यागे, तन युद्ध-भूमि में,
मनुष्य के हेतु मरे मनुष्य तो,
सुयोग्य संस्थान समाप्ति का यही।

(अनूप : वर्द्धमान, पृ. ३२६).

मृत्यु : ममतामयी नींद

तन-मन का भार वहन करने, प्राणों की पीर भुलाने,
आती है ममतामयी नींद पर भर सुख—नींद सुलाने।

(नरेन्द्र : अग्निशस्य, पृ. ११७)

मृत्यु शुभ

अठं सुजस प्रभुता उठं, अवसर मरिया आय।
मरणो घर रै माभिया, जम नरका लै जाय।३
(सूर्यमल)

मृत्यु —शोक व्यर्थ

१ छिति जल पावक गगन समीरा। पच रचित अति अधम सरीरा॥
प्रगट सो तनु तव आगें सोवा। जीव नित्य केहि लगि तुम्ह रोवा॥
(रा च मा गु पृ ४५३)
(गोस्वामी तुलसीदास)

२ शरीर हूँ मैं, यह तथ्य है नही,
शरीर मे हूँ, यह नित्य सत्य है।
शरीर सपात न मृत्यु जीव की,
अशोच्य तो शोच्य न प्रज्ञ जीव से।
(अनूप वर्द्धमान, पृ ६६)

मृत्यु सब का समान अन्त

इस पथ के हर राही का विश्वास अलग है,
सब का अपना प्याला अपनी प्यास अलग है,
जीवन के चौराहे खडहर पर मिलते हैं,
पतझड सब का एक, महज मधुमास अलग है।
—रामानन्द 'दोषी'
(स शिवदानसिंह चौहान काव्यधारा १, पृ १५५)

मृत्यु सर्वोत्तम

परि पर्यंक घृणित अवसाना। समर मरण सम अन्त न आना।
(द्वा प्र मि कृष्णायन, पृ ८८२)

मृत्यु से आनन्द

जा मरने से जग डरै, मेरे मन आनन्द।
कब मरिहौं कब पाइहौं, पूरन परमानन्द॥२॥
(कबीर वचनावली, पृ ११६)

मृत्यु से दुख

चलती चक्की देखि के, दिया कबीरा रोय।
दुई पट भीतर आइकै, साबित गया न कोय॥
(कबीर वचनावली, पृ १३०)

मृत्यु : से दुगना पशु

चरणां आठाँ चालियो, जंगल री रुख जाय।
पुरुष हूत दूणं पसू, अंतक कीधो आय॥

मेल : झूठा

मेल बेमेल जाति से करके
हम मिटाते कलंक टीके हैं।
जाति है जा रही मिटी तो क्या
रंग में मस्त यूनिटी के हैं॥

(हरिऔध : पद्य प्रसून, पृ. ६१)

मेल : मतलब का

धूल में जाय मिल मिलन वह जो, मसलहत का महँग मसाला हो।
प्यार जो प्यार मतलबों का हो, मेल जो मोल जोल वाला हो॥

(हरिऔध : चुभते चौपदे, पृ. ५१)

मैत्री : समानता में ही

न साथ है भूपति का दरिद्र का, न साम्य नीलांबर का कषाय का,
किरीट के योग्य न नग्न मुंड है, प्रभुत्व का प्रेम न निर्धनत्व से।

(अनूपशर्मा : सिद्धार्थ, पृ. २८३)

मोक्ष : (दे. 'मुक्ति' भी)

बसत न तात ! मोक्ष आकाशा। नहिं भूतल पातालहु वासा।
विमल मानसहि मोक्ष कहावा। आपहि माहिं मनुज तेहि पावा॥

(द्वा. प्र. मि. : कृष्णायन, पृ. ७९९)

मोक्ष का : अधिकारी

भाई, इन्द्रिय-भोग से गुरुतरा कोई नहीं वागुरा,
द्वेषी से बढ़ के न हो न जग में क्लेशी न आसक्त-सा,
हिंसा से अधिका न दुष्कृति कही देखी गई विश्व में,
निर्वाणास्पद हैं वही निरत हों जो उक्त दुर्वृत्ति से।

(अनूप शर्मा : सिद्धार्थ, पृ. २९४)

मोक्ष : की इच्छा और प्राप्ति

जब लगि भोग-निदाघ तें, व्याकुल तन मन नाहिं।
खोजत नहि तब लग मनुज, मोक्ष-महीरुह-छाहिं॥
धर्म-युक्त कामार्थ, ताते बरनति तात ! श्रुति।
लहत न कोउ परमार्थ, लहे बिना पुरुषार्थ त्रय।

(द्वा. प्र. मि. : कृष्णायन, पृ. ८००)

मोक्ष की साधना

हिरण्य, लक्ष्मी, बहु विश्व सम्पदा,
अभीप्सिता इन्द्रिय-तृप्ति आयु भी,
क्षण-प्रभा के समवक्र हैं सभी,
अतः करो निश्चल सौख्य-साधना।
(अनूप वर्द्धमान, पृ ५६५)

मोक्ष में स्त्री बाधा

या भव पारावार कौं, उलँघि पार को जाइ।
तिय-छवि छायाग्राहिनी, ग्रसै बीचहीं आइ॥
(बिहारी रत्नाकर, पृ १७८)

मोह

१ का नर सोवत मोह निसा में, जागत नाहि कूच नियराना॥टेक॥
पहिले नगारा सेत केस भो, दूजे बैन सुनत नहि काना॥१॥
तीने नैन दृष्टि नही सूझै, चौथे आइ गिरा परवाना॥२॥
मातु पिता कहना नहि माने, विप्रन से कीन्हा अभिमाना॥३॥
धरम की नाव चढन नहि जानै, अब जमराज ने भेद बखाना॥४॥
होत पुकार नगर कसबे मे, रैयत लोग सभै अकुलाना॥५॥
पूरन ब्रह्म की होत तयारी, अन भवन बिच प्रान लुकाना॥६॥
प्रेम नगरिया में हाट लगतु है, जहाँ रगरेजवा है सतवाना॥
कहै 'कबीर' कोइ काम न ऐहै, माटी कै देहिया माटी मिलि जाना॥
(कबीर शब्दावली, द्वि भा पृ ४५—६)

मोह अपने मे

विष-पादपहुँ रोपि निज आँगन। करत न कोउ स्वकर उत्पाटन॥
(द्वा प्र मि कृष्णायन, पृ ७७७)

मोह और तृष्णा

यथा समुत्पन्न विहग अड से,
विहग से सभव अड का हुआ,
प्रसून तृष्णा इस भाँति मोह से,
प्रसून-तृष्णा-कृत मोह विश्व मे।
(अनूप वर्द्धमान, पृ ५७५)

मोह : और निर्दयता

जानै कहावत है जग मैं जन जानै नहीं जम फांसि जरी को।
आपुन काल के जाल पर्यौ अरु चाहत और की राजसिरी को।
देव सु दौरत दूरि तें नीच नगीच न देखत मीच रिरी को।
हौं तकौं स्वान को स्वान विली को विली तकै चूहा को चूहा रिरी को।

(देव शतक, पद्य २५)

मोह : का जाल

मोह बधक भव वनि बसै, बाम वागुरा जानि।
रहै अटकि छूटै नही, मृग नर मूंढ बखानि॥

(हेमराज : उपदेश शतक, दोहा ९०)

मोह : का त्याग

राहु अवार्य भानु हित जैसे। मृत्यु अवार्य मर्त्य हित तैसे॥
चय परिणाम क्षयहि जग माहीं। कहँ प्रकर्ष अवनति जहँ नाहीं॥
जहाँ लाभ तहँ अन्तहु हानी। सकल तात ! दुःखान्त कहानी॥
मिलन जहाँ तहँ अन्त विछोहू। अस गुनि संत हृदय नहि मोहू॥

(द्वा. प्रा. मि. : कृष्णायन, पृ. ७७२)

मोह : परिवार का

यथा-शक्ति कोई नहीं, उस से करता द्रोह।
करता रहता है मनुज, स्वपरिवार का मोह॥

(हरिऔध सतसई, पृ. ४६)

मोह : पाप का मूल

पाप पुण्य तीखे मृदुल, जैसे कंटक फूल।
अनासक्ति ही पुण्य है, मोह पाप का मूल॥

(श्रीमन् नारायण : रजनी में प्रभात का अंकुर, पृ. ११३)

मोह : प्रशंसनीय

उनका मोह अपूर्व है, है दिवि उनकी देह।
जो करते हैं जगत के प्राणि-मात्र से स्नेह॥

(हरिऔध सतसई, पृ. ४९)

मोह : संतान का

सुत कलत्र दुर्वचन जो भाषै। तिन्हें मोहवस मन नहिं राखै॥
जो वै वचन और कोउ कहै। तिन को सुनि के सहि नहिं रहै॥
पुत्र अन्याइ करै वहुतेरे। पिता एक अवगुन नहिं हरे॥

(सूरसागर, पृ. १५४)

मौन

वाणी का वर्चस्व रजत है किन्तु मौन कंचन है।

(दिनकर की सूक्तियाँ, पृ. ११३)

मौन तोड़ो

तोड़ो मौन की चट्टान, फोड़ो अहं का व्यवधान,
आकुल प्राण के रस गान, भीतर ही न जायें मर।
बोलो, जोर से बोलो, व्यथा की ग्रंथियाँ खोलो,
सजोलो मन कि फूटें, कण्ठ से फिर गीत के निर्झर।

—भारत भूषण अग्रवाल

(सं. शिवदानसिंह चौहान : काव्यधारा १, पृ. १८)

यज्ञ : पशु-बलि निषेध

कहै पशु दीन सुन यज्ञ के करैया मोहि,
होमत हुताशन में कौन सी बड़ाई है।
स्वर्ग-सुख मैं न चहौं, 'देहु मुझे' यौं न कहौं,
घास खाय रहौं मेरे यही मन भाई है॥
जो तू यह जानत है वेद यौं बखानत है,
जाग जलो जीव पावै स्वर्ग सुखदाई है।
डारै क्यों न वीर या में अपने कुटुंब ही कौं,
मोहि जनि जारै जगदीश की दुहाई है॥

(भूधरदास : जैन शतक पृ. १८)

यथायोग्य व्यवहार

१

जो जैसो तेहि तैसो चहिये ठौर।
उत्तम फूल होत है, सिर को मौर॥

(नूरमुहम्मद : अनुराग बांसुरी, पृ. ६३)

२

जो पखी बित बाहर धावा। सो निदान महि ऊपर आवा॥
अपने जोग ठाँव जेहि लीन्हा। सब कोऊ तेहि आदर दीन्हा॥

सब काहू कह ठाउ हैं, अपने अपने मान।
रानी राजा जोग है, ससि जोगें है भान॥

(नूरमुहम्मद : इन्द्रावती)

३

जो जैसो तिहँ तैसिये, करियै नीति-प्रकास।
काठ कठिन भेदै भ्रमर, मृदु अरविंद निवास॥

(वृन्दसतसई, दोहा ६८६)

४. छलिन संग जे छल नहिं करहीं। छलित परास्त मूढ़ ते मरहीं।
(द्वा. प्र. मि. : कृष्णायन, पृ. १७)

यमुना-महात्म्य

दोऊ कूल खंभ, तरंग सीढ़ी मानों जमुना जगत वैकुंठ-निसैनी।
अति अनुकूल कलोलनि के भरिलियें जात हरि के चरन-कमल सुख दैनी॥
जनम जनम के पाप दूर करनी काटति कर्म धर्म धार छैनी।
'छीत स्वामी' गिरिधर जू की प्यारी सावरे अंग कमल दल नैनी॥
('छीत स्वामी', पृ. ८१-८२)

यश

धनि सोई जस कीरति जासू। फूल मरै पै मरै न बासू॥
(जायसी ग्रंथावली, पृ. ३०१)

यश : और कीर्ति

वही यहाँ जीवित कीर्ति-युक्त जो
वही यहाँ जीवित है, यशस्वि जो
अकीर्ति-संयुक्त यशास्विता विना
मनुष्य का जीवन मृत्यु-तुल्य है।
(अनूप : वर्द्धमान, पृ. ३१०)

यश : का विस्तार

१. जस कारणि बलिराज दिन्न बावन्न महाधर।
जस कारणि कवियणह कणि अप्पउ कणयभर।
जस कारणि करि समर कप्पि अप्पीयउ कलेवर।
जस कारणि जगदेव कलहि कंकाल दियउ सिर।
जस कज्जि अज्जि भूपत भमण भिड़इ मुंड रिण रंग रसु।
सो दुक्खि सुक्खि डूंगर कहइ तिम किज्जइ जिम होइ जसु॥
(डूंगर बावनी, छप्पय २९)

२. जसरी गत अद्भुत जिका, सत धारियां सुहाय।
नर जीवै नरलोक में, जस अमरापुर जाय॥
(बाँकीदास ग्रंथावली ३, पृ. ५१)

यश : की रक्षा

जूझत मानी मान-हित, धन-वसुधा हित नाहिं।
अमर सुयश, त्रिभुवन-विभव विनसत निमिषहिं माहिं॥
(द्वा. प्र. मि.

यश : परम धन

अजरामर धन एह, जस रह जावे जगत में
दुख सुख दोनू देह, सुपन समान प्रताप सी ॥
(विरदछिहत्तरी)

यश शरीर देकर भी प्राप्य

हम्मीर राव हँसि यों कहै, सदा कौन जग थिर रहै।
छिन भग अ ग सालच कहा, सुजस एक जुग जुग रहै॥
(जोधराज हम्मीर रासो, पृ ११५)

यश स्वयं सुने

सुनिये मीत गुलाब अलि, क्यों मन रहिहै रोकि ॥
रहित न धीरज रसिक चित, कुसुमित कली विलोकि।
कुसुमित कली विलोकि, चहूँ दिसि भरत भावरी।
ताहि न कटक वेधि, करो मत विकल बावरी॥
वरनै दीनदयाल, पालि हित अपनो गुनिये।
रस पराग जुत राग, सुगधहि दै जस सुनिये॥
(दी द गि ग्र, पृ २२१)

याचक

१ तृन हू तें अरु तून तें, हरवो जाचक आहि।
जानतु है कछु मागिहै, पवन उड़ावत नाहि॥
(सतसई सप्तक, वृन्दसतसई दोहा ६४८)

२ 'मुझे दीजिये कुछ' यों कह जब, याचक कर-फैलाता है।
तभी शरीर काँपने लगता, उसका स्वर घट जाता है॥
उसी समय उसके शरीर से, ये पाँचों हट जाते हैं।
ज्ञान तेज बल और मान यश, अधम प्राण रह जाते हैं॥
(रा च उ याचक)

याचक विवेक-हीन

भिक्षुक बालक मारजा, पुनि भूपति यह चार।
अस्ति नास्ति जाने न कछु, देही देहि पुकार॥
(गिरिधर कु डलिया, पृ ४१)

याचना की निन्दा

बुरो प्रीति को पंथ, बुरो जगल को बासो।
बुरो नारि को नेह, बुरो मूरख सो हांसो।

बुरी सूम की सेव, बुरो भगिनी-घर भाई ।
बुरी कुलच्छनि नारि, सास-घर बुरो जमाई ॥
बुरो पेट पप्पाल है, बुरो जुद्ध ते भागनो ।
गंग कहै अकवर सुनो, सव तें बुरो है माँगनो ॥
(सं. वटेकृष्ण : गंग-कवित्त, पृ. १३३)

याचना : परोपकार्थ

मरि जाऊँ मांगूँ नहीं, अपने तन के काज ।
परमारथ के कारने, मोहिं न आवै लाज ॥
(कबीर वचनावली, पृ. १४३)

याचना : से अपमान

१. मांगे घटत रहीम पद, किती करो बढ़ि काम ।
तीन पैंग वसुधा करी, तऊ वावनै नाम ॥
(रहिमन विलास, पृ. १५)

२. व्यास आस करि मागिवो हरिहू हरिवौ होय ।
वावन ह्वै वलि के गए यहु जानत सव कोय ॥
(व्यासवानी, पृ. ५५)

युग : का रोना

कलि-कलि कर वैठो न निराश, पहनो स्वयं न उसका पाश ।
पहले भी थे राक्षस दैत्य, कवि निर्विघ्न चले मठ-चैत्य ॥
अपना मन है जिनके हाथ, जीवन जय है उनके साथ ।
कोई युग हो कोई लोक, उनको कहीं न दुःख न शोक ॥
कहीं-कहीं सतयुग भी तर्ज्य, आज पूर्व विधियाँ भी वर्ज्य ।
बनो विवेकी विश्रुत हंस, जल छोड़ो पय पियो प्रशंस ॥
देश काल युग उदय कि अस्त, आप भले तो भले समस्त ।
डरो न युग से हटो समक्ष, अक्षय है आत्मा का पक्ष ॥
तुमको हो विश्वास सुजान, तो कलजुग सम जुग नहिं आन ।
(मै. श. गु. : हिन्दू, पृ. १६०—२)

युग :—पुरुष

सब की पीड़ा के साथ व्यथा अपने मन की जो जोड़ सके,
मुड़ सके जहाँ तक समय, उसे निर्दिष्ट दिशा में मोड़ सके
युग-पुरुष वही सारे समाज का विहित धर्म गुरु होता है,
सब के मन का जो अन्धकार अपने प्रकाश में धोता है ॥
(दिनकर की सूक्तियाँ, पृ. ७८)

युग हमारा

अपने युग को हीन समझना आत्महीनता होगी।
सजग रहो, इससे दुर्बलता और दीनता होगी॥
जिस युग में हम हुए वही तो अपने लिए बड़ा है।
अहा, हमारे आगे कितना कर्म-क्षेत्र पड़ा है।
(मै श गु द्वापर, पृ ४८)

युद्ध

१ रुग्ण होना चाहता कोई नहीं, रोग, लेकिन, आ गया जब पास हो।
तिक्त औषध के सिवा उपचार क्या? शमित होगा वह नही मिष्ठान्न से॥
(दिनकर की सूक्तियाँ, पृ ८२)

२ युद्ध को वे दिव्य कहते हैं जिन्होंने,
युद्ध की ज्वाला कभी जानी नही है।
(दिनकर नए सुभाषित, पृ २५)

३ श्वान-रारि नृप-युद्ध मोहि, लागत एक समान।
मही-खण्डहित नृप लरत, मास-खण्ड हित श्वान॥
(द्वा प्र मि कृष्णायन, पृ ४८१)

युद्ध उपकारक

१ तेगधार में जो तन छूटै, तै रविभेद मुक्त सुख लूटै।
जैतपत्र जो रन मे पावै, तौ पुहमी के नाथ कहावै॥
(गोरेलाल छत्र प्रकाश)

२ जीवै सो घर भुगिवै, जुझ्झै सुरपुर वास।
दोऊ जस कित्ती अमर, तजो मोह जग आस॥
(जोधराज : हम्मीररासो)

३ रनधीर छत्रिय कौ जुरनमे, दुहूँ भाँतिन है भली।
जीतै जु अरि-गन जाइ तौ, भोगै धरनि फूली-फली॥
जूझै जु सुद्ध त्रिसुद्ध तौ, स्वर्गापवर्गहि पावही।
तहँ करै मनमाने बिहार, न कबहुँ इह जग आवहि॥
(पद्माकर पद्यामृत हि स वि, पृ १८)

युद्ध और शान्ति

बज रहा बिगुल निनादित घोष
फूंक दो वशी के फिर श्वास
युद्ध और शान्ति यही दो गीत
आज तक मानव के इतिहास—
(रांगेय राघव मेधावी पृ ९२)

युद्ध : का कारण

१. होत, भये, ह्वै हैं सदा, सकै न कोई थाम।
रोटी के बिन विश्व में, नर-नाशक संग्राम॥
(रामेश्वर करुण : करुण सतसई, पृ. ६)

२. विविधता जब प्रबल होती है, लड़ाई के देवता रोते हैं;
दुनिया को एक करने की सनक से युद्ध उत्पन्न होते हैं।
(दिनकर की सूक्तियाँ, पृ. ८२)

युद्ध : का मार्ग

तुम जिसे मानते आये हो, उद्देश सभी से अच्छा है,
जन्मे हो जहाँ, जगत् भर में वह देश सभी से अच्छा है।
तुम सर्व-श्रेष्ठ हो जाति, सदा यह हठ पवित्र करते जाओ,
इस अहंकार के पालन में, मारते और मरते जाओ।
जो नहीं मानता हो तुमको, ठानो उस अभिमानी से रण।
(दिनकर चक्रवाल, पृ. २७१)

युद्ध :-वीर

१. भाजि न जाइ देखि करि, रण आवत अरि पूर।
'परसु राम' छाँड़े नही, जँह पग मंडे सूर॥
(परशुराम सागर, पृ. ४३)

२. औघट घाट कृपाण कौ, समर-धार विनु पार।
सनमुख जे उतरे, तरे, परे विमुख मँझधार॥
धनि-धनि सो सुकृती व्रती, सूर-सूर सतसंघ।
खड्ग खोलि खुलि खेत पै, खेलतु जासु कवंध॥
(वियोगी हरि : वीरसतसई, पृ. १०)

युद्ध : से भागना नहीं

१. मानुष देही जह दुर्लभ है, भैऔ जन्म न बारंबार।
तुम ना भजिऔ समर भुम्मि ते, कह फिरि चढ़ै वीर चौहान॥
(जगनिक : असली आल्ह खंड, पृ. १८)

२. सदा न माता उर में राखे, यारो जनम न बारम्बार।
पाँव पिछारू तुम मत धरियो, बुड़ि है सात साख का नाम॥
(जगनिक)

३ भाजि न जैओ तुम मोहरा से, बुडिहै साति साख को नाम।
जहू दिन कहिबे को रहि जैहै, यारो लाज तुम्हारे हाथ ॥
(जगनिक असली आल्हखड, पृ ७७)

४ भोला की डर भागियो, अन्त न पहुडै ऐण।
बीजो दीठा कुल वहू, नीचा करसी नैण ॥
(सूर्यमल्ल वीर सतसई, पृ ६५)

युवक ऐसे चाहिए

देश-प्रेम से उमड रहा हो
जिनकी वाणी मे जय-जय स्वर,
हम को एसे युवक चाहिए
सकें देश का जो सकट हर।
रस विलास के रहे न लोलुप
जिनमे हो विराग वैभव का,
अतुल त्याग हो छिपा देश हित
जिन्हे गर्व हो निज गौरव का।
जिन्ह देश के बधन लख कर
कुछ न सुहाना हो सुख साधन,
स्वतन्त्रता की रटन अधर में
आजादी जिनका आराधन ।
सिर को सुमन समझ कर के जो
अर्पित कर सकते हो माँ पर,
हमको ऐसे युवक चाहिए
सकें देश का जो सकट हर।
(सो ला द्वि युगाधार, पृ ४५)

युवक और युद्ध

जग जुवा जुद्ध हु को कबहु, सपने हु नहिं नाही करैं।
ऐसे परम रजपूत को, रन गिरत वारांगन वरैं ॥
('पदमाकर पचामृत' हिम्मत बहादुर विरदावली, पृ १७)

युवक प्रशंसनीय

डरैं न काहू दुष्ट सो, लरैं लोभ तन खोय।
करैं न शका काल की, युवक सराहिय सोय ॥
(रामेश्वर करुण करुण सतसई, पृ ६३)

युवक : सावधान

सावधान हे युवक उमंगो सावधानता रखना खूब ।
युवा समय के महा मनोहर विषयों में जाना मत डूब ।।
सर्व काज करने के पहले पूछो अपने दिल से आप ।
"इसका करना इस दुनिया में पुण्य मानते है या पाप ।।"
युवा समय के गर्मरक्त में मत बोओ तुम ऐसा बीज ।
वृद्ध-समय के शीत रक्त में फूलै चिंता फलै कुबीज ।।
पश्चाताप कुरस नित टपके बदनामी गुठली दृढ़ होय ।
उंगली उठै बाट में चलते मुंह पर बात न बूझै कोय ।।
अहंकार सर्वदा जगत में मुंह की खाता आया है ।
नय नम्रता मान पाते हैं सबने यही बताया है ।।
है प्रत्येक भव्यता के हित इस जग में निकृष्टता एक ।
विषय-रूप मिष्टान्न मध्य हैं विषमय आमय-कीट अनेक ।।
इन्द्रिय-विषय-शिखर दूरहिं ते महामनोरम लगते है ।
निकट जाय जांचे समझोगे रूप हरामी ठगते हैं । ।।
है प्रत्येक ऊंच में नीचा प्रति मिठास में कड़ुवा स्वाद ।
प्रति कुकर्म में शर्म भरी है मर्म खोय मत हो बरबाद ।।—गुजरातीबाई

(गि. द. शु. : हिं. का. को., पृ. ११३)

युवा-शक्ति

१.

ज्वाला-गिरि की ज्वालायें, ज्यों अम्बर में इठलातीं;
यौवन की तरल तरंगें, त्यों ताबड़-तोड़ मचातीं !
अत्याचारों को चुन कर, सीमा से परे ढकेलें;
मदमस्ती का मद मारें, जब यौवन खुल कर खेलें !
सत्ता के तोप-तमञ्चे, पत्ता से फट—फट जाते;
यौवन की छलक छबीली, जब युवक हृदय दिखलाते !
दानवता के हाथों से, मानवता वहां न मरती,
जन-जन की जहां जवानी, बन-बन कर वीर विचरती !

(रामेश्वर करुण : तमसा, पृ. २४९-५०)

२.

सहैं विजातिन के न क्यों, अत्याचार अखंड ।
सुप्त भई जेहि जाति की, युवा शक्ति बरिवंड ?

(रामेश्वर करुण : करुण सतसई. पृ. ६४)

योग यौवन में अनुचित

बूझिहि खुभी, आघरिहि काजर, नकटी पहिरै बेसरि ।
मुडली पाटी पारन चाहै, कोढी अगहि केसरि ॥
बहिरो सो पति मता करै, सो उतर कौन पै पावै ।
ऐसो न्याव है ता को ऊधो, जो हम जोग सिखावै ॥

(स भगवानदीन सूरपचरत्न, पृ ८)

योगी और भोगी

योगी डूबे योग मे, भोगी डूबे भोग ॥
योग भोग जावे नहीं, सो विद्वान अरोग ॥

(गिरिधर कुडलिया, पृ ८३)

योगी झूठे

कन्था मो जोगी सब नाहो, ठग है बहुत न चीन्हे जाही ।

(नूरमुहम्मद इन्द्रावती)

योगी झूठे और सच्चे

(क) जागिहि नहि पतिआइय, बैठिय पास न दौरि ।
देई भीषि मँगाइकै, बैठे देइ न पौरि ॥

(जायसी के परवर्ती पृ ४२९)

(ख) तपी न होहि भेस के किहे, रग-दुकूल माला के लिहे ।
उज्जल वास बीच भल आँगू, रहै छिपान, न चीन्है लोगू ॥
सुमिरन ध्यान राति दिन चाहै, इहै तपस्या पूरन आहै ॥

(नूर मुहम्मद अनुराग बासुरी, पृ ३२)

योद्धा

काय उतावली कवणी, जे मद पीवण जेज ।
कन्त समर्प्पं हेकलो, कटका ढाहि कलेज ।

(सूर्यमल्ल वीर सतसई, पृ ११६)

यौवन

१ यौवन क्या जिसके मुख पर, लहराता शोणित-रग नही ?
यौवन क्या जिसमें आगे बढने की अमर उमग नही ?
शैशव ही सुखमय है उस यौवन के आने के पहले ?
मर मर कर जीने की जिस मे उठती तरल उमग नहीं !

(सो ला द्वि युगाधार, पृ ५२ ५३)

२. मस्ती क्या जिसको पाकर फिर दुनिया की याद रही ?
डरने लगी मरण से तो फिर चढ़ती हुई ज्वानी क्या ?
(दिनकर की सूक्तियाँ, पृ. १२४)

३. कट जाती बंधन की कड़ियाँ, क्रांति उदय होती है,
जब यौवन जीवन-पथ पर तूफान लिए आता है।
(रामदरश मिश्र : पथ के गीत, पृ. २५,)

यौवन : अस्थिर

जाई जोवन धन मसलै हाथ। जोवन नवि गिणइ दीह ते राति ॥
जोवन राख्यो नु रहई। जोवन प्रिय विण होसीय छार ॥
(बीसल देव रासो, पृ. ४३)

यौवन : और बुढ़ापा

१. जोवन निसि सोवत रह्यो, स्याम बाल अँधियार।
जागि द्योस वृधपन भयो, सेत केस उजियार ॥
(जानकवि : सिष्यासागर)

२. मनुष्य जीना बहुकाल चाहता,
न वृद्ध होना वह याचता कभी,
गई न आई युवती दशा वही,
न आ गई, है जरठा दशा वही।
(अनूप : वर्द्धमान, पृ. ३२२)

यौवन : और साहस

पड़ी समय से होड़, खींच मत तलवों से काँटे झुक कर।
फूंक-फूंक चलती न जवानी चोटों से बच कर झुक कर ॥
(दिनकर : चक्रवाल, पृ. ५४)

यौवन : की अजेयता

हों युवक डूबे भले ही
है कभी डूबा न यौवन !
(बच्चन : अभिनव सोपान : पृ. १२२)

यौवन : की शक्ति

सत्ता के तोप तमंचे
पत्ता से फट फट जाते,
यौवन की छलक छबीली
जब युवक हृदय दिखलाते ।

दानवता के हाथों से
मानवता जहाँ न मरती,
जन जन की जहाँ जवानी
वन वन कर वीर विचरती।
(रामेश्वर करुण चिनगारी, पृ ८६-८०)

यौवन के गुण

काऊ रोग शरीरे सताय न सके सदा बड़ी जोम रहै तन में।
तरुणीन ते भोग-विलास करै पुनि भारी भँडार भरे धन मे॥
बहु दाम बढ़ाय कमाय घनो हरि रारि करै रिपु सों रन में।
कविराय गुपाल विचारि कहैं इतने सुख हैं तरुणापन में॥
(गुपालराय : दपतिवाक्यविलास, पृ ११९)

यौवन के दुःख

खेंचत लोभ दसौ दिसि को गहि मोह महा इन फाँसिहि डारे।
ऊँचे ते गर्व गिरावत क्रोधहु जीवहि लूहर लावन मारे॥
ऐसे म कोढ़ की खाज क्यो 'केशव' मारत कामहु बाण निनारे।
मारत पाँच करे पच कूटहि कासों कहैं जग जीव विचारे॥
(केशव दास रामचन्द्रिका प्रकाश, पृ २४)

यौवन के दोष

करै गरमाई निन्दा करत पराई चित,
लगत न जाई कहूँ भजन भलाई मे।
मद रहे छाई शिख सीखै न सिखाई मन
बसिबो करत सदा तरुणी पराई मे॥
करत लड़ाई मारू देन जाई ताई फिरे
औड्यो औड्यो डोलै भयो जौम अधिकाई में॥
करत बुराई निशि—दिवस बिहाई एनी,
अवगुनताई सदा होति तरुणाई मे॥
(गुपालराय दपतिवाक्यविलास, पृ ११९)

यौवन के नाश से अनादर

जोबन-जल दिन-दिन जस घटा। भँवर छपान, हस परगटा॥
सुभर सरोवर जौ लहि नीरा। बहु आदर, पखी बहु तीरा॥
नीर घटे पुनि पूछ न कोई। बिरसि जो लीज हाथ रह सोई॥
(जायसी ग्रथावली, पृ २७१)

यौवन : दोष-भंडार

इक भीजैं चहलैं परैं, बूड़ैं बहैं हजार।
किते न औगुन जग करै, वै नै चढ़ती बार॥

(बिहारी रत्नाकर, पृ. १९१)

यौवन : से सौंदर्य में वृद्धि

सरद तें जल की ज्यों दिन में कमल की ज्यों,
धन तें ज्यों थल की निपट सरसाई है।
घन तें सावन की ज्यों आप तें रतन की ज्यों,
गुन तें सुजन की ज्यों परम सुहाई है॥
'चिन्तामनि' कहै आछे अच्छरन छंद की ज्यों,
निसागम चन्द की ज्यों दृग सुखदाई है।
नग तें ज्यों कंचन वसंत तें ज्यों बन की,
यों जोवन तें तन की निकाई अधिकाई है॥

(कविता कौमुदी १, पृ. ४०२)

रणबांकुरे : और ज्योतिष

मिलतु न पत्रा में सुदिनु, भिरत न कादर मंद।
नहिं सोधत रण-बाँकुरे, नखत, वार, तिथि, चंद॥

(वियोगी हरि : वीर सतसई, पृ. ३०)

रति : सन्तानार्थ

धर्म करत अति अर्थ बढ़ावत। संतति हित रति कोविद भावत॥
संतति उपजत ही निसि वासर। साधत तन मन मुक्ति महीधर॥

(केशवदास : रामचन्द्रिका, प्रकाश १८)

रसाल

करूँ बड़ाई फूल की, या फल की चिरकाल ?
फूला—फला यथार्थ में, तू ही यहाँ रसाल !

(मै. श. गु. : साकेत, ६ सर्ग)

राग :—महत्त्व

आसरा मत ऊपर का देख, सहारा मत नीचे का माँग,
यही क्या कम तुझको वरदान, कि तेरे अन्तस्तल में राग;
राग से बाँधे चल आकाश, राग से बाँधे चल पाताल,
धँसा चल अँधकार को भेद, राग से साधे अपनी चाल !

(बच्चन : अभिनव सोपान, पृ. २०३)

राग-द्वेष का त्याग

रहित राग अरु द्वेष तें, इन्द्रिय जासु अधीन ।
जदपि सो भोगत सब विषय, पै प्रसन्न स्वाधीन ।।
(डा. प्र. मि. : कृष्णायन, पृ. ५४५)

राग-द्वेष की व्यापकता

रकत माहिं दनु लघु नारी । प्रगटत राग-द्वेष बनि भारी ।।
रहत न स्वत्व-अनत्व-विचारा । हरि कुटुम्ब धाम धरि छारा ।।
बनहुँ माहिं मुनिगहनों, निवसति नहिं निस्तार ।
दण्ड कमण्डलु हित लरत, देत परस्पर मार ।।
(डा. प्र. मि. : कृष्णायन, पृ. ७४८)

राग-द्वेष से क्लेश

रागद्वेष के दावानल से,
जलता है जग का कानन ।
उसे तीव्र करता रहता है,
क्षुद्र स्वार्थ का प्रबल पवन ।।
(डा. गो. श. सि. : जगदालोक, पृ. ११९)

राजकुमार वीर

जिन हाथन हठि हरषि हनत हरनीरिपुनन्दन ।
तिन न करत संहार कहा मदमत्त गयन्दन ?
जिन वेधत सुख लक्ष लक्षनृप कुँवर-कुँवर मनि ।
तिन बानन बाराह बाघ मारत नहिं सिंहनि ।
नृपनाथ-नाथ दसरत्थ सुनु अकथ कथा नहिं मानिए ।
मृगराज राजकुल कमल कहुँ बालक वृद्ध, न जानिए ?
(केशवदास : रामचन्द्रिका, प्रकाश २)

राजद्रोह

धरि पद राज-द्रोह-पथ माहीं । सकत लौटि पाछे कोउ नाहीं ।।
धरा धाम सुत वित तिय त्यागी । बुधजन करत यत्न जय लागी ।।
(डा. प्र. मि. : कृष्णायन, पृ. १३९)

राजनीति

मूसे पर साँप राखै साँप पर मोर राखै,
बैल पर सिंह राखै वाकै कहा भीति है ।

पूतनि कों भूत राषै भूतनि कों विभूति राषै,
छमुष कों गजमुष यहै बड़ी रीति है ।।
काम पर बांम राषै विष को अमृत राषै,
आगि पर पानी राषै सोई जग जीति है ।
'देवीदास' देषो ग्यांनी संकर की सावधानी,
सव वात लायक पै रापै राजनीति है ।।

(ना. प्र. सभा, याज्ञिक संग्रह)

२. सचिव दोष सों होत हैं, नृपहु बुरे ततकाल ।
हाथीवान प्रमाद सों, गज कहवावत व्याल ।।

(भारतेन्दु नाटकावली, पृ. २६३)

३. करि कै पथ्य विरोध इक, रोगी त्यागत प्रान ।
पै विरोध नृप सों किए, नसत सकुल नर जान ।।

(भारतेन्दु नाटकावली, पृ. ३१९)

४. धर्म या नीति से, धौर्य या प्रीति से,
शत्रु को मारिये, देश को तारिये ।।

(सत्यदेव परिव्राजक : अनुभव, पृ. २६)

५. राजनीतियों के पर्दों में अन्तिम नाश गँसा है।
तृष्णा का विकास भरमा कर नर को कव न हँसा है ?

(उ. शं. भ. : तक्षशिला, पृ. ६५)

६. शासन के यंत्रों पर रक्खो आँख कड़ी,
छिपे अगर हों, दोष, उन्हें खोलते चलो।
प्रजातंत्र का क्षीर प्रजा की वाणी है,
जो कुछ हो बोलना अभय बोलते चलो ।।

(दिनकर ; नये सुभाषित, पृ. २१)

राजनीति : का तत्त्व

पशु को नर, नर को सुर कर दे ।
सुर को कर दे जग हितकारी ।
जग हितकर सर्वाङ्ग समुन्नति
का सब को कर दे अधिकारी ।
शासन वह जो स्वर्गिक सा हो
मानो शासित ही न मही है ।।
राजनीति का तत्त्व यही है ।

(बलदेव प्रसाद मिश्र : साकेत सन्त, पृ. १८९)

राजपूत-प्रशंसा

लै असि हलु जोती मही, बोया सीस सुधान।
करि सुचि खेती जसु लुयो, धनि राजपूत किसान॥

राजा अच्छे व बुरे

सोइ नृपति जो तेज युत, देत तदपि नहीं ताप।
करत भूपति नित्य उठि, ते वसुधा अभिशाप॥
(द्वा प्र मि कृष्णायन, पृ २२१)

राजा और प्रजा

है न प्रजा के जिसकी भाषा भेस स्वभाव समान।
वह उनके हित पर कब देगा किस मतलब से ध्यान ?
(रा न त्रि मिलन, पृ ८६)

राजा और राजपूत धन्य

बद के बजे तें सूरवीर के सजें ते
पर फौज के गजे तें, तेगवाहे बल जूत हैं।
स्वामिन सहेत जीत जीत कुरुपेत लेत,
जोगिन बधावें नाचें भैरो अवधूत हैं।
भारे भुजदडन के पैज-कुल मडन के
कहत 'गोपाल कवि' कीरति अकूत हैं।
धन्य राजा पैज धन्य धन्य वह बश लाज
धन्य धन्य राजा धन्य धन्य राजपूत हैं।
(गोपाल चारण, वीरशतक, पद्य २)

राजा और समय

यथा अमल पावन पवन, पाय कुसग सुसग।
कहिय सुबास कुबास तिमि, काल महीस प्रसग॥
(तुलसी सतसई, पृ २५०)

राजा बुरा

सूम सर्वभक्षी दैववादी जो कुवादी जड,
अपयशी ऐसो भूमि भूपति न सोहिये॥
(रामचन्द्रिका, प्रकाश १८)

राजा : मूढ़ और चतुर

मूढ़ नृप जो अजा प्रजाहि मारि षायो चाहै
ताकों एक वार ही तो त्रपति (तृप्ति) निदान है।
बुद्धिमांन ह्वै कैं परिनाम ही विचारै चित्त
अजा प्रजा वीच तो अनेक वान पान है।
'देवीदास' कहै भूप पालत है पोष दे कैं
अजा प्रजा विरवें तें जानत सुजान है।
आमिप से दूध सों अघावे केऊ वार ता तें
राजन कों पारिवो प्रजा अजा समान है।

(याज्ञिक संग्रह १४)

राजा : शत्रु-नाशक

प्रात धर्म चिंतवै, सहज हित मित्र बिचारै।
चर चलाय चहुँ और, देस पुर प्रजा सभारै॥
राग द्वेष हिय गोप वचन अमृत सम वोलै।
समय ठोर पहिचान कठिन कोमल गुन खोलै॥
निज जतन करै संचै रतन न्याय मित्र अरि सम गनै।
रन मै निसंक हुय संचरै सो नरेन्द्र रिपुदल हनै॥

(वनारसीदास : नवरत्न कवित्त, पद्य ७)

राज्य-लोभ : पाप-मूल

राज्य का लोभ पाप का मूल,
गृह-कलह है नृप-कुल का शूल।

(वलदेव प्रसाद मिश्र : साकेत-सन्त, पृ. १३७)

राज्य-सिंहासन : प्रजाधरोहर मात्र

है प्रजा-धरोहर-मात्र राज्यसिंहासन,
संग्रह से है अत्युच्च त्याग का आसन।

(ताराचंद हारीत : दमयन्ती, पृ. ३०४)

राम :—कथा

रामकथा के ते अधिकारी। जिन्ह के सत्संगति अति प्यारी॥
गुरु-पद-प्रीति नीतिरत जेई। द्विज सेवक अधिकारी तेई॥

(रा. च. मा. गु. पृ. ६७८)

राम —चरण-प्रभाव

जहँ जहँ राम चरन चलि जाहीं। तिन्ह समान अमरावती नाहीं॥

(रा च मा गु पृ २९४)

राम —नाम

१ बोवत बबुर, दाख फल चाहत, जोवत है फल लागे।
'सूरदास' तुम राम न भजिकै, फिरत काल सग लागे॥

(सूर सागर, पृ २१)

२ राम राम कहि जे जमुहाही। तिन्हहि न पाप-पुंज समुहाहीं॥
उलटा नाम जपत जगु जाना। बालमीकि भए ब्रह्म समाना॥

(रा च मा गु पृ ३३६)

३ स्वपच सबर खस जमन जड, पाँवर कोल किरात।
राम कहत पावन परम, होत भुवन विख्यात॥

(रा च मा गु पृ ३३६)

४ वेद पुरान बिहाइ सुपथ कुमारग कोटि कुचाल चली है।
काल कराल, नृपाल कृपाल न, राज समाज बडो ई छली है॥
वर्ण विभाग न आश्रम धर्म, दुनी दुख दोष दरिद्र दली है॥
स्वारथ को परमारथ को कलि राम को नाम-प्रताप बली है॥

(तुलसीदास कवितावली)

५ आदि अन्त 'मथुरा' बरन, जपै विलोम न जोय।
मध्यम अक्षर तासु मुख मध्य करो सब कोय॥

(अर्जुनदास केडिया) भारतीभूषण, पृ ४९)

राम —रहीम

नही दूसरा है वह कोई, उसे रहीम कहो या राम,
भिन्न उसे कर सकते हो क्या, देकर भिन्न भिन्न कुछ नाम?
मंदिर मे जो मस्जिद मे भी, ज्योति उसी की फैली है,
यदि तुम देख नही सकते तो, दृष्टि तुम्हारी मैली है।

(सियाराम शरण गुप्त आत्मोत्सर्ग पृ २०)

राम —बिना सम्पदा व्यर्थ

राज-पाट हय गज रथ प्यारे बहु विधि अन्न धनधाम सभी।
हीरा मोती पन्ना मानिक कनक मुकुट उर दाम सभी।

खाना पीना नाच-तमाशा लाख ऐश-आराम सभी
जैसे विजन निमक विना त्यों राम विना बेकाम सभी ॥
(भा. ग्रं. द्व. खं., पृ. ८६५)

राम :—विमुख को दुख

१. लोकहुँ वेद विदिति कवि कहहीं । राम विमुख थलु नरक न लहही ।
(रा. च. मा. गु., पृ. ३६६)

२. हिम ते अनल प्रगट वर होई । विमुख राम सुख पाव न कोई ॥
(तुलसीसूक्ति पृ. ४३३)

राम :—विमुख त्याज्य

जाके प्रिय न राम-वैदेही ।
तजिये ताहि कोटि वैरी सम, जद्यपि परम सनेही ॥
तज्यौ पिता प्रहलाद विभीषन वन्धु भरत महतारी ॥
वलि गुरु तज्यौ,कंत ब्रजवनितन्हि, भये मुदमंगलकारी ॥
'तुलसी' सो सव भांति परमहित पूज्य प्रान ते प्यारो ॥
जासों होय सनेह रामपद एतो मतो हमारो ॥
(तुलसीदास : विनयपत्रिका पृ. २८२)

राष्ट्र-भावना

जाति, धर्म या सम्प्रदाय का नहीं भेद व्यवधान यहाँ ।
सवका स्वागत सव का आदर सवका सम-संमान यहाँ ॥
राम रहीम बुद्ध ईसा का सुलभ एक-सा ध्यान यहाँ ।
भिन्न-भिन्न भवसंस्कृतियों के गुण गौरव का ज्ञान यहाँ ॥
नही चाहिए बुद्धि बैर की, भला प्रेम-उन्माद यहाँ ।
सवका शिव कल्याण यहाँ है, पावें सभी प्रसाद यहाँ ॥
(मै. श. गु. : मंगलघट, पृ. २६२)

राष्ट्रभाषा (दे. 'हिन्दी' भी)

१. अरे, अड़ो मत अलग वोलियों को ले लेकर,
पार करेगी नाव राष्ट्रभाषा ही खे कर ।
यदि अनुदार विचार धार मे वह जाओगे,
कह सुन कर भी मूक वधिर ही रह जाओगे ॥
(मै. श. गु. : राजा-प्रजा, पृ. ४५)

२. जो थी तुलसी, चन्द, सूर, भूषण को प्यारी,
थे रहीम, रसखान आदि जिस पर वलिहारी ।

छवि ने सब को लुभा लिया जिसकी मनहारी,
सचमुच भाषा सकल राष्ट्र की यही हमारी ॥
(आरसी प्रसाद सिंह आरसी पृ १२१)

राष्ट्र-शक्ति

हो जनता सगठित, राज्य का दृढ़ भविष्य तब जानो ।
पुरस्कार अच्छे शासक का, प्रजा भक्ति को मानो ॥
(सत्यदेव परिव्राजक अनुभव, ४२)

राष्ट्र-सन्देश

अपनी भाषा है भली, भलो आपुनो देस ।
जो कुछ अपनो है भलो, यही राष्ट्र सदेस ॥
जो हिन्दू हिन्दी तजै, बोलें इंगलिश जाय ।
उनकी बुद्धी पै पर्यो, निहचय पाथर आय ॥
जाको अपनी जाति को, नहिं नेकहु अभिमान ।
कूकर सम डोलत फिरै, सो तो वृथा जहान ॥
कुल कपूत करनी निरखि, धरनी के उर दाह ।
धधकि उठत सोई कबहुँ, ज्वालगिरि की राह ॥
निरखि कुचाल कुपूत की, धरनी धरत न धीर ।
नैनन निझर सो झरत, मानें तातो नीर ॥
देसन मे भारत भलो, हिन्दी भाषन माहि ।
जातिन मे हिंदू भलो, और भलो कुछ नाहिं ॥
(जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी)

राष्ट्रीय एकता

बहु प्रान्तो की वाणी का जन मानस हो रस सगम,
सास्कृतिक दैन्य की खाई फिर पटे युगो की दुर्गम ।
उत्तर दक्षिण छोरो पर नव सेतुबध हो निर्मित ॥
इस जन विशाल भू मे हो राष्ट्रिय एकता प्रतिष्ठित ।
(सु न प लोकायतन, पृ १६६)

राष्ट्रोत्थान-मन्त्र

राष्ट्र उत्थान हो योग्य सन्तान से, धीर विद्वान नीतिज्ञ धीमान से ।
त्याग आदर्श हो राज्य के मूल में, शक्ति तृष्णा न व्यापे कभी भूल मे ॥
(सत्यदेव परिव्राजक अनुभव, पृ ३१)

राह : अपनी

अपनी राह न छाड़िये, जो चाहहु कुशतात ।
बड़ी प्रबल रेलहु गिरत, और राह मे जात ॥

(सं. राम कवि : हिन्दी सुभाषित, पृ. ४२)

रुचि-भेद

१. जो जेहि रस नित है मकरंदी, ता चरचा सुनि होइ अनन्दी ।
तपी तपस्या सन सुख पावै, मदिरा बात मद्दपहि भावै ॥
विद्या रागी विद्या सुनै, फूल सनेही फूलै चुनै ।
जो जाको मन भावन होइ, ता गुन सन मुद मानै सोइ ॥

(नूर मुहम्मद : अनुराग बांसुरी. पृ. २४)

२. आरों की क्या कहिये,
निज रुचि ही एकता नहीं रखती ;
चन्द्रामृत पीकर तू
चकोरि, अंगार है चखती !

(मै. श. गु. : साकेत, ९ सर्ग)

रूपया

रोइ रोइके पाइये, रुपिया जिसका नाम ।
जब जाये फिर रोइये, इह सुख जिसको काम ।

(गिरधर : कुंडलिया, पृ. ७२)

रूप : अस्थिर

रूप है वह पहला उपहार
प्रकृति जो रमणी को देती ।
और है यही वस्तु वह जिसे
छीन सब से पहले लेती ॥

(दिनकर : नये सुभाषित, पृ. ६)

रूप : और कार्य

दरपन मैं मुप देपियै, जो नीकी छवि होइ ।
कहि धौ आछै बदन सौं, काजु करै लघु कोइ ॥

तो लच्छिन नीके करहु, सुप कुरूप जो होइ।
एक ठौर चित कीजियें, कहो बुराई दोइ॥
(जानकवि सिख्यासागर)

रूप और गुण

१ कहा रूप कहि कोकिलहि। गुन करि सब सुप दाइ॥
अति उज्जल बक गुन बिना॥ काहू कूं न सुहाइ॥
२ गुन बिन रूप निकाज गनि। ज्यों जलनिधि को तोइ।
देपत को अनहो भलो। प्यासो पियै न कोइ॥
३ कहा रूप कुबजा कहउ। गुनन कृप्न बस कीन।
गुन ग्राहक प्रिय देप कै। रूप रह्यो दिन दीन॥
४ कौन काज धन, धर्म, बिनु, भक्ति बिना गृह कूप।
कहो लाल कीजइ कहा। गुन बिनु सुंदर रूप॥
(लाल (?) रूप गुण सवाद)
५ सावन नव बरसन जलद, कारे तदपि ललाम।
कातिक घन की उजरई, कहु आवै केहि काम ?
(किशोरीदास वाजपेयी तरंगिणी, पृ ४९)

रूप और प्रेम

रूप प्रेम पर का अभिमानू ? दोऊ तजि घट जाहिं निदानू॥
सदा न रूप रहत है, अंत नसाइ।
प्रेम रूप के नासहि, तें घट जाइ॥
(नूरमुहम्मद अनुराग बांसुरी, पृ ६)

रूप और विद्या

नही रूप कछु रूप है, विद्या रूप निधान।
अधिक पूजियत रूप तें, बिना रूप विद्वान॥
(दो द गि ग्र, पृ ८१)

रूप और शील

रूपवन्त जौ सत मैं लहिये। सोना और सुगंध सु कहिये।
सत बिन रूपवन्त जो आहि। इंद्रायन फल सो ताकाहि॥
(जानकवि सतवंती सत, पत्र १)

रूप की महिमा

रूप कियो करतार को। गुन मानुप आधीन।
रूप नराइन रूप सो। गुन का करैऽव दीन॥

वसी करन संसार को। रूप विधाता कीन।
गुन बपुरा जौ देपीयै। तऊ रूप आधीन ॥
गुन तो लोभी लालची। और सुनो कोउ कान।
रूप न इतनी जानइ। देखे चतुर सुजान ॥
(लाल (?) : रूप गुण-संवाद, पत्र ७५)

रूप : सुन्दरतम

कच्ची धूप-सदृश प्रिय कोई धूप नहीं है,
युवती माता से बढ़ कोई रूप नहीं है।
(दिनकर : नये सुभाषित, पृ. ७)

रोगी और वैद्य

नहिं रोगी बताइहै रोगहि जौ,
सखी बापुरो वैद्य कहा करिहै ॥
(भारतेन्दु नाटकावली, पृ. ५०९)

रोटी (दे. 'पेट' भी)

बटमारी चोरी, ठगी दुख, दारिद-संताप।
रोटी को निहचै भये, गये लखहिं सब आप ॥
(रामेश्वर करुण : करुण सतसई, पृ. १०)

रोटी : का प्रश्न

१. सौ बातन की बात इक, बादि करै को तूल।
है इक रोटी-प्रश्न ही, सब प्रश्नन कौ मूल।
(रामेश्वर करुण : करुण सतसई, पृ. १२)

२. सब प्रश्नों का परदादा
यह रोटी प्रश्न अकेला,
नित सबको नाच नचाता
हों आप गुरु या चेला।
(रामेश्वर करुण : चिनगारी, पृ. ८२)

रोटी : का सौन्दर्य

कलाकार! कहते हो रोटी में सौन्दर्य नहीं कुछ मिलता!
मेरा जीवन पुष्प सदा, कवि, रूखी ही रोटी से खिलता!
(श्रीमन् नारायण : रजनी में प्रभात का अंकुर, पृ. १०७)

रोटी की अनिवार्यता

सच है, अगर लोग भूखे हैं, भूख मिटानी ही होगी,
चाहे मिले जहाँ लेकिन, रोटी तो लानी ही होगी।
सच तो है, रोटियाँ नहीं तो क्या ये कविता खायेंगे ?
थाली में धर कर विराट कवियों के गीत चबायेंगे ?

(दिनकर चक्रवाल, पृ ३६७)

रोटी की महिमा

वह कौन जिसे बिन पाये, बेकार खजाना जग का,
जिसके बिन सूना लगता, श्रृंगार बड़ा कंचन का ?
वह कौन जिसे बिन पाये, तन मन में रहे उदासी
नित जिसके लिए भटकते, योगी भोगी सन्यासी ?
वह कौन तनिक सी होकर, तन मन की कली खिलाती
मुँह मे जाते ही जिसके, काया में रंगत आती ?
सब प्रश्नों का पर-दादा, यह रोटी प्रश्न अकेला,
नित सबको नाच नचाता, हो आप गुरू या चेला।

(रामेश्वर 'करुण' तमसा, पृ ५५-७)

लक्ष्मी का व्यवहार

श्रीपति ने गो-सेवा की है, वही बुद्धि लक्ष्मी की भी है।
नर पशु की सेवा करती है, विज्ञ से सुदूर रहती है॥
धनीगेह में भी जाती है, कभी न जाती निर्धन घर मे।
वारिधि में गंगा गिरती है, कभी न गिरती सूखे सर मे॥
उद्यमहीन आलसी जे नर, रमा न रहती है उनके घर।
जैसे तरुणी बूढ़े वर से, प्रेम नहीं करती है उर से॥

(रामचरित उपाध्याय लक्ष्मीलीला)

लक्ष्मी का स्वागत

आपु आवती लक्ष्मी, को मूरख नहिं लेत।
सोऊ बिन माँगे मिलै, तो केवल हरि देत॥

(भारतेन्दु नाटकावली, पृ १०४)

लक्ष्मी की चंचलता

कूर सदा भाखत पियहि, चचल सहज सुभाव।
नर गुन औगुन नहि लखत, सज्जन खल सम भाव॥

डरत सूर सों भीरु कहँ, गिनत न कछु रति-हीन ।
वारनारि अरु लक्ष्मी, कहो कौन बस कीन ।।
(भारतेन्दु नाटकावली, पृ. २४४)

लक्ष्य और साधन

अन्तिम लक्ष्य बना देता है, पतित साधनों को भी पावन,
यह सिद्धान्त निपट मिथ्या है, न लें सहारा इस का जग-जन;
जो साधन नर के शोणित से, लथ-पथ वे कब हैं श्रेयस्कर ?
आओ जग-जन, आज त्याग दें, यह सिद्धान्त कुरूप घृणाकर ।
(बा. कृ. श. न. : हम विषपायी जनम के, पृ. ७०)

लक्ष्य : परम

सौदा सौदा है तभी, अगर सेवा है,
सेवा सेवा है तभी, अगर अर्पण है ।
अर्पण अर्पण है तभी, अगर पीड़ा है,
पीड़ा पीड़ा है तभी, अगर सोऽहं है,
सोऽहं जब त्वं हो जाय तभी सोऽहं है,
सोऽहं का त्वं में लय ही लक्ष्य परम है ।
(प्रयाग नारायण त्रिपाठी : तीसरा सप्तक, पृ. ३७)

लगन : मन की

मन के लिए लगन हो एक, मगन रहे वह रक्खे टेक ।
इतने से ही तुम कृतकृत्य, करती रहे नियति निज नृत्य ।
मन को एक केन्द्र मिल जाय, तो इन्द्रासन भी हिल जाय ।
इतना करो किसी भी तौर, स्वयं करा लेगा मन और ।
भाई, इसे न जाओ भूल, मन ही बन्ध-मोक्ष का मूल ।।
(मै. श. गु. : हिन्दू, पृ. १६३—४)

लगन-मुहूर्त्त

१. मन ते इतने भरम गंवावौ ।
चलत विदेस विप्र जनि पूछो, दिन का दोष न लावौ ।—मलूकदास
(सन्त सुधासार, खंड २, पृ. ३३)

२. लगन मुहूरत झूठ सब, और बिगाड़ै काम ।
और बिगाड़ै काम, साइत जनि सोधै कोई ।

एक भरोसा नाहिं, कुसल कहवा से होई ॥
'पलटू' सुभ दिन सुभ घडी याद पडै जब नाम ।
लगन मुहूरत झूठ सब और बिगाडै काम ॥
(सन्त सुधासार, खड २, पृ २२८)

लघुता और अहकार

शिखरो से ऊपर उठने देती न हाय ! लघुता आपी,
मिट्टी पर झुकने देता है देव ! नही अभिमान हमे ।
(दिनकर की सूक्तियाँ, पृ ११४)

लज्जा

पशु और नरों की, एक भेदिका लज्जा,
कुल-वधुओं की है सर्व श्रेष्ठ यह सज्जा ।
(ताराचद हारीत दमयन्ती, पृ ६८)

लज्जा और वस्त्र

हृदय नग्न, तो सात पटो के भी आवरण वृथा हैं,
वसन व्यर्थ, यदि भली-भाँति आवृत भीतर का मन हैं ।
(दिनकर की सूक्तियाँ, पृ १०८—९)

लज्जा सौन्दर्य-वर्द्धिनी

उगी हुई कटक के तले सदा
यथा लखाती अति ही मनोज्ञ है,
तथा कँटीले भ्रू व के तले लसी
सलज्ज की सुन्दर आँख सोहती ।
(अनूप वर्द्धमान, पृ ५५७)

लडका अनुशासन में

लरका रखिये हटक मे, नाहिं चाढिये सीस ।
नित प्रति लाड लडाइयें बिगरत बिसवा बीस ॥
बिगरत बिसवा बीस, हाथ हूँ नर नहिं आवै ।
सोभन सभा न बीच, ऊँच पद कबहुँ न पावै ॥
कहत नाथ कवि बाल, होत वह वासी दर का ।
कोर जतन हूँ किये फेर सुधरत नहिं लरका ॥
(नाथिया कुंडलिया, पद्य २०५)

लाभ और हानि –

जो प्राप्ति हो फूल तथा फलों की,
मधूक, चिन्ता न करो दलों की।
हो लाभ पूरा पर हानि थोड़ी,
हुआ करे तो वह भी निगोड़ी ॥

(मै. श. गु.: साकेत, पृ. ३११)

लिपि और भाषा

अब एक लिपि से ही अधिकतर एक भाषा इष्ट है,
जिसके बिना होता हमारा सब प्रकार अनिष्ट है।
अतएव है ज्यों एक लिपि के योग्य केवल 'नागरी',
त्यों एक भाषा योग्य है 'हिन्दी' मनोज्ञ उजागरी ॥

(मै. श. गु. : पद्य-प्रबंध, पृ. ७१)

लेखक : चोर

बाजार में हिन्दी के बिगड़े सपूत अब,
हाथ की सफाई औ तमाशा दिखाते हैं;
कैंची है इनकी माँ, गोंद इनके पिता जी,
दूसरों की काट कर अपने चिपकाते हैं।

—गोपाल कृष्ण कौल
(सं. शिवदानसिंह चौहान : काव्यधारा १, पृ. १६८)

लेखन

नारि हरि जाति नहिं बात कहि जाति वहु
देह दहि जात जोर घटै कर गाई को।
भोजन पचै न पास आदमी रुचै ना कछु
नफाहू बचै न ऐसी करत कमाई को ॥
नैन जल भरे औ नितंब दुख धरै जब
दिन भरि अरै तब पावै कछु याई को।
काम पर्यो जाई सोई जानतु है याई यह
कहत गुपाल काम कठिन लिखाई को ॥

(गुपाल राय : दंपति वाक्यविलास, पृ. २७)

लोक :—परलोक

यह निकेवल वहम ही, उस पार है आनन्द।
वहां मृदु संगीत होगा, यहाँ है आक्रन्द।

मद-बुद्धि विवेक विकलित सोचता है दूर।
वर्तमान बिगाड़ना भी, भूल है भरपूर।
हिम पात होना यहाँ, मेघ मल्हार गाकर क्या करोगे?
इस पार जब मन नहीं भरा, उस पार जाकर क्या करोगे?
(सागरमल कुछ कलियाँ कुछ फूल, पृ ७०)

लोक —सेवा

१ ईश्वर-भक्ति लोक-सेवा है, एक अर्थ दो नाम।
वन मे बस कैसे हो सकता, है मनुजोचित काम?
पृथ्वी पर सुख-शान्ति बढ़ाना, देकर निज श्रम-शक्ति।
मनुष्यता का अर्थ यही है और यही हरि-भक्ति॥
(रा न नि मिलन, पृ १२)

२ जब लगे तब हाथ पर हित में लगे,
है जनमता जीव जग हित के लिए।
लोक क्या परलोक भी बन जायगा,
जी लगाकर लोक की सेवा किये॥
धन कमायें तो करें उपकार भी,
यह अगर है काल तो वह व्याल है।
धन तजें पर लोक-सेवा तज न दें,
हाथ का यह मैल है वह माल है॥
(हरिऔध चुभते चौपदे, पृ १६८)

लोक —हित की कामना

युधिष्ठिर —राम, अब भी मैं यही कहता हूँ मन से,
कामना नहीं है मुझे राज्य की वा स्वर्ग की।
किं वा अपवर्ग की भी, चाहता हूँ मैं यही
ज्वाला ही जुड़ा सकूँ मैं अपनो के दुःख की॥
भोगूँ अपनों का सुख, मेरा 'पर' कौन है?
सब सुख भोगें, सब रोग से रहित हो,?
सब शुभ पावें न हो दुखी कहीं कोई भी।
(मै श गु जय भारत, पृ ४००)

लोकापवाद

१ अयश-भोग की जानकी, मणिचोरी की कान्ह।
तुलसी लोग रिझाइबो, करसि कातिबो नाह॥
(तुलसी सतसई, पृ २३६)

२. लोकन के अपवाद को, उर करियै दिन रैन।
रघुपति सीता परिहरी, सुनत रजक के वैन॥
(सतसई सप्तक, वृन्द सतसई, दोहा ६३९)

लोभ

१. लालच बाँधा सब संसारा। लालच सों मृदु होय पहारा।
लालच हस्ती कर बल हरा। लालच सों हरनाकुश धरा॥
(उसमान : चित्रावली)

२. जिससे होता ही रहे, अन्य जनों को क्षोभ।
है आनन्दित-कर नहीं, निन्दित है वह लोभ॥
(हरिऔध : सतसई, पृ. ४६)

३. सम्पूर्ण पापों का पिता बस लोभ ही को जानिए।
वह कौन-सा दुष्कृत्य है जिस को न करता लालची॥
(रा. च. उ. : मुक्ति मंदिर, पृ. १८)

४. हुआ लोभ से मोह, मोह से अब भय आया,
मृत्यु संग भी कभी हमें जो दवा न पाया।
(मै. श. गु. : कावा और कर्वला, पृ. ७१)

लोभ : और धर्म

लोभ लगै जग में सुप्रिय, धरम न तैसे होय।
महिषी पालत छीरहित, तथा न कपिला होय॥
(दी. द. गि. ग्रं., पृ. ७७)

लोभ : का त्याग

१. मन गज जग सर मांहि, लोभ ग्राह बस कर लियो।
तुरत छुड़ावण ताहि, होय संतोष हरि हमैं॥
(बाँकीदास ग्रंथावली, ३, पृ. ५३)

२. सम्पत्ति सुजस का न अन्त है विचार देखा,
तिसके लिए क्यों सोक सिन्धु अब गाहिये।
लोभ की ललक में न अभिमानियों के तुच्छ,
तेवरों को देख उन्हें संकित सराहिये॥
दीन गुनी सज्जनों से निपट विनीत बने,
'प्रेमघन' नित्य नाते नेह के निवाहिये।

राग रोष औरो से न हानि लाभ कुछ उमी,
नन्द के किसोर की कृपा की कोर चाहिये ॥
(बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमधन')

लोभ की निन्दा

पाप का क्षणिक प्रभाव विलोक, लोभ यदि सके न कोई रोक।
शोक, तो उसकी मति पर शोक! बना क्या, बिगडा जब परलोक ?
विजय है वही कि सब संसार, करे पीछे भी जय-जय कार।
(मै श गु वनवैभव पृ २१)

लोभ से दुख

मनुष्य लोभी धन ही विलोकता
न देखता द्रव्य विपत्ति-हेतु है,
यथैव मार्जार विलोकता दही
न देखता दंड तना समक्ष हो।
(अनूप वर्द्धमान पृ ४४०)

लोभ से हानि

निज परछाई नीर मे, देखन लपको स्वान।
मुख हू की रोटी बही, भौंकत रह्यौ अजान ॥
टरे न दुर्जन लालची, करो लाख अपमान।
मक्खी फिर फिर आत है, तजे न जब लग प्रान ॥
(स रामकवि हिन्दी सुभाषित, पृ १०८)

लोभादि में सहायक

लोभ कें इच्छा दंभ बल, काम कें केवल नारि।
क्रोध कें परुष वचन बल, मुनिवर कहहिं विचारि ॥
(दोहावली, दो २६५)

लोभी

१ लोभी बगरूरे कौ सो पात।
साच छानि को फूस धूम सौ का के नैन समात ॥
पावस सलिता के तिनका ज्यो, चलत न कहूँ थटान।
दामनि लगि गनिका लौं, निसि दिन सबके हाथ बिकान ॥
निलजन सकुच नहि घर माही, मन ही सो सनरात।
भखिहा कूकर लो, कारो मारत हूँ किकियान ॥
(व्यासवाणी, पृ १३८)

२. घरु घरु डोलत दीन ह्वै, जनु जनु जाचतु जाइ।
दियैं लोभ-चसमा चखनु, लघु पुनि वड़ो लखाइ॥
(बिहारी रत्नाकर, पृ. ६७)

लोभी और भेष

यौं लोभी भेषन धरत, नहिं चीन्हत गुरु इष्ट।
डसे कामना सर्प नैं, नीवू लगतु ज्यों मिष्ट॥
(चाचा : विवेक., दोहा, १४४)

लोभी : और सम्पत्ति

सिसु कै साध नहीं तिय की कछु, नगन होत तिह सौ न लजावै।
सोई निरखित गुरुन पुरुषन कों, नेक न अपनो अंग दिखावे॥
तैसे अवनि लोभवंतनि को, निज संपति कहु निजर न आवै।
है मनराम महत अवंछिक, तिन्ह को नाना विधि दरसावै॥
(मनराम : मनरामविलास, पद्य ४१)

लोभी : स्वार्थ-प्रधान

लोभिहि प्रीति काहु ते नाही। स्वार्थहि इक निवसत मन माहीं॥
कूप तृणावृत दारुण जैसे। संवृत-आशय लोभिहु तैसे।
(द्वा. प्र. मि. : कृष्णायन, पृ. ४९०)

लोहा

सोने का बाज़ार मन्द है औ लोहे का तेज;
पाठ यही इतना है बच्चा, उलट रहा क्या पेज ?
अगर काटनी है चाँदी तो सोने से ले लोहा,
फिर क्या तुलसी चौपाई क्या रहीम का दोहा।
(जानकी वल्लभ शास्त्री : नयी कविता, अंक २, १९५५, पृ. ७७)

वंश और सन्तान

होइ भले कें अनभलो, होइ दानि के सूम।
होइ कपूत सपूत कें, ज्यों पावक में धूम॥
(तुलसीदास : दोहावली, दोहा ४८०)

वंश-कुल

क्या हुआ उच्च वंश में जनमें, जो जँचा जी में पाप का कूँचा।
नीच कुल का हुए न कुछ विगड़ा, जो हृदय हो महान औ ऊँचा॥
(हरिऔध : पद्य प्रमोद, पृ.१४५)

वचन (दे 'वाणी' भी)

वचन हँसावै मनुष्य कहँ, वचन रोवावै ताहि ।
वचनहु तेँ यह जगत मो, कीरत परगट आहि ॥
(नूर मुहम्मद इन्द्रावती, स्तुतिखड)

वचन-पालन

जीत हार कुछ भी मिले, रखना अपनी आन ।
डटा रहे निज वचन पर, नर की यह पहचान ॥
(श्रीमन् नारायण रजनी मे प्रभात का अकुर, पृ ११६)

वधू

देवी उसको मानते हैं महि के मतिमान ।
जो प्रियतम को समझती है देवता समान ॥
है वह शुचि रुचि सहचरी है वह परम उदार ।
जो से प्यारा है जिसे प्रिय पति का परिवार ॥
जीवन-धन पर जो सती सकी स्वजीवन वार ।
है असार ससार मे उसका जीवन सार ॥
(हरिऔध मर्मस्पर्श, पृ १५८)

वधू के प्रति

आती हो तुम, सौ सौ स्वागत,
दीपक बन घर को आओ ।
श्री शोभा सुख स्नेह शाति की
मगल किरणें बरसाओ ॥
प्रभु का आशीर्वाद तुम्हें,
सेंदुर सुहाग शाश्वत पाओ ।
सगच्छध्व के पुनीत स्वर
जीवन मे प्रतिपग गाओ ॥
(सु न प स्वर्णधूलि, पृ ५८)

वर

समझ सका जो प्रेम पथ, पथिको का अधिकार ।
यह पति पति है है जिसे, पत्नी सच्चा प्यार ॥
वनिता-मुख पर दृग रहे कभी उसे दुख दे न ।
कर वैदिक विधि से वरण, वर वरना भूले न ॥

सदा विपुल पुलकित रहे कर अरुचिर रुचि अन्त ।
कभी अकान्त बने नहीं कान्त कहा कर कन्त ।।

(हरिऔध : मर्म-स्पर्श, पृ. १५३)

वर्ण :—जाति

१. एक बूंद एकै मल मूतर एक चाम एक गूदा ।
एक जोति थैं सब उतपना, कौन बाह्म कौन सूदा ।। (कबीर)

(कबीर ग्रंथावली, पृ. १०६)

२. ब्राह्मण सो जो ब्रह्म पिछानै, बाहर जाता भीतर आनै ।
पाँचो बस करि झूठ न भाखै, दया जनेऊ अन्तर राखै ।।—चरणदास

(स. वियोगी हरि : संतवाणी, पृ. ७१)

३. खत्री ब्राह्मण शूद्र बैस को, जाति पूछि नहिं देता दाता ।—नानकदेव

(सं. वियोगी हरि : संतवाणी, पृ. ६७)

वर्ण : धर्म के पालन से देशोत्थान

ब्राह्मण बढ़ावें बोध को, क्षत्रिय बढ़ावें शक्ति को ।
सब वैश्य निज वाणिज्य को, त्यों शूद्र भी अनुरक्ति को ।।
यों एक मन होकर सभी कर्त्तव्य के पालक बनें ।
तो क्या न कीर्ति-वितान चारों ओर भारत के तनें ।।

(मै. श. गु. : भारत भारती, पृ. १६७)

वर्ण : स्वस्वकर्त्तव्य पालन

कै बूझिबौ, कि जूझिबौ, दान, कि काय-क्लेश ।
चारि चारु परलोक-पथ, यथायोग उपदेश ।।

(तुलसी सतसई, पृ. २३८)

वर्ण-व्यवस्था

अपना चातुर्वर्ण्य विधान, है गुण-कर्म-स्वभाव-प्रधान ।
छोड़ो ऊँच नीच का दम्भ, सम है हम सब का आरम्भ ।।
सभी जन्म से शिशु सुकुमार, फिर गुण कर्म प्रकृति संस्कार ।
इन चारों के ही अनुसार, वर्णो के हैं चार प्रकार ।
ये चारों ही मान्य समान, हो समाज में सबका मान ।।

(मै. श. गु. : हिन्दू पृ. ९१—९२)

वर्ण—व्यवस्था और साम्यवाद

जहाँ-जहाँ विवेक मय मानव को प्रदीप्ति दिखलायी,
उसने देश काल से समत वर्ण व्यवस्था पायी।
हिंसा-आश्रित साम्यवाद भी घोष यही तो करता—
क्यों मानव मानव हाथों से पीड़ा पाकर मरता॥
(गिरिजादत्त शुक्ल तारकवध, पृ ५५२)

वर्णाश्रम और ब्रह्म विद्या

आश्रम वर्ण कुल पथ में जा का है आवेश।
ब्रह्मविद्या ता हृदय में नाही करत प्रवेश।
(गिरिधर कुंडलिया, पृ ८४)

वर्तमान का महत्व

किसने देखा है भूतकाल, किसने देखा है नव भविष्य ?
भावी, अतीत को रूप-नाम का वर्तमान ही करे दान !
क्या देखें फिर कर भूतकाल जब है सदा शाश्वत वर्तमान।
(श्रीमन् नारायण रजनी में प्रभात का अंकुर, पृ. ७६)

वर्तमान से प्रेम

कायर है वह जो अतीत की छलना में विस्मृत रहता है,
वर्तमान की प्रखर अग्नि में तपकर पीछे को मुड़ता है।
(रांगेय राघव मेधावी, पृ २००)

वशीकरण लोक का

विमल चित्त कर मित्त, शत्रु छलबल वश किज्जय।
प्रभु सेवा-वश करिय, लोभवन्तहि धन दिज्जय॥
युवति प्रेम-वश करिय, साधु आदर वश आनिय।
महाराज गुण कथन, बंधु समरस सनमानिय॥
गुरु नमन सीस रस सों रसिक, विद्या बल बुद्धि मन हरिय।
मूरख विनोद विकथा वचन, शुभ स्वभाव जगवश करिय॥
(बनारसीदास बनारसीविलास, पृ १७४)

वसीला

चतुर गवैया होय, वेद का पढ़ैया चाहे,
समर लड़ैया होय, रणभूमि चोड़ी में।
जानत समैया होय, 'भीर' कवि क्यों ही चाहे,
बात को जनैया होय, नैन की कनौडी में॥

नीति पै चलैया होय, पर उपकार आदि,
कुशल करैया काज, हाथ की हथौड़ी में।
गुनन को शीला होय, तौऊ ना वसीला विन,
कोऊ है पुछैया भैया, तोहिं तीन कौड़ी में॥
(सै. अ. अ. मीर)

वसुंधरा : वीर-भोग्या

१. या वसुधा कों भाग भरि भोगत भुज मजबूत।
कहा भोगि हैं भुमि ए कादर कूर कपूत॥
(वियोगी हरि : वीर सतसई, पृ. ३९)

२. विजय और वसुधा ये दोनों,
बड़े बाप की बेटी हैं;
कापुरुषों की नहीं, सदा ये
बलवानों की चेटी है।
(बा. कृ. श. न. : हम विषपायी जनम के, पृ. ४०८)

३. है वीर-भोग्य यह अवनी,
वे सहज ईश सब धन के।
सिहासन है उन ही का,
जो रहे न दुर्बल मन के॥
(बलदेव प्रसाद मिश्र : साकेत-सन्त, पृ. ३५)

४. मिटने वाले बीजों का ही तरुओं पर फल है,
वसुंधरा उसकी है जिसके हाथों में बल है॥
—रघुवीरशरण मित्र
(सं. रामदत्त भारद्वाज : ऋतम्भरा, पृ. ९२)

वस्तु : धिक्कार्य

धिक् संस्कृति, जिसमें युवती युवक कर सकते मुक्त न प्रेमार्पण,
धिक् जग, जिस में न वयस्क अथक, जन मंगल श्रम में रत प्रतिक्षण !
जिस में प्रवयस् भव-दर्पण में देखते न ईश्वर का आनन।
शिशुओं के हित जो भू प्रसन्न उन्मुक्त न धिक् क्रीड़ा प्रांगण !
(सु. नं. पं. : लोकायतन, पृ. ६२१)

वस्तुएँ : बड़ी

बड़ी कविता कि जो इस भूमि को सुन्दर बनाती है,
बड़ा वह ज्ञान जिस से व्यर्थ की चिन्ता नहीं होती।

बडा वह आदमी जो जिंदगी भर काम करता है,
बडी वह रूह जो रोये बिना तन से निकलती है ॥
(दिनकर चक्रवाल, पृ २३४)

वस्त्र

१ क्या न होता है उस में दिल उजला, मैले कपडे से क्यो झिझकते हो।
देख उजला लिबास मत भूलो, दिल ही मैला कहीं न उस मे हो॥
जो न सोने के कन उसे मिलते, क्यारियां राख किस लिये धोता।
मत रुको देखकर फटे कपडे, लाल गुदडी मे क्या नही होता॥
(हरिऔध पद्य प्रमोद, पृ १४५)

२ फटते हैं मैले होते हैं सभी वस्त्र व्यवहार से।
किन्तु पहनते हैं क्या उनको हम सब इसी विचार से ?
(मै श गु साकेत, ९ सर्ग)

वस्त्र प्रभाव

दूर तैं पोशाकदार देखियत सिरदार,
देखि कैं कुचील चीर हूँ है कोउ कपरा।
सुंदर सुवेश जाणैं ताको सहु बैन मानैं,
बोलैं जो दरिद्री तो लबार कहै लपरा।
पीतांबर देख कै समुद्र आप दिनी सुता,
दीनो विष रुद्र कु बिलोकी हाथ खपरा।
धर्मसी कहै रे मीत ऐसी हैं ससार रीति
एक नूर आदमी हजार नूर कपरा॥
(धर्मसिह फुटकल पद्य)

वस्त्र भ्रामक

वस्त्रा से मनुष्य के सत्य को खोजते हो,
आंख कान नाक और आकृति के बल पर,
नाव से ही थाहते हो सागर की अतल राशि,
मोती कही तैरता है लहरते सलिल पर।
(उ श भ कणिका, पृ ४)

वाणी

वचन सोइ जासो सुख बाढै, दुखद वचन चातुर कित काढै॥
सो न पूछिए जेहि सुनि हिया, होई पवन लागे जनु दिया॥

बहुत वचन तें मानुख हँसे, बहुत वचन रक्ताँसू खँसे ।।
सुलभ खरग कै पूजै घाऊ, रसना-घाव रहै बिलगाऊ ।।
समुझि खोलिए रसना, भाखित लागि ।
है रसना में प्यारी, जल औ आगि ।।

(नूरमुहम्मद : अनुराग बाँसुरी, पृ. ६२)

वाणी : और अर्थ

वचन अरथ है सिंधु अपारा । संपूरन कोउ तिरै न पारा ।।
नई नई लहरै नित तासौं । सागर मरम परगटै कासौं ।।
बड़े बड़े कवि लोग सयाने । तिरि नहिं सके ठाँव बिथकाने ।।

(नूरमुहम्मद : अनुराग बाँसुरी, पृ. ३)

वाणी : और हृदय

मुख मीठी बातें कहै, हिरदै निपट कठोर ।
'व्यास' कहौ क्यों पाय है, नागर नंद किसोर ।।

(व्यासजी की साखी, दोहा, पृ. ७२)

वाणी : कटु

खीरा सिर तें काटिए, मलियत नमक बनाय ।
'रहिमन' करुए मुखन को, चहिअत इहै सजाय ।।

(रहिमन विलास, पृ. ५)

वाणी : का शौर्य

होगा अरि का बाल न बांका वाग्वाण छाने से,
बनते बिगड़े काम न केवल मन-मोदक खाने से ।

(राम खेलावन वर्मा : चन्द्रगुप्त मौर्य, पृ. १४९)

वाणी : का सुप्रयोग

पेट न फूलत बिनु कहें, कहत न लागइ ढेर ।
सुमति बिचारें बोलिए, समुझि कुफेर सुफेर ।।

(तुलसीदास : दोहावली, पृ. १४९)

वचन कहे अभिमान के, पारथ पेखत सेतु ।
प्रभु तिय लूटत नीच भर, जय न मीचु तेहिं हेतु ।।

(दोहावली, पृ. १५०)

वाणी : कोमल

मन फाटे कू मृदु वचन, कह्यो परम उपचार।
टूक टूक कर जुड़न कू, टाका देत सुनार ॥

(ज्ञानसार प्रास्ताविक अष्टोत्तरी)

वाणी गुण-प्रकाशिका

गुन बोनी सो परगट होई, बिन बोले लखि जात न कोई।
जैसे साधु मौन नित रहै, ताको सगति कछू न लहै।
भलो न बहुतै, चुप होइ रहना, भलो न बहुतै भाषित कहना ॥

(नूरमुहम्मद अनुराग बाँसुरी, पृ ६०)

वाणी पुष्प

है मन फुलवारी हो भाई। फूल समी यह वचन सोहाई ॥
वचन अर्थ है वास समाना। कवि स्रोता है भँवर सयाना ॥
जब वह फूल तजत फुलवारी। विकसत वास देत अधिकारी ॥
जुग-जुग रहत न तनु कुम्हिलाई। दिन दिन बास बढ़त अधिकाई ॥

(नूरमुहम्मद इन्द्रावती)

वाणी मधुर

कहि-कहि वचन कठोर खरूँठे नहिं छोलिये।
शीतल शान्त स्वभाव सबन सूँ बोलिये।
आपन शीतल होय और भी कीजिये,
हरिहा, बलती में सुण मीत न पूला दीजिये।—बाजिद

(स मगलदास पचामृत, पृ ९८)

वाणी मधुर और कटु

मधुर बचन हैं औषधी, कटुक वचन हैं तीर।
श्रवण द्वार ह्वै संचरै, सालै सकल शरीर ॥

(कबीर वचनावली, पृ १३५)

वाणी विवेकपूर्ण

काक अरु रासभ उलूक जब बोलत हैं,
तिनके तो वचन सुहात कहि कौन कों।
कोकिला ऊमारो पुनि सूवा जब बोलत हैं,
सब कोऊ कान दै सुनत रव रौन कौं।

ताही तें सुवचन विवेक करि वोलियत,
यौं ही आंक वांक वकि तौरिय न पौन कौं।
सुन्दर समुझि कै वचन कौं उचार करि,
नाहींतर चुप ह्वै पकरि वैठि मौन कौं ।।
(सुन्दर सार, पृ. १६३)

वाणी : से मनुष्य की पहचान

कहै कवि 'गंग' सुनो साहिन के साहि सूरा,
आदमी को तोल एक वोल में पिछानिए।
(अकवरी दरवार···पृ. ४३३)

वाणी :—से सुधार

कर विगरी सुवरै वचहि, जैसे वनिक विसेख।
हींग मिरच जीरौ कहै, हग मर जर लिख लेख ।।
(सतसई सप्तक, वृन्दसतसई, दोहा २०६)

वामपंथी

होते हैं सव कहीं वामपंथी कुछ वैसे,
हममें भी हैं वन्धु हमारे ही कुछ ऐसे।
जो स्वदेश में स्वयं विदेशी-से हो वैठे,
सुन सुदूर के ढोल निकट की सुध खो वैठे!
(मै. श. गु. : राजा-प्रजा, पृ. ३३)

वासना की प्रवलता

एक छोटी, एक सीधी वात,
विश्व में छायी हुई है वासना की रात।
वासना की यामिनी जिसके तिमिर से हार,
हो रहा नर भ्रान्त अपना आप ही आहार;
वुद्धि में नभ की सुरभि, तन में रुधिर की कीच,
यह वचन से देवता, पर कर्म से पशु नीच।
(दिनकर : चक्रवाल, पृ. २०७)

विकास

१. भ्रष्ट देवता कहलाने में कौन सुयश है?
क्या कलंक है उन्नत शाखा-मृग होने में?
(दिनकर : नये सुभाषित, पृ. ४१)

२ दक्षिण कर है प्रकाश, वाम हस्त तिमिर पाश,
दोनों के दोले में झूल रहा है विकास।
(नरेन्द्र अग्निशस्य, पृ ११९)

विकास आत्मिक

जन मन के विकास पर निर्भर सामाजिक जीवन निश्चित,
संस्कृति का भू स्वर्ग अमर आत्मिक विकास पर अवलम्बित।
(सु न प स्वर्णकिरण, पृ ४६)

विकास की गति

लक्ष्य दूर है, औ विकास धीमे-धीमे चलता है।
इस विशाल तरु मे फल सदियो बिना नहीं फलता है॥
(दिनकर की सूक्तियां, पृ ६०)

विकास नव

राम कृष्ण संस्कृतियाँ रहें अटल, शैव शाक्त संपद् भी निज स्थल पर,
सृष्टि-प्रक्रिया का अजस्र आग्रह, नव विकास का प्रतिनिधि हो युग नर।
(सु न प . लोकायतन, पृ ५०२)

विक्रम और श्रम

चलाई विक्रम ने तलवार, छातियाँ दीं लाखों की छेद,
लगाया श्रम ने मरहम और न जतलाया मुँह से कुछ खेद,
न मुझको कोई दुविधा आज कि पूजूँ बढ़कर किसके पाँव,
बहाना जो औरों का खून बहाता या जो अपना स्वेद।
(विराज अरुणोदय, पृ ६९)

विघ्न का विनाश

पथ मे आशा और निराशा, चक्कर काटा ही करती हैं।
पर जो नहीं रुके बाधा से, बाधायें उन से डरती हैं॥
(रघुवीरशरण मित्र जननायक)

विघ्न से सहायता

पहिये को देखो, यदि पृथिवी, करे नहीं अवरोध।
क्या वह आगे बढ सकता है, करके भी अति क्रोध?
विघ्नों से ही कर सकता है उन्नति को बल प्राप्त।
विघ्न मिटा समझो उन्नति की गति हो गई समाप्त॥
(रा न त्रि मिलन, पृ ५३)

विचार—परिवर्तन

सदा बदलते रहते हैं, जीवित जन के ख्याल।
मुर्दे रहते हैं वहीं, जिनका बुरा हवाल।।
(मेलाराम : शिक्षासहस्री, पृ. ८६)

विजय : और पराजय

१. विजय है जीवन का उल्लास,
पराजय मरण और अपमान।
(रांगेय राघव : मेधावी, पृ. ८४)

२. परिणामों से नही सफलता का होता निर्णय है।
कभी हार भी समभी जाती जग में बड़ी विजय है।
(देवेन्द्र दत्त तिवारी : अग्नि-शिखा, पृ. १०)

३. निज जेता को विजित भला क्या दे सकता है ?
वह उसका सर्वस्व स्वयं ही ले सकता है।
(राम खेलावन वर्मा : चन्द्रगुप्त मौर्य, पृ. ५४८)

विजय :—के उपाय

१. सुनहु सखा कह कृपा निधाना। जेहिं जय होइ सो स्यंदन आना।।
सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका।।
बल विवेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे।।
ईस भजनु सारथी सुजाना। विरति चर्म सन्तोष कृपाना।।
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा। बर बिग्यान कठिन कोदंडा।।
अमल अचल मन त्रौन समाना। सम जम नियम सिलीमुख नाना।।
कवच अभेद विप्र गुर पूजा। एहि सम विजय उपाय न दूजा।
(रा. च. मा. गु., पृ. ५५५)

२. तेज, नीति, धृति-युत नर रायी। कालहु सकत सयुक्ति हरायी।।
(द्वा. प्र. मि. ; कृष्णायन, पृ. ३८१)

विजातीय

हिन्दू धर्म मुक्ति का द्वार,
करे प्रवेश सर्व संसार।।
आज चार्ल्स विलियम डी. रेप्ट,[1]

---

१. एक फ्रांसीसी सज्जन जो शिमला के महन्त मस्त राम बन गये।

करके साधन सजग सचेष्ट,
बनकर शुद्ध सदाशय सन्त
हुए हमारे मान्य महन्त।
यह अमरीकन लेडी एक
पाकर हिन्दू-धर्म 'विवेक'
होकर निवेदिता[1] निःस्वार्थ,
थी हमारी बहन यथार्थ।
थी मिस् स्लेड[2] सुधीरा अन्य,
बनी हमारी मीरा धन्य।
मुसलमान रंग खान-समान,
कर निज व्रज-गोकुल का गान।
अब भी द्वार खुला है आयें,
कोटिन हिन्दू वारे जायें॥
एक नियम है केवल एक,
रक्खो तुम कुछ क्या न विवेक।
रचे तुम्हें वह सस्कृति मात्र,
तो तुम हिन्दूपन के पात्र॥

(मै श गु हिन्दू पृ ११४ १९)

विज्ञान

विविध वैज्ञानिक यत्नोपाय श्रेय सुख के साधन अनिवार्य,
वाष्प विद्युत का हो दायित्व मनुज-कर-पद करते जो कार्य!

(सु न प लोकायतन, पृ २६८)

विज्ञान और अध्यात्म

स्थूल वैज्ञानिक युग को आज, पिला नव आध्यात्मिक पीयूष,
मनुज को हर जडत्व का ध्वान, नए युग का लाना प्रत्यूष।

(सु न प लोकायतन, पृ ३१८)

विज्ञान और द्वेष

यह तुम्हारी सभ्यता का काफला, आजमाने चाँद की दूरी चला।
और धरती पर न तय हो पा रहा, आदमी का आदमी से फासला॥

(रूप नारायण त्रिपाठी वनफूल, पृ ११)

---

१ स्वर्गीय भगिनी निवेदिता जिन्हे स्वामी विवेकानन्द ने हिन्दू बनाया था।
२ फ्रास के एक सेनापति की पुत्री जो गाधी जी के सम्पर्क से मीराबाई बन गई।

विज्ञान : की महिमा

जग का जिसने घटाटोप तम प्रथम हटाया।
मानव-कुल-अभिलषित सुलभ सुख पंथ प्रगटाया॥
रज से कंचन-रजत-रत्न-परिवर्त दिखाया।
विद्या-बल-आनन्द-अमृत-फल-स्वादु चखाया॥
रस राग रंग रुचि आदि का, जो आदिम आधार है।
उस भारतीय विज्ञान का, जग भर पर ऋण भार है॥
रेल, तार, बेतार, एक्स-रे रश्मि, रेडियम।
फोटो फ़ोना अणुवीक्षण द्रुत-अनुलेखन-क्रम।
जल-थल-नभ-पथ-सुलभ-सरल-सर्वत्र समागम।
मोटर बायस्कोप यंत्र-समुदाय अनूपम॥
यह जिसका अनुसन्धान-फल अथवा आविष्कार है।
उस पश्चिमीय विज्ञान का स्वागत सौ-सौ बार है॥

(श्रीधर पाठक : भारत गीत, पृ. १३८-९)

विज्ञान : केवल साधन

साध्य नहीं विज्ञान, मात्र साधन, बोध साध्य का जन हित आवश्यक,
मानव आत्मा के जीवन के हित, निर्मित यह जग,—प्रकृति नहीं बाधक !

(सु. नं. पं. लोकायतन, पृ. ६०१)

विदेश—मोह

भीति उनकी विभूति अब है,
भूत भ्रम का भरमाता है।
नहीं अपनी भाषा भाती,
भेस भी काटे खाता है।
सादगी उन्हें नही भाती,
बनावट भरी रगों में है॥
भलाई के पुतले वे हैं,
बुराई भरी सगों में हैं॥
ढंग सब उसका है अच्छा,
भली रंगत है योरप की
यहाँ का सब कुछ है गंदा,
व्यर्थ हैं बातें जप-तप की॥

भरे हैं पर के भावो से,
भीरुताओ मे है फूले।
बन गये भार भूत भू के,
भरत-सुत भारत को भूले॥
(हरिऔध मर्मस्पर्श, पृ ११०-११)

विदेश-यात्रा

१ रोकि विलायत गमन कूपमडूक बनायो।
औरन को ससर्ग छुडाइ प्रचार घटायो॥
(भारतेन्दु नाटकावली, पृ ६०५)

२ आओ घर मे बाहर बधु,
नही यहाँ पर नाहर बधु!
देते थे सब को उपदेश,
कहाँ न थे आर्योपनिवेश?
अब अगम्य है रत्नागार,
फिर कैसे हो बेडा पार?
न डरो, जाति न होगी भ्रष्ट,
बढो, करो यह जडता नष्ट।
जानो देश देश की चाल
दृष्टि सूक्ष्म हो और विशाल।
समझो सब की बातें सार
रीति-नीति आचार-विचार।
रह कर विजातियो से भिन्न,
आपस मे ही सब विच्छिन्न।
पाया तुमने समुचित दण्ड,
ईश्वर सहता नही घमड।
(मै श गु हिन्दू, पृ १५५-७)

विदेशी

मारकीन मलमल बिना चलत कछू नहि काम।
परदेशी जुलहान के मानहु भये गुलाम॥
कुछ तो वेतन मे गयो कछुक राज-कर माहि।
बाकी सब त्यौहार मे गयो रह्यो कछु नाहि॥
(भारतेन्दु भा प हि भा प्र स पृ ७३५-६)

विद्या : उत्तम धन

१. विद्या दरब न बाँटै भाई, नहिं तस्कर ठग हाथै जाई ॥
नहिं नृप कर न सहोदर-भागै, अधिक बढ़त जब बाँटै लागै ॥
(नूरमुहम्मद : अनुराग बाँसुरी, पृ. ९)

२. जनि पण्डित विद्या तजहु, धन मूरख अवरेख ।
कुलजा सील न परिहरै, कुलटा भूपित देख ॥
(सतसई सप्तक, वृन्द सतसई, दोहा ११६)

विद्या : और चरित्र-निर्माण

भये न जो पढ़ि सत्यव्रत, सबल शूर स्वाधीन ।
तौ विद्या-लगि वादि धन, समय, शक्ति व्यय कीन ॥
(वियोगी हरि : वीर सतसई, पृ. १०८)

विद्या : और प्रेम

पढ़ि पढ़ि के पत्थर भये, लिखि लिखि भए जो ईंट ।
कबिरा अन्तर प्रेम की, लागी नेक न छींट ॥
(कबीर वचनावली, पृ. १३३)

विद्या : और ब्रह्मज्ञान

पढ़ि पढ़ि पढ़ि केता मुवा, कथि कथि कथि कहा कीन्ह ।
बढि बढि बढि बहु घट गया, पार ब्रह्म नहीं चीन्ह ॥
(गोरखबानी, पृ. ११)

विद्या : और सद्ग्रन्थ

करती है विद्या सुगम स्वर्ग-लोक का पंथ;
निःश्रेयस-सोपान-से समझो तुम सद्ग्रंथ ।
(मै. श. गु. : काबा और कर्बला, पृ. ३९)

विद्या : का अधिकार

वेदों के वक्ता जो भी हों, विद्या सबके अर्थ,
रख सकता है बाँध कला को, निज तक कौन समर्थ ।
(मै. श. गु. : जयभारत, पृ. ४४)

विद्या : का महत्व

विद्या सों नर मानुख होई, जाहि न विद्या है पसु सोई ।
विद्या दरब न बाँटे भाई, नहिं तस्कर ठग हाथै जाई ।

नहिं नृप घर न सहोदर-भागें, अधिक बढ़त जब बाटे लागें।
विद्या मते चले जो नाहीं, पोथी लादे खर उपराहीं।
विद्या-चख सा सूझै आगम बाट।
बहुतै वस्तु मनोरम, विद्या हाट॥

(नूर मुहम्मद अनुराग बांसुरी पृ ९)

२ कहूँ अनादर पाय कै, गुनी न करो अँदेस।
विद्या है तो करहिंगे, सब कोऊ आदेस॥

(वृन्द सतसई, पृ ३२२)

३ विद्या मधुर सहकार करती सर्वथा बटु निंब को,
विद्या ग्रहण करती वर्लों से शब्द को प्रतिबिंब को।
विद्या जड़ो मे भी सहज ही डालती चैतन्य है,
हीरा बनाती कोयले को, धन्य विद्या धन्य है!

(मै श गु भारत भारती, पृ १७४)

विद्या के साधन

१ विद्या गुरु की भक्ति सो, कै कीन्हे अभ्यास।
भील द्रोण के बिन कहे, सीख्यो बानविलास॥

(सतसई सप्तक, वृन्द सतसई, दोहा २६३)

२ पुस्तक गुरु थिरता लगन, मिलै सुथान सहाय।
तब विद्या पढिबो बनै, मानुष गति परजाय॥

(बुधजन सतसई, पृ ४६)

विद्या परम हितकारिणी

मित्र ज्यो नेह निबाह करै, कुलनारि महा परलोक सुधारन।
संपति दान को साहिब ज्यों, गुरु लोगन सो गुरु ग्यान पसारन॥
दास जू आनन सी बलदाइनि, मातु सी है वह दुखनिवारन॥
या जग मे बुधिवन्तन को बर विद्या बडी बिन ज्यो हितकारन॥

(भिखारीदास काव्यनिर्णय, पृ ७८)

विद्या भक्ति हीन

'व्यास' न कथनी काम की, करनी है इक सार।
भक्ति बिना पंडित वृथा, ज्यों खर चंदन भार॥

(व्यास वाणी, पृ १५२)

विद्या : सेप रोपकार

जिस वाणी में रस नहीं, नहीं कथन में सार।
उस विद्या का क्या करे, करे न जग उपकार॥

(मेलाराम : शिक्षा-सहस्त्री, पृ. १४)

विद्यार्थी : भारतीय

१. ब्रह्मचर्य-व्रत भीष्म पितामह को आगे रख धार रहे हों।
वीर तेज में अर्जुन बनकर दुर्जन दल को मार रहे हों॥
सादेपन में हो सुतीक्ष्ण पागल से प्रण को पाल रहे हों।
न्याय नीति में विदुर सरीखे तीखे वाक्य निकाल रहे हों॥
कर्म-क्षेत्र हम को मिल जावे, हो बस इसी बात के प्रार्थी॥
ऋषियों की सन्तान वही हैं, अद्‌भुत भारतीय विद्यार्थी॥
सीख रहे हों पश्चिम से जो धर्मस्थल में मरने के गुण।
नैतिक छान-बीन की दृढ़ता मर्मस्थल में धरने के गुण॥
हृदय हाथ मस्तिष्क मिलाकर कर्मस्थल जय करने के गुण।
अपनी कार्यशक्ति से दुनियाँ भर के मन वश करने के गुण॥
वे ही हैं माता के रक्षक, वे ही है सच्चे शिक्षार्थी।
वे ही है लक्ष्यों के लक्षक, प्यारे भारतीय विद्यार्थी॥
आज जगत की राज-पुस्तिका में भारत का नाम नहीं है।
वर्तमान आविष्कारों में, हाय! हमारा काम नही है॥
रोता है सब देश, देश मे दानों का भी दाम नही है।
कहते है सब लोग, यहाँ के लोगो मे कुछ राम नहीं है॥
नाम नहीं है! काम नही है! दाम नही है! राम नही है।
तो बस इन्हें प्राप्त करने तक हम को भी आराम नही है॥
पहिले बाल भरत हो सिंहों के भी दाँत दबाना होगा।
पुनः भरत हो बन्धुप्रेम पर अपनी भेंट चढ़ाना होगा॥
तभी भरत हो देह-भान तज विश्वरूप बन जाना होगा।
फिर भारत के पुत्र भरत कहलाकर गौरव पाना होगा॥
जब तक नही भरत कुलदूषण, भूषण हो होंगे प्रेमार्थी।
तब तक कैसे कहा सकेंगे—'विजयी भारतीय विद्यार्थी॥

(माखनलाल चतुर्वेदी)

२. अहो भूप-जनपद के हितकर भारत के जीवन आधार।
पूर्व-पुरुष-गौरव के वर्द्धक शास्त्रविहित गुण के भंडार॥

उच्च मनोज्ञ पकंज के रवि प्रतिभा कुमुदिनी के राकेश ।
आशा भरे नयन से तव मुख देख रहा है भारत देश ॥ १ ॥

आओ अपने अध पतन पर हम सब मिलकर करें विचार ।
एक बना लें नियम-तालिका हो न पायें जीवन निस्सार ॥
नहीं शृंखला कामों में है दृढ़ निश्चय नहिं अचल विचार ।
डाह स्पर्द्धा भरी हुई है, उबल रहें हैं बुरे विकार ॥ २ ॥

हिंदू-मुसलमान हों किंवा भारत के जनमें ईसाई ।
जननी जन्मभूमि के नाते सब ही हैं भाई-भाई ॥
मिलकर ऐसे करो काम हों जिससे उन्नत देश-समाज ।
भूल जाव कल की वे बातें जिन से कलह न होवे आज ॥ ३ ॥

सीखा करें सदा हम पढ़कर देश विदेशों के इतिहास ।
कौन कारणों से होता है देशव्यापी कलह-प्रकाश ॥
उन्हीं कारणों को यदि हम सब नहीं फटकने देवें पास ।
तो न भूलकर कभी करें हम अपने हाथों अपना नाश ॥ ४ ॥

ऐसी आदत डालो जिस से करते रहो कार्य अश्रान्त ।
अधिकाधिक जी लगता जावे नहीं मध्य में होवे शान्त ॥
"क्या करना है आज' बना लो उसकी सूची प्रातःकाल ।
तदनुसार कर डालो उनको करके दूर सकल भ्रम-जाल ॥ ५ ॥

पीछे यत्न करो तुम पहले सोचो क्या होगा परिणाम ।
धीरे वीर हो करो उसे फिर जब तक पूर्ण न होवे काम ॥
बारम्बार निराशा आवे तो भी होना ही निराश ।
रजनी तम का नाश अन्त में करता ही है दिवस-प्रकाश ॥ ६ ॥

सो जाने के लिए अधिकतर उत्तम निशि का पूर्व विभाग ।
सूर्य उदय होने से पहले हितकर है बिस्तर का त्याग ॥
आत्म सयमन करके करते रहो सदा जीवन उपयोग ।
समय भोग पावे नहिं तुम को करो समय का तुम उपभोग ॥ ७ ॥

शील सरल कर्मण्य विवेकी क्रोधरहित हो अगर स्वभाव ।
तो पड़ सकता सकल विश्व पर बन्धु! तुम्हारा अजित प्रभाव ॥
दीन दुखी आपत्ति ग्रसित पर करो सदा तुम दया प्रकाश ।
करते रहो लोक की सेवा जब जितना पाओ अवकाश ॥ ८ ॥

करो प्रेम छोटों पर भाई और बड़ों का आदर मान ।
उतना काम करो जितने से बना रहे अपना अभिमान ॥

दैव-दया पुरुषार्थ आदि से जैसी जितनी तुम को शक्ति ।
होवे मिली, उसी से करते रहो यथोचित सब की भक्ति ॥ ९ ॥
ब्रह्मचर्य जाने नहिं पावे इसका रखना भाई ध्यान ।
दम्पति-पद पा जाने पर भी करना इस व्रत का सम्मान ॥
बन जाना आदर्श आप ही जिस से गुणयुता हो सन्तान ।
नारी जाति दुख नहीं पावे रखना तुम ऐसा अवधान ॥ १० ॥
कभी भूल से भी करना नहिं मादक द्रव्यों का व्यवहार ।
अपनी भाषा नहीं भूलना जिसने खोला शिक्षा-द्वार ॥
वेष बदलना कभी न अपना होती रहे जाति-पहचान ।
भोजन में भी भारतीयता रखो तब पाओगे मान ॥ ११ ॥
अपने पैरों से चलने का सदा काल रखो अभ्यास ।
अपने कानों से सुन लो जब करो तभी उस पर विश्वास ॥
अगर चलोगे पथ देख कर निज नयनों से निस्सन्देह ।
बची रहेगी बाधाओं से जीवन भर निश्चय तव देह ॥ १२ ॥
देशी कला-वृद्धि करने को करो स्वदेशी वस्तु पसन्द ।
धन स्वाहा होता हो जिनमें उन बातों को कर के बन्द ॥
गरज काम वे करो बन्धु तुम जिनसे यश-रवि पड़े न मन्द ।
भारत का मस्तक हो ऊँचा राजा-प्रजा रहे सानन्द ॥

—सैयद अमीर अली 'मीर'

विद्रोह

अन्यायी के क्रूर कृत्य से
जब विद्रोह भड़कता भीषण,
उस अन्तर्मन के विप्लव को
रोक नहीं पाते शत रावण !

(सु. नं. पं. : लोकायतन, पृ. १०३)

विद्वान्

निर्जीवों में भी करें, जो जीवन संचार ।
वे हैं सुकृती विबुध वर, वे हैं परम उदार ॥

(हरिऔध सतसई, पृ. ४५)

विद्वान् : और नीच

क्रोधहुँ मैं अप्रिय वचन, कहै न बुध गुन ऐन ।
ह्वै प्रसन्न मन नीच जन, भाषत हैं कटु बैन ॥

(दी. द. गि. ग्रं. पृ. ८०)

विद्वान् और विवेकी

विद्वान है वह इतर तत्वों को जो जान सका है,
पर है विवेकी वह कि जो खुद को पहचान सका है।
जो बाहुबल से अन्य को जीते वह व्यक्ति सबल है!
पर शक्तिशाली वह कि वश जिसके निज चित्त चपल है।

(डा बेचराज · धरती और स्वर्ग, पृ ४४)

विद्वान् की कभी अवज्ञा

निज गुण घटत न नाग-नग, हरषि न पहिरत कोल।
गुंजा प्रभु भूषण धरे, तातें बढ़े न मोल॥

(तुलसी सतसई, पृ २२४)

विद्वान् के गुण

बरषहिं जलद भूमि निअराएँ। जथा नवहिं बुध बिद्या पाएँ।
कृषी निरावहिं चतुर किसाना। जिमि बुध तजहिं मोह मद माना॥

(रा च मा गु, पृ ४५४-५)

विद्वान् थोड़े

सुनिअ सुधा देखिअहिं गरल, सब करतूत कराल।
जहँ तहँ काक उलूक बक, मानस सकल मराल॥

(रा च मा गु, पृ ३८०)

विद्वान् धनी

शिक्षित भी धनवान भी सोने बीच सुगन्ध।
आदर हो ससार में कटें जग के फन्द॥

(मेलाराम शिक्षासहेली, पृ २२)

विद्वान् पशु

'किशोर दास' पडित पशू, लदे फिरत श्रुति भार।
कहत अवर करनी कछू, काम क्रोध अहकार॥

(सिद्धांतरत्नाकर, पृ ३९)

विधवा

१. तुम बूढ़े भी विषयासक्त, बनी रहें वे किंतु विरक्त।
आप बनो विषयो के दास, वे अभागिनी रहें उदास॥
विधवाओ का पुनर्विवाह, नहीं उच्च आदर्श निवाह।
पर उस से अच्छा सौ बार, जो है दुराचार व्यभिचार॥

(मं श गु हिन्दू, पृ ६२—६३)

२. नीच नरों से जार करम विधवा बहु करती,
काला मुख संबंध मध्य करके अध मरती,
अति असत्य गुरु पाप सुतों को इस से लागैं,
अगनित अवगुन बढ़ैं सुद्ध गुन गन सब भागैं ।।
ये करम लिखे किस शास्त्र मे इस पर ध्यान धरै नहीं,
मम पुत्र सास्त्र पर कालिमा ऐसी हाय हरैं नहीं ।।
(श्याम बिहारी, शुकदेव बिहारी मिश्र : भारतविनय, पृ. ६१)

३. तेरे मन में ही छिपी हुई रोती हैं सब चाहें तेरी ।
उर के भीतर ही गूँज गूँज रह जाती हैं आहें तेरी ।।
चढ़ते सूरज की आदर से सब दुनिया पूजा करती है ।
पर अस्त हो गए दिनकर पर बस तू ही जग में मरती है ।।
(गो. श. सि. : मानवी, पृ. ६०—६१)

४. भागहिं नीचन-संग बरु, भ्रूण गिरावहिं कूर ।
ब्याह भये पैं होतु है, धर्म सनातन चूर ।।
(रामेश्वर करुण : करुण सतसई, पृ. ५४)

५. मानव बिना विषण्ण मानवी, प्रिय बिन आज प्रेयसी चूर्ण ।
पति के बिना बिलखती पत्नी, नर बिन नारी हुई अपूर्ण ।।
दीर्घ तृषा सी, दुर्बलता सी अगम उपेक्षा सी निरुपाय ।
एक विवशता सी विधवा है युवती, जीवित भी मृतप्राय ।।
(अतुलकृष्ण गोस्वामी : नारी, पृ. २०४)

६. विधवा तरुण-तपस्विनी, असि-व्रत-पालन हारि ।
कही जाति या जाति में, हा ! 'अमंगला'नारि ।।
(वियोगी हरि : वीरसतसई, पृ. ८६)

विधवा : के कर्त्तव्य

गान बिन मान बिन हास बिन जीवहीं ।
तप्त नहिं खाय जल सीत नहिं पीवहीं ।।
तेल तजि खेल तजि खाट तजि सोवहीं ।
सीत जल न्हाय, नहिं उष्ण जल जोवहीं ।।
खाय मधुरान्न नहिं पाय पनहीं धरै ।
काय मन वाच सब धर्म करिबो करै ।।
कृच्छ्र उपवास सब इन्द्रियन जीतहीं ।
पुत्र सीख लीन तन जौं लग अतीतहीं ।।
(केशवदास : रामचंद्रिका, प्रकाश ९)

विधवा के दुःख

वैधव्यानल जरहिं जहँ, अनिमत सोलह साल।
उद्धारे तेहि जाति कहँ, को माई को लाल?

(रामेश्वर करुण करुण सतसई, पृ ५०)

विधवा बाल-विधवा

क्यो धर्म सनातन कहकर, दानवता को दहराते?
इस दूध मुखी दुखिया को, क्यो विधवा व्यर्थ बताते?
किस की यह आस लगाये, किसका अब इसे सहारा?
तिल तिल कर जलता जाता, इसका यह यौवन प्यारा!
अपने-अपने धंधो मे दुनिया नित दौड़ी जाती,
विधवा की दीन दशा पर, फटती न किसी की छाती!
वैधव्य व्यथा का हामी, वह भ्रूणो का हत्यारा?
कब दूर यहाँ से होगा, यह पोंगा पथ तुम्हारा?

(रामेश्वर करुण समसा, पृ १३०-१)

विधवा —विवाह

जब नही आबाद बेवाएँ हुई, तब भला हम किस तरह आबाद हो।
क्यो भला बरबाद होवेंगे न हम, बेटियाँ बहनें अगर बरबाद हो॥
आज बेवा हिंदुओ की हीन बन, दूसरो के हाथ मे है पड रही।
जल रही है आग का तारा बनी, जो हमारी आँख मे है गड रही॥

(हरिऔध चुभते चौपदे, पृ १५२)

विधि का रहस्य

पतग तो दादुर-चर्व्यमाण है, भुजग से भेक निगीयमाण है,
द्विजिह्व भी खाद्य हुआ मयूर का, शिखी बना लुब्धक भोज्य वस्तु हो।
विहग भी सम्मुख कीट खा रहा, कभी बनेगा वह भक्ष्य श्येन का,
रहस्य कैसा विधि का विचित्र है, द्वितीय का जीवन मृत्यु एक की।

(अनूप शर्मा सिद्धार्थ, पृ ६२)

विधि की वामता

श्री रघुनाथ की प्राणप्रिया मिथलेश लली दसमीस लही है।
वेद चुराय कै दानव के गन भागे पताल न जाय कही है।
वाम मदालसा जो सुरलोक की सो छल कै खल दैत लही है।
जो विधि वाम भयो सजनी तब जो-जो करै सो अचज नही है॥

(भारतेन्दु नाटकावली, पृ ६२)

विधि :—विपर्यय

गति के साथ-साथ स्थिरता भी,
है अथाह जल सागर मे ।
छिपे बहुत सुख-दख-सागर हैं,
लघु जीवन की गागर में ।।
हैं वसुधा की वर विभूतियाँ,
निर्जल वन में वसी हुई ।
कोमल कुसुमों की पंखड़ियां,
हैं कांटों में फँसी हुई ।।

(आधुनिक कवि, ठा. गो. श. सि. : पृ. ७५)

विनय

विनय करो में सकल सफलता की है ताली ।
विनय पुट विना नहि रहती मुखड़े की लाली ।।
विनय कुलिश को भी है कुसुम समान वनाता ।
पाहन जैसे उर को भी है वह पिघलाता ।।
निज करतूतें कर विनय होता है वाँ भी सफल ।
वन जाती है वुद्धि-वल-सहित जहाँ रचना विफल ।।

(हरिऔध : पद्य प्रसून, पृ. ७४)

विना

कौन काज घन धर्म विनु, भक्ति विना गृह कूप ।
कहो 'लाल' कीजइ कहा, गुन विन सुन्दर रूप ।।

(लाल (?) : रूप गुण संवाद, पत्र ७८)

विनाश : निर्दय ज्ञान से

मिली तुम्हें न जो दया, मिली तुम्हें न भावना,
विनाश है मनुष्य तव समस्त ज्ञान-साधना ।
विनाश तर्क-वुद्धि सव,
विनाश अध्ययन, मनन,
विनाश सृष्टि पर विजय,
विनाश तत्त्व का मथन ।
अवाध वल, अधीर गति, अलक्ष्य निज समर्थता ।
लिये मनुष्य कर रहा विनाश का महा सृजन ।

(भगवतीचरण वर्मा : रंगों से मोह, पृ. ५५)

विनाश में निर्माण

जीवन मे अभिशाप शाप मे ताप भरा है,
इस विनाश मे सृष्टि कुंज हो रहा हरा है।
(प्रसाद कामायनी, पृ १६१)

विपत्ति

१ विधि सा गुन रवि सा सुहृद, पा हरि सा आधार।
सार हीन होता रहा, सरसिज पड़े तुषार ॥
(हरिऔध सतसई, पृ ३३)

२. कोऊ देत न साथ तब, कठिन परत जब दायँ।
मनुज मरन लखि पूतरी, आखिन की फिरि जायँ
(किशोरदास वाजपेयी तरंगिणी, पृ ५२)

विपत्ति और सम्पत्ति

विपत्ति भोगे भोग गुरु, जिन लोगनि बहुबार।
सम्पत्ति के गुण जानहि, वे ही भले प्रकार ॥
(म प्र द्वि ः द्वि का भा, पृ २७७)

विपत्ति जीवन की कसौटी

विपत्ति कसौटी है जीवन की दृढ़ता ही है अवलंबन।
चलते चलते पथ पारस से कंचन कर दे लोह बदन ॥
—रमेश रजक
(स रामदत्त भारद्वाज ऋतम्भरा, पृ १००)

विपत्ति प्रभु-वरदान

रोगी को जो रुचे वही क्यो वैद्य दे ?
तुम्हें रुचे जो ईश वही क्यो दे तुम्हें ?
तुम उनकी सन्तान ध्यान उनको सदा,
फिर ज्वर में पकवान सभी क्यों दे तुम्हें?
(गिरिजादत्त शुक्ल तारकवध, पृ १६४)

विपत्ति में गुण-प्रकाश

यथा उगाती निज अंक में निशा
प्रफुल्ल तारावलि व्योमरंजिनी
विपत्ति भी मानव की गुणावली
प्रकाशती है, करती प्रकृष्ट है।
((अनूप वर्द्धमान, पृ ५३८)

विपत्ति : में धन का नाश

विपत्ति भये धन ना रहे, रहे जो लाख करोर।
नभ तारे छिप जात हैं, ज्यों रहीम भए भोर ॥

(सं. ब्र. र. दा. : रहिमन विलास, पृ. १४)

विपत्ति : में मित्र शत्रु

आवत समय विपत्ति के, मित्र शत्रु ह्वै जाय।
दुहत होत बछ बँधन कौं, थंभ मातु कौ पाय ॥

(वृंद सतसई, दोहा ४८४)

विपत्ति : में साथी

'तुलसी' साथी विपति के, विद्या विनय विवेक।
साहस सुकृत सत्यव्रत, राम-भरोसो एक ॥

(तुलसी सतसई, पृ. २४१)

विपत्ति : में साथी नहीं

यद्यपि आपनो होय तऊ, दुख में करत न पीर।
ज्यों दुखती अँगुरी निकट, दूसरी ताहि न पीर ॥
निकट न लागत मीत हितु, विपत काल के माहिं।
होत अँधेरो तजत है, संगति अपनी छाँहि ॥

(सं. : रामकवि : हिन्दी सुभाषित, पृ. ९२,९३)

वियोग और कवि

वियोगी होगा पहला कवि,
आह से उपजा होगा गान;
उमड़ कर आँखों से चुपचाप,
वही होगी कविता अनजान।

(सु. नं. पं. : आंसू)

वियोगी और मौन

जग जानत कौन है प्रेम-व्यथा,
केहि सों चरचा या वियोग की कीजिए।
पुनि को कही मानै कहा समुझै कोऊ,
क्यों बिन बात की रारहि लीजिए।
नित जो हरिचंद जू बीतै सहै,
बकिकै जग क्यों परती तहि छीजिए।

सब पूछन मौन क्यो बैठि रही,
पिय प्यारे कहा इन्हैं उत्तर दीजिए ।।
(भारतेंदु नाटकावली, पृ ५१६)

वियोगी की लगन

यह न पानी से बुझेगी,
यह न पत्थर से दबेगी,
यह न शोलो से डरेगी,
यह वियोगी की लगन है।
यह पपीहे की रटन है।
(बच्चन . अभिनव सोपान, पृ १२९)

विरह

१ विरहा बुरहा जिनि कहो, बिरहा है सुलितान।
जिस घट बिरह न सचरै, सो घट सदा ममान ।।
(कबीर ग्रंथावली, पृ ६)

२ बिरहा बिरहा आखीए, बिरहा तू सुलतानु।
'फरीदा' जितु तनि बिरहु न ऊपजै, सो तनु जाणु मसाणु।।
(सू का स पृ २११)

३ 'मझन' जो जग जनम ले बिरह न कीया घाव।
सूने घर का पाहुना ज्यो आवा त्यो जाव ।।
(मझन मधुमालती)

विरह और मिलन

मिलन अन्त है मधुर प्रेम का, और विरह जीवन है।
विरह प्रेम की जाग्रत गति है, और सुषुप्ति मिलन है।
(रा न त्रि पथिक, पृ १७)

विरह का उपयोग

मधुर वस्तु ज्यो खात निरन्तर सुख तो भारी।
बीचि-बीचि कटु अम्ल तिक्त अतिसय रुचिकारी ।।
ज्यो पुट-पुट के दिए निपट ही रसहि परै रग।
तैसे हि रचक विरह प्रेम के पुज बढत अग ।।
(नददास ग्रथावली, पृ १४)

विरह : का दुःख

होता जिसका ध्यान ही अति अप्रिय सब काल,
अनुभव ऐसे विरह का क्यों न करे बेहाल ?

(मै. श. गु. : शकुन्तला, पृ. १२)

विरह : का प्रभाव

बुधि विद्या गुन ग्यान, प्रेम चाव धुनि हर्ष बल।
सब तजि होइ अयान, जा घट विरहा संचरै॥

(आलम : माधवानल कामकन्दला, वियोग खंड)

विरह : का बाण

विरह-बान की चोट जु जाहि लागै सोई जान।
भोगइये ते समुझ परै जिय कहें कहा मानें ?

('कुंभनदास' पृ. ११२)

विरह : में मनोदशा

पिय के बिछुरे विरह बस मन न कहूँ ठहरात।
धरनि गिरतु बीचहि फिरतु पर्यौ भँभूरे पात॥

(वृन्दसतसई, दोहा ५९७)

विरहिणी

जैसे ससि में दैपिये, परगट लछिन अंक।
तैसे पीय बिन, जान कहि, काजर नैन कलंक॥

(जानकवि : सतवन्ती सत)

विरही

ह्वै गई विरह विकल तब बूझत द्रुम वेली-वन।
को जड़ को चैतन्य कछु न जानत विरही जन॥

(नंददास ग्रंथावली, पृ. १४)

विरोध : बहुतों का अनुचित

उचित विरोध न बहुजन संगा। लघु पिपीलिकहु बधहि भुजंगा।

(द्वा. प्र. मि. : कृष्णायन, पृ. १६)

विलास : से विनाश

१. आवतु आपु विनास तहँ, जहँ विलसतु सुविलासु।
एक प्राण द्वै देह मनु, उभय विलासु विनासु॥

(वियोगी हरि : वीर सतसई, पृ. ८१)

२ किंकिणी का नाद असि-झंकार है,
भ्रू-चपलता है ललित कौशल जहाँ।
वीर रस होना जहाँ शृंगार है,
देश-गौरव की शिथिलता है वहाँ॥
—राजरानी देवी
(गि द. शु हि का को, पृ १०५)

विवाद

रे पंडितो करत झगरो क्यो चुप ह्वै बैठो मौन।
'हरीचन्द' याही में मिलि हैं प्यारे राधा-रौन॥
(भारतेन्दु भा प्र द्वि, ना प्र स, पृ १३६)

विवाह

१ ब्याह बिना सन्तान न होई। मुये नाम न ले है कोई॥
(जानकवि कथा छबिसागर)

२ सुर साक्षी कर आज विश्व के एक हुए दो हृदय।
पड़ी भाँवरें, किये परस्पर प्रण, निबद्ध दृढ उभय॥
तन्मय इस आत्मिक ऋण से बंध कभी न दोनों उऋण।
अमित वधू का शान्त समर्पण नर का सात्विक ग्रहण॥
(अतुल कृष्ण गोस्वामी नारी, पृ ८४)

३ शादी वह नाटक अथवा वह उपन्यास है,
जिसका नायक मर जाता है पहले ही अध्याय मे।
(दिनकर नये सुभाषित, पृ १०)

विवाह अनमेल

जो कली है खिल रही उसके लिए, वर पके सूखे फलो जैसा न हो।
दो दिलों मे जाय जिस से गाँठ पड, भूल गँठ जोड़ा कभी ऐसा न हो।
मिल सकेगा सुख न वह धन धाम से, दुख न मेटेंगी मुहर की पेटियाँ।
तज सयानप कमसिनो से किस लिए, ब्याह हम देवें सयानी बेटियाँ॥
(हरिऔध चुभते चौपदे, पृ १५८-९)

२ छोडो वे बेजोड विवाह, होता है जिन से गृह दाह।
गृह में गृह-लक्ष्मी की पूर्ति, वन मे सावित्री की मूर्ति।
रण में असुरनाशिनी शक्ति, आविर्भूत करे निज भक्ति।
(मै श गु हिन्दू, पृ ६४-५)

३. कुसुम-कली वानर के कर में, है मलीन म्रियमाण।
मृदु लतिका का प्रेमालिंगन, करता है पाषाण॥
नयन-नयन से हृदय-हृदय से, और प्राण से प्राण।
कहते यही मौन भाषा में, "करिये मेरा त्राण"।

(गो. श. सि. : मानवी, पृ. १०८)

४. माया के लोभन, पिता कियो कसाई-कार।
ब्याही बूढ़े-हाथ, सुनि सिक्कन की झनकार॥

(रामेश्वर करुण : करुण सतसई, पृ. ५२)

५. घर में देवर की नव कलत्र, कितनी प्रफुल्ल कितनी प्रसन्न।
माँ के घर भाभी तुष्ट-पुष्ट, यह नव परिणीता छिन्न भिन्न।

(अतुल कृष्ण गोस्वामी : नारी, पृ. १९९)

विवाह : कर्त्तव्य

मेरे मन यह भावना, पत्नी करना यार।
उमर अकेले काटना, होना सचमुच ख्वार॥
बड़ा हर्ष यह रात दिन, निज नारी का ध्यान।
जग में रहना नारि बिन, महा कष्ट कर जान॥
भामिनि चिन्ता चित्त को, है अति ही सुखदाय।
पावै कभी न मित्त सो, जो क्वारा रहि जाय॥

(डा. महेन्दुलाल गर्ग)

विवाह की : प्रशंसा

पूततम है विधान विधि का,
नियति का है नियमित नियमन।
प्रकृति का है अनुपम आशय,
वेद का वन्दित अनुशासन॥
विलसता सुरतरु है उस में,
मलय मारुत वह पाता है।
स्वर्ग जैसा सुन्दर उससे,
गृही का गृह बन जाता है॥
बालकों का विधु-सा मुखड़ा,
नयन को कैसे दिखलाता!
सुधा-रस कानों में कैसे,
मृदु वचन उनका बरसाता

भूमि से उसकी जल-पय सम,
एक हो जाते हैं दो मन।
मिलाता है दो हृदयों को,
मुक्ति-साधन विवाह-बंधन ॥
(हरिऔध : मर्म स्पर्श, पृ १०१)

विवाह में विभिन्न इच्छाएँ

कन्या सुन्दर वर चहै, मातु चहै धनवान।
पिता कौनिपुन स्वजन कुल, अपर लोग मिष्ठान ॥
(विनायक राव)

विविधता में एकता

विविधता में एकता का गान ही गौरव हमारा!
यदि कभी भ्रम भूल से हम विविधता का ऐक्य खोयें,
धर्म, भाषा भेद का बवण्डर चला विष बीज बोयें,
छिन्न होगी भिन्न होगी राष्ट्र की गरिमा पुरातन,
बिखर कर रज में मिलेगी हिन्द की महिमा सनातन।
(श्रीमन् नारायण रजनी में प्रभात का अंकुर, पृ ८६)

विवेक

१ सुनिये भूप विवेक तुम वासुदेव अवतार।
प्रिय मन पितु वसुदेव को बंधन ते उद्धार ॥
(दी द गि ग्र, पृ २५३)

२ आँखें मूँद न पीटो लीक, सोच समझ देखो तुम ठीक।
करो न असमय का आलाप, जो तुम को ही रचे न आप ॥
(मै श गु हिन्दू, पृ १६४)

विवेक राजा में

साधन साध्य विवेक विहायी। किय कार्य नहिं भूप भलाई ॥
(द्वा प्र मि कृष्णायन, पृ १२)

विश्राम संतोष से ही

कोउ विश्राम कि पाव, तात सहज संतोष बिन ?
चलै कि जल बिनु नाव, कोटि जतन पचि पचि मरिय ?
(रा च मा गु, पृ ६४६)

विवेक :—हीन मानव

सींग पूँछ विन बैल है, मानुष विना विवेक।
भख्य अभख समझै नहीं, भगिनि भामिनी एक।।

(बुधजन सतसई, पृ. ४७)

विश्व : कर्मभूमि

यह नीड़ मनोहर कृतियों का,
यह विश्व कर्म रंगस्थल है;
है परंपरा लग रही यहाँ,
ठहरा जिस में जितना बल है।

(प्रसाद : कामायनी, पृ. ७५)

विश्व : का नागर

किन्तु हमारा लक्ष्य एक अम्वर, भू, सागर,
एक नगर-सा वने विश्व हम उसके नागर।

(मै. श. गु. : राजा-प्रजा, पृ. ४७)

विश्व : प्रगतिशील

जग और क्या, परिणत यौवन; मृत्यु कुछ नहीं परिणत जीवन!
कर्म रंग पल-पल नवीन औ, प्रगतिशील यह विश्व सनातन।

(शम्भू दयाल सक्सेना : मन्वन्तर, पृ. ५०)

विश्व : प्रभु का मन्दिर

मस्जिद पगोडा गिरजा किसको वनाया तू ने
सव भक्त-भावना के छोटे-वड़े नमूने,
सुन्दर वितान कैसा आकाश भी तना है,
उसका अनन्त मन्दिर यह विश्व ही वना है।

(प्रसाद : कानन-कुसुम, पृ. १२)

विश्व :—प्रेम

१. बार-बार हो रही सुघोषित नीति हमारी,
नही किसी से बैर सभी से प्रीति हमारी।
सर्व सुखी हों यही सदा की रीति हमारी,
खोले सब के मित्र—चक्षु श्रुति-गीति हमारी।।

(मै. श. गु. : राजा-प्रजा, पृ. ४७)

२ स्वच्छ बनो, आन्तरिक स्वर्ग में रमण करो होकर निष्काम,
आत्म समर्पण करो उसी विश्वात्मा को पुलकित होकर,
प्रकृति मिला दो विश्व प्रेम मे विश्व स्वय ही ईश्वर है।
(प्रसाद प्रेमपथिक, पृ ३०)

३ राष्ट्र-मुक्ति रे केवल प्रथम चरण भर,
विश्व एकता करनी भू पर निर्मित,
मनुज प्रीति के अमर सूत्र मे गुम्फित,
स्वर्ग पीठ करनी भू-मन पर स्थापित।
(सु न पं लोकायतन, पृ ११५)

४ विश्व-प्रेम का पाठ पढ़ाने वाले ही तो,
सब से पहले विग्रह-ज्वाला भडकाते हैं।
विश्व-शान्ति-परिषद बुलवाने वाले ही तो,
सब से पहले कूद अखाडे में आते हैं।।
(सागर मल कुछ कलियाँ कुछ फूल, पृ ३)

५ यह अपना है या नहीं, यह अति क्षुद्र विचार।
है उदार जन के लिए, निज कुटुम्ब ससार।।
किसी भग्न प्राचीर में, छिद्र एक प्राचीन।
खिला पुष्प उस बीच है, नाम गोत्र से हीन।।
दृष्टि-पात करता नहीं, उस पर लोक-समाज।
सूर्य सुबह उठ पूछता, बन्धु ! कुशल है आज ?
(पारसनाथ सिंह)

विश्व —बन्धुत्व

१. भारत-माता के बच्चे, विश्वबन्धु तुम हो सच्चे।
(मै श गु · वैतालिक)

२ तुम हो विश्वकुटुम्बी आर्य, हो तद्रूप तुम्हारे कार्य।
प्रेम, देश को करके पार, करे विश्व मे पुन प्रसार।।

३ वृथा पूर्व-पश्चिम का दिग्भ्रम
मानवता को करे न खडित,
बहिर्नयन विज्ञान हो महत्
अन्तर्दृष्टि ज्ञान से योजित।

सर्वोपरि मानव संस्कृत बन
मानवता के प्रति हो प्रेरित,
द्रव्य मान पद यश कुटुम्ब कुल
वर्ग राष्ट्र में रहे न सीमित।

(सु. नं. पं. : स्वर्ण किरण, पृ. १३९)

विश्व :—मानव

हैं कहाँ विश्व-मानव ? जो हैं केवल स्वदेश के प्राणी हैं,
मानवता नहीं, मातृभू की महिमा के सब अभिमानी हैं।
जब तक ये झंडे फहर रहे, अभिमान नहीं यह सोता है
देखें तो, तब तक विश्व-मनुज का जन्म कहाँ से होता है ?

(दिनकर : चक्रवाल, पृ. ३७१)

विश्व-शान्ति

१.
मध्य युगों की नैतिकता के
पूर्वग्रहों से पीड़ित भू मन,
अतिभौतिक तृष्णा प्रमाद से
लक्ष्य भ्रष्ट युग का जग जीवन !
बाह्य नियंत्रण से भी समधिक
आज चाहिए आत्म संयमन,
शान्ति प्रतिष्ठित हो जग में तब
जब हो बहिरन्तर संयोजन !

(सु. नं. पं. : वाणी, पृ. १७२)

२.
षड्यंत्रों के बारूदों से काँप रही है धरती।
इधर शान्ति सूनी विधवा कुंठित करुण स्वर भरती॥
कोई नहीं हृदय से लिखता विश्व प्रेम की पाती।
इसीलिये तकदीर विश्व की अब तक नहीं सँवरती॥
बीन बजाता घृणा-स्वरों में दीखे स्वार्थ सपेरा।
इसीलिये विधि के अंबर से प्रगटा नहीं सवेरा॥

—सत्यप्रकाश बजरंग

(सं. रामदत्त भारद्वाज : ऋतम्भरा, पृ. १४७-८)

विश्वशान्ति : का उपाय

दलित पतित पीड़ित मनुजों का,
अभ्युत्थान अपेक्षित है।

जगती की सुख शान्ति उसी पर,
सभी भाँति अवलम्बित है।
(डा गो श सि जगदालोक, पृ १२०)

विश्व-शान्ति वीरानुगामिनी

सुर नहीं शान्ति आँसू बिखेर लायेंगे,
मृग नहीं, युद्ध का शमन शेर लायेंगे
विनयी न विनय की लगा टेर लायेंगे
लायेंगे तो वह दिन दिलेर लायेंगे।
(दिनकर की सूक्तियाँ, पृ ९५)

विश्वास

१ रो उठेगी जाग कर जब वेदना
बहेंगी लूहें विरह की उन्मना
उमड क्या आया करेगा हृदय मे
सवदा विश्वास का वारिद घना ?
(अज्ञेय हरी घास पर क्षणभर, पृ २३)

२ मुझे विश्वास ह, मगल विधाता सृष्टि मे तेरी,
मुझे विश्वास है, विश्वास वाली दृष्टि मे मेरी,
मुझे विश्वास है, दुख क्षणिक अस्थिर और झूठा है,
हमारी कल्पना है यह कि हम से भाग्य रूठा है।

× × ×

मुझे विश्वास है, शाश्वत नही है वेदना कोई
उसे फिर प्राण मिलते हैं कि जिसने चेतना खोई॥
(भवानीप्रसाद मिश्र गीत फरोश, पृ ८९)

विश्वासघात

तू बाण मार मृग के यदि प्राण लेता,
तो व्याध, मैं अधिक दोष तुझे न देता।
की किन्तु देकर प्रतीति अनीति तूने,
मारा सुना कर उसे कल गीति तूने॥
(मै श गु रेडियो वार्ता)

विषमता

भू में आज विभव अपार, दारिद्र्य अपरिमित,
ज्ञान अखंड, असंख्य अविद्या-तम से पीड़ित !
साधन विकसित, जीव कामना क्षुधित निरावृत,
रोग-ग्रस्त मन, जीवन विषम, मनुज आत्मा मृत !
धरा-वक्ष राष्ट्रों के कटु स्वार्थों से खंडित,
उन्नत स्वर्ण-कलश देशों के विष परिपूरित !
गगन सिन्धु भीषण रण-चीत्कारों से नादित,
मनुष्यत्व भौतिक वैभव से आज पराजित !

(सु. नं. पं. : स्वर्णकिरण, पृ. १२१)

विषमता : आर्थिक

१. संचित समस्त युग संपद् धनपतियों में मुट्ठी भर,
अब मध्य निम्न वर्गों के जन निर्धन से निर्धनतर !

(सु. नं. पं. : लोकायतन, पृ. १६७)

२. वे भी यहीं, दूध से जो अपने श्वानों को नहलाते हैं !
ये बच्चे भी यहीं, कब्र में दूध, दूध ! जो चिल्लाते हैं !

(दिनकर : चक्रवाल, पृ. ५०)

३. कहीं विभव के शैल खड़े है, कही गरीबी की है खाई।
हम दोनों को करे बराबर, क्यों दे यह वैषम्य दिखाई।
कहीं मधुर रस-निर्भर झरते, कहीं तीव्र जलती है ज्वाला।
कही सुधा की सरिता वहती, और कहीं पर विष का नाला॥

प्रिये चलो इस दुनियाँ को हम,
खोद-खाद हमवार बनावे।
जहां अबोध बना मानव को,
शिशु सा, भोले खेल खिलावें॥

(हरिकृष्ण प्रेमी : अग्नि-गान, पृ. १६)

४. उत भूखे क्रन्दन करत, कलपि किसान मजूर।
इत मसनद पै मद-छके, सुनत अलाप हजूर॥

(वियोगी हरि : वीरसतसई, पृ. ८६)

५. भूखे है विद्वान् छिन गये जीवन के सब साधन;
कलाकार भी खिन्न रुका है सुन्दर का आराधन।

पर उदार पूँजीपति की बह रही दान की धारा,
प्लावित मदिरालय वेश्यागृह, मिलता नहीं किनारा ॥
(चन्द्रप्रकाशसिंह प्रतिपदा, पृ ४२)

६ एक ओर धनिकों के कुत्ते,
दूध जलेबी बिस्कुट खाते,
एक ओर कृषकों के बच्चे,
सूखी रोटी को रिरियाते।
एक ओर निर्धन बेचारे,
ताप ताप कर रात बिताते।
एक ओर धनिकों को देखा,
कुत्तों को मखमल पहिनाते।
(रामेश्वर करुण चिनगारी, पृ ७४, ७५)

७ बढ़े विषमता-व्याधि-ग्रस, बहु दारिद-संताप।
विविध 'पुरखुले पाप' कहि, बहकावत क्यों आप ?
(रामेश्वर करुण करुण सतसई, पृ ११९)

विषमता वरदान

विपमता की पीडा से व्यस्त
हो रहा स्पन्दित विश्व महान,
यही दुख सुख विकास का सत्य
यही भूमा का मधुमय दान।
(प्रसाद कामायनी, पृ ५४)

विषय और मूढ

जो विषया सतन तजी, मूढ ताहि लपटात।
ज्यो नर डारत वमन कर, स्वान स्वाद सो खात ॥
(रहिमन विलास, पृ ६)

विषय का निवास

भवन विशेष न विषय निवासू। विपिनहुँ मँह अभाव नहिं तासू ॥
बसत तात! सो मनुजहिं माहीं। रहत साथ जिमि तनु परिछाहीं ॥
(द्वा प्र मि कृष्णायन, पृ ७९८)

विषय : दुखों के बीज

रे मन शब्द स्पर्श जो, रूप पुनः रस गंध ।
सर्व दुःख का बीज यह, तू नहिं समझत अंध ॥

(गिरधिर : कुंडलिया, पृ. १२६)

विषय : भोग-निन्दा

१. तजत अमिय उपदेश गुरु, भजत विषय विष-खान ।
चन्द्र-किरण धोखे पयस, चाटत जिमि शठ स्वान ॥

(तुलसीदास : सतसई, पृ. २८६)

२. विष भक्षन तैं दुख बढ़ै, जानै सब संसार ।
तबहू मन समझै नहीं, विषयन सेती प्यार ॥

(भैया भगवतीदास : ब्रह्मविलास : पृ. २६३)

३. सेवन से और और बढ़ते विषय हैं,
अर्थ जितने हैं सब काम में ही लय हैं ।
एक बार पीकर प्रमत्त हुआ जो जहाँ,
सुध फिर अपनी पराई उसको कहाँ ?

(मैं. श. गु. : नहुष, पृ. २२)

४. मृग-तृष्णा में तृप्ति न मिलती, नही विषय में सच्चा स्वाद ।
नीच वासना भ्रष्ट मार्ग पर, ले जाती, उपजा उन्माद ॥

(गुरुभक्तसिंह भक्त : विक्रमादित्य, पृ. ४)

विषय : से हानि

भ्रमर, मीन, मृग, द्विरद, कुरंगा । विनसत इक इक विषय-प्रसंगा ।
नर में सब अनर्थ इक साथा । अकथ नरेश-कथा यदुनाथा ॥

(द्वा. प्र. मि. : कृष्णायन, पृ. ७९७)

वीर

१. गरजत तउ लुं गज घटा, करि करि अधिकऊ गाज ।
जउ लुं आरस मोरिकै, ऊठत न मृगराज ॥

(लक्ष्मी वल्लभ : दूहा बावनी)

२. परे सार की धार मैं, घायल भयो सुमार ।
कटे सीस हू सूर कै, मुप तैं निकसै 'मार' ॥

(देवीदास : प्रेमरत्नाकर, पृ. ४)

३ सदा दंति के कुंभ को जो विदारै।
ललाई भए चंद सी जौन धारै॥
जँभाई समै काल सो जौन बाढै।
भलो सिंह को दाँत सो कौन काढै॥
(भारतेन्दु नाटकावली, पृ १९५)

४ प्रबल भाव सदैव ही प्रतिपक्ष का।
है प्रवर्द्धक वीर जन के वंश का॥
(मै श गु शकुन्तला, पृ ३४)

५ वह जिसको उसे करके दिखा दें, स्वय गुण सीख लें पर को सिखा दें।
कमर बाँधे रहे सीधे समर मे, कमर छिप कर कभी होंगे न घर में॥
(रा च उ राष्ट्र भारती, पृ ५१)

६ जराधीन अँगछीन हों दीन दंत-नख-हीन।
नहि ऐसी चिंता करूँ कबहुँ केसरी कीन॥
(वियोगी हरि वीरसतसई, पृ १०२)

७ गिरतहु शूर समर महि माहीं। गिरत अरिहिं लै, छाँडत नाहीं॥
हस्त सिंह विषधर-मुखी डारी। लेन शूर हठि दाँत उपारी॥
(द्वा प्र मि कृष्णायन, पृ ५०५)

८ एक वीर ललकार ते काँपि उठत संसार।
कोउ न करत परवाह जब, बोलत रोज सियार॥
(किशोरीदास वाजपेयी तरंगिणी, पृ २८)

९ न मृत्यु से जो डरता कदापि है,
मरे, न चिंता कुछ भी कभी उसे,
महान है वीर वही मनुष्य जो
रहा सदा जीवित मृत्यु के परे।
(अनूप वर्द्धमान, पृ ३३०)

१० जीवित वह, जो तोड चुका हो भय की मकडी के जाले को!
निगल उगल कर मौत खा रही मरने से डरने वाले को!
(नरेन्द्र अग्निशस्य, पृ ३४)

वीर और दुष्ट

के दनी भृंगी किता, किता भखी वन जंत।
समझाया दे दे सजा, सार्दूलं बलवंत॥
(बाँकीदास ग्रंथावली, १, पृ २२)

वीर : और भीरु

वीरव्रती हैं डटे समर में,
भीरु खड़े हैं बन कर दर्शक,
अपने तन का मोह जिन्हें हो,
उनको रण क्या हो आकर्षक ?

(सो. ला. द्वि. : युगाधार, पृ. २६)

वीर : और शत्रु

तेजस्विन उर सहज अमर्षा । सहत न कबहुँ शत्रु-उत्कर्षा ॥

(द्वा. प्र. मि. : कृष्णायन, पृ. ४४०)

वीर : और शृंगार

तुइ अबला, धनि ! कुबुधि-बुधि, जानै काह जुझार ।
जेहि पुरुषहि हिय बीर रस, भावै तेहि न सिगार ॥

(जायसी ग्रंथावली, पृ. २८४)

वीर : का मन

चलै मेरु बरु प्रलय जल पवन झकोरन पाय ।
पै वीरन के मन कबहुँ चलहिं नहीं ललचाय ॥

(भारतेन्दु नाटकावली, पृ. ४७०)

वीर : की अमरता

वरण करता स्वर्ग वह जो, मरण से डरता नही है ।
मरण पाकर भी कभी क्या, वीर भी मरता कहीं है ।

(उदय शंकर भट्ट : अमृत और विष, पृ. ४)

वीर : की कामना

याचत सदा शूर यश-धामा । शस्त्र-मृत्यु अभिमुख संग्रामा ॥

(द्वा. प्र. मि. : कृष्णायन, पृ. ६९९)

वीर : के अभाव में

जिण बन भूल न जावता, गैंद गवय गिड़राज ।
तिण बन जंबुक ताखड़ा, ऊधम मंडै आज ॥

(सूर्यमल्ल : वीर सतसई, पृ. १३३)

वीर : के वचन

खा कर लात शान्त जो रहते, साधु नहीं वे पूरे मूढ़ ।
मारो लात धूलि पर देखो, हो जावेगी सिर आरूढ़ ॥

रिपु से बदला लिये बिना ही, कायर नर रह जाते हैं।
तेजस्वी जन उसके सिर पर, पद रख यश फैलाते हैं॥
(रा च उ : वीर वचनावली)

वीर —गति

१ दुवन-दप हरि, विदरि अरि, राखि टेक अभिमान।
निकसत हँसि घमसान मे, बडभागिनु के प्रान॥
कादर जीविन ही मरत, दिन मे वार हजार।
प्रान पखेरू वीर के, उडत एकही वार॥
(वियोगी हरि वीर सतसई, पृ १३)

२ मरे समर-महि स्वर्ग-सुयोगू। लहे विजय महि-मडल-भोगू॥
(द्वा प्र मि कृष्णायन, पृ ५४१)

वीर —जननी

१ तीरा ऊपर तीर सहि, सेला ऊपर सेल।
खग्गाँ ऊपर खग्ग सहि, रन सम्मुख सुत खेल॥
भुज मुख छाती सामुहे, घावाँ ऊपर घाव।
पलक न भपं पूत की, चढै चौगुनो चाव॥
(चन्द्रशेखर, हमीर हठ, पृ ४३)

२ सिंहनि ऐसौ पूत जनि, पर रन मडहि जाइ।
कुम्भ विदारन गज दलन, अवरन मडे आइ॥
सिंहनि ऐसौ पूत जनि, सिंह विदारन जोग।
घर सूरा रन भागना, जिन ते हँसे ये लोग॥
(आलम माधवानल-कामकदला)

३ हूँ बलिहारी राणियाँ, भ्रूण सिखावण भाव।
नालो बाढण री छुरी, भपटै जणियो साव॥
(सूर्यमल्ल वीर सतसई पृ ५३)

४ 'आये रण मे जूझिकै, लाल लाडिले काम'।
सुनि, छाती फूली, फटी, गई जननि सुरधाम॥
(वियोगी हरि वीर सतसई पृ ११०)

वीर —नेत्र

होति लाग में एक कहुँ अगिन वर्न वह आँख।
देखतही दहि करति जो दुवन-दीह-दलु राख॥
(वियोगी हरि वीर सतसई, पृ २३)

वीर :—बाहु

कटि-कटि जे रण में गिरे, करि कृपाण-व्रत-त्राण।
क्यों न हुलसि कै वारिये, तिन भुजानु पै प्राण ।।

(वियोगी हरि : वीर सतसई, पृ. २३)

वीर :—मानव

जितने वज्र धँसें, उतना ही वक्ष सुदृढ़ सुविशाल बने !
अधिकाधिक सोहे, जो शोनित-श्रमसीकर से भाल सने!
वह भी कैसा मनुज, न उलझा ले झंझा केशों में,
सह प्रहार फिर मेरु-दण्ड जिसका न और से और तने!

(नरेन्द्र शर्मा : मिट्टी और फूल, पृ. ७५)

वीर :—मृत्यु

मर्द बनाये मरि जैवे कौ, औ खटिया पर मरे बलाय।
जो मरि जैहो रन खेतन में, तुम्हरो नाम अमर हुइ जाय।

(जगनिक : असली आल्ह खंड, पृ. ७७)

वीर : सच्चा

सबै कहावै लसकरी, सब लसकर कहं जाय।
'रहिमन' सेल्ह जोई सहै, सो जागीरै खाय ।।

(रहिमन विलास, पृ. २६)

वीर : साथी

न रुकना है तुझे झंडा उड़ा केवल पहाड़ों पर,
विजय पानी है तुझको चाँद-सूरज पर सितारों पर।
वधू रहती जहाँ नर वीर की, तलवार वालों की,
जमी वह इस जरा से आसमाँ के पार है साथी ।।
भुजाओं पर मही का भार फूलों-सा उठाये जा,
कँपाये जा गगन को, इन्द्रका आसन हिलाये जा।
जहाँ में एक ही रौशनी, वह नाम की तेरे,
जमी को एक तेरी आग का आधार है साथी ।।

(दिनकर : सामधेनी, पृ. ९३)

वीर : ही स्वाधीन

पराधीन सबु देखियतु, बल-बीरज ते हीन।
या कानन में, केहरी ! इक तू ही स्वाधीन ।।

(वियोगी हरि : वीर सतसई पृ. २२)

वीरता

१ वह अति पतित है विश्व में, जो दुर्जनों से दब गया ।
मिलती अमरता है उसे, जो सत्य पर मरता स्वयं ॥
(रा च उ मुक्तिमंदिर, पृ ९)

२ उचित भभरि दाण जाब बुभायी ।
उचित जियब नहिं चिर धुंधुआयी ॥
(द्वा प्र मि कृष्णायन, पृ ५०५)

३ 'युद्ध देहि' कहे जब पामर, दे न दुहाई पीठ फेरकर !
या तो जीत प्रीति के बल पर, या तेरा पथ चूमे तस्कर !
(नरेन्द्र अग्निशस्य, पृ ३१)

वीरता और कामांधता

जा तन-अंबुधि में सदा, खेलति अतनु-तरंग ।
उमरैगी क्योंकरि, कहौ, ता मधि युद्ध-उमंग ॥
(वियोगी हरि वीर सतसई, पृ २३)

वीरता और विलासिता

उत गढ-फाटक तोडि रिपु, दीनी लूट मचाय ।
इत लपटं पट तानि तैं, पर्यों तीय उर लाय ॥
(वियोगी हरि वीर सतसई, पृ ८०)

वीरता और विवेक

बात पूछने को विवेक से जभी वीरता जाती,
पी जाती अपमान पतित हो अपना तेज गँवाती ।
(दिनकर की सूक्तियाँ, पृ ९८)

वीरता का अभाव

पावस में ही धनुष अब, नदी-नीर हो तीर ।
रोदन में ही लाल दृग, नौ रस ही में वीर ॥
(वियोगी हरि वीर सतसई, पृ १०५)

वीरता जातीय

१ चाहिए कुछ दबगपन रखना, दब बहुत दाव में न आयें हम ।
वे सबब दबदबा गँवा अपना, जाति का क्यों गला दबायें हम ।
नाक रगडे मिटे नहीं रगडे, माथ क्या पाँव पर रगड करते ।
दो रगड जो रगड सके खल को, पाँव क्या हो रगड रगड मरते ॥
(हरिऔध चुभते चौपदे, पृ २८, ३२)

२. चार बाहें तो किसी की हैं नहीं, क्यों सतायें दूसरे औ हम सहें।
क्यों रहें वे टूट पड़ते लूटते, किसलिए हम कूटते छाती रहें॥
जो हथेली पर लिये ही सिर फिरे, टालने को जाति के सिर की बला।
देख उन पर दाँत हम को पीसते, कौन दाँतों में न उँगली दे चला॥
(हरिऔध : चुभते चौपदे, पृ. ९९, १०४)

वीरता : निन्द्य रूप

जो अनेक जन एक पर मिल कर करें प्रहार।
है उनके वीरत्व को बार-बार धिक्कार॥
(मै. श. गु. : तिलोत्तमा, पृ. ४७)

वीरांगना

१. भामा ह्लादिनी-तरंग, तडिन्माला है।
वह नहीं काम की लता, वीर बाला है।
आधी हलाहल-धार, अर्ध हाला है।
जब भी उठती हुंकार युद्ध ज्वाला है॥
चंडिका कान्त को मुंडमाल देती है।
रथ के चक्के में भुजा डाल देती है॥
(दिनकर की सूक्तियाँ, पृ. ५५)

२. नव सुकुमार सुशील शोभना पतिव्रता पति की अति प्यारी।
तेजस्विनी आत्मगौरवमयि, उत्सर्गोद्यत निर्भय नारी॥
कौन कर सके इसे तिरस्कृत किसका इसे विश्व में डर।
इस पर दृष्टि उठा सकने का साहस किसे? न नत किसका शिर!
तल्पशायिनी, अश्वरोहिणी, चूड़ी वाले कोमल कर में।
जब तलवार उठा लेती है, फिर रुक पाता कौन समर में॥
आज न यह अबला न दुर्बला, इस पर शक्ति-प्रयोग न संभव।
अपराजित, संमानित, सक्षम, यह जीवित जाग्रत नारी नव॥
(अतुल कृष्ण गोस्वामी : नारी, पृ. २८०)

वृक्ष : निरर्थक

फल फूल सुरूप सुगंध भले, तरु देपत ही जन नैन ठरै है।
एकन के फल फूल न होत, तऊ नित सीतल छाँह करै है।
जिनके फल फूल रु छाँह नहीं, अरु पंथिन को श्रम नाहिं हरै हैं।
'कविचंद' कहै विधना नर कूँ, अरु ता तरु कुँ रचि काहि करै हैं॥
(बालचन्द : सवैया बावनी, पद्य ४४)

वृद्ध की मनोवृत्ति

अपने युग मे सब को अनुपम ज्ञात हुई अपनी हाला,
अपने युग मे सब को अद्भुत ज्ञात हुआ अपना प्याला,
फिर भी वृद्धो से जब पूछा एक यही उत्तर पाया—
अब न रहे वे पीने वाले अब न रही वह मधुशाला ।

(बच्चन अभिनव सोपान, पृ. ६६)

वृद्ध तरुणी-वश

होत तरुन के तरुनि बसि, बिरध तरुनि बसि होइ ।
इहै रीति सब जगत की, जानत है सब कोइ ॥

(गुरु गोविन्दसिंह दशमग्रंथ, पृ ८१६)

वृद्ध विवाह

छोकरी का ब्याह बूढे से हुए, चोट जी मे लग गई किसके नही ।
किसलिए उस पर गडाये दाँत वह, दाँत मुँह मे एक भी जिसके नही ॥
राज की साज बाज सज धज की, है न वह दान मान की भूखी ।
मूढ बूढे करें न मन मानी, है जवानी जवान की भूखी ॥

(हरिऔध चुभते चौपदे, पृ १६०-१)

वेद और सतवाणी

वेद सु वाणी कूप जल, दुख सूं प्रापति होइ ।
सबद साखि सरवर सलिल, सुख पीवै सब कोइ ॥—रज्जब

(सतसुधासार, पृ ५३२)

वेद की महिमा

१ अतुलित महिमा वेद की 'तुलसी' किएँ बिचार ।
जो निदत निदित भयो बिदित बुद्ध अवतार ॥

(दोहावली, दो ४६४)

२ बदउ चारिउ बेद, भव बारिध-बोहित सरिस ।
जिनहि न सपनेहु खेद, बरनत रघुबर बिसद जस ॥

(तुलसी सूक्ति सुधा, पृ ४२४)

३ वेद भेद जो मारग जदया, पथ हैरान तही छित पदया ।
वेद बिहून सुनो सो काया, पसु के अंस धरी नर काया ॥

(शेख नबी ज्ञान दीप)

४. सभी देश पर औ सभी जातियों पर।
सदा जल वहुत ही अनूठा वरस कर ।।
निराले अछूते भले भाव में भर।
वनाते उन्हें जिस तरह मेघ हैं तर ।।
उसी भाँति ये वेद प्यारों भरे हैं।
सकल लोक-हित के लिए अवतरे हैं।

(हरिऔध : पद्य प्रसून, पृ. १६)

वेदान्त

आपुहि मीच जियन पुनि आपुहि, आपुहि तन मन सोइ।
आपुहि आपु करै जो चाहै, कहाँ सो दूसर कोइ ।।

(सं. रा. चं. शु. : जायसी ग्रंथावली पृ. ६३)

वेश

बाना पहिरे वड़न का, करैं नीच का काम।
ऐसे ठग को ना मिलै, नरकहुँ में कहुँ ठाम ।।

(सुधाकर द्विवेदी)

वेश्या

१. हीन दीन तैं लीन ह्वै, सेती अंग मिलाय।
लेती सरवस संपदा, देती रोग लगाय ।।

(बुधजन सतसई, पृ. ५१)

२. रसियां रो तन रोग सूँ, सड़ जावे नह सोच।
हेम रजत खातर हुवै, पातर लोच पलोच ।।

(बाँकीदास ग्रंथावली २, पृ. ५)

३. वारवधू जन को अहै, सहजहिं चपल सुभाव।
तजि कुलीन गुनियन करहिं, ओछे जन सो चाव ।।

(भारतेन्दु नाटकावली, पृ. २२१)

४. होता है जग मुग्ध देखकर तेरा नित नवीन शृंगार,
कौन कभी सुनता है वाले ! तेरे उर का हाहाकार ?
जहाँ विलास वहीं क्रन्दन भी, जिससे घृणा उसी से प्यार।
है तेरा जीवन विचित्र ही, है विचित्र तेरा संसार !
यह निर्दय संसार सर्वदा तुझ पर कीचड़ रहा उलीच।
प्रेम-वारि से भी क्या तुझको दिया किसीने आकर सींच ?

(गो. श. सिं., पृ. ६६-६८)

५ वह कटाक्ष करती बैठी हैं, सुन्दरियाँ जो मांसल मांसल,
क्या उनका जीवन भी सुन्दर, क्या ऐसा ही उज्ज्वल-उज्ज्वल ?
(रांगेय राघव मेधावी, पृ २४३)

वेश्या —गमन

घर के भीतर आया, जननी मूर्छा भरती वस्त्र विहीन,
क्षुधा क्षीण हो कर शिशु सारे रोते रहते दिन भर दीन।
चोरी तक करके तुम देते वस्त्राभूषण नित्य नवीन ॥
वेश्याओं को, मेरे प्यारे ! तुम अच्छे निकले शौकीन ॥
(रा च उ राष्ट्र भारती, पृ ८)

वेश्यागामी की पत्नी का दुख

मैं कीधो साचे मते, नायक तोमूं नेह।
कण आवें सो देह चित, दाह विरह मत देह।
(बांकी दास ग्रथावली, २, पृ १)

वैद्य

लोभ हीन सत्प्रकृति, शास्त्र का पूरा पंडित,
हँसमुख प्रौढ़ प्रवीण अनुभवी गुण गण मंडित,
जाने सभी 'निदान' प्रकृति से परिचित होवे,
कुछ ही दिन दे दवा रोग को जड़ से खोवे,
ऐसा प्रसिद्ध जो वैद्य हो, सिद्धहस्त हर काम में,
वही सदा उपयुक्त है, स्मरण रहे इसका हमें।
(रूप नारायण पांडेय पराग, पृ १०९)

वैभव और धर्म

वैसे वैभव और सफलता से हम को भी मोह है,
पर क्या करें कि हम कायल हैं धर्म और ईमान के,
हम को तो चलना आता है केवल सीना तान के।
(स अमृतलाल नागर भगवती चरण वर्मा, पृ ३७)

वैमनस्य व्यापक

जाति को जाति देश को देश, हड़पने को है व्यग्र विशेष।
नहीं मन में ममता का लेश, विषमता-क्षमता का आवेश।
दिखाने को रक्षक-भाव, भरा है भीतर भक्षक भाव ॥
(मै श गु विश्ववेदना, पृ १५)

वैर : का शोधन

वैर की यथार्थ शुद्धि वैर नहीं प्रेम है,
और इस विश्व का इसी में छिपा क्षेम है ॥
(मै. श. गु. : जयभारत, पृ. ७२)

वैर : के अपात्र

सांई वैर न कीजिए, गुरु पंडित कवि यार ।
वेटा वनिता पँवरिया, यज्ञ करावन हार ॥
यज्ञ करावन हार राजमंत्री जो होई ।
विप्र परोसी वैद्य आपको तपै रसोई ।
कह 'गिरिधर कविराय' युगन तें यह चलि आई ।
इन तेरह सों तरह दिये वनि आवै सांई ॥
(कुंडलिया, पृ. १०)

वैर : सवल से

सवल संग जो वैर विसायी । निवसत उदासीन गृह जायी ॥
सो समीप जनु पावक जारी । सोवत अभिमुख प्रवल वयारी ॥
(द्वा. प्र. मि. : कृष्णायन, पृ. २२८)

वैरागी और गृहस्थ

वैरागी विरकत भला, गिरही चित्त उदार ।
दुहुँ चूकां रीता पड़ै, ताकूं वार न पार ॥
(कवीरग्रंथावली पृ. ५७)

वैराग्य

तहँ विराग की क्या कथा, इन्द्रिय जहँ आराम ।
जौन तौन परकार कर, पोषैं हाड रु चाम ॥
(गिरिधर : कुंडलिया, पृ. ७९)

वैश्य

अव तो उठो हे वन्धुओ ! निज देश की जय वोल दो
वनने लगें सव वस्तुएँ कल-कारखाने खोल दो ।
जावें यहाँ से और कच्चा माल अव वाहर नहीं
हो 'मेड इन' के वाद वस अव 'इंडिया' ही सव कहीं ॥
(मै. श. गु. : भारतभारती, पृ. १६८)

वैश्य सुवैश्य

बात कभी नही सच्ची बोले, कोई हो पर वह कम तोले ।
मन से है वह बेहद काला, ऐ सखि डाकू ना सखि लाला ॥

(बरसानेलाल . रग और व्यग्य, पृ १)

वैष्णव

जो हरि घट मे हरि लखै, हरि बाना हरि बोइ ।
हरि छिन हरि सुमरन करै, विमल वैष्णव सोइ ॥

(बनारसी विलास, पृ २०४)

वैष्णव कवाबभक्षी

काम कबूतर तामस तीतर ज्ञान-गुलेलन मार गिराये ।
पाखड के पर दूर किये अरु मोह के अस्थि निकासि दराये ॥
सजम काटि मसालो विचार को साधु समाज ते ताहि हिलाये ।
'ब्रह्म' हुतासन सेकि के बावरे वैष्णव होत कबाब के खाये ॥—बीरबल

(अकबरी दरबारके हिन्दी कवि, पृ ३५८)

वोट (दे 'मत' भी)

१ शकर की भाति न घृणा से धारो रुद्र-रोष,
देश के दुलारे बनो प्रेमामृत पीजिए ।
द्वारे द्वारे डोलता हूँ लेके साथियो को साथ,
हा हा खडा गाता हूँ पुकार सुन लीजिए ॥
भारी भक्ति भाव से भिखारी मांगता है भीख,
सुयश पसारिये कृपालु कृपा कीजिए ।
वोट-दान देके दानी वोटरो बटोरो पुण्य,
मेरा जन्म-जीवन सफल कर दीजिए ॥

(नाथूराम शकर अनुराग रत्न, पृ ३१५)

२ वोट देते हैं टके की ओट में, हैं सभाओ मे बहुत ही ऐंठते ।
कुछ उटल्लू लोग ऐसे हैं कि जो, हैं उठाते हाथ उठते बैठते ।
वोट दें पर खोट से बचते रहे, क्यो करें वह, लिम लगे जिसके किये ॥
जब कि ऊपर मुंह न उठ सकता रहा, हाथ ऊपर है उठाते किस लिये ॥

(हरिऔध चुभते चौपदे, पृ १४०-१)

वोटर

वोटर असली है वही, देय उसी को वोट ।
थमा देत जो हाथ मे, दस रुपये का नोट ॥

(काका हाथरसी दुलत्ती, पृ १२)

व्यक्ति : और समाज

१. व्यष्टि-समष्टि-विवाद व्यर्थ है, झगड़ा मन-माना है;
है समष्टि ही हार, व्यष्टि तो मोती का दाना है।
(दिनकर की सूक्तियाँ, पृ. ८८)

२. व्यक्ति-समष्टि समस्या ही क्या ? जो कि व्यष्टि वह ही समष्टि है।
ज्यों न बूँद से खाली बदली, जो कि बूँद है वही वृष्टि है।।
(प्रभाकर माचवे : अनुक्षण, पृ. ३१)

व्यक्ति : और सामाजिक परिवर्तन

यदि न अर्ध्वगामिनी बनेंगी, वैयक्तिक प्रवृतियाँ सारी;
तो सामाजिक परिवर्तन की, होने लग जायगी ख्वारी।
(बा. कृ. श. न० : हम विषपायी जनम के, पृ. ६८)

व्यभिचार

चंचल नारि सौ प्रीति न कीजिए, प्रीति किये दुख होत है भारी।
काग परे कछु आन बने कवु, नारि की प्रीति है प्रेम कटारी।।
लोहे के घाव दवा ते मिटे, पर चित कौ घाव न जाय विसारी।
'गंग' कहै सुन साह अकव्वर, नारि की प्रीति अंगार ते छारी।।
(अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, पृ. ४३५)

व्यभिचार : की निन्दा

जे पर नारि निहारि निलज्ज, हँसै विगसै बुधिहीन बड़ेरे।
जूंठन की जिमि पातर देखि, खुशी उर कूकर होत घनेरे।।
है जिन की यह टेव वहै, तिन कौ इस भौ अपकीरत है रे।
ह्वै परलोक विषै दृढ दंड, करै शत खंड सुखाचल केरे।।
(भूधरदास : जैनशतक, पृ. २२-२३)

व्यभिचार :—जन्य दोष

प्रगट भये परकीय अरु, सामान्या को संग।
धर्म हानि धन हानि सुख, थोरो दुख इकंग।।
(देव : प्रेमतरंग, दो. ८)

व्यवहार : अवसरानुसार

नित्य और नैमित्तिक कर्म, रखते नहीं एक ही मर्म।
रक्खो अवसर के अनुसार, अपने साधारण व्यवहार।।
(मै. श. गु. : हिन्दू, पृ. ३६)

व्यवहार यथायोग्य

जो तुझ को तोला झुके, तू झुक सेर पच्चीस।
मरोर करै इक तस्सु भर, तू कीजै हाथ बईस।
कीजै हाथ बईस रीति व्यवहारिक ऐसी।
जैसा जैसा देव जगत में पूजा तैसी।
कह गिरिधर 'कविराय' रोते में सग रोने जो।
हँसते संग हँस मिलो पुरुष हँस के बोले जो॥

(कुडलिया पृ १०९)

व्याकुलता

जहाँ घृणा करती है वास,
जहाँ शक्ति की अनबुझ प्यास,
जहाँ न मानव पर विश्वास,
उसी हृदय मे, उसी हृदय मे,
उसी हृदय में, वही, वही,
जग की व्याकुलता का केन्द्र।

(बच्चन अभिनव सोपान, पृ २८४)

व्याध

छोडि माँस-भव मरन-भय, जियहि खाइ तृन घास।
तिन गरीब मृग को करहि, निरदय व्याधा नास॥

(भारतेन्दु नाटकावली, पृ ३२०)

व्याधि मानसिक

क्षण क्षण मे विरहाग्नि धैर्य उसका थी खोती,
ओषधियो से दूर मानसिक व्याधि न होती।

(मै श गु शकुन्तला, पृ १३)

व्यापार घाटे का

खोया सब, हाँ रही बुद्धि इतनी अलबत्ता।
दे कर चाँदी खरी मोल लेते हैं लत्ता॥

(राय देवीप्रसाद 'पूर्ण')

व्यायाम

शूरता के खेल मन हर्षित करें, देह मे बल तेज पौरुष को भरें।
इत्र यौवन का नहीं वे सूघते, देव आलस मे पडे जो ऊँघते॥
नेम से व्यायाम को नित कीजिए, दीर्घ जीवन का सुधारस पीजिये।

(सत्यदेव परिव्राजक अनुभव, पृ ३४)

२. ब्रह्मचर्य धारण करो, नित्य करो व्यायाम।
बुद्धि तेज बल प्राप्त कर, बनो सकल गुणधाम ॥
(मेलाराम : शिक्षासहस्री, पृ. ७९)

व्रत

एक व्रत जो इंद्री गहै, दूजा व्रत राम मुख कहै।
तीजा व्रत मिथ्या नहि भाषै, चौथा व्रत दया मनि राखै ॥
(गोरखबानी, पृ.२४५)

शक्ति

शक्ति वस्तु है वह विख्यात, कि हो दोष भी गुण-सा-ज्ञात।
बना डिठौना चन्द्र-कलंक, सगुण विगुण भी है निश्शंक ॥
(मै. श. गु. : हिन्दू, पृ. १६२)

शक्ति : का उत्पात

क्रान्ति है आवर्त्त, होगी भूल उस को मानना धारा :
उपप्लव निज में नहीं उद्दिष्ट हो सकता हमारा।
जो नहीं उपयोज्य, वह गति शक्ति का उत्पात भर है :
स्वर्ग की हो—माँगती भागीरथी भी है किनारा।
(अज्ञेय : हरी घास पर क्षण भर, पृ. ४७)

शक्ति : का वितरण

जितनी हैं शक्तियाँ मनुज को, प्राप्त हुई इस जग के भीतर!
उन्हें दान करते रहना ही, है मनुष्य का धर्म यहाँ पर।
(रा. न. त्रि. : स्वप्न, पृ. ७२)

शक्ति : का स्वर

थक गये कान सुन शान्ति-शान्ति का शान्त शब्द,
अब शक्ति-शक्ति का महाशक्ति का जागे स्वर।
तुम एक बार तो नाचो फिर बन प्रलयंकर।
—चिरंजीव शास्त्री
(सं. रामदत्त भारद्वाज : ऋतम्भरा, पृ. ३५)

शक्ति : की आवश्यकता

बिना शक्ति के अक्षम रहते दुर्बल तप और ज्ञान,
असुरों के उत्पात सिद्ध हैं इस का पूर्ण प्रमाण;

असुरो का अवसर बन जाते दुर्बल ज्ञानी दीन,
भय, शका, भ्रम मे हो जाते धर्म ज्ञान भी हीन ॥
(रामानन्द तिवारी : पार्वती, पृ ५३४)

शक्ति सख्या से उत्तम

सत्य ही श्रम-शक्ति से होता सदा समान,
किन्तु बहु सख्या बढाती व्यर्थ का अभिमान,
एक रवि ससार का हरता सभी तम क्या न ?
(रामेश्वर करुण चिनगारी, पृ १०४)

शकुन

१ सगुन विचारै बनिय के लडका, जो नित करैं बनिज बैपार।
सगुन विचारै रैयनिरेजा, जो घरि मौर बियाहन जायँ।
सगुन विचारै हम क्षत्री हुइ, जो रन चढिके लोह चबायँ ?
कूच कराय दओ वरिया ने, मारू डका दओ बजाय ॥
(असली आल्हखड, पृ ८१)

२ या छन दच्छिन बाहु विलोचन क्यो फरकै कछु जानि न जाता।
कीन्हो बिचार मनै बहु कारन सो सब कारन जान विधाता ॥
(सक्षिप्त रामस्वयवर, पृ ९८)

शत्रु का नाश

१ छल बल समय विचारि कै, अरि हनिए अनयास।
कियो अकेले द्रोण सुत, निमि पाडव कुल नास ॥
(वृन्द सतसई, दोहा २२६)

२ अरि पर दया आती जिसे, वह आत्म बध करता न क्यो ?
जो जन मिटाते हैं तुझे, उनको बसाने क्यो लगा ?
(रा च उ मुक्तिमदिर, पृ ७)

३ करि आहत त्यागत जो व्याला। नाचत तेहि शिर प्रति-पल काला ॥
(द्वा प्र मि कृष्णायन, पृ ४३१)

४ उचित नही आराध्य देव का श्वेत कमल से पूजन।
अरे व्रती, अरिमुड सुमन की जय माला पहनाओ ॥—चिरजीत
(स रामदत्त भारद्वाज ऋतम्भरा, पृ ३०)

५ मइया कहे, विजय ले आओ रखो दूध की लाज रे,
बहिन कहे, वीरन जो आये जन्मभूमि के काज रे।

कहे सुहागिन, समर भूमि मेरे प्रियतम की सेज है,
बेटी कहे, समर में कोई नही पिता से तेज है।
छीन पताका वैरी की ले आओ आज्ञा बाप की,
भरो लबालब हलकी गागर रे वैरी के पाप की।

(उमाकान्त मालवीय : बाजी रणभेरी, पृ. ५१)

शत्रु : का वचन अमान्य

वैरा रा मीठा वचन, फल मीठा किंपाक।
वे खाधां वे मानियां, हुवा कृतांत खुराक ॥

(बाँकीदास ग्रंथावली १, पृ. ६६)

शत्रु : का वशीकरण

रक्त-पात करना पशुता है, कायरता है मन की।
अरि को वश करना चरित्र से, शोभा है सज्जन की ॥

(रा. न. त्रि. : पथिक, पृ. ५८)

शत्रु : के अधीन जीवन

अरि बस दैउ जियावत जाही। मरनु नीक तेहि जीवन चाही ॥

(रा. च. मा. गु., पृ. २४७)

शत्रु : के घर में वास

उचित न रिपु-गृह रैनि-निवासा। उचित न वन एकाकी वासा ॥

(द्वा. प्र. मि. : कृष्णायन, पृ. १२७)

शत्रु : छल से हनन

दायण मारै दाव सूं, नीत वात निरधार।
पेख हिरण चीतौ प्रगट, मूंसै पेख मँजार ॥

(बाँकीदास ग्रंथावली, १, पृ. ६७)

शत्रु : पांच

काम क्रोध के साथ लो, लोभ मोह अहंकार।
इन पाँचों से है अधिक, मानव मन का प्यार ॥

(हरिऔध सतसई, पृ. ६८)

शत्रु विश्वास का अपात्र

रिपु जन के रस कहा, कहा निज वचन बिसासहु।
कहा पिसुन सुप्रनीत, कहा अरि कोइ कलासहु॥
महुरे का कहा मीठ, कहा हिमशैल शीत जग।
कहा स्व प्रगटित अगनि, कहा पय पोषित पन्नग॥

(मान राजविलास)

शत्रु से प्रतिशोध

मन दर्प लाना, बदला चुकाना।
नर-नारियों की इस बेकसी का॥
रिपु लाख भी हों, कितने बली हों।
नरसिंह होके झपटो सभी पै।

(सत्यदेव परिव्राजक अनुभव, पृ २७)

शरणागत-रक्षा

दाकर गर विष कद जिम, बडवा अगनि समद।
तैं रक्खो चहुआन निम, खाँ हुसैन कहि चद॥

(पृ रा रा १, (उदयपुर), पृ २४७)

२ सरण राखि सेस न तजो, तजो सीस गढ देस।
राणी राव हमीर को, यह दीन्हो उपदेस॥

(जोधराज हम्मीररास, पृ ११८)

३ सरनागत कहुँ जे तजहिं, निज अनहित अनुमानि।
ते नर पावर पापमय तिन्हहि बिलोकत हानि॥

(रा च मा सु, पृ ४१२)

४ सोचहु जो यह है सरनागत। राखिय राजिवलोचन सो मत।
भीत न राखियो तो अति पातक। होइ जु मातु पिता कुल घातक॥

(केशवदास रामचंद्रिका, प्रकाश १५)

५ साहि तने सव कोप कृसानु ते बैरि गरे सब पानिप वारे।
एक अचम्भव होत बडो तिन ओठ गहे अरि जात न जारे॥

(भूषण ग्रथावली, पृ १३६)

६ बगला बैठा ध्यान में, आन जल के तीर।
मानों तपसी तप करै, मल कर भसम शरीर॥

मल कर भस्म शरीर, नीर जब देखी मछली।
कहँ 'मीर' ग्रसि चोंच, समूची फौरन निगली॥
फिर भी आवें शरण, वैर जो तज के अगला।
उनके भी तू प्राण हरे रे! छी—छी बगला॥

(स. अ. अ. मीर)

शरारत

वह शरीर भी है फिजूल ही, जिसमें बिल्कुल प्राण नहीं जी;
वह इन्सान कहाँ का जिसमें वतन-कौम की शान नहीं जी।
है वीरान चमन वह जिसमें फूलों की मुसकान नहीं जी;
वह भी क्या सन्तान किसी की, कुछ भी जो शैतान नहीं जी॥
दुनिया का इतिहास बताता बचपन में सब ही नटखट थे;
ईसा मूसा और मुहम्मद, सबके जीवन में संकट थे।
नेल्सन बोनापार्ट शिवाजी आदि वीर जो रण खेले थे;
सभी दुसाहस के चेले थे—सभी अनोखे अलबेले थे॥
कूदो ताड़ों से पीपल से नाचो तुम छप्पर पर चढ़ कर;
चिनगारी पर चलो आग से निकल पड़ो कंचन सा कढ़ कर।
तुम्हें फिक्र क्या कुश्ती खेलो मुद्गर फेरो गेंद उछालो;
नंगे बदन धूप में दौड़ो, पर्वत का भी बोझ सँभालो॥
लेकिन एक बात हाँ फिर भी याद रहे तुम को दीवानो।
कह देता हूँ चलते चलते मानो या न इसे तुम मानो।
पढ़ना भी है एक चीज ही उछल कूद में मत बिसराओ;
औ मस्ती की फौज रंगीली, पढ़ो-लिखो तुम खेलो खाओ॥

(आरसी प्रसादसिंह : आरसी, पृ. ३९१)

शरीर : अमूल्य

दादू ऐसे मँहगे मोल का, एक सांस जे जाइ।
चौदह लोक समान सो, काहे रेत मिलाइ॥

(सन्त दादू और उनकी वाणी, पृ. १३०)

शरीर : और राशियाँ

मीन स्वाद सौं बँध्यौ मेष मारन कौं आयौ।
वृष सूकौ तत्काल मिथुन करि काम बढ़ायौ॥
कर्क रही उर माँहि सिंघ आवतौ न जान्यौ।
कन्या चंचल भई तुलत अकतूल उडान्यौ॥

वृश्चिक विकार विष डक लगि, 'सुन्दर' घन मित्त न भयो।
परि मकर न छाड्यो मूढमति, कुम्भ फूट नर तन गयो॥

(सुन्दरगार, पृ १४१)

शरीर का अभिमान

१. 'कबीर' कहा गरवियो, चाम लपेटे हड्ड।
हैंवर ऊपर छत्र सिरि, ते भी देना खड्ड॥

(कबीर ग्रंथावली, पृ २१)

२ तन अभिमान जासु नसि जाइ। सो नर रहे सदा सुख पाइ॥
और जो ऐसी जाने नाहिं। रहे सो सदा काल भय माहिं॥

(सूर सागर, पृ १३२)

शरीर का मोह त्याज्य

शैशव, यौवन जरा-अवस्था। यथा देह महँ प्रकट व्यवस्था॥
तथा सहज पुनि जीव शरीरा। मोह न करत जानि यह धीरा॥

(द्वा प्र मि कृष्णायन, पृ ५३६)

शरीर का रंग

है किसी काम का न रंग गोरा,
जो दिखायी पडा हृदय काला।
है बडा ही अमोल काला रँग,
मिल गया हो हृदय अगर आला॥

(हरिऔध पद्य प्रमोद, पृ १४५)

शरीर का सदुपयोग

१ काजु कहा नरतनु धरि सार्यो।
पर-उपकार सार श्रुति को जो, सो धोखेहु न विचार्यो॥
सम दम दया दीनपालन सीतल हिय हरि न सभार्यो॥

(तुलसीदास विनयपत्रिका, पृ ३२४)

२ जीवन भर अवलोकन करना
कुवलय-दल-नयनी का शशिमुख।
छूना उसका मृदुल कलेवर
मन मे अनुभव करना रति सुख।
सुनना वचन, सूघना मुख का
पवन मान कर सरसिज सौरभ।
इसी लिए क्या मिला हुआ है
यह मानव शरीर सुर-दुर्लभ?

(रा न त्रि, स्वप्न, पृ १९)

शरीर : की अवस्थाएँ

१. जरा है आदरणीय
सुखद यौवन ! विलास-उपवन रमणीय,
शैशव ही है एक स्नेह की वस्तु, सरल, कमनीय।
('आधुनिक कवि, सुमित्रानंदन पंत', पृ. ६)

२. होता संभव है यदा मनुज का, रोता महा दुःख से,
ज्यों-ज्यों है वढ़ता, किशोर बनता, होता युवा साहसी;
होता है जग-ताप-भार सिर पै पाता यदा प्रौढ़ता,
होता वृद्ध जरा-विशीर्ण बनता जाता ज्वरा-धाम को।
(अनूप शर्मा : सिद्धार्थ, पृ. १५५)

शरीर : की पवित्रता

शरीर तो अपने आप में पवित्र है।
गन्दा है तो वह दिमाग का नाला है
जो आदमी के भीतर बहता है।
मन के कारण शरीर पाप सहता है।
(दिनकर की सूक्तियाँ, पृ.३०)

शरीर : की प्रशंसा

१. नर तन सम नहिं, कवनिउ देही। जीव चराचर जाचत जेही।
नरक सर्ग अपवर्ग निसेनी। ग्यान विराग भगति सुख देनी॥
(तु. सू. सु., पृ. ३२०)

२. नर तनु भव वारिधि कहुँ वेरो। सनमुख मरुत अनुग्रह मेरो॥
(रा. च. मा. गु., पृ. ६२०)

शरीर : की रक्षा

१. श्रावन पृथिवी पर सुवै, पूस बिछावै खाट।
सो नर कैसे कै बचै, चलै जेठ में वाट॥
(गिरिधर : कुंडलिया, पृ, १००)

२. शरीर से पुण्य परोपकार; शरीर ही है गुण का अगार।
शरीर ही है सुर-लोक-द्वार; शरीर ही से सुविचार-सार॥१॥
शशरीर ही से पुरुषार्थ चार; शरीर की है महिमा अपार।
शरीर-रक्षा पर ध्यान दीजै, शरीर-सेवा सबछोड़ कीजै॥२॥
(म. प्र. द्व. : द्वि. का. मा., पृ. ४१४)

शरीर की शक्ति

देखने को छोटा-सा देह, भरी पर इस में शक्ति अपार।
सूर्य से बढ़ कर इस में तेज, धरा से बढ़ कर इसमें सार,
अगर यह दक्षिण को मुड़ जाय, सजा दे यही स्वर्ग का साज,
पकड़ ले कहीं वाम पथ किन्तु, विश्व का कर दे उपसंहार।
(विराग अरुणोदय, पृ ४६)

शरीर नश्वर

परगट रंग देह को देखि न भरवें कोइ।
आवै एक दिवस अस, छार कलेवर होइ ॥—नूर मुहम्मद
(सं गणेश प्रसाद हिन्दी प्रेमगाथा काव्य संग्रह, पृ १०४)

शरीर निन्दनीय

सीस गर्व नहि नम्यो, कान नहिं सुनै बैन सत।
नैन न निरखे साधु, बैन तै कहै न शिवपति।
कर तें दान न दीन, हृदय कछु दया न कीनी।
पट भर्यो करि पाप, पीठ परतिय नहि दीनी ॥
चरने चले नहि तीर्थ कहूँ, तिहि शरीर कहा कीजिये।
इमि कहै भगवान रे श्वान यह, निंद निकृष्ट न लीजिये
(भैया भगवतीदास ब्रह्मविलास, पृ २७५)

शरीर सुदृढ़

होउ गलित वह अग जेहि, लागनि कुसुम खरोट।
चिर जीवौ तनु, महतु जो, पुलकि पुलकि पवि चोट
(वियोगी हरि वीर सतसई, पृ ७९)

शरीर स्वर्ग धाम

यदि कहीं पर स्वर्ग निकेत है
इतर है जन के तन से नही,
यदि उसे तुम भोग सको, सखे,
निकट तो फिर मुक्ति अवश्य है।
(अनूप शर्मा सिद्धार्थ, पृ २३०)

शस्त्र और शास्त्र

केवल बल-प्रयोग पशुता है, केवल कौशल है कायरपन।
शस्त्र शास्त्र दोनो के बल से, विज्ञ जीतते हैं जीवन-रण ॥
(रा न त्रि स्वप्न, पृ ७३)

शांति

नरक ही रच के निज कर्म से, विलपता पचता नर दुःख में;
यदि रहे वह शान्त विरक्त तो, भुवन लभ्य, अलभ्य न स्वर्ग भी।

(अनूप शर्मा : सिद्धार्थ, पृ. २२६)

शांति : आत्मा का भूषण

रैन को भूषन इंदु है, दिवस को भूषन भानु।
दास को भूषन भक्ति है, भक्ति को भूषन ज्ञान॥
ज्ञान को भूषन ध्यान है, ध्यान को भूषन त्याग।
त्याग को भूषन शान्तिपद, तुलसी अमल अदाग।

(तुलसीदास : वैराग्य संदीपिनी)

शांति : और सन्तोष

शान्ति का मूल एक सन्तोष,
उसी पर आज हमारा रोष,
यही है प्रगति-विरोधी दोष,
नहीं भरने देता कृति-कोष।
और वह कृति है भौतिक भुक्ति;
मृत्यु है वह तो, जो है मुक्ति।

(मै. श. गु. : विश्ववेदना, पृ. १५)

शांति : का मार्ग

१. करुणा-यमुना प्रेम-जाह्नवी का संगम है भक्ति-प्रयाग।
जहाँ शान्ति अक्षय वट बन कर युग युग तक परिवर्द्धित हो।

(प्रसाद : प्रेमपथिक, पृ. २८)

२. कब शान्ति किसे मिल पाई,
कामार्थ धर्म के भ्रम में ?
सुस्थिर है लोक व्यवस्था,
धर्मार्थ काम के क्रम में॥

(बलदेव प्रसाद मिश्र : साकेत-सन्त, पृ. ३९)

शांति : की साधना

तुम बहस में लाल कर लेते दृगों को,
शान्ति की यह साधना निश्छल नहीं है;
शान्ति को वे खाक देंगे जन्म जिनकी
जीभ संकोची हृदय शीतल नहीं है।

(दिनकर : नये सुभाषित, पृ. ५२)

शांति के शत्रु

वे देश शान्ति के सब से शत्रु प्रबल हैं,
जो बहुत बड़े होने पर भी दुर्बल हैं।

(दिनकर की सूक्तियाँ, पृ १२)

शांति न्याय से ही

न्याय शान्ति का प्रथम न्यास है, जब तक न्याय न आता,
जैसा भी हो महल शान्ति का, सुदृढ़ नहीं हो पाता।

(दिनकर की सूक्तियाँ, पृ १३)

शांति समझौते की

ज्वर में सिर पर बर्फ रखा करते हैं,
यही बहुत कुछ समझौते की शान्ति है।
किन्तु कभी क्या ज्वर भागा है बर्फ से?
हिम को ज्वर की दवा समझना भ्रान्ति है।

(दिनकर नये सुभाषित, पृ २७)

शाक्त ब्राह्मण

१ साषत ब्रामण मति मिलै, बैसनो मिलै चंडाल।
अकमाल दे भेटिये, मानों मिले गोपाल॥

(कबीर ग्रंथावली, पृ ५३)

२ साकत बामन जिन मिलो, वैष्णव मिलि चण्डाल।
जाहि मिलै सुख पाइये, मनो मिले गोपाल॥

(व्यास वाणी, पृ १६६)

शानी, मानी, गुजरानी

शानी चाहत शान को, मानी चाहत मान।
गुजरानी गुजरान में, होय रहे गलतान॥

(गिरिधर कुंडलिया, पृ १३४)

शासक अयोग्य

जिमि आंधर कर आरसी, जिमि बानर-कर बीन।
तिमि रैयत अवरेखिये, नृपति प्रमत्त-अधीन॥

(वियोगी हरि वीर सतसई, पृ १२)

शासक का कर्तव्य

राजा का उपयोग है कि वह शासन धारे,
अनय और अत्याचारों का कष्ट निवारे।

(राजेन्द्रदेव सेंगर सारन्धा, पृ ६१)

शासक : के गुण

कीन्ह न जिन निज तन-मन-शासन। सकत कि करि ते जनु अनुसासन ?
नहिं आसक्ति राज्य महँ जासू। सोइ सुयोग्य अधिकारी तासू।

(द्वा. प्र. मि. : कृष्णायन, पृ. ७६४)

शासक : कोमल तथा कठोर

होता पात्र-सम जल यथा, तिमि नृप धरहि स्वरूप।
मृदु रहि सरहि न काज जब, प्रकटहि निज यम-रूप॥

(द्वा. प्र. मि. : कृष्णायन, पृ. ८१७)

शासक : तपस्वी

शासक है सच्चा तापस,
जग-रक्षा तप का फल है।
वह शक्ति शक्ति ही कैसी,
दुर्बल-बलि जिसका बल है॥

(बलदेवप्रसाद मिश्र : साकेत सन्त, पृ. ३७)

शासक : सेवक

जनों के टुकड़े खा अकृत
रहे धिक् सेवक शासक वर्ग,
जगाना होगा सुप्त विवेक
जनों को कर जीवन उत्सर्ग!

(सु. नं. पं. : लोकायतन, पृ. २७१)

शासन

वह शासन है स्वयं कलंक, जिस में जन हों दिन दिन रंक।
भूखों मरें न पावें वस्त्र, हो जावें निर्बल निःशस्त्र॥

(मै. श. गु. : हिन्दू, पृ. १८३)

शासन—नीति

भीति-भरी शासन की नीति,
पाती नहीं प्रजा की प्रीति।

(मै. श. गु. : हिन्दू, पृ. ३७)

शास्त्र

शास्त्र तुम्हारे लिए अशेष,
बनो न तुम उन के बलि-मेष।
सुनो प्रमाण शान्ति के साथ,
पर निर्णय हो अपने हाथ॥
'बोलो झूठ न' अक्षर पाँच,
लिए शास्त्र में हमने बाँच।

मान लिए बस पहले चार,
चला चौ सब के अनुसार ॥
बन कर पूर्वज-सदृश समर्थ,
नई समस्याओं के अर्थ।
करो नई विधियाँ निर्माण
समय स्वयं है बड़ा प्रमाण ॥
समयोचित न समझते सूरि,
तो क्यों भिन्न स्मृतियाँ भूरि।
रचते रहते यहाँ नवीन,
तुम वैसे ही बनो प्रवीण ॥
भिन्न पुराण स्मृतियाँ वेद,
मुनियों में भी बहुमत भेद।
करके प्रकट परिस्थिति बोध,
बनो स्वयं साक्षी विधि शोध।
त्यागो मुनि-मत भी प्रतिकूल,
करते बड़े-बड़े ही भूल।
बुद्धि—शरण लो न हो उदास,
तुम में प्रेरक प्रभु का वास।
मार्ग बड़ा का हो स्वीकार्य,
पर वह रहे परिष्कृत आर्य।
करो अकटक उसको झाड़,
भरो गर्त झंखाड़ उखाड़।

(मं न गु हिंदू, पृ १६५—६)

शास्त्र और तर्क

परहि धर्म सकट जब प्राणी। निरखइ प्रथम शास्त्र श्रुतिवाणी ॥
तरहु सम्मत शास्त्र जो होई। पालहि तेहि सब संशय खोई ॥
करहि तर्क जो शास्त्र विरोधू। लेहि मनुज निज मानस शोधू ॥
पर हित-रत जब बुद्धिहि पावहि। करहि सोइ जो तर्क बतावहि ॥
शास्त्र तर्क दोउन सम्मानी। रहत आचरत सज्जन ज्ञानी ॥

(द्वा प्र मि कृष्णायन, पृ ८२६ ७)

शिक्षक

ऐसे सत्य सिखाना जग को, अनाचार जग से मिट जाये।
मिटे स्वर्ग की भ्रमित कल्पना, शाश्वत सत्य भूमि पर आये ॥

तुम भू के भगवान, तुम्हारे चरणों में ईश्वर मिलते हैं।
तुम अन्तर के माली, तुम से फूल जिन्दगी के खिलते है ॥
मैं भूलूंगा पर तुम मुझ से भूलों पर उदास न होना।
तुम शिक्षक, विद्वान तुम्हारी प्रतिभा से लोहा भी सोना ॥
(रघुवीर शरण मित्र : भमि के भगवान्, पृ. ३५-६)

शिक्षा

इंग्लिश भाषा पढ़ लई, हुआ शब्द का बोध।
शिक्षा का घर दूर है, देख आत्मा शोध ॥
(मेलाराम : शिक्षा सहस्त्री, पृ. १७)

शिक्षा : का भंडार

शिक्षा के भंडार की, लखी अनोखी बात।
एक न पावत शुल्क बिन, एकन को न सुहात ॥
(रामेश्वर करुण : करुण सतसई, पृ. १२४)

शिक्षा : दुःखदायक

उदै सीख कहि क्यूं दियै, सीख दियां दुख होइ।
अपणी करणी चालणी, बुरी न देखै कोइ ॥
(उ. रा. दूहा, ४१२)

शिक्षा : नव

नव शिक्षा नव सभ्यता, को पावन परिधान।
धारत ही उन्नत भये, तुर्की अरु जापान ॥
(रामेश्वर करुण : करुण सतसई, पृ. १७१)

शिक्षा : में सुधार

वह शिक्षा कोहि काम की, जनि काहू पै होय।
लहै सहस्रन व्यय किये, काम न आवै कोय ॥
(रामेश्वर करुण : करुण सतसई, पृ. १२३)

शिक्षित जन : पराधीन

तोता तू पकड़ा गया जब था निपट नदान।
बड़ा हुआ कुछ पढ लिया तौ भी रहा अजान ॥
तौ भी रहा अजान ज्ञान का मर्म न पाया।
जीवन पर के हाथ सौंप निज घर बिसराया ॥

कहे मीर समुदाय, हाय ! तू अब लौं सोता ।
चेता जो नहि आप, किया क्या पड़ के तोता ॥

(सँ अ अ मीर)

शिल्प-वाणिज्य

चित्त मे क्यो समुत्साह लाते नहीं ? गेह को छोड़ क्यों दूर जाते नहीं ?
शिल्प-वाणिज्य मे जी लगते नहीं, हो इसी से कभी सौख्य पाते नहीं।
दाघ दारिद्र्य के भार ढोते रहो, क्यों जगोगे अभी देश सोते रहो।

(रा च उ . राष्ट्रभारती, पृ ५३)

शिष्ट-जन

कर्म करें लोग इतना ही नहीं इष्ट है,
शिष्ट है वही जो कर्म-कौशल विशिष्ट है ।

(मं श गु • नहुष, पृ २०)

शिष्य अच्छा

गुरु-सेवा करते रहें, गहें न उनकी भूल ।
जो न चढ़ायें फूल हम, तो न उड़ायें धूल ॥

(हरिऔध सतसई, पृ १०)

शिष्य का धर्म

गुरु को बचाना अपकीर्ति से ही धर्म है
शिष्य का, इसी मे वह नित्य भाग्यशाली है ।

(रामकुमार वर्मा एकलव्य, पृ २९५)

शिष्य बुरे

१ गुरुहि न मानत चेली चेला ।
गुरु रोटी पानी सों घूटत, ये दुध पीवें कुकरेला ॥
सिष्यन के सोने के बासन, गुरु कै कुंडी कुंडेला ॥
चौर चिकनिया को बहु आदर, गुरु को ठेली ठेला ॥
शिष्य तो मोंगोचूसा सुनियत, गुरु पुनि खाल उचेला ।
वह [illegible]यर यह कृपन हठीलो, ईंट मारि दिखरावतु भेला ॥
कृष्न कृ[illegible]ा बिनु बिबि असमंजस, दुखसागर मे झेलो-झेला ।
'व्यास' [illegible]स जे करत शिष्य को, तिनतें मने भेंडेला ॥

(व्यासवाणी, पृ १२३)

२. विद्या दयै कुशिष्य कौ, करै सुगुरु अपकार।
लाख लड़ावौ भानजा, खोसि लेय अधिकार॥
(बुधजन सतसई, पृ. २५)

शील

जानकी को मुख न विलोक्यो ताते कुंडल न,
जानत हों वीर पाय छुवों रघुराई के।
हाथ जो निहारे नैन फूटियो हमारे ताते
कंकन न देखे वल कहो सत माइ के।
पाय परवे को जातो दास लक्षमन या ते,
पहचानत हों भूखन जे पाइ के।
विछुवा है एई और झांझन है एई जुग,
नूपुर है तेई राम जानत जराई के॥
(हृदयराम : हनुमन्नाटक, पृ. ५६)

शील : और रूप

जा के घर में होइ सत, पति सौं हित ठहराइ।
शील विना 'कवि जान' कहि, घर घर रूप विकाइ॥
(जायसी के परवर्ती…पृ. १८४)

शील और सत्य

सील सरीरा आभरण, सोवन भारी अंग।
मुख मंडण साचा वचण, विना तंबोलै रंग॥
(पुरातत्वमन्दिर जयपुर, संग्रहक्रमाँक ४९ १२, पत्र १।७)

शील : का बल

पशु वल भले अपरिमित,
आत्म शील अपराजित;
क्या प्रकाश को छाया,
छू सकती, कर आवृत ?
(सु. नं. पं. : वाणी, पृ. ३६)

शील : का साधन

सील कि मिल बिन बुध सेवकाई। जिमि विनु तेज न रूप गोसाईं॥
(रा. च. मा. गु., प. ६४७)

शील - की महिमा

अगिन ताहि जल होत सिन्धु सरिता तिहि छन मे।
मेरु स्वल्प पाखान सिंह हरिना तिहि बन मे॥
पुष्पमाल सम होत ताहि अति विषधर व्याला।
अमृत सम ह्वै जात ताहि विष विषम ज्वाला॥
नीति ग्रंथ मत देखि कै यो शिवसम्पति कवि कहै।
सकल लोक मोहन करन शील जासु तन मे रहै॥

(शिवसम्पति)

शील की रक्षा

जुवक जनक जामात सुत, ससुर दिवर अरु भ्रात।
इनहूँ की एकात बहु, कामिनि सुनि जनि बात॥

('रत्नावली', दोहा ४३)

शुद्ध ज्ञान

ज्ञान शुद्ध होता नही दृश्यमान जगती का,
स्थिति से परिस्थिति से प्रभावित वह रहता है।
नील होती जल तरग जमुना मे मिलते ही
वही जल गगा मे स्फटिक रूप गहता है॥

(उ श म कणिका, पृ २४)

शूद्र

रक्खो न व्यर्थ घृणा कभी, निज वर्ग से या नाम से,
मत नीच समझो आप को, ऊँचे बनो कुछ काम से।
उत्पन्न हो तुम प्रभु-पदों से, जो सभी को ध्येय हैं,
तुम हो सहोदर सुरसरी के, चरित जिसके गेय हैं॥

(मै श गु भारतभारती, पृ १६९)

शूद्र —समान

यही हली कृषि-कर्म यही कर,
उपजाते बहु अन्न, धान्य, धन।
यही कातते सूत, यही बुनते पाटबर,
जन समाज के यही क्षुधा-लज्जा सरक्षक।
द्वापर त्रेता कलयुग से वसुधा का मथन
करते ये अविराम

सतत सह सह उत्पीड़न।
घृण्य नहीं ये धन्य शूद्रजन।
इनकी पूजा करो यहीं हैं पूज्य सनातन ॥
(शम्भूदयाल सक्सेना : मन्वन्तर, पृ. ६८)

शूर

खंड-खंड ह्वै जाय वरु, देक न पाछें पेंड़।
लरत सूरमा खेत की मरत न छांड़तु मेंड़ ॥
मुंह मांगे रण-सूरमा देतु दान परहेतु।
सीस-दानहूं देतु पै पीठि दान नहि देतु ॥
(वियोगी हरि : वीर सतसई, पृ. २, ३)

शूर : और कादर

कूकरु उदरु खलायकैं, घर-घर चाटतु चून।
रंगे रहत सद खून सों, नित नाहर-नाखून ॥
कादर वीरनु संग मिलि, भलैं अलापहिं राग।
छिपत न अंत वसंत में, कैसेहुं कोयल-काग ॥
(वियोगी हरि : वीर सतसई, पृ. ६)

शूर-धर्म : रक्षा

हत्या में वीरत्व नहीं है, यह तो है क्रूरों का कर्म;
निधन नहीं, रक्षा करना ही, है सच्चे शूरों का धर्म।
(सि. श. गु. : आत्मोत्सर्ग, पृ. ४०)

शृंगार-रस

जदपि मधुर शृंगार रस, तदपि न अति कौ नीक।
अधिक मधुरई परत है, कीरे असुचि प्रतीक ॥
(किशोरीदास वाजपेयी : तरंगिणी, पृ. २)

शैशव : वर्तमान-प्रेमी

न तो सोचता है भविष्य पर, न तो भूत का धरता ध्यान,
केवल वर्तमान का प्रेमी, इसीलिए शैशव छविमान।
(दिनकर : नये सुभाषित, पृ. ६)

शोक-त्याग

१. इतने मत संतप्त बनो।
जीवन मरघट पर अपने सब
अरमानों की कर होली,

चला राह में रोदन करता
चिता-राख से भर झोली—
शीश हिला कर दुनिया बोली,
पृथ्वी पर हो चुका बहुत यह,
इतने मत संतप्त बनो।
(बच्चन अभिनव सोपान, पृ १५८)

२ रोओगे अर्थी पर इतनी देर तो,
कौन जनम का स्वागत करने जायेगा ?
फूलों के सूने निर्जीव शरीर पर
शोक सुबह तक बैठे अगर मनाओगे,
तो जितनी कलियाँ खुशियाँ जब माँगेंगी
तुम उनको क्या कह कर समझाओगे ?
सोओगे जो सिर को धरे मजार पर
तो जीवन का उत्सव कौन मनायेगा ?
—रामावतार त्यागी
(स शिवदान सिंह चौहान काव्यधारा १, पृ १३६)

शोभा के कारण

द्विज सोहत विद्या पढ़ें, छत्री रन जय पाय।
लक्ष्मी सोहत दान सो, तिमि कुलवधू लजाय॥
(भारतेन्दु नाटकावली, पृ १०२)

शोभा से हीन

सोभति सो न सभा जहँ वृद्ध न, वृद्ध न ते जु पढ़ें कछु नाहीं।
ते न पढ़े जिन साधु न साधित, दीह दया न दिपै जिन माहीं॥
सो न दया जु न धर्म धरै धर, धर्म न सो जहँ दान वृथाहीं।
दान न सो जहँ साच न केसव, साच न सो जु बसै छल छाहीं॥
(केशव ग्रंथावली १, पृ १६०)

शोषक

१ चूसि गरीबनु को रकतु करत इन्द्र-सम भोग।
तउ 'गरीब परवर' उन्हें कहत अहो, ए लोग॥
(वियोगी हरि वीर सतसई, पृ १०४)

२. रस सोखता है जो मही का भीमकाय वृक्ष,
उसकी शिराएँ तोड़ो, डालियाँ कतर दो।
(दिनकर की सूक्तियाँ, पृ. ११०)

शोषण

सब धन तो श्रम का ही फल है,
किन्तु श्रमिक ही अति निर्धन है;
यह कैसा है न्याय जगत का,
यह तो प्रभु! दानव-वर्तन है!
मानव से मानव का शोषण
नहीं सहा, देखा अब जाता।
(श्रीमन् नारायण : रजनी में प्रभात का अंकुर, पृ. ६६)

शोषण : और पोषण

शोषण यदि पापों का हो,
पोषण अपना तब होगा।
शोषण यदि जीवों का हो,
उत्कर्ष कहाँ कब होगा?
(बलदेव प्रसाद मिश्र : साकेत-सन्त, पृ. ३८)

शोषण : का कुपरिणाम

निर्धन की कुटिया ढा कर,
जो अपना महल बनाते।
आहों की फूंको से ही,
वे एक दिवस ढह जाते॥
(बलदेव प्रसाद : साकेत-सन्त, पृ. ३८)

शोषण : का नाश

जागो, एक कतार बना लो,
जीभ खींच लो इस शोषण की,
तोड़ो डाढ़ें, करो इतिश्री
तुम मिल कर निज उच्छोषण की।
(बा. कृ. श. न. : हम विषपायी जनम के, पृ. ४७८)

श्मशान

सभी थके मानव शान्ति पा सकें,
अशान्त जो दानव शान्ति पा सके,

यहीं-इसी-स्थान-विशेष में-सदा
पुकारते लोग जिसे श्मशान है।
(अनूप वर्द्धमान, पृ १२१)

श्रद्धा

ईर्ष्या है बूंद के विश्वास पर जो समन्दर मे समाकर खो गई,
वन्दनीया है दिये की वर्तिका जो सुबह देखे बिना ही सो गई,
बावरी श्रद्धा अमृत-घट पी गई, और श्रम केवल निरखता रह गया।
(सं क्षेमचद्र सुमन · रामावतार त्यागी, पृ ११७)

श्रद्धा और ज्ञान

अनुचित ज्ञानोपासन नाहीं। श्रद्धा बिनु न सार तेहि माहीं
श्रद्धा-योग लहत जब ज्ञाना। सकल तबहि करि नर-कल्याणा॥
(द्वा प्र मि कृष्णायन, पृ २१६)

श्रद्धा —भक्ति

श्रद्धा-भक्ति पयस्विनी गतिवती सत्कर्मसप्लाविनी,
सौख्यावर्तमयी, विमुक्त-सुखदा, पुण्यप्रसूनावृता,
सर्वांशा जिस मे निगूढ रहती सद्धर्म रत्नावली,
सो निर्वाण-स्वरूपिणी वह चली पीयूष-धारा नदी।
(अनूपशर्मा सिद्धार्थ, पृ २९४)

श्रद्धा —महत्त्व

पार्थ! जो श्रद्धा नाहि, हवन दान तप व्यर्थ सब।
यहँ परलोकहु माहि, हितकारी नहि कर्म अस॥
(द्वा प्र मि कृष्णायन, पृ ६०६)

श्रम

१ हम सब का अभ्युदय एक श्रम से ही होगा,
बातो से कुछ नही काम श्रम से ही होगा।
रहे रक्त वा अश्रुपान के हम अभ्यासी,
पर अब अपनी भूमि पसीने की ही प्यासी॥
(मै श गु राजा प्रजा, पृ ४२)

२ पर-श्रम का उपभोग करे नर
इस से सुखकर क्या करे

जीवन-विमुख रहे मन—मतिभ्रम,
इन्द्रिय-सुख-रत रहे, नरक तम।
(सु. नं. पं. : लोकायतन, पृ. ७१)

श्रम : अल्पफलप्रद

क्यों करिये प्रापति अलप, जामें श्रम अतिहोय।
कौन ग़रज गिरि खोदि कै, चूहा काढ़ै कोय॥
काम करो मत, हो जहाँ अल्प लाभ वहु हार।
पाई खोजन के लिये, पावं तेल मत् जार॥
(सं. राम कवि : हिन्दी सुभाषित, पृ. ५८-५९)

श्रम : और आलस्य

है मनुष्य की देह में, कैसा एक रहस्य।
शत्रु मित्र हैं संग ही, श्रम एवं आलस्य॥
(रुद्रदत्त मिश्र)

श्रम : का महत्त्व

१. पायँगे प्रयास-विना लोग खाने-पीने को,
फिर क्यों वहायँगे वे श्रम के पसीने को!
होगे अकर्मण्य, उन्हें क्या-क्या नहीं सूझेगा?
कोई कुछ मानेगा न जानेगा न बूझेगा।
(मै. श. गु. : नहुष, पृ. १९)

२. श्रम है केवल सार, काम करना अच्छा है,
चिन्ता है दुखभार, सोचना पागलपन है।
पियो सोम या चाय, नाम में जो अन्तर हो,
मगर, स्वाद का हाल वही खट्टा-मीठा है।
(दिनकर : चक्रवाल, पृ. ३३६)

३. जिसका श्रम हो, भूमि उसी की,
अन्न वस्त्र, घर हो उसका,
शासन उसका, संस्कृति उसकी,
नवयुग का स्वर हो उसका।
(जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द : भूमि की अनुभूति, पृ. ३७)

४. रहे युग-युग के धर्म अनेक, आज का है श्रम धर्म महान;
न श्रम से बढ़ कर कोई शक्ति, न श्रम से बढ़ कोई वलिदान,

लगी है यह मानव के हाथ, चमत्कारी पारस-मणि एक।
पड़ी जो मिट्टी को बेकार बना सकती कंचन द्युतिमान।

(विराज अरुणोदय, पृ ६१)

श्रम की प्रेरणा

थकने रुकने वालों की ममता छोड़ो,
'श्रम और अधिक श्रम,' का तुम अलख जगाओ,
'गति, और अधिक गति,' का संकल्प लिये तुम
पथ के प्रतिपद पर स्नेह-सुरभि फैलाओ।

(जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द भूमि की अनुभूति, पृ १५)

श्रमिक को फल

धन-रूपी फल का परिश्रम ही मूल है।
किन्तु श्रमिकों को फल मिलता है कितना?
पूंजीपतियों का नहीं जूठन भी जितना।

(मै श गु पृथिवी-पुत्र, अर्जिनी, पृ ५०)

संकल्प

अग्नि का कर आचमन संकल्प कर मानव,
तर अनल के सिंधु भी बढ़ता चलेगा तू।
तू नहीं वह चीज जो जल खाक हो जाए,
नित्य निखरेगा, मनुज, जितना जलेगा तू।
मिस्र चीन सुमेरु बाबुल, बुलबुले तेरे,
सभ्यता के स्रोत, मनु! कैसे रुकेगा तू?
झुका तेरे सामने था वृद्ध विन्ध्याचल,
विघ्न-बाधा देख अब कैसे झुकेगा तू?

(नरेन्द्र शर्मा, मिट्टी और फूल, पृ ७४)

संकल्प दृढ़

१

है जय पाना, जो यह ध्याता,
मैं कर लूंगा या तन दूंगा।
सच्चा खजाना विश्वास लाना,
इच्छा बली तो संसार जीतो॥

(सत्यदेव परिव्राजक अनुभव, पृ २४)

२. तन जिसका हो मन और आत्मा मेरा है,
चिन्ता नहीं वाहर उजेला या अँधेरा है।
चलना मुझे है वस अन्त तक चलना,
गिरना ही मुख्य नहीं मुख्य है संभलना।
फिर भी उठूंगा और बढ़ के रहूँगा मैं,
नर हूँ पुरुष हूँ मैं चढ़के रहूँगा मैं।

(मै. श. गु. : नहुष, पृ. ३६)

३. बाँधे जाते इन्सान, कभी तूफान न बाँधे जाते हैं।
काया जरूर बाँधी जाती, बाँधे न इरादे जाते हैं।
(गोपाल प्रसाद व्यास : कदम कदम बढ़ाये जा, पृ. २७)

४. अकेला चला था अकेला चलूंगा, सफर के सहारो न दो साथ मेरा।
सहज मिल सके वह नहीं लक्ष्य मेरा, बहुत दूर मेरी निशा का सवेरा।
अगर थक गये हो तो तुम लौट जाओ, गगन के सितारो न दो साथ मेरा।

—विश्वनाथ मिश्र

(सं. रामदत्त भारद्वाज : ऋतम्भरा, पृ. १२६)

संगति : का प्रभाव

१. जैसी संगत कीजिये, तैसा ह्वै परिनाम।
तीर गहै ताके तुरत, माला तै ले नाम॥

(बुधजन सतसई, पृ. ३४)

२. संगति करती है असर, यह जानो सब कोय।
जाते हैं जब वाग में, वाग-वाग दिल होय॥

—रसिकेश

३. सत्पुरुषों के संग से, तुच्छ श्रेष्ठ हो जाय।
यसू-जन्म के योग से, लघु दिन 'वड़ा' कहाय॥

—रसिकेश

संगति : तुल्यों की ही

संग नहीं गो गधे को, सैंधव सिता न मेल।
विड्-वराह संग इन्द्र को शोभित नाहिं केल॥

(गिरिधर : कुंडलिया, पृ. १०४)

संगति : बुरी

१. 'रहिमन' नीच प्रसंग ते, नित प्रति लाभ विकार।
नीर चौरावे संपुटी, मारि सहै घरिआर॥

(रहिमन विलास, पृ २२)

२ सब से नीतिशास्त्र कहता है, दुष्ट सग दुख का दाता है।
जिस पय मे पानी रहता है, वही खूब औटा जाता है॥
उनके प्राण नही बचते हैं, जिनको दुर्जन अपनाते हैं।
जो गेहूं के सग रहते हैं, वे ही घुन पीसे जाते हैं॥
(रा च उ . कुमग)

सगति भली और बुरी

१ साधु जन नो सग जो करिये, चढ़े ते चौगुणो रग रे।
साक्ट जनन तो सँग न करिये, पडे भजन मे भग रे॥
(मीराबाई की पदावली, पृ १०६)

२ साक्त सगो न भेंटिये इन्द्र कुवेर समान।
सुन्दर मनिका गुन भरी परसत तनु की हान॥
(व्यास वाणी, पृ १६६)

संगीत का प्रभाव

सगीत से मानव ही न मोहते,
विमुग्ध होते मृग भी सुने गये,
पयोद ही हैं घिरते न व्योम में,
प्रदीप भी हो उठते प्रदीप्त हैं।
(अनूप वर्द्धमान, पृ १६०)

सघटन

फूट वैर को दूरि करि बाधि कमर मजबूत।
भारत माता के बनो भ्राता पूत सपूत॥
कब लौं दुख सहिहो सबै, रहिहो बने गुलाम।
पाइ मूढ कालो अरध-सिभित काफिर नाम॥
निज भाषा निज धरम निज मान करम व्योहार।
सबै बढावहु वेगि मिलि कहत पुकार-पुकार॥
(भारतेन्दु हिंदी की उन्नति पर व्याख्यान)

सघटन का फल

तैं अजीत जो गुनि करैं, निबल सुमित सघान।
बहु जिन लै गुन बटन तें, कुजर बाँधे जान॥
(दो द गि ग्र पृ ७६)

संघटन : क्षुद्रों का

वहु छुद्रन के मिलन ते, हानि बलि की नाहिं।
जूथ जम्बुकन तें नहीं, केहरि नासे जाहि॥
(दि. द. गि. ग्रं. पृ. ७६)

संघटन : तुल्यों में ही

संघटन संभव तभी, जब पक्ष दोनों तुल्य हों।
आज तक जुड़ते न देखा, गर्म लोहा सर्द से॥
—रसिकेश

संघटन : में शक्ति

वृथा हैं 'बीबी' व्यर्थ 'गुलाम'
न होता दहलों से कुछ काम,
हमें है उन एकों की चाह
पराजित होते जिन से 'शाह'।
(रामेश्वर करुण : चिनगारी, पृ. ४१)

संघर्ष :—नाश

यदि हो जाय ज्ञान यह सबको,
सबका हित है एक यहाँ।
वे भ्रम-मूलक हैं मनुजों में,
जो हैं भेद अनेक यहाँ॥
तो हो जाय अन्त निश्चय ही,
संघर्षों का भूतल में।
सब मानव खिल उठें प्रेम से,
शतदल के समान जल में॥
(ठा. गो. श. सिं. : जगदालोक, पृ. १२२)

संचय—दोष

किसका संचय दैव सहेगा?
काल घात में लगा रहेगा,
व्याध बात भी नहीं कहेगा;
लूटेगा घर लक्खी।
अरी, गूंजती मधुमक्खी।
(मै. श. गु. : साकेत, ९ सर्ग)

सत

१ सन्त न छोडे सनई, कोटिक मिलें असन।
मलय भवगंहि बेधिया, सीतलता न तजत ॥
(कबीर वचनावली, पृ १२३)

२. नहिं सराहियँ स्वर्ण गिरि, जहँ तरु तरुहि रहांहि।
धन्य मलयगिरि जहँ सरल, तर चन्दन ह्वइ जांहि ॥
(विनायकराव)

सत की सहिष्णुता

सन्त सासना सहत हैं, जैसे सहत कपास ॥
जैसे सहत कपास, नाय चरखी मे ओटे।
रूई धर जत्र तुनै हाथ से दोउ निभोटे।
रोम रोम अलगाय पकरि के धुनिया धूनो।
पिउनी नहु दे कात सूत ले जुलहा बूनो।
घोवी भट्टी पर धरी, कुन्दीगर मुगरी मारी।
दरजी टुक टुक फारि जोरि कै किया तयारी ॥
पर स्वारथ के कारने दुख सहै 'पलटूदास'।
सत सासना सहत हैं, जैसे सहत कपास ॥
(सत सुधासार, २. पृ २२२)

सत पाखंडी

१ पगरी धरा उतारि टका छह सात का।
मिला दुसाला आय रुपैया साठ का।
गोड धरे कछु देहि मुँडाये मूँड के।
(अरे हां 'पलटू') ऐसा है रुजगार किजिए ढूँढ के ॥
(सत सुधासार २, पृ २४७)

२ पीवत भाँग निजारो तमाखूहि खाय अफीम रहै रग भीना।
कर्म अशुभ करै केइ कुकृत, सुकृत शुभ सूँ होय पछीना ॥
राम को नाम कह्यो खिज उठत, दाम कै काम गुलाम अधीना।
रामचरण ये भेष लजावत, ऐसे कूँ सत कहैं मतहीना ॥
(स्वामी रामचरन अणाभै वाणी, पृ ६६)

सतान-प्रेम

१ जरा जिऊ माता को ओर पिता को प्रान।
बालक पगु को काटा मात पिता अग्नियान ॥
(कासिमशाह हसजवाहिर)

२. सुत-हित सोचत जो पितु माता। सोइ अपत्यहिं क्षेम प्रदाता ॥
(द्वा. प्र. मि. : कृष्णायन, पृ. २००)

संतान : स्वस्थ

है वच्चों के बच्चे व्यर्थ, न लो सुफल भी कच्चे व्यर्थ।
बनो संयमी बनो समर्थ, अपने और वंश के अर्थ ॥
शिक्षा दीक्षा रक्षा-योग्य, प्राप्त करो धन बल आरोग्य।
तब उत्पन्न करो सन्तान, तभी सुगति होगी मतिमान ॥
सर्वदमन थे जहाँ प्रसूत, वहीं—अरे चुप आया भूत ॥
(मै. श. गु. : हिंदू, पृ. १४७)

संतोष

१. कोउ विस्राम कि पाव, तात सहज संतोष बिन ?
चले कि जल बिनु नाव, कोटि जतन पचि पचि मरिय?
(रा. च. मा. गु. पृ. ६४६)

२. जिय संतोष विचारिये, होय जु लिख्यौ नसीब।
खल गुरु काच कथीर सौं, मानत रली गरीब ॥
(सतसई सप्तक, वृन्द सतसई, दोहा ७०३)

३. गुरु प्रसाद संतोष गज, जै नर बैठा जाय।
जग लालच कूकर जियां, लाल सकै न लगाय ॥
(बांकीदास ग्रंथावली, भाग ३, पृ. ६१)

४. न दुःख दे मनुष्य अन्य जीव को,
न दुष्ट के सम्मुख नम्र हो कभी,
न त्याग के सज्जन-मार्ग विश्व में
कमा लिया द्रव्य अनल्प है वही।
(अनूप : वर्द्धमान, पृ. ५५९)

संदेह और विश्वास

इतना है उत्तप्त धरातल सन्देहों का,
जहाँ कि हर विश्वास पिघल कर वह जाता है।
(बुद्धमल्ल : आवर्त, पृ. ६)

संपत्ति (दे. 'धन' भी)

तौ लहि सोग विछोह का, भोजन भरा न पेट।
पुनि विसरन भा सुमिरना, जब संपति पै भेंट ॥
(जायसी ग्रंथावली, पृ. २६)

सपत्ति और विपत्ति

सपति मे ऐंठि बैठि चौतरा अदालत के,
विपति मैं पैन्हि बैठे पाय झुनझुनिया।
जेतो सुख सपति इतोई दुख विपति मैं,
सपति मैं मिरजा विपति परे धुनिया।
सपति ते विपति विपति हू ते सपति है,
सपति औ विपति बराबर के गुनिया।
सपति मे काय काय विपति मे भाय भाय,
काय काय भाय भाय देखो सब दुनिया॥
(देवशतक, पद्य १७)

सपत्ति योग्यता से

सागर याचक नहि बने, रहे नीर से पूर्ण।
निज को योग्य बनाइये, आयें सपदा तूर्ण॥ —रसिकेश

सबध राम प्रेम द्वारा

नाते नेह राम के मनियत, सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं।
अजन कहा आँखि जेहि फूटै, बहुतक कहौं कहा लौं॥
(तुलसीदास विनय पत्रिका, पृ २८३)

सबन्धी झूठे

किसका ममा चचा पुनि किसका किसका पगुडा जोई।
यहु ससार बजार मंड्या है, जानैगा जन कोई॥
(कबीर ग्रथावली, पृ १२०)

संबन्धी स्वार्थी

१ या जग मीत न देख्यो कोई।
सकल जगत अपने सुख लाग्यो, दुख मे सग न कोई॥
दारा मीत पूत सम्बन्धी, सगरे धन सो लागे।
जब ही निरधन देख्यो नर को, सग छाडि सब भागे॥ —गुरु नानक
(हिंदी के कवि और काव्य, पृ ७०)

२ सुत-वनितादि जानि स्वारथरत, न करु नेह सब ही ते।
अतहु तोहिं तजैंगे पामर, तू न तजै अब ही ते॥
(तुलसीदास विनयपत्रिका, पृ ३१६)

३. बेटो बेटी भानजा, भाइ श्वशुर अरु सार ।
पिता पितामह आदि ले, सब मतलब के यार ॥
(गिरिधर : कुंडलिया, पृ. ८८)

संमान

१ मान बड़ाई जगत में, कूकर की पहिचानि ।
मीत किए मुख चाटही, वैर किए तन हानि ॥
(कबीर वचनावली, पृ. १३७)

२. 'रहिमन' मोहि न सुहाय, अमी पिआवै मान बिनु ।
बरु विष देय बुलाय, मान सहित मरिबो भलो ॥
(रहिमन विलास, पृ. २८)

३. अपमान पूर्वक विश्व में जीना पड़ा तो व्यर्थ है ।
सम्मान-पूर्वक मृत्यु भी है श्लाघ्य वीरों के लिए ॥
(रा. च. उ. : मुक्ति मंदिर, पृ. २७)

संमान : अयोग्य का

आज काल की यही व्यवस्था भानु हँसा जायेगा ।
कला विहीन कलंकित शशिकर सकल कीर्ति पायेगा ॥
आज समय की यही प्रेरणा सिंह अनाहत होगा ।
गीदड सिंहासनासीन हो विरद-समावृत होगा ॥
(गिरिजादत्त शुक्ल : तारकवध, पृ. ५५३)

संमान : का कारण

मिलता व्यर्थ न मान जातियों से धर्मों से,
होता वह उपलब्ध सद्गुणों सत्कर्मों से;
रूप-रंग से पुष्प नहीं पहचाने जाते ।
सुरभि, सुरस सम्मान्य सदा से माने जाते ।
(रामखेलावन वर्मा : चन्द्रगुप्त मौर्य, पृ. ६८)

संमान : की रक्षा

१. मान सहित विष खाय के, संभु भये जगदीस ।
बिना मान अमृत हिये, राहु कटायो सीस ॥
(रहिमन विलास, पृ. १६)

२. नाक रहे तै सब रह्यो, नाक गये सब जाय ।
नाक बराबर जगत मे, और न बड़ो कहाय ॥

नाक राखण सीता सती, अगनी कुंड में पैठी रे।
सिंहासन देवन रच्यो, तिहिं ऊपर जा बैठी रे॥
(भैया भगवतीदास ब्रह्मविलास, पृ २४०)

३ गंगा-यमुना के दुआब सा जिसका चौड़ा सीना,
उसे गवारा नहीं कभी भी शीश झुका कर जीना।
(उमाकान्त मालवीय बाजी रणभेरी, पृ २६)

४ जाय भले ही माल धन, इज्जत लेहु बचाय।
बहुर हाथ नहिं आवही, जो कपूर उड़ जाय॥
(स रामकवि हिन्दी सुभाषित, पृ ७७)

सम्मान सबका

इज्जत क्या धनवानों की है,
निर्धन का कुछ मान नहीं?
निर्धन का अपमान भला
क्या निर्धन का अपमान नहीं?
(उपेन्द्रनाथ अश्क बरगद की बेटी, पृ १६)

संयम

१ पायें भी मरिये, अणपाये भी मरिये। गोरख कहै पूता संजमि ही तरिये।
मधि निरन्तर कीजै बास। निहचल मनुवा थिर होइ सास॥
(गोरखबानी, पृ ४१)

२ निश्चय ही हम सब मनुजों को शिश्नोदर की व्याधि मिली,
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह की निश्चय हमें उपाधि मिली,
किन्तु मनुज ही को तो संयम रूपी अमित प्रसाद मिला!
मानव के ही हिय-सर में तो शतदल चित्त समाधि मिली॥
(बा कृ श न हम विषपायी जनम के)

३ संयम ही जीवन है, यदि कोई जीना जाने।
संयम ही अमृत है, यदि कोई पीना जाने।
संयम सुई-धागा, यदि कोई सीना जाने।
संयम ऊँचा महल, अगर कोई जीना जाने।
इसका बड़ा महत्त्व, अगर कोई जान सके तो।
संयम ही है तत्त्व, अगर कोई जान सके तो॥
(सागर मल कुछ कलियां कुछ फूल, पृ १७)

४. जिन राखा संयम सदा, वह औषधि क्यों खाय ?
अपना मन वश में किया, कभी न मांगन जाय।
(मेलाराम : शिक्षासहस्री, पृ. १०७)

संसार

१. यह संसार हाट का लेखा, सब कोइ बनिजहिं आया।
जिन जस लाद्या तिन तस पाया, मूरख मूल गँवाया ।।—नामदेव
(सन्तसुधासार, पृ. ५३)

२. ऐसा यह संसार है, जैसा सेमर फूल।
दिन दस के व्योहार में, झूठे रंग न भूल ।।—कबीर

३. जग माहीं ऐसे रहो, ज्यों जिव्हा मुख माहिं।
घीव घना भच्छन करै, तो भी चिकनी नाहिं ।।—चरणदास

४. सुख न है संसार में, वह है दुखों की एक विस्मृति।
मध्य में है एक क्षण, इस ओर अथ, उस ओर है इति ।।
(रामकुमार वर्मा : आकाश गंगा, पृ. १४)

५. दुनिया क्या है वेश्यालय है,
कहाँ रहें अब इज्जत वाले।
यहाँ वही रह सकता है जो
पीता वेशर्मी के प्याले।
(हरिकृष्ण प्रेमी : अग्निगान, पृ. ७५)

संसार : असार

मैं तोहि अब जान्यौ संसार।
देखत ही कमनीय, कछु नाहिन पुनि किये विचार।
ज्यों कदलीतरु-मध्य निहारत, कबहुँ न निकसत सार ।।
(विनयपत्रिका, पृ. ३०२)

संसार : एक परिवार

यह सारा संसार है उस प्रभु का परिवार।
सबसे रखना चाहिए प्रेमपूर्ण व्यवहार ।।
(मैं. श. गु. : काबा और कर्बला, आवेदन, पृ. ५)

संसार : का संस्कार

विपुल वैज्ञानिक आविष्कार, दार्शनिक सामाजिक सिद्धान्त,
समन्वय के सांस्कृतिक प्रयत्न, मिटा सकते न जगत का ध्वान्त।

दौड़ता चेतन मे भूकम्प, उमड़ता अवचेतन मे ज्वार,
प्रथम बदले भीतरी मनुष्य, बाहरी बदले तब ससार
(सु न प लोकायतन, पृ ३८३)

ससार का स्वरूप

जो कहते हो-जगत महामाया है भीषण भ्रम है।
इस विचार मे तुमको ही धोखा है भ्रान्ति विषम है॥
है यह कर्म-भूमि जीवो की यहाँ कर्म-च्युत होना,
धोखे मे पड़ना अलभ्य अवसर से है कर धोना॥
(रा न त्रि पथिक, पृ ३३)

संसार की सच्चाई

जगत है माया ही माया।
रूपवती तरुणी को देखा डोरा उस पर डाला,
अपने हृदय-नीड मे बरबस उस पक्षी को पाला,
पाप किया क्या, कैसी तरुणी, वह तो केवल छाया।
इधर उधर से रुपये लाया उस मे मौज उड़ाई,
लौटाने को एक नही लौटाई मैंने पाई,
रुपया तो है ठिकरा उसने मूल्य कहाँ से पाया।
मिथ्या ही मिथ्या जगती है सत्य कहाँ फिर पाऊँ,
सत्य बोलकर फिर जीवन मे कष्ट अनेक उठाऊँ,
झूठा जग है, झूठा जीवन, झूठी है यह काया।
(बेढब बनारसी बेढब की बानी, पृ २२)

ससार द्वन्द्वमय

धूप छाँह यह जग, आशा मे घुली निराशा,
राग द्वेष सुख दुख संग बँधी अमिट अभिलाषा।
विरह मिलन सघर्ष शान्ति जग की परिभाषा
जन्म मरण रुज जरा ग्रथित रे जीवन-श्वासा!
पाप पुण्य औ मिथ्या सत्य जगत मे गुफित,
ज्योति तमस द्वन्द्वो से निश्चय सस्कृति निर्मित!
(सु न प स्वर्णकिरण, पृ १२२)

ससार धोखे की टटी

कोई ताज खरीदे हँसकर कोई तख्त खड़ा बनाता है।
कोई कपड़े रगे पहने है कोई गुदड़ी ओढ़े जाता है।

कोई भाई बाप चचा नाना कोई नाती पूत कहाता है।
जब देखा खूब तो आखिर को ना रिश्ता है ना नाता है।
गुल शोर बबूला आग हवा और कीचड़ पानी मिट्टी है।
हम देख चुके इस दुनिया को यह धोखे की सी टट्टी है॥ —नजीर

(जायसी के परवर्ती···पृ. ३१५)

संसार : प्रेममय

प्रेममय है सारा संसार
प्रेमहि का सारा प्रसार है, मत कह इसे असार॥
प्रेम वार है, प्रेम पार है, प्रेमहि है मँझधार
बड़ा पड़ा प्रेम सागर में, प्रेम से होगा पार, प्रेममय···।

(श्रीधर पाठक : भारत गीत, पृ. ६७-८)

संसार : मिथ्या

१. मिथ्या यह संसार और मिथ्या यह माया।
मिथ्या है यह देह कहो क्यों हरि बिसराया॥

(सूरसागर, पृ. ४३०)

२. तूल भरे फल सेमर सेइकै कीर तूं काहे को होत अयाने।
आस लिये यहि रूखे पै ह्वै बहु भूखे निरास गये बिलखाने॥

(भिखारीदास ग्रंथावली, १, पृ. ८०)

३. मैं समुझ्यौ निरधार, यह जगु कांचो कांच सौ।
एकै रूपु अपार, प्रतिबिंबित लखियतु जहाँ॥

(बिहारी रत्नाकर, पृ. ७८)

संसार : मुर्दों का गाँव

साधो ई मुर्दन कै गाँव ॥टेक॥
पीर मरे पैगम्बर मरिगे, मरिगे जिन्दा जोगी।
राजा मरिगे परजा मरिगे, मरिगे वैद्य औ रोगी ॥१॥
चाँदो मरिहै सुजौ मरिहै, मरिहैं धरनि आकासा।
चौदह भुवन चौधरी मरिहै, इनहूँ कै का आसा ॥२॥
नौ हू मरिगे दसहू मरिगे, मरिगे सहस अठासी।
तेंतीस कोट देवता मरिगे, परिगे काल की फांसी ॥३॥
नाम अनाम रहै जो सद ही, दूजा तत्त न होई।
कहै 'कबीर' सुनो भाई साधो, भटकि मरै मत कोई ॥४॥

(कबीर शब्दावली, भा. दू, पृ. ३३)

संसार में सुख नहीं

'ध्यास' न सुख ससार मे, जो सिर छत्र फिरात।
रैन धनी धन देखियत, भोर नही ठहरात॥

(ध्यास वाणी, पृ १६५)

ससार विचित्र सराय

हरि-माया भठियारी ने क्या अजब सराय बनाई है।
जिसमे आकर बसते ही सब जग की मति बौराई है॥
एक-एक कर छोड रहे हैं नित नित खेप लदाई है।
जो बचते सो यही सोचते उनकी सदा रहाई है॥
अजब भवर है जिसमे पडकर सब दुनिया चकराई है।
हरिचद भगवत भजन बिनु इससे नही रिहाई है॥

(भारतेन्दु ग्रथावली, दू ख, पृ ५५१)

ससार सच्चा

१ सो जग कहा मिथ्या कहि जाइ। जहाँ तरै तुम्हरे गुन गाइ।
प्रेम भक्ति बिनु मुक्ति न होइ। नाथ कृपा करि दीजै सोइ।

(सूरसागर, पृ १७१२)

२. जा जग की रोटीन सों सूझतु अलख अनत।
मिथ्या ताको कहत ए निलज निठल्ले सत॥

(वियोगी हरि, वीरसतसई, पृ ६४)

ससार स-सार

१. सुख-समूह सुदर सदन, है सब रस-आधार।
तो किस मे है सार जो, है असार ससार ?

(हरिऔध ' मर्म स्पर्श, पृ २७)

२ हैं असार ससार नहीं।
यदि उसमे है सार नही तो सार नही है कही॥
जहाँ ज्योति है परम दिव्य, दिव्यता दिखाई वही।
क्या जगमगा नहीं ए बातें तारक-चय ने कहीं ?
दिव्य दृष्टि सामने आवरण-भीतें सब दिन ढही।
अधिक क्या कहें, मुक्ति मुक्त मानव ने पायी यही।

(हरिऔध मर्म स्पर्श, पृ १)

संसार : सुख-दुखमय

आदि में छिप आता अवसान,
अन्त में बनता नव्य विधान ;
सूत्र ही है क्या यह संसार,
गुँथे जिसमें सुख दुख जयहार ?

(आधुनिक कवि : महादेवी वर्मा, पृ. १८)

संसार : स्वप्न

१. 'कामयाव' जगवंधा, सपन-समान ।
दुख-दरिद्र-सुख-संपति, जाइ निदान ।।

(नूरमुहम्मद : अनुराग बांसुरी पृ. २८)

२. 'कासिम' जक्त जान सब धोखा । जो जग भूल गयो सो खोखा ।।
धोखा गगन फिरै दिन राती । धोखा देखि बलवला भाँति ।।
धोखा नगर कोटि घर बारा । धोखा द्रव्य और रूप सिंगारा ।।
धोखा राज काज सुख भोगू । धोखा सब लक्षण कुल लोगू ।।

(हंसजवाहिर, पृ. २७१)

१. दुख सुख में उठता गिरता
संसार तिरोहित होगा,
मुड़ कर न कभी देखेगा
किसका हित अनहित होगा ।

(प्रसाद : आँसू, पृ. ४६)

२. नहीं कोई यहाँ अपना, सभी है यार मतलब के ।
निकल जब काम जाता है, बदलते नैन इन सबके ।।

(सत्यदेव परिव्राजक : अनुभव, पृ. १५)

संस्कार : बुरा

हो जाता है विश्व प्रकाशित ज्यों-ज्यों सूरज चढ़ता ।
उल्लू की आंखों में त्यों-त्यों अन्धकार ही बढ़ता ।।
बुरा नहीं आलोक, बुरा है आंखों का आकार ।
बुरा नहीं है व्यक्ति, बुरा है अन्तर का संस्कार ।।

(सागर मल : कुछ कलियाँ कुछ फूल, पृ. ५१)

संस्कृत

कहै देववानी भगवत ने वखानी मुख
कहत प्रभानी सदा दानी जो सुकृत की ।

सुनत ही जाके देई देव वस होत याते
पाइयत यात शास्त्र श्रुति औ समृत की ॥
सुकवि गुपाल जासों कहत अनादि आदि
जग मे अगाध बहै धारा ज्यों अमृत की ।
जग मे प्रवृत करै और ही प्रकृति या ते
जग मे सुकृति सदा सिरे सस्कृति की ॥
(गुपाल राय दपति वाक्यविलास पृ १२१)

सस्कृत और हिंदी
जा मैं रस कछु होत है, पढ़त ताहि सब कोय ।
बात अनूठी चाहिए, भाषा कोऊ होय ॥
कठिन सस्कृत अति मधुर भाषा सरल सुनाय ।
पुरुष नारि अन्तर सरिस, इन मे बीच लखाय ॥
(भारतेन्दु नाटकावली, पृ ११०)

सस्कृति श्रृंगार
युग-युग के सचित सस्कार, ऋषि-मुनियो के उच्च विचार ।
धीरो वीरो के व्यवहार, हैं निज सस्कृति के शृगार ॥
(मै श गु हिंदू, पृ १७७)

सस्कृति का मापदण्ड
सस्कृति की पूर्णता कहाँ है ? क्या है चरम सभ्यता नर की ?
भौतिक सम्पन्नता मात्र ही, शोभा नहीं मनुज के घर की ;
मनो विकार दमन ही केवल मापदड है चिर-सस्कृति का ,
काम क्रोध, मद, लोभ, मोह, भय, शाश्वत रिपु दल है समृति का ,
जब तक अवश रहेंगे ये रिपु, तब तक कहाँ नवल युग जग मे ?
बन्धन ही बन्धन उलझेंगे इस मानवता के पग पग मे ।
(बा कृ श न हम विषपायी जनम के, पृ ६४)

सगुरा निगुरा
१ साच का सबद सोना का रेख, निगुरा कौं चाणक, 'सुगरा' कौं उपदेश ।
गुर का मुण्डा गुण मैं रहै, निगुरा भ्रमैं औगुण गहै ॥
(गोरखबानी पृ २१)

२ सगुरा सूरा अमृत पीवे, निगुरा प्यासा जाती ।
मगन भया मेरा मन सुख मे, गोविंद का गुण गाती ॥
(मीराबाई की पदावली, पृ १५१)

सज्जन

१. साधु चरित सुभ सरिस कपासू। निरस बिसद गुनमय फल जासू ॥
जो सहि दख परछिद्र दुरावा। बंदनीय जेहिं जग जस पावा ॥
वंदउँ संत समान-चित, हित अनहित नहि कोइ।
अंजलि गत सुभ सुमन जिमि, सम सुगंध कर दोइ।
(रा. च. मा. गु., पृ. ३५)

२. विन पूछे ही कहत हैं, सज्जन हित के वैन।
भले बुरे कौं कहत हैं, ज्यों तमचर गत रैन ॥
(सतसई सप्तक, वृन्द सतसई, दोहा ३९७)

३. धर्म हेतु तन को धरते हैं,
कभी न निज प्रण से डरते हैं।
पर हित में देते हैं तन—मन,
क्यों सखि ईश्वर? नहिं सखि सज्जन ॥
(रा. च. उ. : पहेली)

४. अपने सुख के लिए अन्य को दुख देना है पाप बड़ा;
उत्पीड़क के कारण जग में होता है उत्पात खड़ा।
सब के दुख में स्वयं दुखी हो सबके सुख में हो सुखिया;
वही सुजन है, वही जगत में हो भी सकता है मुखिया ॥
(रा. च. उ. : राष्ट्र भारती, पृ. ३९)

५. काटा हमने और खूब पीटा मर-मर कर।
पेर पेर कर तेल निकाला तुझ से जी भर ॥
फिर दीपक में भरकर थोड़ा तूल मिलाया।
निर्दयता से खोद-खोदकर तुम्हें जलाया ॥
हमने तो अस्तित्व तक, नष्ट तुम्हारा कर दिया।
तुमने अहा प्रकाश से, अखिल भुवन को भर दिया ॥
(मोहन लाल महतो वियोगी : सरसों का सौजन्य)

६. दियासलाई ! धन्य तू जरि जग देति उजास।
तो सम केते नर इतै, पर उपकार विलास ॥
(किशोरीदास वाजपेयी : तरंगिणी, पृ. ४७)

सज्जन : अल्पजीवी

भले आदमी को जल्दी ही, ईश्वर पास बुला लेता है।
जिसकी चाह यहाँ होती है, यहाँ नहीं रहने देता है ॥
(परमेश्वर द्विरेफ : युगस्रष्टा प्रेमचन्द, पृ. २५)

सज्जन और असज्जन के काम

सुजस जनावै भगतन ही से प्रेम करै,
चित अति ऊजरे भजत हरि नाम हैं।
दीन के दुखन देखें आपुनो सुख न लेखै,
विप्र पाप रत तैन मैन मोहै धाम हैं॥
जग पर जाहिर है धर्म निवाहि रहै,
देव दरसन ते लहत बिसराम हैं।
'दास जू' गनाये जे असज्जन के काम हैं,
समुझि देखो एई सब सज्जन के काम हैं॥
(कविता कौमुदी, १, पृ ४७६)

सज्जन का लक्षण

सहन सताप आप, पर को मिटावै ताप,
करुना को द्रुम, सुभ छाया सुखकारी है।
सूर वीर क्षमावान कोटपती नही मान,
ज्ञान को निधान मान, धीर गुनधारी है॥
दोष दिल नाहि लेवै, सर्न आये सुख देवै,
परमार्थ वृत्ति जिन सदा प्रान प्यारी है।
कहत हैं कवि गग, सुनो मेरे दिल्ली पति,
विरले सुजन ऐसे विश्व बलिहारी हैं॥
(स बटे कृष्ण गग—कवित, पृ १२०)

सज्जन का स्वभाव

दिनकर कमलो को स्वच्छ देता सुहास,
शशि कुमुदगणो को रम्य देता विकास।
जलद बरसते हैं भूमि मे अबु—धारा,
सुजन बिन कहे ही साधते कार्य सारा।
विकल अति क्षुधा से देख के पुत्र प्यारा,
जननि हृदय से है छूटती दुग्ध-धारा।
लख कर कुदशा त्यो दीन दुखी जनो की,
सहज प्रकट होती है दया सज्जनो की॥
लहर रहित होता है पयोधि प्रशान्त,
सहृदय रहते त्यो धीर गभीर शान्त।

सुख दुख भय चिंता आदि से हो अलिप्त,
स्थिर मति रहते है साधु ही आत्म तृप्त,
सब नद नदियों का नीर धारा-प्रवाही,
बहकर मिलता है सिन्धु में सर्वदा ही।
तदपि न तजता है आत्म मर्यादा सिंधु,
सुविपुल सुख में भी गर्व लाते न साधु ।।
यदि सब सरिताएँ ग्रीष्म में शुष्क हों भी,
वह उदधि रहेगा पूर्ण ही मित्र तो भी ।
धन सुख प्रभुता का सर्वथा हो अभाव,
पर सम रहता है सज्जनों का स्वभाव ।।

(लक्ष्मीधर वाजपेयी)

सज्जन : *की खोज*

धनी की नहीं खोज में घूमते, न लिख्वाड़ के पैर को चूमते ।
न विद्वान मक्कार ही चाहिए, कहीं से खरा आदमी लाइये ।।

(सत्यदेव परिव्राजक : अनुभव, पृ. १२)

सज्जन : *की पहचान*

जानो सज्जन की यही, एक मात्र पहचान ।
इनके होते तीन है—मन, वच, कर्म समान ।।

(रुद्रदत्त मिश्र)

सज्जन : *की मैत्री*

जग सूरज चंद टरैं तो टरै पै न सज्जन नेहु कबौं विचलै ।
धन संपत्ति सर्वस गेह नसौ नहिं प्रेम की मेड़ सों एड़ टलै ।।
सतवादिन को तिनका सम प्रान रहै तो रहै वा ढलै तो ढलै ।
निज मीत की प्रीत प्रतीत रहो इक और सबै जग जाउ भलै ।।

(भारतेन्दु नाटकावली, पृ. ३३५)

सज्जन : *थोड़े व अल्पायु*

रंग जिन पर हो भलाई का चढ़ा,
सब जगह उनकी घटी सब दिन रही ।
डालियों में है न कांटों की कमी,
पर दिखाते फूल हैं दो चार ही ।।
जब उठी आंखें हमें कांटे मिले,
नोंक अपनी वैसी ही सीधी किये ।

सज्जन निधन

पर नहीं जाना निराले फूल पे,
कल खिले और किस समय कुम्हला गये ॥
(हरिऔध : पद्य प्रमोद, पृ १५०)

सज्जन निर्धन

यदपि मलय तरु को न विधि, फल अरु फूलन दीन्ह ।
तदपि अहो! निज तन करत, औरन ताप-विहीन ॥
(कन्हैयालाल पोद्दार)

सज्जन परोपकारी

होत आप दुख आन सुख, सज्जन मन अहलाद ।
लवन गारि तन आपनो, भोजन करत सुवाद ॥
(मनराम विलास, दोहा ५७)

सज्जन प्रीति और सुख

जहँ सजन तहँ प्रीति है, प्रीति तहाँ सुख ठौर ।
जहँ पुष्प तँह बास है, जँह बास तहँ भौर ॥
(सतसई सप्तक, पृ ३२६ ५५२)

सज्जन मधुरभाषी

सज्जन मुख मीठे वचन, सहज न कहुत बनाय ।
लैबो कौन सुगन्ध को, भँवरन देत सिखाय ॥
(कुलपति मिश्र रस रहस्य, द्वि वृतान्त)

सज्जन स मेल

मज्जण मिलण समान कछु, उरै न दूजी बात ।
सेत पीत चूनो हरद, मिलत लाल ह्वै जात ॥
(उदैराज रा दूहा, दूहा १३)

सज्जन स्वकष्ट में भी परोपकारक

सुजन आपदन में करैं औरन के दुख दूर ।
महि गो कनक दिलावहीं ग्रसे राहु ससि सूर ॥
(दी द नि स, पृ ७६)

सती

अपने हतविधि की ही निन्दा की उसने रो रोकर,
सतियाँ पति को नहीं कोसती परित्यक्ता भी हो कर ।
(मैं. श गु ... पृ २७)

सती : की प्रशंसा

'रज्जब' कायर कामिनी रही विपत के संग ।
सती चली सरि चढ़न कूँ, पहरि पटंवर अंग ॥
(सन्तसुधासार, खंड १, पृ. ५२७)

सती : की शोभा

सज सोरह सिंगार ,चली नवला पिय-कामिनि ।
कंवल-रूप मुख नैन अंग अंगन इतरामनि ॥
पती संग आ दहैं, नवल नारी मनरंजन ।
रोम-रोम उत्साह चाह-डूबे चख खंजन ॥
अति हुलास हित चित कर चिता, बैठ लियो उन अंक अल ।
कवि कहत पद्मिनी रूप छवि, अगन कुण्ड फुलिबो कमल ॥
(पेमी : पेमप्रकाश, पृ. ८३)

सतीत्व-रक्षा

चाहै जो खल करन तुव, भगिनि ! सती-व्रत-भंग ।
ता हिय हूलि कटारि यह, रंगियौ हाथ सुरंग ॥
(वियोगीहरि : वीर सतसई, पृ. ८३)

सत्य

१. होई मुख रात सत्य के बाता । जसाँ सत्य तँह धरम सँघाता ॥
वाँधी सिहिटि अहै सत केरी । लछिमी अहै सत्य कै चेरी ॥
सत्य जहाँ साहस सिधी पावा । औ सतवादी पुरुष कहावा ॥
सो सत छाँड़ि जो धरम विनासा । भौ मतिहीन धरम करि नासा ॥
(जायसी ग्रन्थावली, पृ. ३८)

२. सत्य समान पूत जग नाहीं, सत सों रहै नाउँ जग माहीं ।
कोखि पूत एक देस बखाना, सत्य पूत चारों खंड जाना ॥
(उसमान : चित्रावली)

३. कौन सत्य को खा सकता है ?—
धैर्य शर्त, भय-भ्रान्ति व्यर्थ है ।
विश्वासी के पग न डिगें बस—
जहाँ सत्य, संशय अनर्थ है ।
(नरेन्द्र : पलाश-वन, पृ. ६१)

सत्य : और झूठ

सांच कहूँ तो मारिहै, झूठे जग पतियाय ।
ये जग काली कूकरी, जो छेड़े तो खाय ॥
(कबीर वचनावली, पृ १४६)

सत्य और प्रगति

नहीं सत्य का अन्त नहीं है, मानव है केवल बालक सा,
प्रगति निरन्तर है उसका पथ, जिस पर जावेगा वह बढ़ता ।
(रांगेय राघव मेधावी, पृ २३०)

सत्य और स्वप्न

सत्य आखिर सत्य ही है, हो भले सपना सुनहला ।
(पद्मसिंह शर्मा कमलेश रामेश्वर शुक्ल अचल, पृ ७७)

सत्य का प्रभाव

सुवरन होन-खरो लहै आँच को सग ।
सुजनन पै त्यों साँच तें चढ़त चौगुनो रग ॥
(दुलारेलाल भार्गव दुलारे दोहावली, पृ ७१)

सत्य परम तप

विपक्ष मे हो सम-भाव पक्ष में
तथा मृषा-भाषण मे न प्रीति हो,
न सत्य-सा है तप और विश्व मे
कहा गया, ऋत ब्रह्म-रूप है ।
(अनूप वर्द्धमान, पृ ५७३)

सत्य मे प्रेम

दीपक बिक सकता है जिसका अन्तर ज्योतिर्भाव नहीं है ।
पर अगारे को खरीदना दुनिया मे आसान नहीं है ॥
(स क्षेमचन्द्र सुमन रामावतार त्यागी, पृ ५५)

सत्य मे महत्ता

का ब्राह्मण का डोम मग, का जैनी क्रिस्तान ।
सत्य बात पर जो रहै, सोई जगत महान ॥
(सुधाकर द्विवेदी)

सत्य : से सत्कार

विना सत्य बोले न सत्कार होगा, गिरेगा गढ़े में जो मक्कार होगा ।

(रा. च. उ. : राष्ट्रभारती, पृ. २१)

सत्यवादी : का दर्शन

पावक तैं जल होय वारिध तैं थल होय,
शस्त्र तैं कमल होय, ग्राम होय वन तैं
कूप तैं विवर होय पर्वत तैं घर होए,
वासव तैं दास होय हितू दुरजन तैं ॥
सिंह तै कुरंग होय व्याल स्याल अंग होय,
विष तैं पियूष होय माला अहिफन तैं ।
विषम तें सम होय संकट न व्यापै कोय ।
एते गुन होय सत्यवादी के दरस तैं ॥

(बनारसी विलास, पृ. ३३)

सत्यवादी : का संमान

१. जो असत्यभाषी हैं उनसे अपने जन भी डरते है,
किन्तु सत्यवादी मानव का अरि भी आदर करते हैं ।

(दिनकर : नये सुभाषित, पृ. ३१)

२. तुम होगे सुकरात जहर के प्याले होंगे;
हाथों में हथकड़ी पदों में छाले होंगे
ईसा से तुम और जान के लाले होंगे,
होगे तुम निश्चेष्ट डस रहे काले होंगे ।
होना मत व्याकुल कहीं, इस भवजनित विषाद से ।
अपने आग्रह पर अटल रहना बस प्रह्लाद से ॥

(गया प्रसाद शुक्ल)

सत्याग्रह

सत्याग्रह है कवच हमारा, कर देखे कोई भी वार ।
हार मान कर शत्रु स्वयं ही, यहाँ करेंगे मित्राचार ॥

(मै. श. गु, : स्वदेश-संगीत, गांधी गीत)

सत्संग

तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिअ तुला एक अंग ।
तूल न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सत्संग ॥

(रा. च. मा. गु. पृ. ४७१)

सत्संग और कुसंग

कबिरा संगत साधु की, जो की भूसी खाय।
खीर खांड भोजन मिलै, साकट संग न जाय।
कबिरा खाई कोट की, पानी पिवै न कोय।
जाय मिलै जब गंग से, सब गंगोदक होय॥

(कबीर वचनावली, पृ १२५१)

हंसा कौवा न वणै, जावें दोय विचार।
हंसा मुक्ताहल चुगै, वे विष्टा भोजणहार॥

(रामचरण : अणभैवाणी पृ २३)

सत्संग का प्रभाव

सुबुद्धि, सत्कीर्ति, विभूति, भावना
मिली कभी जो जिस भांति से जिसे,
प्रभाव सत्संगति का अवश्य सो,
न सिद्धि पाते जन अन्य यत्न से।

(अनूप : वर्द्धमान, पृ ५८१)

सत्संग का महत्त्व

गंग पाप, शशि ताप हर, कल्प दरिद्रहिं चूर।
पाप ताप अरु दीनता, सन्त संग ही दूर॥

(गिरिधर : कुंडलिया, पृ ९५)

सत्संग में सुख

सुधा सुधा मधु मधु विधु, वसुधा माहिं।
सुजन संग सम सपनेहुं, सुखप्रद नाहिं॥

(रा च उ : बरवा चौसई)

सदाचार का आधार : आत्मशुद्धि

आत्मशुद्धि पर ही निर्भर है,
मनुज जाति का सदाचरण।
कर सकती है वही हृदय से
दुर्भावों का निराकरण॥

(ठा गो श सि : जगदालोक, पृ १२०)

सदुपयोग

जाये नहीं लाल लतिका ने भड़ने के लिए,
गौरव के संग चढ़ने के लिए जाये हैं।

(मै श गु : साकेत, ९ सर्ग)

सद्गुण : अपनाइये

सद्गुण को समझो सदा खोया रत्न विशाल;
पाओ तुम उसको जहाँ अपनाओ तत्काल ।

(मैं. श. गु. : काबा और कर्बला, पृ. ४०)

सद्गुरु : का महत्त्व

'परसा' पाचर काल की, तूटी देही मांहि ।
सतगुरु विना न नीसरे, सालै माहों मांहि ॥

(परशुराम सागर, पृ. १२२)

सन्यासी : सफल

फलवती जिसकी तप-साधना,
विपुल ज्ञानवती गति बुद्धि की,
गृह-वधू वन मुक्ति विराजती,
सफल-जीवन है वह ही यती ।

(अनूप : वर्द्धमान, पृ. ३११)

सफलता : कब ?

पुरुष का भाग्य पुरुष से सृष्ट,
जगत का भाग्य ईश का इष्ट ।
उभय का होता है जब मेल,
सफलता बनती केवल खेल ॥

(बलदेव प्रसाद मिश्र : साकेत-सन्त, पृ. ६३)

सब : सदोष

भले-भले विधिना रचे पै सदोष सब कीन ।
कामधेनु पसु कठिन मनि दधि खारौ ससि छीन ॥

(सतसई सप्तक, वृन्दसतसई, दो. ६४०)

सबल-निर्बल

१. एक-एक को शत्रु है, जो जातैं बलवन्त ।
जलहि अनल अनलहि पवन, सरप जु पवन भखंत ॥

(सतसई सप्तक, वृन्दसतसई दोहा ५६४)

२. कर सबल संग कब निबल निबहा, कब सितम के उसे रहे न गिले ।
भेड़ियों से पटी न भेड़ों की, बाघ बकरे हिले मिले न मिले ॥

विल्लियों से चली न चूहों की, छिपकली से सके न कीड़े पल।
कब निबल पर बला नहीं आती, है बली कब नहीं दिखाता बल॥
मारता कौन मारतों को है, पिट गये कब नहीं गये बीते।
हैं हिरन ही चपेट में आते, बाघ पर टूटते नहीं चीते॥

(हरिऔध : चुभते चौपदे, पृ ५३-५५)

सभापति अकुशल

निज पद गौरव साथ सभा को जो न सँभाले।
सभी सुलझती हुई बात को जो उलझा ले॥
इस प्रकार का नहीं चाहिए हमें सभापति।
जिसे जो चाहे वही मोम की नाक बना ले॥

(हरिऔध . पद्य प्रसून, पृ ४९-५०)

सभापति कुशल

देख सभा का रंग ढंग से काम चलावे।
पचड़ों में पड़ धूल में न सिद्धान्त मिलावे॥
हमें चाहिए नीतिनिधान सभापति ऐसा।
जो सब उलझी हुई गुत्थियों को सुलझावे॥

(हरिऔध पद्यप्रसून, पृ ४६)

सभ्यता और शान्ति

घूम रही सभ्यता दानवी, 'शान्ति ! शान्ति !' करती भूतल में।
पूछे कोई भिगो रही वह क्यों अपने विष-दन्त गरल में॥

(दिनकर चक्रवाल, पृ ४९)

सभ्यता शहरी

शहद भरी मुसकान सभी घर रख आते हैं,
बाहर आते हैं लेकर फीकी मुसकानें,
यह शहरी सभ्यता बड़ी अद्भुत है भाई।
अनजाने से लगते सब जाने पहचाने।

(देवराज दिनेश भारत माँ की लोरी, पृ १३)

समता

१ सब ही को यह जगत महँ, सिरज्यो विधिना एक।
सब महँ गुन अवगुन भरे, को बड़ छोट विवेक॥

(सुधाकर द्विवेदी)

२. ऊँच नीच के रगड़े झगड़े अपने मन से दो तुम छोड़;
धनी-दीन के भेद भाव के वन्धन को भी डालो तोड़।
शासन शासित के दुखदायक संबंधों को सरल करो;
टलो न सिद्धान्तों से तिल पर स्वयं पराये लिये मरो ।।

(रा. च. उ. : राष्ट्र भारती, पृ. ४०)

३ है नहीं नीच कोई, न ऊँचा कहीं
हम सभी एक है, एक इंसान है,
भूख है प्यास है, चाह है आस है,
एक ही जिन्दगी एक मुसकान है,
दुःख है सुख सभी के लिए एक से,
दो उन्हें बाँट, दो प्रेम का दान है ।

(उ. शं. भ. कणिका, पृ. ४८)

४ चयन मत करो, चयन मत करो,
वरण करो,—
सुन्दर कुरूप को, ऊँच नीच को,
भले बुरे को, कमल कीच का,—
विगत युगों के गरल,—
मनुज के कल्पित भेद हरो,
कुत्सित खेद हरो !

(सु. नं. पं. : वाणी, पृ. २२)

समय

१. धन जोवन नर की दसा, सदा न एक विहाय।
पाख पाँच ससि की कला, घटत-घटत वढ़ि जाय ।।
(जोधराज : हंमीर रासो, पृ. ११६)

२. एक चुरू जल प्यासो जीवै, यौं राखै को मान।
पाछै सुधा सिन्धु कहा-कीजै, छूटि गये जे प्रान ।।
(व्यास वाणी, पृ. १५)

३. उपदेसी बूझा मन माहीं । मिलै समय फिर आवति नाही ।।
वोल समय में वोलव भलो । डोलन-समय में डोलब भलो ।।
अपनी समय पपीहा वोले । सुनि ता वचन बहुत मन डोले ।।
अपनी समय मेघ जल ढारा । हरित होइ वरती संसारा ।।

समय पाइ जोबन तन आवै। सुंदरता छवि देह बढ़ावै ॥
समय पाइ जब मालति फूलै। तब मधुकर मन ता पर भूलै ॥
(नूर मुहम्मद अनुराग बांसुरी, पृ ६१)

समय का कारवां

रुके महंत, भूप, वीर, पर न जन-हृदय रुका,
रुका नहीं कभी समय का नित्य-सत्य कारवां।
(प्रभाकर माचवे अनु-क्षण, पृ ८०)

समय का फेर

१. मरत प्यास पिंजरा पर्यौ सुआ समय कैं फेर।
आदरु दै दै बोलियतु बाइसु बलि की बेर ॥
(बिहारी रत्नाकर, पृ १७६)

२ जा ने कीन्हो दमन है, मत्त मतंग न मान।
हाय दैव वश सिंह सो, पर्यौ पींजरे आन ॥
पर्यौ पींजरे आन, श्वान के गन ढिग भूकैं।
विहँसैं ससा सियार, कान पै आके कूकैं ॥
'मीर' बात है सत्य, लोक में कहिगे स्याने।
का पै कैसो समय, कबै परिहै को जाने?
(स अ अ मीर)

३ विज्ञों ने यह बात बहुत ही ठीक बताई—
बन जाती है कहीं सुधा भी विष दुखदायी।
(मै श गु शकुंतला, पृ १२)

४ जिसे नाचिम समझ कर दूर फेंका,
वही आड़े दिनों में काम आया।
घिसा समझा जिसे, बेकाम पाया,
स्वयं की तौल वह मैं ने भुनाया ॥
(मा ल च वेणु लो गूंजे धरा, पृ ६५)

५ पय निर्मल मानसरोवर को जु सुगंधित पान कियो नित है।
सुख सों बसि राजमराल तहां, जिन वैस व्यतीत करी तित है ॥
कहि जाय कहा अब हाय, दशा वह आय के ताल पर्यो जित है।
चहुँ ओर सिवाल के जाल भरे अरु भेक अनेक परे जित है।
(कन्हैयालाल पोद्दार)

६. पुरुष कुछ नहीं, समय बलवान,
समय के हाथ फलाफल दान।
रत्न बन गये धूल के ढेर,
न क्या कर सका समय का फेर।
(बलदेव प्रसाद मिश्र : साकेत-सन्त, पृ. १०)

समय :-की तीव्र गति

कपोत के चंचल पक्ष-पात से,
श्शाद की निस्वनिता उड़ान से,
खगेंद्र के निर्मल स्वर्ण-पंख से
अतीव तीव्रता द्रुत चाल काल की।
(अनूप : वर्द्धमान, पृ. ४०४)

समय : बुरा

'रहिमन' असमय के परे, हित अनहित ह्वै जाय।
बधिक बधै मृग बान सों, रुधिरै देत बताय॥
(सं. व्रजरत्नदास : रहिमनविलास, पृ. १)

समय : स्व-वश नहीं

धन्य कमल, दिन जिसके, धन्य कुमुद, रात साथ में जिसके।
दिन और रात दोनों, होते है हाय ! हाथ में किसके ?
(मै. श. गु. : साकेत, भूमिका)

समर-स्थल (दे. 'युद्ध-भूमि' भी)

कहीं पैर हैं और कहीं कर,
कहीं शीश हैं लुंठित भूमि पर,
रुधिर सनी हैं देह भयंकर,
कितने ही समृद्ध नगरों को,
भस्म कर चुका है समरानल ;
देखो, देखो वह समरस्थल।
(ठा. गो. श. सिं. : आधुनिक कवि, पृ. ११२-१३)

समर्थ

लखियत टेढ़ी लोक में, समरथ हू की चाल।
ओढ़त केहरि खाल हर, तजि कै साल दुसाल॥
(दी. द. गि. ग्रं, पृ. ८०)

समाचार-पत्र

इस अँधियारे विश्व मे, दीपक है अखवार।
सुपथ दिखावे आपको, आँख करत है चार ॥
(मेलाराम शिक्षा सहस्री)

समाज और व्यक्ति

एकहि नीति तत्त्व मैं जाना। हेतु समष्टि व्यक्ति-बलिदाना ॥
स्वजनहि बसत जासु मन माही। सघत धर्म-हित तहि ते नाही ॥
(द्वा प्र मि कृष्णायन, पृ ३७६)

समीपता और दूरी

सकल समीप जो भर मधु पायी। सो कि कबहुँ बन खोजन जायी ?
(द्वा प्र मि कृष्णायन, पृ १७९)

सरलता व्यर्थ की

सरलता भी ऐसी है व्यर्थ, समझ जो सके न अर्थ अनर्थ।
(मै श गु साकेत, द्वितीय सर्ग, पृ ३४)

सरलता से हानि

बढो महातम बक्र बनि, सरल भये दुख-भार।
लखे सरल पशु, वत्र नहि, होत मनुज-आहार ॥
(रामेश्वर करुण करुण सतसई, पृ ७२)

सर्वधर्म-समभाव

भारत सब धर्मों की भू,
सब का हो यहाँ समन्वय
प्रिय राम रहीम उभय ही
ईश्वर के नाम न सशय।
(सु न प लोकायतन, पृ १२८)

सर्वधर्म-सार

न जिसने देखा पर स्वर्ग,
नरो में विश्वम्भर भगवान।
वृथा है प्रेम, है कर्म,
वृथा है उसका ज्ञान ॥
'जनार्दन को जनता लखो'
यही है सब धर्मों का ।
इसी के स्पन्दन से भर है,
मनुष्यों का समग्र ॥
(बलदेव प्रसाद मिश्र साकेतन्त सन्त, पृ १५१)

सर्वोदय

उठ बढ़ ऊँचा चढ़ संग लिए सबको
सबके लिए तू और तेरे लिए सब हैं।

(मैं. श. गु. : पृथिवीपुत्र, पृ. ६४)

ससुराल : और मायका

उभैं कुलदीप सिखामनि जानकी लोक रुवेद की मेड़ न मेटी।
भरी सुख संपति औधपुरी रजधानि सबै लछना सो लपेटी॥
करैं मिथिला चित "सूरकिशोर" सनेह की बात न जात समेटी।
कोटिन सुख जो होइ ससुरारि तो बाप को भौन न भूलति बेटी॥

(सूरकिशोर : मिथिलाविलास, पृ. १६.)

ससुराल : के दुख

चाहत न सारो औ ससुर जर्यो जात सासु
साम्ही परि मिलै जहाँ ठानति लराइ है।
सारी सरहज कह्यो करत रसोई बीच
पय पयहारी खात सेरुक अढ़ाई है।
कहत गुपाल घरघरेही रहत यह
याने यहां आय रहटानि भली पाई है।
नाई ले कै संग कुलकीरति गमाई ऐसी
जाय ससुरारि घर कारवा जमाई है।

(गुपाल राय : दंपति वाक्यविलास, पृ. १०)

ससुराल : के सुख

नित नई प्रीति रस रीति नई नारिन सों,
आदर अधिक देखि भूलै घर बार को।
पौढ़िबे को पलँग पै गैंदुआ गिलम खीर,
खाँड पकवान मिलै भोजन बहार को।
नित प्रति होत देखि हिय में हुलास सारी,
सारे सरहज सासु ससुर के प्यार को।
कहत गुपाल फूले अग न समात मो पै,
कह्यो नही जात कछु सुख ससुरारि को॥

(गुपाल राय : दंपति वाक्यविलास, पृ. ६)

सह-कार

सफल हो सहकृषि, जन सहकार,
सफल हो एक धरा परिवार,

बढ़ें बाहर सयुक्त प्रयत्न,
खुलें भीतर निरुद्ध उर द्वार ।
(सु न प लोकायतन, पृ २६८)

सहानुभूति

आयु कितनी खोखली मुसकान की यह देख लो तुम,
बात दो पल की निरन्तर काल जिसको पी रहा है,
किन्तु जो उमडा किसी की बेबसी पर आज भी वह,
आदि कवि का एक आँसू गीत बन कर जी रहा है,
दर्द से नाता नही तो जिंदगी उसकी समझ लो,
एक ऐसी रात जिसकी बाँह मे पूनम नही है ।
(रूपनारायण त्रिपाठी बनफूल, पृ १४)

सहिष्णुता

१ किसके सिर का बोझा कम है, जो औरो का बोझ बँटाए,
होंठो के सतही शब्दो से दो तिनके भी कब हट पाए,
लाख जीभ में एक, हृदय की गहराई को छू पाती है,
कटती है हर एक मुसीबत—एक तरह बस—झेले झेले ।
दे मन का उपहार सभी को, ले चल मन का भार अकेले ।
(बच्चन · अभिनव सोपान, पृ २१६)

२ आकांक्षाएँ नाक डुबोकर यदि मर जाएँ ।
पका-पकाया खडा खेत यदि खर चर जाएँ ।
खैर मनाओ इतने मे भी यदि सर जाए ।
भरते भरते हृदय, गले तक यदि भर जाए ।
तो धीरे से भीतर ही भीतर तुम रो लो ।
हो सके जहाँ तक मौन रहो, तुम मत बोलो ।
(सागरमल कुछ कलियाँ कुछ फूल, पृ ३२)

३ है हृदय मे दर्द रो ले पर किसी के सामने मत रो।
जग हँसेगा, आसुओ को पोछने कोई न आवेगा ।
(हरिकृष्ण प्रेमी रूपरेखा, पृ ४७)

४ चोट से ही सफल जीवन, चोट से घबरा न रे मन ।
देन दुनिया की यही है, चोट खा चल, हो न बेकल ।।
(कमल साहित्यलकार अत्याक्षरी, पृ २६)

सहिष्णुता और परोपकार

सूर्य देता है प्रकाश पर देह जला देता है,
सत्य होता कठोर हृदय हिला देता है;
चन्द्र पीकर कलंक विष, अमृत उड़ेला करता,
अपमान स्वयं पीता औ अमृत पिला देता है।

(उ. शं. भ : कणिका, पृ. ११)

साँप्रदायिकता

१. जाना नहीं अच्छा कभी जैनियों के मन्दिर में,
किसी भांति अच्छी नहीं कृष्ण की उपासना।
शंभु का स्मरण किये होना जाना क्या है कहो,
राम-नाम लेने से क्या सिद्ध होगी कामना॥
बुरे हैं मुसलमान हिन्दू बड़े काफ़िर हैं,
ऐसी हो परस्पर में बुरी जहाँ भावना।
प्रेम हो न आपस का एका फिर क्योंकर हो
क्यों न भोगे हिन्द माता नई-नई यातना॥

(गिरिधर शर्मा)

२. मस्जिद से मन्दिर लड़ते हैं
गिरजा से लड़ते विहार मठ,
धर्म अनर्थ कर रहा कितना
करते हैं अधर्म पामर शठ।

(सो. ला. द्वि. : युगाधार, पृ. ३०)

३. खूँ बहाया जा रहा इन्सान का, सींग वाले जानवर के प्यार में।
कौम की तकदीर फोड़ी जा रही, मस्जिदों की ईंट की दीवार में॥

(दिनकर : चक्रवाल, पृ. ७०)

४. इत्तहाद के वृहद विटप की छाया से है दूर भागते
विधर्मियों के प्राण चुराने को हैं ये दिन-रात जागते॥

(सुधीन्द्र : शंखनाद, पृ. ५३)

साख

सापं रह्यां लापां गयां, फिर कर लापा होय।
लाप रह्यां सापां गयां, लाप न लब्भै कोय॥

(जिनरंग सूरि : रंग बहत्तरी, दोहा ४०)

साथी • मेरे

औरो से तो अच्छे ही हैं ,
पर उतने अच्छे नही, आह, (जितने अच्छे मैं समझे था) मेरे साथी।
छाँटो तुम कितना ही चुन-चुन, हैं सबमे बहुतेरे औगुन ॥
पर क्या यह दोषी स्वार्थ नही,
जो भाता मुझे यथार्थ नही ?
जीवन की सच्ची भूख नही, दिखता मुझको दाने मे घुन।
काहिल को चुभते हैं गद्दे, सौ बार रुई चाहे लो धुन ॥
औरो से—हा, अच्छे-अच्छो से अच्छे हैं, मेरे साथी।
(नरेन्द्र शर्मा मिट्टी और फूल, पृ ५६)

साधना जीवन का मोल

तरसते हैं हम आठों याम,
इसी से सुख अति सरस, प्रकाम,
झेलते | निशि दिन का सग्राम,
इसी से जय श्रीराम,
अलभ है इष्ट, अत अनमोल,
साधना ही जीवन का मोल।
(सु न प आधुनिक कवि, पृ ४२-४३)

साधु

एक कोमरी में रहैं, दस साधु सुख पायं।
द्वै नरेस इक देश में, पै नहिं सकत समाय ॥
(म प्र द्वि द्वि का मा, पृ २७७)

साधु • कपटी

१ मन न ॅ ॱ रँगाये जोगी कपडा ॥ टेक।
आसन मारि मन्दिर मे बैठे।
नाम छाडि ५ लागे पथरा ॥ १ ॥
कनवाँ फडाय ॑ जटवा बढौलै।
दाढी बढाय जोगी ६ ंलै बकरा ॥ २ ॥
जगल जाइ जोगी १ या रमौलै।
काम जराय जोगी होइ लै हिजरा ॥ ३ ॥
मथवा मुडाय जोगी ॰ रँगौलै।
गीता बाँचि के होइ • लबरा ॥ ४ ॥

कर्हहि 'कबीर' सुनो भाई साधो ।
जम दरवजववाँ बाँधल जैबै पकरा ॥ ५ ॥

(कबीर शब्दावली ; दू. भा., पृ. १३)

२. पगरी धरा उतारि टका छह सात का ।
मिला दुशाला आय रुपैया साठ का ।
गोड़ धरे कछु देहि मुंडाए मूंड के ।
(अरे हां पलटू) ऐसा है रुजगार कीजिए ढूंढ़ के ॥

(पलटूदास : सन्त सुधासार, २, पृ. २४७)

३. पीवत भांग तिजारी तमाखूंहि, खाय अफीम रहै रंग भीना ।
कर्म अशुभ करै देह कुकृत, सुकृत शुभ सूं होय पछीना ॥
रामको नाम कह्यो खिज ऊठत, दाम कै काम गुलाम अधीना ।
रामचरण ये भेष लजावत, ऐसे कूं संत कहै मति हीना ॥

(स्वामी रामचरण : अणभै वाणी, पृ.९६)

४. आप रहे कोरा शरीर के वसन रँगावे।
घर तज करके घरबारी से भी बढ़ जावे ॥
इस प्रकार का नहीं चाहिए हमको साधू ।
मन को मूंड़ न सकै मूंड़ को दौड़ मुड़ावे ।

(हरिऔध : पद्यप्रसून, पृ. ४८)

५. कथत मथत वेदान्त पै, रचत मंद छर-छन्द ।
कहु, किमि कामानन्द ए, ह्वै है रामानन्द ॥

(वियोगी हरि : वीर सतसई. पृ. ६५)

६. दस बीस पचास न सौ हैं, यह अस्सी लाख अकेले !
होंगे करोड़ से कम क्या, इनके कुल चौपट चेले ॥
कितनी न संगठित सेना, इन वेकारों से बनती,
यह दुश्मन को दहलाते, यदि कभी लड़ाई ठनती ।
कितने न कारखानों को, इनकी श्रम-शक्ति चलाती,
इनके असंख्य हाथों से, कितनी खेती लहराती ।
अहिफेन चरस चंडू में, फुंक रहा माल मन-चाहा ।
श्रमिकों की कठिन कमाई, हो रही चिलम में स्वाहा ॥

(रामेश्वर करुण : तमसा, पृ. १३४—६)

साधु की सगति

कोटि जज्ञ व्रत नेम तिथि, साध सग मे होय।
विषय व्याधि सब मिटत हैं, सान्ति रूप सुख जोय।।
साध-सग जग मे बडो, जो करि जानै कोय।
आधो छिन सतसग को, कलमष डारै धोय।।

—दयाबाई

(गि ब शु हि का को, पृ ५३)

साधु दुर्लभ

साधु रहैं नहि सकल थल, कवि जन कहैं बखान।
बन बन चदन होहि नहि, गिरि गिरि मानक खानि।।

(दी दा गि ग्र, पृ ८४)

साधु सच्चा

१

सन्त सासना सहत हैं, जैसे सहत कपास।
जैसे सहत कपास, नाय चरखी मे ओटै।।
रूई घर जब तुनै, हाथ से दोउ निभोटै।
रोम रोम अलगाय, पकरि के धुनिया धूनो।।
पिउनी तह दै कात, सूत ले जुलहा बूनो।।
धोबी भट्ठी पर धरी, कुन्दीगर मुगरी मारी।
दरजी टुक-टुक फारि जोरि कै किया तयारी।।
पर स्वारथ के कारने दुख सहे 'पलटूदास'।
सन्त सासना सहत हैं, जैसे सहत कपास।।

(सन्त सुधासार, २, पृ २२३)

२

कपडे रंग कर जो न कपट का जाल बिछावे।
तन पर जो न विभूति पेट के लिए लगावे।।
हमे चाहिए सच्चे जी वाला वह साधू।
जाति देश जग हित कर जो निज जन्म बनावे।।

(हरिऔध पद्मप्रसून, पृ ४४)

साधु से ज्ञान पूछो

जाति न पूछो साध की, पूछ लीजिए ज्ञान।
मोल करो तलवार का पडी रहन दो म्यान।।

(कबीर वचनावली, पृ १२२)

साध्वी

१. पर-गृह-निवास, एकाकी प्रवास गमन,
कुसंग, कुपुरुषालाप, कुसमय पथ भ्रमण ।
कुचिंतन, कुश्रृंगार, खान-पान कुपठन,
साध्वी न भूल करें आचरण अनैतिक ।।
(अतुलकृष्ण गोस्वामी : नारी, पृ. १३६)

२. सु-कन्या सुशील-शिष्ट जननी जनक की,
श्वश्रु स्वसुर की सुकुलीन, शालीन वधू ।
अमृत सुत की माँ, बहिन महा मानव की,
वह नारी हैं साध्वी पत्नी स्व पति की ।।
(अतुलकृष्ण गोस्वामी : नारी, पृ. १३९)

सामर्थ्य

अपनी पहुँच विचारि कै, करतब करियै दौर ।
तेते पाँव पसारिये, जेती लंवी सौर ।।
(वृन्द सतसई, दोहा १९)

सामान्य जन

१. ज्यूँ पर सूँ पर बँधिया यूँ बंधे सब लोई ।
जा कै आतम-द्रिष्टि है, साचा जन सोई ।। —कबीर
(सन्त सुधासार, पृ. ७३)

२. साँच कहूँ तो मारिहै, झूठे जग पतियाय ।
ये जग काली कूकरी, जो छेड़े ता खाय ।।
(कबीर वचनावली, पृ. १४६)

३. 'दादू' डरिये लोक थैं, केसी धरै उठाइ ।
अणदेखी अजगैव की, पैसी कहै बनाइ ।।
(सन्त दादू और उनकी वाणी, पृ. १३२)

४. पूजत लोग मलीन कौं, पावन जन पूजैं न ।
करन घ्रान सुवरन लसै, लेपत कज्जल नैंन ।।
(दी. द. गि. ग्रं., पृ. ७४)

५. जगती वणिग्वृत्ति है रखती,
उसे चाहती जिस से चखती ;
काम नहीं, परिणाम निरखती,

मुझे यही खलता है ।
दोनों ओर प्रेम पलता है ।
(मै श गु साकेत, ९ सर्ग)

६. जैसा तुम चाहो करें, सब तुम से व्यवहार ।
वैसा ही व्यहार तुम, करो सभी से प्यार ॥
(श्रीमन् नारायण रजनी में प्रभात का अकुर, पृ ११८)

७ कोई साथ नहीं देता है ।
फिर तुम को मुझ से क्या आशा,
फिर मुझ को तुम से क्या आशा,
जिस से करता प्रीत, मधुप को बन्दी वही बना लेता है ।
जिसे प्रीत करनी आती है,
दुनिया प्रेमी बतलाती है,
उसी शलभ को निष्ठुर दीपक पल मे भस्म बना देता है॥
(देवराज दिनेश अन्तर्गत, पृ ६७)

सावधानता

नेही विश्वसनीय चिर, कोऊ नहि ससार ।
मित्रहु ते रिपु-सम सजग, यह नय-नीतिन सार ॥
(द्वा प्र मि कृष्णायन, पृ १४१)

सास बहू से प्रेम

१ नयन पुतरि करि प्रीति बढाई । राखेउ प्रान जानकिहिं लाई ।
कलपबेलि जिमि बहुबिधि लाली । सींचि सनेह सलिल प्रतिपाली ॥
पलँग पीठि तजि गोद हिंडोरा । सियँ न दीन्ह पगु अवनि कठोरा ।
जिअन मूरि जिमि जोगवत रहऊँ । दीप बाती नहि टारन कहऊँ ॥
(रा च मा गु, पृ २६७)

२ दुलार करती मनुहार करती,
अमित वधू मे है प्यार करती ।
स्वय सभी देख सम्हाल करती,
महान् ऐसी है सास घर मे ॥
सुधाभ्र बरसाती शान्त स्वर मे ॥
व्यवहार निश्छल, स्वभाव निरुपम,
कभी न करती अमाय अनियम ।

न पक्ष मन में, प्यारे सभी सम,
महान् ऐसी है सास घर में ॥
अपार सन्तोष स्थित अधर में ॥

(अतुल कृष्ण गोस्वामी : नारी, पृ. २७४)

साहबीयत

१. लग गई यूरोपियन रंगत भली, क्यों बनें हिन्दी गधे भूँका करें।
साहबीयत में रहेंगे मस्त हम, थूकते है लोग तो थूका करें ॥

(हरि औध : चुभते चौपदे, पृ. ११७)

२. है चुरुट चाट चौगुनी जी में, बढ गई सूट-बूट की बाई।
जब लगाई गले से तो, काटती नाक क्यों न नकटाई।

(हरि औध : मर्मस्पर्श, पृ. ९५)

साहस

१. निहचै चला भरम जिउ खोई। साहस जहां सिद्धि तहँ होई ॥

(जायसी ग्रंथावली, पृ. ६२)

२. है करम रेख मूठियों में ही, बेहतरी बाँह के सहारे है।
कर नहीं कौन काम हम सकते, क्या नहीं हाथ में हमारे है ॥
जो रहे ताकते पराया मुँह, तो दुखों से न किस लिए जकड़े।
क्यों न हों पाँव पर खड़े अपने, और का पाँव किस लिए पकड़े ॥

(हरि औध : चुभते चौपदे, पृ. ८)

३. तजत प्राण, वरु यत्नहि माहीं। साहस तजत मानिजन नाहीं।

(द्वा. प्र. मि. : कृष्णायन, पृ. ५०५)

४. सचमुच साहस ही से होते
वसुधा के व्यापार सभी,
श्रम साहस के बिना किसी ने
किया प्रबल प्रतिकार कभी ?

(रामेश्वर करुण : चिनगारी, पृ. २४)

५. रुकना न तुम जब तक तुम्हारे श्वास का लवलेश है।
हिम्मत न हारो ऐ हृदय यह साधना का देश है।

(शिवमंगल सिंह सुमन : प्रलय-सृजन, पृ. ४०)

६. मेरा पथ, मेरे पैरों की बाट निहारा करता,
मेरा साहस, कांटों का व्याघात बुहारा करता।

(बुद्ध मल्ल : आवर्त, पृ. २४)

साहस और दया

अ-सार है जीवन जीव-लोक मे,
स मार देती युग वस्तुएँ यहाँ,
स्व दु ख में साहस-पूर्ण भावना,
दया दिखाना पर-दु ख में सदा ।

(अनूप वर्द्धमान, पृ ३०३)

साहसी की विजय

धर धर चरण विजित शृगों पर झडा वही उडाते हैं ।
अपनी ही उँगली पर जो खजर की जग छुडाते हैं ।

(दिनकर चक्रवाल, पृ ५५)

साहित्य

१ भाव गगन के लिए परम कमनीय कलाधर ।
रस उपवन के लिए कुसुम-कुल विपुल मनोहर ।
उक्ति अवनि के लिए सलिल सुरसरि का प्यारा ।
ज्ञान नयन के लिए ज्योतिमय उज्वल तारा ।।
है जन मन मोहन के लिए मधुमय मधुऋतु से न कम ।
ससार सरोवर के लिए है साहित्य सरोज सम ।।

(हरि औध पद्य प्रमोद, पृ ६२)

२ मृत हो कि जीवित जाति का साहित्य जीवन-चित्र है ।
वह भ्रष्ट है तो सिद्ध फिर वह जाति भी अपवित्र है ।।

(मै श गु भारत भारती, पृ १२०)

साहित्यकार

वह है सच्चा साहित्यकार
भय, पश, प्रलोभन पास नहीं, पद प्रभुता पर विश्वास नहीं,
होता न हताश—उदास कहीं, करता कुनीति पर पवि प्रहार—
वह है
—हरि शकर शर्मा

(स रामवत्स भारद्वाज ऋतम्भरा, पृ १५४)

साहित्य-रचना

'मेला' तेरी पूछ क्या, पडा कूप में ज्ञान ।
खारा पानी समझ के, देत न कोई ध्यान ।।

(मेलाराम . शिक्षासहस्री, पृ ३५)

साहित्य-सेवा

जो लिखा आज तक कलम तोड़ने वालों ने
वह पढ़ते-पढ़ते हमने कलम उठाई है,
तू वनी टूट जाने को मत रुकना-झुकना
ऐ कलम लिखे जा तुम को राम दुहाई है।—रामकृष्ण श्रीवास्तव
(सं. शिवदानसिंह चौहान : काव्यधारा, १, पृ. १५१)

सिद्धान्त : थोथे

मैं ने कितनी वार कहा है, जीवन को जो रस न दे सके।
वे सिद्धान्त तर्क-संगत भी, हैं अयुक्त, गतिहीन, पथ-थके॥
(शरणबिहारी गोस्वामी : पाषाणी, पृ. ६८)

सिद्धि-प्राप्ति

अपने को पहचानो आर्य, मूलमंत्र यह मानो आर्य।
नहीं कही वाहर निज सिद्धि,आत्मान स्वात्मानं विद्धि॥
(मै. श. गु. : हिन्दू, पृ. १०८)

सिपाही

तुम सिपाही हो नगर के वीर ! पहरेदार हो।
चोर को पकड़ो, अँधेरी रात में दीपक ! जलो।
आँच उस पथ पर न आये, तुम जिधर को भी चलो॥
वात तव जव हर पथिक सोना उछाले राह में।
धैर्य वन जाओ विचारे निर्वलों की आह में।
डाकुओं की गरदनों पर जागती तलवार हो।
तुम सिपाही हो नगर के वीर पहरेदार हो॥
(रघुवीर शरण मित्र : भूमि के भगवान, पृ. १५)

सिर :—न चढ़ाइये

कवहूँ वालक मुँह न दीजिये, मुँह न दीजिये नारी।
जोइ मन करै सोइ करि डारै, मूँड़ चढ़त है भारी॥
(सूरसागर, पृ. ७८६)

सुंदरता (दे. सौंदर्य भी)

सुन्दरता पर कभी न भूलो, शाप वनेगी वह जीवन में।
लक्ष्य-विमुख कर भटकायेगी, तुम्हें व्यर्थ फूलों के वन में॥
(दिनकर : चक्रवाल, पृ.३६)

कितना भी सँभल सँभल चलिये, दिल को समझाते रहिये ।
यह तुरत फिसल जाता है, सुन्दरता ऐसी काई है,
यह गीद न की कठिनाई है ।
(बेढब बनारसी बेढब की बानी, पृ ३३)

सुकविता

कविता सोई जानिये, जहाँ काम की बात ।
जहाँ काम की आगि सो, करति जाति को घात ॥
(किशोरीदास बाजपेयी तरंगिणी, पृ ३)

सुख

सुख है न जाने कहाँ, चाहे जहाँ मान लो ।
मन अपना है और मानना भी अपना ।
(मं श गु सिद्धराज पृ १३०)

सुख का मार्ग

'सद्' का परित्याग का जिसने सुख पाया जीवन मे ?
'असद्' ग्रहण कर शान्त रह सका कहो न कोई मन में ॥
(अतुल कृष्ण गोस्वामी नारी, पृ १८८)

सुख का विस्तार

औरो को हँसते देखो मनु
हँसो और सुख पाओ,
अपने सुख को विस्तृत कर लो
सब को सुखी बनाओ ।
(प्रसाद कामायनी, पृ १३२)

सुख का साधन दुख

जग मे सुख की प्राप्ति के लिए एक सहायक दुख है ।
वही जगाता है सद्गुण को सद्गुण लाता सुख है ।
बाधा, विघ्न, विपत्ति, कठिनता जहाँ-जहाँ सुन पाना ।
सब के बीच निडर हो जाना दुख को गले लगाना ॥
(रा न त्रि • पथिक, पृ ३२)

सुख के साधन

१ लोभ पाप का बीज है, रस व्याधी का बाप ।
राग बँद का बीज, तज, तीन सुखी हो आप ॥
(गिरिधर कुडलिया, पृ ९०)

२. कह 'गिरिधर कविराय' सुखी सो कैसे होवै।
तृष्णा राग रु द्वेष ईर्षा मत्सर वोवै॥
(गिरिधर : कुंडलिया, पृ. ६९)

३. लहत खेद सुख हेत जन, कारन जानत नाहिं।
भजत कृष्ण को सुख सवै, अनायास मिल जाहिं॥
(दी. द. गि. ग्रं., पृ. ७४)

सुख : छाया-छल

तट कहता तटनी से—देखो तनिक ठहर जाओ जो पल भर,
एक बार बस तुम्हें प्यार से लूं अपने आलिंगन में भर।
पर तट जितना उसे घेरता, गति उतनी ही तीव्र नदी की,
पग पग पर रोका, आखिर वह छिपी जलधि में और न दीखी।
यही हाल मेरा भी, चाहा—सुख को लूं मैं चूम एक पल,
पर सुख मुझ को छोड़ अकेला कह जाता-"मैं तो छाया-छल"॥
(नरेन्द्रशर्मा : मिट्टी और फूल, पृ. ६७)

सुख : जगत् में

यदि उद्दीप्त हृदय में सच्चे सुख की हो अभिलाषा।
वन में नहीं जगत में जाकर करो प्राप्ति की आशा।
(रा. न. त्रि. : पथिक, पृ. ३१)

सुख :—दायक पदार्थ

धीरज उद्यम बुद्धि बल, साहस शक्ति सुनीत।
ये दस सुखदायक सदा, सुतिय सुपूत सुमीत॥
(रा. च. उ. : सतसई)

सुख : दुःख के बाद

दुःख की पिछली रजनी बीच,
विकसता सुख का नवल प्रभात।
(प्रसाद : कामयानी, पृ. ५३)

सुख : दुर्लभ

वेदना विकल फिर आई
मेरी चौदहों भुवन में,
सुख कहीं न दिया दिखाई
विश्राम कहाँ जीवन में!
(प्रसाद : आँसू, पृ. ५३)

सुख दुख

१ जैसे सँडसी लोह की, छिन पानी छिन आग।
ऐसे दुख सुख जगत के, 'सहजो' तू मत पाग ॥
(गिरिजादत्त शुक्ल हि काव्य की कोकिलाएँ, पृ ४६)

२ जहाँ प्रीत तहँ विरह है, जहाँ सुख दुख देख।
जहाँ फूल तहाँ काट है, जहाँ दिख तहाँ लेख ॥

३. पूरा निश्चित है नहीं, सुख-दुख का परिपाक।
नथ-नथुनी हित बिद्ध हो, हुई अलंकृत नाक ॥
(हरिऔध सतसई, पृ ६५)

४ है सयोग वियोग-विमिश्रित, मायव ग्रीष्मान्तक है।
जीवन मृत्यु मुखापेक्षी है, सुख सब दुखान्तक है ॥
(उ श म तक्षशिला, पृ ६५)

५ अविरत दुख है उत्पीडन,
अविरत सुख भी उत्पीडन,
दुख सुख की निशा-दिवा मे,
सोता-जगता जग-जीवन ॥
(सु न प आ क, पृ ५०)

६ देखूँ सबके उर की डाली—
सब में कुछ सुख के तरुण फूल,
सब मे कुछ दुख के करुण फूल,
सुख दुख न कोई सका भूल।
(सु न प आधुनिक कवि, पृ ५२)

७ सुख तो थोडे से पाते,
दुख सबके ऊपर आता,
सुख मे वचित बहुतेरे,
बच कौन दुखो से पाता,
हर कलिका की किस्मत मे,
जग जाहिर, व्यर्थ बताना
खिलना न लिखा हो लेकिन,
है लिखा हुआ मुर्झाना।
(बच्चन अभिनव सोपान, पृ ५५)

८. बात ऐसी तो न जीवन में : शूल ही सबको मिले,
और यह भी तो नहीं पथ में : फूल ही सबको मिले;
नाव कुछ की पार हो जाती : और कुछ की डूबती,
क्या ठिकाना है लहरों में : कूल ही सबको मिले।
(रूप नारायण त्रिपाठी : : वनफूल, पृ. ४१)

९. ऊषा की यौवन-लाली में, कलियाँ खिलती किलक किलक कर।
संध्या के अवसान तिमिर में, आहें भरतीं सिसक सिसक कर!
सुखदेवी ने विहँस विहँस कर, गूँथी है आँसू की माला!
इसी माल को पुलक पुलक कर, मानव ने निज उर में डाला!
(श्रीमन् नारायण : रजनी में प्रभात का अंकुर, पृ. ५०)

१०. सागर की गहराई कहती—हिम शिखरों की बात,
दिन का उजियाला बतलाता—निपट अँधेरी रात,
कंटक की उद्धत कठोरता कहती—कोमल फूल।
सुख-दुख क्या हैं? जीवन की धारा के ही दो कूल।
दोनों सम हैं, किन्तु समझ में हो जाती है भूल॥
(बुद्धमल : मंथन, पृ. २४)

११. फूल पर हँस कर अटक तो, शूल को रो कर झटक मत,
ओ पथिक! तुझ पर यहाँ अधिकार सबका है बराबर।
(नीरज : आसावरी, पृ. ४)

१२. दुख पाकर ही क्या न सभी जग में सुख पाते?
कंटक-हीन प्रसून बहुत कम देखे जाते।
(रामखेलावन वर्मा : चन्द्र गुप्त मौर्य, पृ. ५५६)

सुख—दुख : अस्थिर

यह रंग-बिरंगी उषा लिये है दुख की काली रातें,
है ग्रीष्म-काल की दाहक लपटों में रस की बरसातें।
यह बनना-मिटना अमिट काल के चल चरणों का क्रम है।
छाया के चित्रों सदृश यहाँ हैं ये सुख-दुख की बातें।
(भगवतीचरण वर्मा : रंगों से मोह, पृ २२)

सुख—दुख : समान

सूर सुक्ख अरु दुक्ख को, दोउ सम गिणो विचार।
जेतौ जुग मंइ चांदणों, तेतौ पस अंधार॥
(उदैराज रा. दूहा, पृ० ३८)

सुख-दुख सात

घट नीरोगी शुभ घरणि बलि नही रिण भय घात ।
सुपुत्र सुराज कटुम्ब सुख धर्मसीह कहै सात ॥
धर्मसीह कहै सात सात दुख जाय न सहणा ।
दीसै घर में दलिद लोक बलि मांगै लहणा ॥
कुलहीण नारी कुपुत्र फिरण परदेश सगे कट ।
सब सौ दुख सातमौं धणौं, बलि रोग रहैं घट ॥

(धर्मसिह कुडलियां बावनी)

सुख-दुख साधन-परिवर्तन

दुर्दिन मे वे ही दुख बनते, सुदिनो मे सुख जो रहते,
शरद के शीत हर साधन ही, ग्रीष्म मे अगार बन दहते ।

(ताराचन्द हारीत दमयती, पृ २६१)

सुख-दुख से ऊपर

'सु' कहो व 'दु'ख तो शून्य है, यह है मेरा कहना,
तुम सुख और दुख दोनों के ऊपर उठकर रहना ।

(मै श गु जयभारत, पृ ४२०)

सुजन (दे 'सज्जन' भी)

१ सुजन सुहृदो पर न शस्त्र सँभालते,
प्रेम की ही दृष्टि उन पर डालते ।

(मै श गु शकुन्तला, पृ ३३)

२ प्रार्थी प्रथम जो आवत पासा । पूजत सुजन तासु अभिलाषा ॥

(द्वा प्र मि कृष्णायन, पृ ४६८)

सुधार अपना

जिन बातो का दोष दूसरो पर धरते हैं,
आता है जब समय वही हम भी करते हैं ।
फिर किस पर आक्षेप करें कैसे किस मुख से,
उभय ओर के स्वार्थ किसे रहने दें सुख से ॥

(मै श गु राजा प्रजा, पृ ४३)

सुधार की रीति

बदलो मनुज [illegible] को यो कि वह अपनी कमी पहचान ले,
तुम चाहते [illegible] जो कुछ मनुज उसको हृदय से मान ले ।

जंजीर कसते हो जहाँ, वह आदमी की देह है,
बसता जहाँ मन, वह बहुत भीतर हृदय का गेह है।

(दिनकर : चक्रवाल, पृ. ३६६)

सुराज्य-प्राप्ति

सुभारतीयता लिये, सुमानवीयता लिये,
स्वराष्ट्र क्षेत्र के लिये, मनुष्य मात्र के लिये,
सुचारुभाव युक्त हो, सुमित्र-शक्तियुक्त हो
सुराज्य-प्राप्ति के लिए, बढ़े चलो बढ़े चलो।

—रामदत्त भारतद्वाज

(सं. रामदत्त भारद्वाज : ऋतम्भरा, पृ. ११६)

सुरा-पान

जिये जो पिये सोम-रस के, क्यों पले वे पी कर प्याले।
जो सुधा-रस के प्यासे थे, बने क्यों मधु के मतवाले॥
किस तरह आँखें खुल पावें, टल सके कैसे अँधियाला।
जब मुदी आँखें रहती है, पान कर मदिरा का प्याला॥

(हरि औध : मर्मस्पर्श, पृ. २२)

सुविचार और सुपात्र

बड़े भाग्य से ये खिलते है, कभी चेतना के वन में,
यों बिखेरता मत चल सड़कों पर अनमोल विचारों को।

(दिनकर की सूक्तियां, पृ. ११५)

सुशासन की कसौटी

मनुज—आवश्यकताएँ पाँच
न इनमें कभी कही हो त्रास।
कि वह हों स्वस्थ और सज्ञान,
मिलें शुचि अन्न, वस्त्र, आवास॥
अनेकों है शासन के तंत्र,
अनेकों फैले यहां स्वराज्य।
त्याज्य वे जिनसे पंच न पांच,
प्राप्त कर पा जावें स्वाराज्य॥

(बलदेवप्रसाद मिश्र : साकेत-सन्त, पृ. १५१)

सुसंगति-कुसंगति

गगन चढ़इ रज पवन प्रसंगा। कीचहिं मिलइ नीच जल संगा॥
साधु असाधु सदन सुकसारी। सुमरहिं राम देहिं गनि गारी॥

ग्रह भेषज जल पवन पट, पाइ कुजोग सुजोग।
होहि कुवस्तु सुवस्तु जग, लखहि सुलच्छन लोग॥
(रा च मा गु, पृ. २६)

सूदखोर

सत्रह लै सत्तर दिये, किये न ऋन तें पार।
वरु सर्वस लै सेठ जी! अब कीजै उद्धार॥
(रामेश्वर करुण करुण सतसई, पृ १४५)

सूना

१ साँसि बिन सूनी रैन, ज्ञान बिन हिरदै सूनो।
कुल सूनो बिन पुत्र, पत्र बिन तरुवर सूनो॥
गज सूनो इक दन्त, ललित बिन सायर सूनो।
विप्र सून बिन वेद, और वन पुहुप बिहूनो॥

२ हरिनाम भजन बिन सत अरु, घटा सून बिन दामिनी।
'बैताल' कहै विक्रम सुनो, पति बिन सूनी कामिनी॥
(कविता कौमुदी, १ पृ ४६४)

२ बिन सुत सूना सदन, गन-गुण सूनी देह।
वित्त बिना सब सून है, प्रीतम बिना सनेह॥
(रुद्रदत्त मिश्र)

सृष्टि नश्वर नहीं, विकासशील

विश्वसर्ग ईश का मनोविनोद मात्र था न!
हैं सदैव व्यग्र आदि से समग्र विश्व-प्राण।
है अनन्त-दल विकास पद्म पद्मनाभ का,
सृष्टि नाशवान है न, है त्रिकाल वर्धमान।
(नरेन्द्र अग्नि-शस्य, पृ ८६-८७)

सेठ और पंडित

धन दे फिर लेवैं नहीं, जगत सेठ ते आहिं।
विद्या धन देइ लेहिं इ नहिं, सो गुन पंडित माहिं॥
(सुधाकर द्विवेदी)

सेवक अच्छा

बिनु कहे सब जानै सासन सिर पै मानै,
साहब की भीर मानै मन भाइयतु है।

दु:ख सुख जी न आनै थोर ही रहै अघानै,
धनी काजै प्रान देइ तेई गाइयतु हैं।
निडर मैं डर राखै डर में निडर होय,
लाज सों लपेटो रहे छवि छाइयतु हैं।
घरी घरी अरजी न कर वरजी न होय,
ऐसे चाकर तो पूरे पुन्य पाइयतु है ॥—देवीदास
(कविता कौमुदी, १, पृ. २६६)

सेवक · *आज्ञापालक*

सहज सनेह स्वामि सेवकाई। स्वारथ छल फल चारि विहाई।
अग्या सम न सुसाहिब सेवा। सो प्रसादु जन पावै देवा ॥
(रा. च. मा. गु., पृ. ३६०)

सेवक : *और स्वामी*

सेवक कर पद नयन से, मुख सो साहिब होइ।
'तुलसी' प्रीति कि रीति मुनि, सुकवि सराहहिं सोइ ॥
(रा. च. म. गु., पृ. ३१३)

सेवक :—*का धर्म*

राम पयादेह पायं सिधाए। हम कहँ रथ गज बाजि बनाए।
सिर भर जाऊँ उचित अस मोरा। सब तें सेवक धरम कठोरा ॥
(रा. च. मा. गु., पृ. ३४१)

सेवक : *नमक-हराम*

बिल्ली निज पति-घातिनी, तुझको प्यारा गेह।
खाती है जिसका नमक, उससे नेक न नेह ॥
उससे नेक न नेह, देह पर करती हमला।
खा-खा कर घी दूध, कमाई घर की कमला ॥
कहें मीर समुझाय, पढ़े तू चाहे दिल्ली।
नमक हरामी चाल, न छूटे तुझसे बिल्ली ॥
(सं. अ. अ. मीर)

सेवक :—*बुरा*

यह मंत सेवक प्रमान, रहट घट्टी फेरहि हम।
पेट भरण संमुह चलंति, पुट्ठी लै भार चलहि क्रम।
ते नहिं गनियै सूर, धर्मु तिन छत्रिन नाहीं।
स्वामी संकरै छांडि, जीवन रक्खन घर जाहीं।
(पृ. रा. रा., १, पृ. १६४)

सेवक —लक्षण

पावक मैं बसि आच लगै न, बिना छत खावै कि धार पै धावै,
मीत सों मीत, अमीत अमीत सो, दुक्ख सुखी, सुख मैं दुख पावै।
जोगी ह्वै आठ हु जाम जगै, अठ जामनि कामनि सों मनु लावै।
आगिलो पाछिलो सोचि मवै, फल भृत्य करै तब भृत्य कहावै।—देव

(स मिश्रबन्धु देव सुधा, पृ २६)

सेवक सच्चा

१ लोह लागि चहुवान परे मुरछा ह्वै धरनिय।
उड़ गीधनि बैठि कै चुंच वाहैनि दिरत्तिय॥
देख्यो सजमराय नृपति दृग काढति पच्छिन।
अपने तन कौ मास काटि भखु दियो ततच्छिन॥
अपने सुतपन देख्यो नृपनि अन्त सर्मै भ्रम पल्लियव।
आये विवान वैकुंठ के देह महन धरि चल्लियव॥—चदवरदायी

(कविता कौमुदी, १, पृ १२८)

२ भड सो ही पहलो पड़ै, चीन्ह विलग्गा धंक।
नैण बचावै माहरा, आप कलेजो फँक॥

(सूर्यमल्ल वीर सतसई, पृ ८६)

सेवक सुखकारी

मूरख कातर स्वामि भक्ति कछु काम न आवै।
पडित हू बिन भक्ति काज कछु नाहि बनावै॥
निज स्वारथ की प्रीति करैं ते सब जिमि नारी।
बुद्धि भक्ति दोउ होय तबै सेवक सुखकारी॥

(भारतेन्दु नाटकावली, पृ १९८)

सेवा

१ सेव्य नृप गुरु तिय अनल, मध्य भाग जग माँहि।
है विनास अति निकट ते, दूर रहे फल नाहि॥

(वृन्द सतसई)

२ सेवा है महिमा मनुष्य की, नकि अति उच्च विचार द्रव्यबल।
मूल हेतु रवि के गौरव का, है प्रकाश ही न कि उच्च स्थल॥

(रा ना त्रि स्वप्न, पृ ३६)

३. मनुज-सेवा का व्रत लो देव
स्वयं की सत्ता का कर ज्ञान,
और फिर देखो केवल एक
न पाओगे असंख्य भगवान ।

(गोपालदास 'नीरज' : दो गीत पृ. ६३)

सेवा : दुष्ट स्वामी की

खल स्वामी-सेवा-सहवासा । अहि-फण-तल जनु दादुर वासा ॥

(द्वा. प्र. मि. : कृष्णायन, पृ. १०८)

सेवा : में आनन्द

सब की सेवा न पराई
वह अपनी सुख संसृति है ;
अपना ही अणु-अणु कण-कण
द्वयता ही तो विस्मृति है ।

(प्रसाद : कामायनी, पृ. २८९)

सेवा-वृत्ति की विगर्हणा

चाहै कुटी अति घने वन में बनावै ;
चाहै बिना नमक कुत्सित अन्न खावै ।
चाहै कभी नर नये पट भी न पावै ;
सेवा प्रभो ! पर न तू पर की करावै ॥ १ ॥
जो आत्म-भाव अपना गिरि से गिरावै ;
मानापमान कुछ भी मन में न लावै ।
जो शीश नीच-नर-सम्मुख भी झुकावै ;
सेवा वही कर, किसी विध पार पावै ॥ २ ॥
जो श्वान के सदृश सेवक मानते हैं ;
वे तुल्यता न करना नर जानते हैं ।
कुत्ता कहाँ सकल काल यथेच्छचारी ।
विक्रीत-जीवन कहाँ जन दास्यकारी ? ३ ॥
पूजा यथा—समय न प्रभु-नाम-जाप ;
होता शरीर-सुख से न कभी मिलाप ।
न स्वार्थ ही न परमार्थ-विचार-बात ;
सेवा किये सब सुखों पर वज्रपात ॥ ४ ॥

(म. प्र. द्वि. : द्वि. का मा., पृ. ३००-३०१)

सैनिक

हैं आग लगाने वाले तो
पर बुझा सकें ऐसे कोई,
हैं प्यार मिटाने वाले तो
मिट जिला सकें ऐसे कोई ?
(उदय शंकर भट्ट अमृत और विष, पृ ११)

सैनिक का जीवन

सैनिक का भी जीवन क्या है, प्राण हथेली पर ले।
कमर कसे ही रहता हर दम, नाते सारे तज के ॥
(गुरुभक्तसिंह नूरजहाँ, पृ १००)

सैनिक का महत्त्व

ये कोटि कोटि पण्डित ज्ञानी,
तुम पर न्योछावर हैं सैनिक।
ये कोटि कोटि धन के स्वामी।
तुम पर न्योछावर हैं सैनिक।
(उदय शंकर भट्ट अमृत और विष, पृ १२)

सोम

उदित बहुत होते व्योम में नित्य तारा।
पर तम हरता है सोम ही एक सारा ॥
(मं श गु)

सौजन्य

सुगुण नहीं सौजन्य सम, शील सदृश शृंगार।
विद्या सम वैभव नहीं, देखा मित्र विचार ॥
(शिव दुलारे त्रिपाठी 'नूतन')

सौत का दुख

काह हँसौ तुम मो सौं, किएउ और सौं नेह।
तुम मुख चमकै बीजुरी मोहि मुख बरिसै मेह ॥
(जायसी ग्रंथावली, पृ १८१)

सौंदर्य (दे० 'रूप' तथा 'सुंदरता' भी)

१ सुंदर मुख देखें सुख होई, सुंदरता चाहे सब कोई ॥
चंद्रवदनि जा सेवें जाको, धरती सरग मिला है ताको ॥

देखे नित दाता दृग दीन्हा. सुन्दर रूप सफल दृग कीन्हा ।।
रूप आइ आंखिन मां, हृदै समाइ ।
हिएँ समाने प्रेमी, कहा, अघाइ ।।
(नूर मुहम्मद : अनुराग बाँसुरी, पृ. ४५)

२. उज्ज्वल वरदान चेतना का
सौन्दर्य जिसे सब कहते हैं ;
जिसमें अनन्त अभिलाषा के
सपने सब जगते रहते हैं ।
(प्रसाद : कामायनी, पृ. १०२)

सौन्दर्य : और लज्जा

सुन्दर मुख की आंखिन, चाही लाज ।
लाज बिना सुन्दरता कौने काज ।।
लाज सोभा सुन्दरता को है, जा को लज्या सुन्दर सो है ।।
(नूरमुहम्मद : अनुराग बाँसुरी, पृ. ७२)

सौन्दर्य : का प्रभाव

है यही सौन्दर्य में सुषमा बड़ी,
लौह-हिम को आँच इसकी ही कड़ी ।
देखने के साथ ही सुन्दर वदन
दीख पड़ता है सजा सुखमय सदन ।।
(प्रसाद : कानन कुसुम, पृ. ५७)

स्कूल और सिनेमा

स्कूल की पढ़ाई में क्या धरा है 'बे-ढब',
शिक्षा तो मिल रही है सिनेमा के हर भवन मे;
(बेढब बनारसी : बेढब की बहक, पृ. ५१)

स्त्री : का चरित (दे० नारी भी)

१. अस्त्री-चरित-गति को लहइ ? एकई आखर रस सवई विणास ।
(बीसलदेव रासो, पृ. २)

२. तिरिया चरित न कीन्ह विचारा, तिरिया मतै बूड़ संसारा ।
तिरिया जल मँह आग लगावै, तिरिया सूखे नाउ चलावै ।।
तिरिया छार पुरुष मुख मेले, तिरिया छल नाटक बहु खेले ।।
(कासिम शाह हंस-जवाहिर पृ. १०५)

स्त्री का भोग

रामा आगे सोइबा, जम चा भोगिबा, संगे न पीवणा पाणी ।

(गोरखबानी, पृ ८६)

स्त्री का सम्मान

१ जाय भले कुरुराज पैं धारि दूत-दरवेश ।

जइयो भूल न कहुँ वहाँ, केशव ! द्रौपदि-केश ॥

(वियोगी हरि वीर सतसई, पृ ६९)

२ लखि सतीन्ह-अपमानहूँ भये न जे दृग लाल ।

नीबू-नोन निचोरिये, छेदि फोरिये हाल ॥

(वियोगी हरि वीर सतसई, पृ १०९)

स्त्री का सौन्दर्य

कौन बाँध सकता उद्दाम अजस्र वेग निर्झर का,

कौन रोक सकता अबाध उद्वेलन रे सागर का ।

मदोन्मत्त यौवन का, मेघों का दुर्धर आलोडन,

चकित नहीं कामिनी दामिनी करती किसके लोचन ।

(सु न प स्वर्ण किरण, पृ १०८)

स्त्री का सौभाग्य

वारिये बैस बडी चतुरै हो, बडे गुन देव बडीए बनाई ।

सुन्दरै हो सुघरै हो सलोनी हो, सील भरी रस रूप सनाई ॥

राजबहू बलि राजकुमारि, अहो, सुकुमारि न मानो मनाई ।

नैसिक नाह के नेह बिना, चकचूर ह्वै जैहै सबै चिकनाई ॥—देव

(स मिश्र बंधु देवसुधा, पृ १४८)

स्त्री का स्नेह

१ पूरन सकल विलास रस, सरस पुत्र फल दान ।

अंत होइ सहगामिनी, नेह नारि को मान ॥—चदवरदायी

(कविता कौमुदी, १, पृ १२९)

नारि न तजहि मरे भरतारहि । ता सग सहहि धनजय झारहि ॥

(केशवदास रामचद्रिका, प्रकाश ६, पद्य १७)

सौन्दर्य (दे० 'रूप' त

१ सुन्दर मुख द थै मूली भनी, बिरला बचै कोइ ।

चद्रवदनि जा स ला, अगनि मैं, जलि बलि कोरला होय ॥

(कबीर ग्रथावली, पृ ४०)

२. काल कनक अरु कामिनी, परहरि इनका अंग।
दादू सब जग जलि मुवा, ज्यौं दीपक ज्योति पतंग ॥—दादू
(सन्तसुधासार, १, पृ. ४७६)

३. जे स्याने ह्वै जगत मैं त्रिय सों करत पियार।
ताहि महा जड़ समुझिये, चित भीतर निरधार ॥—गुरु गोविन्दसिंह
(दशमग्रंथ, पृ. ८३८)

४. त्रिय जोवन जल नद कौ पानी, उतरि गये को मेलै आनी।
तिरिया जाति दूध की नांई, बिनसे बहुरि सवाद न पाई॥
तिरिया कँवल एम सम तूला, पानी गये न सो रंग फूला।
तिरिया केदल पंभ की नाई, एक बार फर होइ मिट जाई॥
तिरिया माटिक वासन जैसे, पाए छूति रसोई न पैसे।
तिरिया जस माटी की गगरी, माहुर बूंद परत पन बिगरी॥
औगुन भरी सो तिरिया, तैसा गुन आधार।
संत करहु चित्त भीतर, जा पुरवहिं करतार॥
(शेखनबी : ज्ञानदीप)

स्त्री : की मति

स्त्री की मति उलटी होती है, उभय कुलों को वह खोती है।
वारिधि-सुता विष्णु की जाया, उस श्री के मन शठ नर भाया॥
(रा. च. उ. लक्ष्मी लीला)

स्त्री : की मर्यादा

मर्यादा को छोड़ नदी जो है तट-विटप गिराती—
वह अपना पानी बिगाड़ कर छवि-हीना हो जाती।
(मै. श. गु. : शकुन्तला, पृ. २६)

स्त्री : की रक्षा

तो देखत तुव भगिनि के, खैंचत पामर केश।
जानि परत, या बाहु में, रह्यौ न बल को लेश॥
(वियोगी हरि : वीरसतसई, पृ. ८७)

स्त्री : की शिक्षा

१. विद्या हमारी भी न तब तक काम में कुछ आयगी—
अर्द्धाङ्गियों को भी सुशिक्षा दी न जब तक जायगी।

सर्वांग के बदले हुई यदि व्याधि पक्षाघात की—
तो भी न क्या दुर्बल तथा व्याकुल रहेगा वात की ?
(मै श गु भारतभारती पृ १७५)

२ यह कैसी है मनमानी ? न्याय-नीति की नादानी।
अर्द्धांगिनी कहाती है, मगर मूर्ख रह जाती है ॥
(रूप नारायण पाडेय पराग, पृ ११०)

स्त्री के कर्त्तव्य

मज्जन सम्बन्धी जे सुमनि के निहारे होंहि,
तिन्है अपनाओ चतुराई लिये हाथ में ।
नम्रता वडन माहि मित्रता सुनारिन सों,
शत्रु-भाव राखिय कुनारिन के साथ मे ॥
भाखिये सुबैन दास-दासिन सो प्रेम सग,
धारिये सुध्यान सदा शुभ-गुण-गाथ मे ।
सारिये सकल गृह-काज सुघराई साथ,
राखिये पवित्र प्रीति पति प्राणनाथ मे ॥
—सरस्वती देवी
(गि द शु हि का को, पृ ९६)

स्त्री के गुण

स्त्री का गुण रूप मे है और कुल शील मे,
पद्मिनी की पद्मता डूबे किसी झील मे ।
(मै श गु हिडिम्बा, पृ २८)

स्थान और सफलता

पक जाता फल जभी डाल को छोडता ।
रोके भी वह ठहर न पायेगा वहाँ ॥
सड जायेगा रुका रहा जो वृक्ष पर ।
जग मे जाकर नाम कमायेगा वहाँ ॥
(गिरिजा दत्त शुक्ल तारकवध, पृ १६३)

स्थान का महत्त्व

मनि मानिक मुकुता छबि जैसी। अहि गिरि गज सिर सोह न तैसी।
नृप किरीट तरुनी तनु पाई। लहहि सकल सोभा अधिकाई॥
(तुलसी रत्नावली प ५)

स्याही का दुरुपयोग

काट दिये हैं नरम कलेजे कितने काली स्याही ने,
कर डाली बरबाद सफ़ेदी इस श्यामल हरजाई ने।
भले घास की भले लौह की, भले स्वर्ण की कलम रहे,
दो जीभों में पड़ कर इसने कैसे-कैसे बोल कहे!

(मा. ला. च. : वेणु लो गूंजे धरा, पृ. २७)

स्वकीया और परकीया

सुख संपति संतति, सुगति, स्वकिया सुख संभोग।
परकीया उपपति विपति, लघुसुख गर्भ-वियोग॥

(देव : प्रेमतरंग, दो. ७)

स्वतंत्रता : और कारावास (दे० स्वाधीनता भी)

जंजीरों से चले बांधने, आजादी की चाह।
घी से आग बुझाने की, सोची है सीधी राह!
हाथ पाँव जकड़ो जो चाहो, है अधिकार तुम्हारा।
जंजीरों से कैद नहीं, हो सकता हृदय हमारा॥

(सोहन लाल द्विवेदी : भैरवी, पृ. ८८)

स्वतंत्रता : और प्राण

प्राणों पर इतनी ममता
औ स्वतंत्रता का सौदा?
बिना तेल के दीप जलाने
का है कठिन मसौदा!
आँसू बिखराते बीतेंगी
जलती जीवन-घड़ियाँ
बिना चढ़ाये शीश नहीं
टूटेगी माँ की कड़ियाँ!
दुनिया में जीने का सब से
सुन्दर मधुर तकाजा।
ऐ शहीद! उठने दे
अपना फूलों भरा जनाजा॥

(सोहन लाल द्विवेदी : भैरवी, पृ. ८५)

स्वतंत्रता : और विजय का मूल्य

विजय? न सोचो कि वह मिलेगी, कब, किस दिन, किस घड़ी, अरे,
विजय नहीं कंकड़ी मिले जो यों, ही पथ में पड़ी अरे!

पहले कुछ सुनते तो कर दो सौंपे चोखे दाम अरे ?
और चाहते हैं कि मिले वह विजय बिना कुछ भेंट धरे,
तुम हो अग्निकुमार अरे ओ युवक धुनी, ओ मतवाले,
इस स्वातन्त्र्य-चण्डिका को दो भर निज शोणित के प्याले।
(बा. कृ श र्मा न हम विषपायी जनम के, पृ ४१६)

स्वतन्त्रता का इतिहास

आजादी का इतिहास, कहीं काली स्याही लिख जाती है ?
इसके लिखने के लिए खून की नदी बहाई जाती है।
(गोपाल प्रसाद व्यास कदम २ बढ़ाए जा, पृ ३४)

स्वतन्त्रता का दिवस

धन्य आज का मुक्ति दिवस, गाओ जन-मंगल,
भारत लक्ष्मी से शोभित फिर भारत शत-दल।
तुमुल जय ध्वनि करो, महात्मा गांधी की जय,
नव भारत के सुज्ञ सारथी वह नि संशय।
राष्ट्र-नायकों का हे पुन करो अभिवादन,
जीर्ण अंग में भरा जिन्होंने नूतन जीवन।
स्वर्ण शस्य बांधो भू वेणी में युवती जन,
बनो वज्र प्राचीर राष्ट्र की, मुक्त युवक गण।
(सु न प स्वर्ण धूलि, पृ १०९)

स्वतन्त्रता का प्रेमी धन्य

प्रिय स्वतन्त्रता-क्लेश जेहि, तेहि पै वारहुँ प्राण।
प्रिय दासत्व विभूति जेहि, सुतहु सो गरल समान।।
(द्वा प्र मि कृष्णायन, पृ १८१)

स्वतन्त्रता का महत्त्व

स्वातन्त्र्य-तुल्य अति ही अनमूल्य रत्न,
देखा न और, बहु बार किया प्रयत्न।
स्वातन्त्र्य में नरक-वीच विशेषता है,
न स्वर्ग भी सुखद जो परतन्त्रता है।।
(म प्र द्वि द्वि का० मा०, पृ २०१)

स्वतन्त्रता का सुख

१ हे बद्ध वीर, सुख पा कर भी अखण्ड,
चिन्ता अरण्य-गृह की करते प्रचण्ड।

मानो दिया जगत को तुमने बता है,
होती समस्त सुख-मूल स्वतन्त्रता है ॥—मै. श. गुप्त
(कमलाकान्त पाठक : मै. श. गु. : व्यक्ति और काव्य, पृ. १५४)

२. एकान्त-वास पिञ्जर में
जो करता रहा निरन्तर,
वह कीर भला क्या जाने
सुख वन-विहार का सुन्दर ?
(ठा. गो. श. सिं. : जगदालोक, मू., पृ. ६)

स्वतन्त्रता : की रक्षा

१. स्वतन्त्र देश के महान सैनिको, स्वतन्त्रता चली न जाय हाथ से,
महान यश लगा हुआ किरीट में, किरीट भी उतर न जाय माथ से।
(देवराज दिनेश : भारत माँ की लोरी, पृ. ८१)

२. आजादी त्याग तपस्या के सम्बल पर ही टिक पाती है।
औरों की तुच्छ नकल निष्फल नीचे-नीचे ले जाती है।
(परमेश्वर द्विरेफ : युगस्रष्टा प्रेमचंद, पृ. ८९)

स्वतन्त्रता : की सीमा

है स्वतन्त्रता की भी सीमा, नदी कूल के वाहर हो,
नागिन वन विनाश फैलाती पूर्व मान-मर्यादा खो;
जल, परिमित हो, विविध कटोरों के वंधन में आता जब,
जलतरंग-मीठी-स्वर-लहरी, छेड़-छाड़ उपजाता तव।
(गुरुभक्तसिंह भक्त : विक्रमादित्य, पृ. ४)

स्वतन्त्रता : सव की

नहीं चाहते हम धन वैभव, नहीं चाहते हम अधिकार।
वस स्वतन्त्र रहने दे हमको, और स्वतन्त्र रहे संसार॥
(मै. श. गु. : अर्जन और विसर्जन, पृ. ३१)

स्वतन्त्रता : से प्रेम

भीम और अर्जुन के पुत्रो, बने हुए हो दास !
ऐसे पराधीन जीवन से, मधुर मृत्यु का पाश !
जीना हो तो जियो आज वनकर स्वतन्त्र हे वीर !
नहीं, समा जाओ नीचे पृथिवी की छाती चीर !
(सो. ला. द्वि : युगाधार, पृ. ४२-४३)

स्वत्व—रक्षा

नहीं स्वत्वों का जिसको ध्यान, करता है वह विभु का दान।
और करता है निज अपमान, किन्तु हम हैं क्षत्रिय सन्तान।
करेंगे चाहे जितना त्याग, न छोड़ेंगे भय से निज भाग॥

(मै श गु वनवैभव, पृ. १७)

स्वदेश (दे० *'भारत' भी*)

पाता हूँ जग मे कहीं न तेरी समता।
होती विदेश में ही स्वदेश की ममता॥

(मै श गु किसान, पृ ४४)

स्वदेश —परिचय

रमा, भारती, कालिका, करति कलोल अमेस।
विलसति बोधति, सहरति, जहँ सोई मम देस॥

(वियोगी हरि वीर सतसई, पृ २९)

स्वदेश —प्रेम

१ चर्चा जहाँ देश की हो मेरी जीभ वहीं खुले,
और नहीं खुले कहीं खुदा की खुदाई मे।
मेरे कान गान सुनें साचे देश भक्तन के,
और गान आवे कभी मेरे न सुनाई मे॥
मेरे अग रग चढे एक देश प्रेम का ही,
और रग भग हो के बूड जा तराई मे।
मेरो धन मेरो तन मेरो मन मेरो जीव,
मेरो सब लगे प्रभो देश की भलाई में॥

(गिरिधर शर्मा)

२ है स्वदेश मख-वेदिका, अरु आहुति मम प्रान।
कोटि जन्म हूँ, नाथ, अनि, जाय यह अभिमान॥

(वियोगी हरि वीर सतसई, पृ ९८)

३ भारत ही मे जन्म मरण हो, भारत ही में वास,
रहना मुझको पडे न पल भर बन कर पर का दास।
कभी मत भूलो अपना वेश,
कभी मत छूटे अपना देश॥

(रा च उ राष्ट्रभारती पृ १)

३. मेरा वतन कि जिसमें हर रंग मिल रहा है।
मेरा चमन कि जिसमें हर फूल खिल रहा है॥
दीपक जला रहा है मन्दिर पहुँच मसीहा।
माला पहन मुहम्मद नानक से मिल रहा है॥

—हरिश्चद्र पाठक 'अजेय'

(सं रामदत्त भारद्वाज : ऋतम्भरा, पृ. १५६)

स्वदेश—सेवा

निज स्वदेश ही एक सर्व-पर ब्रह्मलोक है।
निज स्वदेश ही एक सर्व-वर अमर लोक है॥
निज स्वदेश विज्ञान-ज्ञान-आनन्द-धाम है।
निज स्वदेश ही भुवि त्रिलोक-शोभाभिराम है॥
सो निज स्वदेश का सर्वोपरि, प्रियवर ! आराधन करो।
अविरत सेवा-सन्नद्ध हो, सब विधि सुख साधन करो॥

(श्री धरपाठक : भारतगीत, पृ. १४१)

स्वदेशाभिमान

जिसको नहीं गौरव तथा निज देश का अभिमान है,
वह नर नहीं नर-पशु निरा है और मृतक-समान है।

(राजेन्द्र देव सेंगर : सारन्धा, पृ. १५९)

स्वदेशी

ग्राम-ग्राम में ग्रन्थागार, करें ज्ञान-गुण का विस्तार।
बढ़े हिन्द-हिन्दी पर प्यार, भरें राष्ट्र भाषा-भण्डार॥
फैलाओ हिन्दू साहित्य, युग युग का सहचर निज नित्य।
निज भू निज भूषा निज वेष, निज भाषा निज भाव अशेष॥

(मै. श. गु. : हिन्दू, पृ. १२६)

स्वदेशी : वस्त्र

विदेशी वस्त्र क्यों हम ले रहे हैं ?
वृथा धन देश का क्यों दे रहे हैं ?
न सूझे है अरे भारत भिखारी !
गई है हाय तेरी बुद्धि मारी !
हजारों लोग भूखों मर रहे हैं,
पड़े वे आज या कल कर रहे हैं।
इधर तू मंजु मलमल ढूँढता है !
न इससे और बढ़कर मूढ़ता है॥

चमकते रंग हैं हमको भुलाते,
अनोखे बेल—बूटे भी लुभाते।
नही हम देखते हैं पायदारी,
हमारी है बडी यह भूल भारी ॥
न काशी और चन्देरी हमारी,
न ढाका नागपुर नगरी बिचारी।
गई है नष्ट हो, जो देश भाई!
दया उनकी तुम्हें कुछ भी न आई।

(म प्र द्वि द्वि का मा पृ ३६८-९)

स्वभाव का औषध नहीं

पावक को जल-बिन्दु निवारक सूरज ताप कूं छत्र लियो है।
ब्याधि कू वैद तुरंग को चाबुक चौपग कू ब्रख दड दियो है॥
हस्ती महामद को किय अंकुस भूत पिसाच कू मत्र कियो है।
औखद है सबको सुखकारि स्वभाव को ओखद नाहि कियो है॥—कवि गग

(अकबरी दरबार, पृ ४३५)

स्वराज्य—सुख

एकान्त-वास पिंजर में, जो करता रहा निरन्तर,
वह कीर भला क्या जाने, सुख वन विहार का सुन्दर ?

(गोपालशरणसिंह जगदालोक)

स्वर्ग

स्वर्ग तो कुछ भी नही है, छोड कर छाया जगत की,
स्वर्ग सपने देखती दुनियाँ, सदा सोती रही है।

(बच्चन सतरंगिनी, पृ ६०)

स्वर्ग और नरक

निगम हैं कहते सुख स्वर्ग है, नरक दुःख यही मत शास्त्र का,
भ्रम परन्तु सदा सुख-दुख का, न रुकता चलता रहना सखे।

(अनूप शर्मा सिद्धार्थ, पृ २३०)

स्वर्ग कहाँ ?

१

स्वर्ग न भू से दूर—
शान्त सुख नील गगन है,
वायु मे नव जीवन है—
रम्य स्मित हरी धरा है,

विश्व आनंद भरा है !
आत्मवाद की क्रूर शिला से टकरा
हृदय न करो चूर !

(सु. नं. पं. : वाणी, पृ. ५६)

२. जहां मूर्ति के मुसन्ख कोई, भक्त भजन शृंगार करे;
नहीं मूर्ति में भक्त हृदय में स्वर्ग-शान्ति संचार करे।
हँसते-हँसते फांसी चढ़ते वीर सत्य के हेतु जहाँ,
सच्चे सुन्दर सुखद स्वर्ग के दर्शन शाश्वत सदा वहाँ !

(श्रीमन् नारायण : रजनी में प्रभात का अंकुर, पृ. ६१)

स्वर्ग : के चिह्न

पान पुराना घी नया, अरु कुलवंती नारि।
चौथी पीठ तुरंग की, स्वर्ग निसानी चारि॥

(सं. वटेकृष्ण : गंग-कवित्त, पृ. १३०)

स्वर्ग : भूमि पर ही

१. यदि वह स्वर्ग कल्पना ही हो,
यदि वह शुद्ध जल्पना ही हो,
तब भी हमें भूमि माता को अनुपम स्वर्ग बनाना है;
जो देवोपम है उसको ही इस धरती पर लाना है।

(नवीन : विनोवा स्तवन, पृ. ३०)

२. विविध ज्ञान विज्ञान समन्वित
विश्वतंत्र हो साधन-विकसित
भेद मुक्त हो दृष्टि हृदय की,
पूरित हो भू जीवन इच्छित
प्रीतियुक्त जन, शील युक्त मन,
उपचेतन प्रांगण रुचि संस्कृत,
मनुज धरा को छोड़ कहीं भी,
स्वर्ग नहीं संभव, यह निश्चित।

(सु. नं. पं. : वाणी, पृ. १७२-३)

३. इसी जग में हो जाये स्वर्ग, इसी जग में मानव हो देव;
यहीं का वह संगीत अमोल बनेगा चिर सुख की मधुरेख।

(रांगेय राघव : मेधावी, पृ. २४७)

स्वाधीनता (दे० स्वतन्त्रता भी)

निज भाषा निज भाव निज असन-बसन निज चाल ।
तजि परता, निजता गहै, यह लिखियो, विधि ! भाल ॥

(वियोगी हरि वीरसतसई, पृ ४७)

स्वाधीनता आत्मा की पुकार

मानव आत्मा की पुकार यह
वह स्वाधीन रहे जग मे नित,
पराधीन नर कठपुतले-सा
पर कर परिचालित जीवन मृत !

(सु न प लोकायतन, पृ ७१)

स्वाधीनता का नाश

आँधियाँ नही जिस मे उमग भरती हैं,
छातियाँ जहाँ सगीनों से डरती हैं,
शोणित के बदले जहा अश्रु बहता है,
वह देश कभी स्वाधीन नही रहता है ।

(दिनकर की सूक्तियाँ, पृ ६७)

स्वाधीनता का मूल्य

एक ओर स्वाधीनता, सीसु दूसरी ओर ।
जो दो मे भावै तुम्हे, भरि सो लेहु अँकोर ॥

(वियोगी हरि : वीरसतसई, पृ १४)

स्वाधीनता की प्रशंसा

काहू धनवत को न कबहू निहार्यो मुख,
काहू के न आगे दौरिबे को नेम लियो तै ।
काहू को न रिन करै काहू के दिये ही बिन,
हरो तिन असन बसन छोडि दियो तै ।
"दास" निज सेवक सखा सों अति दूर रहि
लूटै सुख भूरि को हाथ पूरि हियो तै ।
मोदकी सुरुचि जागि जोवता सुरुचि धन्य,
माधव कुरग कहु कहा तप कियो तै ॥

(भिखारीदास काव्यनिर्णय, पृ १२४)

स्वाधीनता : सच्ची

तब सच्चे स्वाधीन हम, जब हों सब स्वाधीन।
उनका परमात्मा कहाँ, जो आत्मा से हीन॥

(मै. श. गु. : झांसी के 'स्वधीन' पत्रार्थ रचित)

स्वाधीनता : से प्रेम

मरना उचित है स्वत्व पर जीना उचित स्वाधीन का।
नरता उसी की है सफल जिसने कुचल दी दासता॥

(रा. च. उ. : मुक्तिमंदिर, पृ. ८)

स्वाभिमान

वह नर, नर ही नहीं न जिसमें स्वाभिमान है।
और न अपनेपन का जिसको तनिक ध्यान है।
मृतकपिंड है अथवा यों कहिये कि श्वान है।
अथवा नर हो कर भी वह पशु के समान है॥

(शिवदास गुप्त : कीचकवध, पृ. १०)

स्वाभिमान : की रक्षा

१. पानी वाले प्राण आन पर दे देते है,
स्वाभिमान का मान न पर जाने देते है।

(राजेन्द्र देव सेंगर : सारंधा, पृ. ६३)

२. कपड़े रोटी के साधन पर, तन मन का क्रय विक्रय होना,
अपने अधिकारों के हित में पर के अधिकारों को खोना,
इस अपमानुपिक स्वार्थ भाव का, गढ़ जब तक तुम ढह न सकोगे,
तब तक यह निश्चय ही मानो, स्वाभिमान से रह न सकोगे॥

—मोहनलाल श्री वास्तव

(सं. रामदत्त भारद्वाज : ऋतम्भरा, पृ. ८५)

स्वामी : और सेवक

सेवक सदन स्वामि आगमनू। मंगल मूल अमंगल दमनू।
तदपि उचित जनु बोलि सप्रीति। पठइअ काज, नाथ असि नीति॥

(रा. च. मा. गु., पृ. २४२)

स्वामी : कपटी (दे. साधु भी)

इसे ही कहते हैं वैराग्य ?
तो विरागता के सचमुच ही फूटे समझें भाग्य।

निर्मल वसन बिगाडा उस पर धरा सुनहरी रंग ।
लज्जित हुआ आल माया का देख जटा का ढंग ।।
क्रोध कमंडल, मोह माल, कर लिया द्रोह का दंड ।
लोभ लँगोट बाँध फैलाते हो प्रचण्ड पाखण्ड ।।
तन में भस्म रमाई कर के भस्म सभी घर-बार ।
अब चिमटा ले निकल पड़े हो करने जग उद्धार ।।
घर-घर टुकडे माँग रहे हो तप के बल हो धन्य ।
दर-दर निन धक्के खाते हो अहो कष्ट तपजन्य ।।
चोरी जुवा लफंगेपन में हो तुम गुरु घंटाल ।
गाजा भंग अफीम चरस रस मदिरा के हो काल ।।
संसृति में खुद फँसे हुए हो हमें दिखाते मुक्ति ।
धन्य-धन्य अध्यात्म शक्ति को धन्य मुक्ति की युक्ति ।।
बहुत हो चुकी गुरुडम लीला अब इससे मुँह मोड ।
बाबा जी, अब बन मनुष्य तू बनमानसपन छोड ।।

(बद्रीनाथ भट्ट)

स्वामी द्वारा सेवक-सम्मान

प्रभु अपने नीचहु आदरही । अगिन धूम गिरि सिर तिनु धरही ।।

(रा च मा सु, पृ ३८२)

स्वामी - बुरा

१

श्रीफल दाख अँगूर अति, नूत तूत फल भूर ।
तजिकै सुक सेमर गयो, भई आस चकचूर ।।

(सतसई सप्तक विक्रम सतसई, पृ ३६९)

२

मूरख के आगे गुन गायो । भैंसा बीन बजाइ रिझायो ।
खर के अंग सुगंध चढायो । वायस को घनसार चुनायो ।।
बधिर कान में मंत्र सुनायो । सूरदास को चित्र दिखायो ।
अविवेकी की सेइ कै, को न हियै पछताइ ।
बीजा बवै बबूर के, कहा दाख फल खाइ ।।

(गोरेलाल छत्र प्रकाश पृ ७७)

३

मही दूध सम गनै, हंस-बग भेद न जानै ।
कोकिल काक न ज्ञान, काँच मनि एक प्रमानै ।।
चन्दन-ढाक समान, राग रूपो सम तोलै ।
बिन विवेक गुन-दोष, मूढ़ कवि ब्यौरि न बोलै ।।

प्रेम-नेम हित चतुरई, जे न विचारत नेकु मन ।
सपने हूँ न विलंबियै, छिन तिन ढिग "आनन्दघन" ॥
(सं. वि. ना. प्र. मि., घनानन्द, पृ. ९१)

४. आलस्य-लीन शुचि सज्जनता-विहीन,
अन्तर्मलीन पर-पीड़न में प्रवीन ।
दे दैव ! दंड मन जो कुछ और आवै;
ऐसे प्रभु-प्रवर से पर तू बचावै ॥
(म. प्र. द्वि. : द्वि. का. मा., पृ. ३०२)

स्वामी :—भक्ति

१. कहा भयौ जो लखि परत दिन दस कुसुमित नाहिं ।
समुझि देखि मन में मधुप ए गुलाव वे आहिं ॥
(सतसई सप्तक : विक्रम सतसई, पृ. ३६८)

२. खंध न फेरै धूर वहै, धवला एह धरम्म ।
राघव ज्याँ रै राखहीं सीगा तणी सरम्म ॥
(बाँकीदास ग्रन्थावली, १, पृ. ४२)

स्वार्थ

१. हित पुनीत स्वारथ सबहि, अहित अशुचि बिन चाड़ ।
निज मुख माणिक सम दसन, भूमि परत भो हाड़ ॥
(तुलसी सतसई, पृ. २२९)

२. पाट कीट तें होइ, तेहि तें पाटंवर रुचिर ।
कृमि पालइ सबु कोइ, परम अपावन प्रान सम ॥
(तुलसीदास : दोहावली, दोहा ३७०),

३. स्वारथ प्यारो कवि उदै, कहै बड़े सो सांच ।
जल लेबा के कारणी, नमत कूप कू चांच ॥
(उदैराज रा. दूहा, पृ. ७)

४. हर सिर पर सिसहर कियौ, फिरत लियै उदराज ।
समुद्र तज्यौ त कहा भयौ, गुण करि लहियतु लाज ॥
(उ. रा. दू., पृ. २१)

५. स्वार्थवाद ने संसृति में घर-घर डाला है डेरा ।
पशुबल ने सानन्द बसाया पाप ताप बहुतेरा ॥
(उ. शं. भ. : तक्षशिला, पृ. ६३)

६ तुम व्यक्ति-निष्ठ तुम अपने स्वय पुजारी ।
तुम को समिष्ट से लगता है भय भारी,
जब दुनिया मे आग लगा करती तब—
तुम हाथ सेकने की करते तैयारी ।

—गोपाल कृष्ण कौल

(स शिवदान सिंह चौहान काव्यधारा १, पृ १३५)

स्वार्थ और परमार्थ

देख आँखें खोल मान, देख आँखें खोल ।
जानता हूँ, इष्ट है अपना तुझे उत्कर्ष,
किंतु क्या तू है बचा सकता नहीं सघर्ष ?
क्या न है सभव सभी नर कर परस्पर प्यार,
सूत्र मे गुँथ एक हो बन जाएँ हीरक हार,
स्वार्थ को जग-हित-तुला पर तोल मानव तोल ।

(डा गो श सि आधुनिक कवि, पृ ११०)

स्वार्थ का त्याग

चाहो जो अपने लिए, वही और के अर्थ ।
केवल स्वार्थ विचारना, है अत्यन्त अनर्थ ॥

(मै श गु काबा और कर्बला, पृ ४०)

स्वार्थ से हानि

१. अपने में सब कुछ भर कैसे
व्यक्ति विकास करेगा ?
यह एकान्त स्वार्थ भीषण
अपना नाश करेगा ?

(प्रसाद कामायनी, पृ १३२)

२ व्यक्तिवाद-निजवाद की, विषमय बेलि लगाय ।
सर्क सुमेल मिलाप के को अमृतफल खाय ॥

(रामेश्वर करुण करुण सतसई, पृ १७४)

स्वास्थ्य

है शरीर का स्वास्थ्य भूमिका जीवन की अविवाद ।
आरूढ उसी पर जीवन का प्रासाद ॥

(रामानन्द तिवारी पार्वती, पृ ३३६)

स्वास्थ्य : रात्रि जागरण

जी भारा है आँखें हैं कड़ुआ रही,
सिर में है कुछ धमक नींद है आ रही।
उचित नहीं बहुत रात तक जागना,
देह टूट कर है यह हमें बता रही ॥

मन को है अपना लेती कितनी कला,
नाटक चेटक पर किसका नहिं जी चला।
खेल तमाशे ललचाते किसको नहीं,
पर निरोग तन रहता है सबसे भला।

स्वास्थ्य :—रक्षा

१. बहुत न सोऊ देवस कहँ, थोर न रैन मँझार।
खाहु न उदर भरे पर, पियहु न निस कहँ बार॥—नूर मुहम्मद
(सं. सरला शुक्ल : जायसी के परवर्ती···पृ. ४७७)

२. ठठरी उसकी बच जाती है,
जिसको हा वह घर पाती है।
छुड़ा न सकते उसे हकीम,
क्यों सखि ! डाइन ? नहीं अफीम ॥
(रा. च. उ. : पहेली)

हँसना—खेलना

उदयराज खेलौ हसौ, मनिखा देही सार।
इह सगपण जिवतन मिलण, बहुरि न दूजी बार ॥
(उ. रा. द्व. पृ. ३९)

हँसना—हँसाना

धूप चाहते हो घर में तो हँसो—हँसाओ मग्न रहो,
हर दम ज्ञानी बने रहे यदि तो बदली घिर जायेगी।
(दिनकर : नये सुभाषित, पृ. ११)

हँसी

काहू कौ हँसियै नहीं, हँसी कलह कौ मूल।
हाँसी ही तै ह्वै गयौ, कुल कौरव निरमूल ॥
(सतसई सप्तक, वृन्द सतसई, दोहा ५७४)

हँसी और रोना

हँसी बाहिरी चहल पहल को ही बहुधा दरसाती है।
पर रोने में अन्तरतम तक की हलचल मच जाती है॥
जिससे सोई हुई आत्मा जाती है अकुलाती है।
छूटे हुए किसी साथी को अपने पास बुलाती है॥

सुभद्राकुमारी चौहान

(गि द शु हि का को, पृ १६३)

हँसी के योग्य व्यक्ति

आरत गुमान करै, दारिदी ह्वै सोवै घरै,
सुखी औरै अनुसरै, ऐसे मूढ़ और हैं।
ज्ञानी ह्वै प्रपंच राचै, त्यागी ह्वै गृही को जाचै,
राजा ह्वै कुटिलता के भूप सिर मौर हैं।
गनिका कुरूप धनदान ह्वै फकीरी धरै,
बाधि के सिथिल भयो रात दिन जोर हैं।
जग में जो बसिबे लो हँसिबे न वारू 'देवो',
हँस्योई जो चाहै तो ये हँसिबे को ठौर हैं॥

—देवीदास

हठ

१ हठ तो राव हमीर को, औ रावण को टेक।
सत राजा हरिचद को, अर्जुन बाण अनेक॥

(जोधराज हम्मीर रासो पृ ११६)

२ सिंह गमन सुपुरुष वचन, कदलि फलै इक बार।
तिरिया तेल हमीर हठ, चढ़ै न दूजी बार॥

(चद्रशेखर वाजपेयी हम्मीर हठ, पृ १२)

हम और बच्चे

बच्चों को नाहक संयम सिखलाते हो,
वे तो बनना वही चाहते हैं जो तुम हो।
तो फिर जिह्वा को दे कर विश्राम जरा-सा,
अपना ही दृष्टान्त न क्यों दिखलाते हो?

(दिनकर • नये सुभाषित, पृ १०)

हलाल और हराम

आपण मारे हक कहै, करता हती हराम।
'परसा' स्वारथि जीभ के, बूड़ि मुए बेकाम ।।
करतें करदी डारि दे, सवदां करे हलाल।
'परसा' दरगह दीन की, व्हिश्ति लहै दर हाल ।।

(परशुराम सागर, पृ. १५६-७)

हरिजन (दे. 'अछूत', 'दलित' भी)

सेवा-धरम निवाहि नित, करत अपावन पूत !
छूत छुड़ावत जगत की, ते किमि भये अछूत ?

(रामेश्वर करुण : करुणसतसई, पृ. १३)

हर्ष : अनुपम

चाहत सोई मिलत तव या सम खुसी न और।
मेहागम धुनि गरज सुनि ज्यों चित हरपत मोर।।

(ज्ञानसार ग्रंथावली, पृ. १६२)

हर्ष : और शोक

जिहि घर जितौ बधावनों तिहि घर तितनौ सोग।
तिहि घर तितनौं सोग जनम भये नाचै गावै।
वहनि भानजी भाट विप्र वंदी पहिरावै।
लगै ताहि तब रोग भिपक भेषक कौ धावै।
गहि पूजा को गनी भूत-भूपनहि बुलावै।
'अगर' कहै सिर कूटि ये रोवै देह वियोग।

(अग्रदास : कुंडलिया)

हवा : नयी

आज हवा में कुछ वा[illegible], कुछ कुछ और नया ही रंग,
भूलो जीर्ण पुरातन स[illegible]कुछ, अब नवीन का कर लो संग;
अब वैराग नया ही होगा, [illegible] कछ, [illegible]यी फकीरी, अभिनव जोग,
और जंग-खाई-सी सड़ियल रूढ़ शृंखला[illegible] होगी भंग।

([illegible]ाकर माचवे : अनु-क्षण)

हस्त-रेखा मिटा दे

(प्रभ[illegible]

हाथ की रेखा मिटा दे पकड़ आज[illegible] कुदाल,
तू झुका दे इन हठीले पर्वतों [illegible] भाल;
[illegible]ागर माप,
बैठ साहस की तरी पर विहंस स[illegible] धरणी नाप;
और निज चंचल पगों से सकल

रहम के जल से नही बुझती किसी की प्यास,
बिन परिश्रम के नही मिलता कभी उल्लास।
(देवराज दिनेश भारत मां की लोरी, पृ १२५)

हाथ मिलाना

पकड़ कर हाथ झकझोरो किसी से जब मिलो 'बेढब',
नमस्ते-बन्दगी की जगली आदत पुरानी है।
(बेढब बनारसी बेढब की बहक, पृ १७)

हिंदी

१ सब को दुख मिलना है जग मे, सुख पाने के पहिले हिन्दी!
इसीलिए निज उन्नति मग मे, काटों के क्षत सह ले हिन्दी।
(रा च उ राष्ट्र भारती, पृ ६६)

२ पर भाषा को लिखने पढ़ने और उसी मे करते बात,
तुम अभाग्य-वश निज हिन्दी को नाहक निठुर मारते लात।
फिर भी देशोद्धारक बनते लगती तुम को लाज नही,
निज भाषा के द्रोही बन कर हुआ किसी का काज नहीं॥
(रा च उ राष्ट्र भारती, पृ ८)

३ जिस हिन्दू को है नहीं, हिन्दी का अनुराग।
निश्चय उसके जान लो, फूट गये हैं भाग॥
जिसको प्यारी है नहीं, निज भाषा निज देश।
वह सूकर सा डोलता, धरे मनुज का भेष॥
(जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी)

हिंदी और वर्णमाला

ज्यों लै र गढ़ि सकत ते [illegible] सोने के आभूषन।
अरु कु[illegible] बनै सकत चांदी के बरतन॥
कलम कुल्हाडी सों न बनाय सकत कोउ जैसे।
मूजा सो मलमल पर बखिया होन न तैसे।
वैसे हिंदी के कोउ सुद्ध शब्द लिखि लैहै।
अरबी अच्छर बीच लिखहुं पुनि किमि पढ़ि पैहै॥
निज भाषा को सबद लिख्यो पढ़ि जात न जामैं।
पर भाषा को कहो पढ़ै कैसे कोउ तामैं।
लिख्यो हकीम औषधी मे 'आलू बोखारा'।

उल्लू बनो मोलवी पढ़ि 'उल्लू बेचारा' ॥
साहिव किस्ती चही पठाई मुनसी 'कसवी'
'नमक' पठायो भई 'तमस्सुक' की जव तलवी ॥
पढ़त 'सुनार' 'सितार' 'किताव' 'कबाब' बनावत ।
'दुआ' देतहूँ 'दगा' देन को दोप लगावत ॥
जे र जवर अरु पेस स्वरन के काम चलावत ।
बिन्दी की भूलन सौ सौ विधि भेद बनावत ॥
चारि प्रकार जकार सकार अकार तीन विधि ।
होत हकार तकार यकार उभयविधि छल निधि ॥

(बदरी नारायण चौधरी : आन्द वधाई)

हिंदी : का सन्देश

इस जड़-जंगम जग में सब के दिन न एक से जाते है,
दुःख भोगने पर निश्चय ही सुख के भी दिन आते है ।
माता के सुख-दुःख किन्तु सब होते सन्तति के स्वाधीन,
चाहे भिखारिनी वह कर दे, चाहे उच्चासन-आसीन ॥ १ ॥

या तो मुझे मातृभापा तुम कहना दो इस दिन से छोड़,
मेरा शब्द न मुँह पर लाओ अंगरेजी सीखो सिर तोड़ ।
या मेरी दुर्दशा देख कर कुछ तो मन में शरमाओ,
जो कहती हूँ उसे करो तुम अव तो मुझ को अपनाओ ॥ २ ॥

कितना कष्ट तुम्हें मिलता हे उँगली जो कट जाती है,
मेरा तो सव अंग गलित है, पीड़ा प्रबल सताती है ।
ऐसे में भी जो इलाज का अवसर ढूंढोगे प्यारे,
तो मैं यही कहूँगी, मेरे सुत न शत्रु हो तुम-सारे ॥ ३ ॥

हिन्दू हो कर भी हिन्दी में यदि कुछ भी न भक्ति का लेश,
दूर देश की भाषाओं से यदि इतना है प्रेम-विशेप ।
इंग्लिस्तान अरव फारिस को तो अब तुम कर दो प्रस्थान
यहाँ तुम्हारा काम नही कुछ, छोड़ो मेरा हिंदुस्तान ॥ ४ ॥

कहते हो मुझे में है ही क्या मुझ से कुछ न निकलता काम !
मेरे घावों पर नश्तर-सा चलता है सुन कर इल्जाम ।
इसका दोप तुम्हारे ही सिर, फिर यह कैसी उलटी बात;
जिसे जानती दुनिया सारी वह भी क्या तुम से अज्ञात? ॥ ५ ॥

जननी और जन्म की भापा जन्मभूमि सब सुख की खान

चाहे जहाँ पूछ तुम देखो, तीना का समान सम्मान।
पर तुमने मेरी उन्नति का किया न कोई कभी उपाय,
तिस पर भी जाने देते हो! क्यों करते इतना अन्याय?
संस्कृत, अरबी, और फारसी उर्दू अँगरेजी सारी—
भाषाओं से प्रेम करो तुम जिसको जो-जो हो प्यारी।
मना नहीं मैं करती तुमको, पर इस दुखिया की भी याद,
कभी कभी कर लिया कीजिए मेरी इतनी ही फरियाद।

(म प्र द्वि द्वि का मा, पृ ४४४-४९)

हिंदी की उन्नति

निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल॥
प्रचलित करो जहान में निज भाषा करि जतन।
राज काज दरबार में फैलावहु यह रतन॥
अँगरेजी अरु फारसी अरबी संस्कृत ढेर।
खुले खजाने तिनहिं क्यों लूटत लावहु देर।
सब को सार निकाल के पुस्तक रचौ बनाइ।
छोटी बड़ी अनेक विध विविध विषय की लाइ।

(भारतेन्दु ग्रंथावली, दू स, पृ ७३१ ई)

हिंदी की उपेक्षा

भोज मरे अरु विक्रमहू तिनको अब रोइ के काव्य सुनाइये।
भाषा भई उरदू जग की अब तो इन ग्रंथन नीर डुबाइये॥
राजा भये सब स्वारथ पीन अमीरहु हीन जिन्हैं दरसाइये।
नाहक दीनी समस्या अबै यह "ग्रीष्मैं प्यारे हिमन्तत बनाइये"॥

(भा ग्र द्वि, ना प्र स, पृ ८६६)

हिंदी की श्रेष्ठता

बानी हिन्दी —आपन की महारानी।
चन्द सूर तुलसी से या में, कवी भये लासानी॥
दीन मलीन कहत जो या कों, है सो अति अज्ञानी।
या सम काव्य छन्द नहीं देख्यो, है दुनिया भर छानी॥
का गिनती उर्दू बँगला की, 'भरे अँगरेजिहु पानी।
आजहुँ याको सब जग जानत, गोरे तुरुक जपानी॥

है भारत की भाषा निश्चय, हिन्दी हिन्दुस्थानी।
जगन्नाथ हिन्दी भाषा की, है सेवक अभिमानी॥
(जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी)

हिंदी : की समृद्धि

इंग्लिश का ग्रंथ समूह बहुत भारी है।
संस्कृत भी सब के लिए सौख्यकारी है॥
इन दोनों में से अर्थ रत्न ले लीजै।
हिन्दी के अर्पण उन्हें प्रेमयुत कीजै॥
(म. प्र. द्वि. : सरस्वती, फरवरी १९०५ ई.)

हिंदी : की हिमायत

चहहु जु साँचो निज कल्यान। तो सब मिलि भारत संतान॥
जपो निरन्तर एक जबान। हिन्दी हिन्दू हिन्दुस्तान॥
तबहि सुधरिहै जन्म निदान। तबहि भलो करिहै भगवान।
जब रहिहै निसदिन यह ध्यान। हिन्दी हिन्दू हिन्दुस्तान॥
(प्रताप नारायण मिश्र)

हिंदी :—प्रेम

१. मैं नहीं सकटेरियन हूँ औ नहीं हूँ बावला।
बात गढ़ कर मैं किसी को चाहता हूँ कब छला॥
मैं नहीं उर्दू-विरोधी, मैं न हूँ उससे जला।
कौन हिन्दू चाहता है, घोंटना उसका गला॥
निज पड़ोसी का बुरा कर कौन है फूला फला।
हैं इसी से चाहते हम आज भी उसका भला।
किन्तु रह सकता नहीं यह बात बतलाये बिना।
ज्यों न जीयेगा कभी जापान जापानी बिना॥
ज्यों न जीयेगा मुसलमाँ पारसी अरबी बिना।
जी सकोगे हिन्दुओं त्यों ही न तुम हिन्दी बिना॥
देख कर उर्दू कुतुब यह दीजिए मुझको बता।
आपकी जातीयता का है कहीं उसमें पता?
क्या गुलाबों पर करेंगे आप कमलों को निसार।
क्या करेंगे कोकिलों को छोड़ कर बुलबुल से प्यार।
क्या रसालों को सरो शमशाद पर देवेंगे वार।
क्या लखेंगे हिन्द में ईरान का मौसम बहार॥

क्या ह्गि से और दजला आदि से होगी तरी।
तज हिमालय सा सुगिरिवर पूतसलिला सुरसरी॥
भीम अर्जुन की जगह पर नेर रुस्तम को बिठा।
सभ्य लोगों में नहीं दृग आप सबने हैं उठा।
साथ कैकाऊस-दारा प्रेम की गाँठे गठा।
क्या भला होगा रसातल भोज विक्रम को पठा॥
यह भी ऊँची जगह जो हाथ हाकिम के चढ़ी।
तो समझिये वह पड़ेगी आप की गौरव गढ़ी।

(हरिऔध पद्य प्रसून, पृष्ठ ९७ ८)

२ दो सूबों के भिन्न भिन्न बोली वाले जन।
जब करते हैं विवश बने मुख भर अवलोकन॥
जो भाषा उस समय काम उनके है आती।
जो समस्त भारत भू में है समझी जाती॥
उस अति गरिमा उपयोगिनी हिंदी भाषा के लिये।
हममें कितने हैं जिन्हों ने तन मन धन अर्पण किये॥

(हरिऔध पद्यप्रसून पृ १००)

३ अँगरेजी जरमन फ्रेंच ग्रीक लैटिन ज्यों,
रशियन जापानी चीनी प्राकृत प्रमानी हो।
तामिल तैलगी तूरू द्राविड़ी मराठी ब्राह्मी,
उड़िया बंगाली पाली गुजराती छानी हो।
जितनी अनार्य आर्य भाषा जग जाहिर है,
फारसी ऐराबी तुर्की सब मम आनी हो।
जनम वृथा है तो भी मेरे जान मानव को,
हिंद में जनम पा के हिन्दी जो न जानी हो॥

(गिरिधर शर्मा)

४ शुद्ध शुद्ध बोलैं भेद न को खोलैं,
मिले ब्रह्म सो मिलावैं अन्त मुक्ति देनहारी है।
जानैं न असत्य नेक सत्य ही लखावै सदा,
आर्येज के धर्म की करल रखवारी है।
प्रेम परिवार सों बढ़ावैं शिव सम्पति जू
सब ही सो मोद भरी बोलैं बैन प्यारी है।

भारत निवासी बन्धु ताहि क्यों बिसारी हाय,
ऐसी गुनवारी भाषा नागरी हमारी है ।।

(शिव सम्पति)

हिंदुत्व-रक्षा

सब कुछ गया, जाय, बस एक; रक्खो हिंदूपन की टेक ।
ऐसा है वह कौन विवेक, करता हो जो हमको एक ?
और बढ़ा सकता हो मान ? केवल हिंदू हिंदुस्तान ।

(मै. श. गु. : हिंदू, पृ. ५२)

हिंदुस्तान कहां ?

जगमग नगरों से दूर-दूर, हैं जहाँ न ऊँचे खड़े महल;
टूटे फूटे कुछ कच्चे घर, दिखते खेतों में चलते हल ।
पुरई पालों खपरैलों में, रहिमा रमुआ के नावों में;
है अपना हिन्दुस्तान कहाँ ? वह बसा हमारे गाँवों में ।।
नित फटे चीथड़े पहने जो हड्डी पसली के पुतलों में;
असली भारत है दिखलाता नर-कंकालों की शकलों में ।
पैरों की फटी बिवाई में, अन्तस के गहरे घावों में;
है अपना हिन्दुस्तान कहाँ ? वह बसा हमारे गाँवों में ।।
दिन रात सदा पिसते रहते कृषकों में औ मजदूरों में;
जिनको न नसीब नमक-रोटी जीते रहते उन शूरों में ।
भूखे ही जो हैं सो रहते विधिना के निठुर नियावों में;
है अपना हिन्दुस्तान कहाँ ? वह बसा हमारे गाँवों में ।।
अपनी उन रूप कुमारी में जिनके नित रूखे रहें केश;
अपने उन राजकुमारों में जिनके चिथड़ों से सजे वेश ।
अंजन को तेल नही घर में कोरी आँखों के हावों में;
है अपना हिन्दुस्तान कहाँ ? वह बसा हमारे गाँवों में ।।
है जिनके पास एक धोती, है वही दरी उनकी चादर;
जिससे वह लाज सँभाल सदा निकला करतीं घर से बाहर।
पुर-वधुओं का क्या हो शृंगार? जो बिका रईसों रावों में ।
है अपना हिन्दुस्तान कहाँ ? वह बसा हमारे गाँवों में ।।
आजीवन श्रम करते रहना, मुँह से न किंतु कुछ भी कहना;
नित विपदा पर विपदा सहना, मन की मन में साधें ढहना ।
ये आहें वे ये आँसू वे जो लिखे न कहीं किताबों में;
है अपना हिन्दुस्तान कहाँ ? वह बसा हमारे गाँवों में ।।

(सोहनलाल द्विवेदी : भैरवी, पृ. ६(३-१

हिंदू अंध-विश्वासी

निज शुचिता के मद में चूर,
"अधम अछूतों" से हम दूर
फिर कैसे आई यह छूत,
घर में घुस आये जो भूत?
साईं साहब को बुलवाव,
कुछ दिन उन्हें यहीं गुलवाव।
दौड़ो झट तकिया में जाव,
मन्नत मानो भेंट चढ़ाव॥
सगुण और निर्गुण को छोड़,
त्याग देव तैंतीस करोड़।
पूजो मूढ़ो मियाँ मदार,
तजो बोधितरु[1], भजो मदार।
हिंदू, हाय! तुम्हें धिक्कार!
क्यों न हँसे तुम पर संसार?
विधर्मियों का जादू जाल,
जिन पर चलते मरें वे लाल।
(मै श गु हिन्दू, पृ १५२ ४)

हिंदू के प्रति

हिंदू फिर भी सुनो सचेत,
हरे तुम्हीं से हैं सब खेत
ये हैं सदा तुम्हारे अंग,
होते गये सदा जो भंग॥
अपनाओ फिर इन्हें सहर्ष,
पाओ एक संग उत्कर्ष।
किंतु जिलाता है निज श्वास,
रक्खो निज बल निज विश्वास।
तको पराया मुँह मत ओर,
बनो स्वावलम्बी सब ठौर॥
करे न यदि कोई निज कर्म,
तो क्या हम भी तजें स्वधर्म?
भारतीय संस्कृति का भार,
एक तुम्हीं पर शारम्बार॥
(मै श गु हिंदू, पृ १०३ ४)

---
[1] पीपल

हिंदू : को प्रोत्साहन

श्री श्रीराम-कृष्ण के भक्त,
रह सकते हैं कभी अशक्त ?
प्राप्त करो वह पानी आर्य,
कि हो पितामह तर्पण कार्य।
याद करो निज वीर्य विलुप्त
कहो कौन थे मौर्य कि गुप्त ?
था वह किन घावों का दाह,
जिससे जला सिकन्दर शाह?
चढ़ कर आया था यूनान,
लौट गया कर कन्या-दान
बाँध आर्य विक्रम का तूण
तुमने ही जीते शक-हूण।
किसका था वह पुण्य प्रताप,
चौंका जिससे अकबर आप ?
महाराष्ट्र- संस्थापन - कार्य,
किया तुम्हीं ने कल था आर्य !

(मै. श. गु. : हिन्दू, पृ. २३, ३०, ३१)

हिंदू-मुसलमान

१. वही महादेव वही मुहम्मद, ब्रह्मा आदम कहिए।
कोइ हिन्दू कोइ तुरुक कहावै, एक जमीं पर रहिए॥

(कबीर वचनावली, पृ. २०८)

२. बाह्मन तो भये जनेउ को पहिरिकै, बाह्मनी के गले कछु नाहिं देखा।
आधी सूद्रिनि रहै घरै के बीच में, करै तुम खाहु यह कौन लेखा॥
सेख की सुन्नति से मुसलमानी भई, सेखानी को नाहि तुम कहौ सेखा।
आधी हिन्दुइनि रहै घरै के बीच में, पलटू अब दुहुन के मारू मे॥

—पलटूदास

(सन्तसुधासार, पृ. २४२)

३. 'पेमी' हिन्दू-तुरुक में, हर रंग रहो समाय।
देवल और मसीत में. दीप एक ही भाय॥

(पेमी : पेमप्रकाश, पृ. ८)

४ हिन्दू कहें सो हम बडे, मुसलमान कहें हम्म ।
एक मुग दो फाड हैं, कुण जादा कुण कम्म ।
कुण जादा कुण कम्म, कबी करना नहि कजिया ।
एक भगत हो राम, दूजो रेमान से रजिया ।
कहे दीन दरवेश, दोय सरिता मिल सिन्धू ।
सब दा साहब एक, एक मुसलमान हिन्दू । (दीन दरवेश)
(जायसी के परवर्ती *, पृ ११२)

५ हिन्दू मे क्या और है, मुसलमान मे और ।
साहिब सबका एक है, व्याप रहा सब ठौर ॥ (रसनिधि)
(सतसई सप्तक, पृ १७८)

६ दोनो भाई हाथ-पग, दोनो भाई कान ।
दोनो भाई नैन हैं, हिन्दू मुसलमान ॥ (दादू जी)
(स वियोगी हरि सन्त वाणी, पृ ६९)

हिंदू, मुस्लिम, ईसाई

घर की घृणा और यह पेट, उभय ओर है चोट चपेट ।
इसीलिए हिन्दू सन्तान, आज अधिकतर है निस्तान ॥
इसीलिए निज धर्म विहाय, हिन्दू मुसलमान हैं हाय !
(मै श गु हिन्दू, पृ ९७)

हिंसा

जिय हिंसा जग मे बुरी, हिंसा फल दुख देत ।
मक्खी मांखी भक्षनी, ताहि चिरी भख लेत ॥
(भैया भगवतीदास, ब्रह्मविलास, पृ २५९)

हिंसा और अहिंसा

हिंसा और अहिंसा दोनो प्रकृति सिद्ध गुण हैं मानव के,
विष [illegible] दोनो ही निकले हैं, मन्थन-सार हृदय अर्णव के,
एक ग[illegible]मी भीडा है तो, दूजा है देवत्व दिवाकर,
एक निम्न[illegible]ति प्रेरक है तो, बना अन्य सोपान ऊर्ध्वचर,
इसे खींचना है मानव को, जोर लगा नीचे से ऊपर,
क्योंकि ऊर्ध्वग[illegible]ति मे ही पाता, यह नर निज स्वरूप चिर सुन्दर ।
(बा कृ श न हम विषपायी जनम के, पृ ७५-७६)

हिंसा : और तप

हिंसा का आघात तपस्या ने कब कहां सहा है ?
देवों का दल सदा दानवों से हारता रहा है।
(दिनकर की सूक्तियां, पृ. ११३)

हिंसा : और प्रतिहिंसा

तलवारें यदि तुम बोओगे, तो तलवारें ही उपजेंगी;
सर्वनाश कर देंगी जग का, अयुत युगों तक वे दुख देंगी;
है लोकोक्ति पुरानी यद्यपि, फिर भी है सत्यता-विमंडित;
जो तलवार चलायेंगे वो तलवारों से होंगे खंडित !
(बा. कृ. श. न. : हम विषपायी जनम के, पृ. ५६)

हिंसा : की महत्ता

घेरि हरत दुर्जन जबहिं, सुजनन कर धन प्राण।
रहित अहिंसा मौन जो, हिंसा सोइ महान।।
(द्वा. प्र. मि. :कृष्णायन, पृ. ८२६)

हित-साधन

जा मैं हित सो कीजियै, कोऊ कहौ हजार।
छल बल साधि विजै करी, पारथ भारथ बार।
(सतसई सप्तक, वृन्द सतसई, दोहा ५७९)

हृदय : की विशालता

है यदि तेरा हृदय विशाल, विराट् प्रणय का इच्छुक क्यों ?
है यदि प्रणय अतल, तो अपनी अतल-पूर्ति का भिक्षुक क्यों ?
दावानल की काल ज्वाल जलती बुझती एकाकी ही—
जीवन ही यदि ऊँचा तो ऊँची समाधि हो रक्षक क्यों ?
(अज्ञेय : इत्यलम्, पृ. ५९)

हृदय :—कुसुम

रूखा शीशा जो टूटे तो सब कोई सुन पाता है।
कुचला जाना हृदय-कुसुम का किसे सुनाई पड़ता है।
(प्रसाद : प्रेमपथिक, पृ. १९)

हृदय :—परिवर्तन

मानव-मन को वेधते फल के दल केवल,
आदमी नहीं कटता बरछों से, तीरों से।
(दिनकर की सूक्तियां, पृ. ११५)

हुक्का

हुक्का से हुरमत गई, नियम धर्म गयो छूट।
दाम खर्च लियो तमाखू, गई हिये की फूट॥
गई हिये की फूट, आग को घर-घर डोले।
जिस घर आग को जाय, सोई कुररातो बोले॥
कह 'गिरिधर कविराय' लगै जब यमको रक्का।
प्राण जायँगे छूट सहाय होवै नहिं हुक्का॥

(कुंडलिया, पृ १३५)

होनहार

१. भवसि बत्त जो होय, सो न मिट्टाह ब्रह्म लहि।
भवलब्य बात मिट्टै न को, होइ जु ब्रह्म सिरज्जयो।

(चंद बरदाई पृ रा रा, प्रथम खंड, पृ ८८)

२ जग मे जु जन्म विवाह जीवन, मरन रिन धन धाम ये।
जिहिको जहाँ लिखि दियो प्रभु, तिहि को तुरत तिहि ठाम ये।

(पद्माकर पचामृत, पृ १७)

३ अनहोनी नहिं होय, होय होनी है सोइय।
रिजक मौत हरि हथ्य, डर मु मानव क्यों कोइय।

(जोधराज हम्मीर रासो, पृ ५७)

४ तब हुआ फल के विषय में इस प्रकार विचार—
मुक्त है सर्वत्र ही भवितव्यता का द्वार।

(मै श गु शकुन्तला, पृ ९)

५ तनिक चिन्तित हो मत तू कभी,
मिट नही सकती भवितव्यता।
पुरुष रक्षक है सब का सदा,
भवन में वन में मन ! मान जा॥

(रा च उ विधि-विडम्बना)

कुछ लघ्वाकार विशिष्ट सूक्तियाँ

अंग उपंग पुराने परे तिशना उर और नवीन भई है।

—भूधरदास

अँधरी पीसे पीसना, कूकर धँस धँस खात।

—गिरिधर

अति नीचहु सन प्रीति, करिअ जानि निज परम हित।

—तुलसीदास

अति विचित्र भगवंत गति, को जग जानै जोगु।

—तुलसीदास

अतिसे सूधे मृदु बने नहीं कुशल जग माँहि॥

—दी. द. गि.

अधिक अघानो पुरुप भात कब खावै वासी?

—गिरिधर कविराय

अरथवान समरथनि सों अरिहुँ करैं हित बात।

—दी. द. गि.

अशुभ-विशंकी सदा सनेहू

द्वा. प्र. मि.

अहो आग आयै जब झोंपरी जरन लागी,
कुआ के खुदायै तब कौन काज सरि है।

—भूधरदास

आये हैं सेत, अजौ शठ चेत,
गई सु गई अब राख रही को।

—भूधरदास

एकाकी ही भ्रमण करते एक को खोजते जो।

—अनूप शर्मा

कठिन कलाहू आइ है, करत करत अभ्यास।

—वृन्द

कन्याओं का प्रकृत गुण है, शीघ्र ही योग्य होना।

—अनूप शर्मा

कम खाते मे जात हैं सकल देह के रोग।

—गिरिधर

करइ जो करम पाव फल सोई

—तुलसीदास

करो मानिब निदरि नर दूरहि दूर प्रणाम।

—दी द. गि.

करत बेगरजी प्रीति मित्र कोइ बिरला भाई।

—गिरिधर

करनी करहि देखि आप कहिए नहिं भाई।

—गिरिधर

करन-धार को थोर न या सम है जग।

—गिरिधर

करै न कुछ विश्राम को, प्रियवादी गत भग।

—दी द गि

कह कपे! उठ सकती है कभी,
यह रसा वक्र-मावक चोंच से?

—रा च उ.

कह गिरिधर कविराय छोह मोट की गहिये।

—गिरिधर

कह 'गिरिधर कविराय' समय को कीजै काजा।

—गिरिधर

कहै कवि 'गंग' सुनो साहिब के साहि सूरा,
आदमी को तोल एक बोल मे पिछानिये॥

—गंग

कादर मन कहुँ एक अधारा। दैव दैव आलसी पुकारा॥

—तुलसीदास

कामना या को कहत हैं, हरे मनुज की कान्ति।

—गिरिधर

काम क्रोध मद लोभ सब, नाथ नरक के पंथ।

—तुलसीदास

कार्यार्थी को, सुख-दुःख सभी, एक से भासते हैं।

—अनूप शर्मा

किस के वसन नहीं भीगे, वैतरणी की धारा मे?
कीच पीठलो घोड़ के आगे नाहिं लगाव।

—दिनकर

कीजै सत उपकार को खल मानै नहिं कोय ।

—दी. द. गि.

कीनो चाहै काम को, कर न ता में देर।

—गिरिधर

कृतघन कबहुं न मानहीं, कोटि करै जो कोय ।

—गिरधर

कै सम सों कै अधिक सों लरिये करिये वाद ।

—वृन्द

कोटिहु किये कलाप, दूध फट्टो न होय दधि ।

—मान कवि

को न करै घटि काम परे अवसर के साइँ ।

—गिरिधर

को न कुसंगति पाइ नसाई ।

—तुलसीदास

कौन किसकी वेदना के मर्म का पहचान पाता ?

—बुद्धमल्ल

क्रोध मनोज लोभ मद माया । छूटहिं सकल राम की दाया ।

—तुलसीदास

खल परिहरिअ स्वान की नाईं ।

—तुलसीदास

खेलत खेल खिलारि गयै,
रहि जाइ रुपी शतरंज की वाजी ॥

—भूधरदास

खो देता है, सकल दुख को भेंटना कामिनी का ।

—अनूप शर्मा

गणिका संग जो शठ लीन भये धिक है धिक है धिक है तिन कौं ।

—भूधरदास

गये असज्जन की सभा, बुध महिमा नहिं होय ।

—दी. द. गि.

गरलहु को तरु लाय न चहिये निज कर छेदन ।

—दी. द. गि.

गुन तें होत प्रधान जग और ऊँच ते नाहिं ।

—दी. द. गि.

गुन प्रगटै अवगुन दुरै, जा के कमला साथ ।

—वृन्द

गुर बिन भवनिधि तरइ न कोई ।

—तुलसीदास

गौराणी की, सकल जग मे, ख्याति पाई गई है ।

—अनूप शर्मा

घर की आग बुझाय सबै बाहिरै बुझावै ।

—दी द गि

चलिये चाल सुचाल राखिये अपनो पानी ।

—गिरिधर

चातक बरु मरि जाय नीर सरवर नहिं पीवै ।

—गिरिधर

चार दिना यह चाँदनो फिरि अँधियारी रैन ।

—दी द गि

चाहे तुझ को सर्वजन, जब लग तू अनुसार ।

—गिरिधर

चोरी, जारी, झूठ हैं विद्या के प्रतिकूल ।

—गिरिधर

जब फूल पिरोये जाते हैं, हम उनको गले लगाते हैं ।

—दिनकर

जहाँ शस्त्रबल नहीं, शास्त्र पछताते या रोते हैं ।

—दिनकर

जहाँ सनेही तहँ रहत भ्रमत-भ्रमत मन आय ।

—वृन्द

जहाँ सुमति तहँ संपति नाना ।

जहँ कुमति तहँ बिपति निदाना ॥

—तुलसीदास

जाकी बानि परी सखि जैसी, सो निहि टेक रह्यो ।

—सूरदास

जाके कटक चुभ्यो न होई ।

का जानै पर पीरहि सोई ॥

—नन्ददास

जानो नहिं जिस गाम मे, कहा बूझनो नाम ।

—गिरिधर

जा मैं बहु श्रम होय तिहि लोग गनै फल वृन्द ।

—दी. द. गि.

जासों पहुँच न आइये, तासों बहस न ठानि ।

—वृन्द

जितै न कोऊ पारखी, सो थल नहिं बुध जोग ।

—दी. द. गि.

जियबो मरिबो ये उभै, नहिं है अपने हाथ ।

—गिरिवर

जिस जिस से पथ पर स्नेह मिला
उस उस राही को धन्यवाद ॥

—शिवमंगल सिंह सुमन

जूआ समान इह लोक में, आन अनीति न पेखिये ।

—भूधरदास

जे गुरुचरन रेनु सिर धरहीं, ते जनु सकल विभव बस करहीं ।

—तुलसीदास

जे समरथ है लोक मैं तिनकी मति विपरीत ।

—दी. द. गि.

जेहि कर मनु रम जाहि सन, तेहि तेही सन काम ।

—तुलसीदास

जैसो कारण होत है तैसो कारज आप ।

—वृन्द

जा अति आतप व्याकुल होई । तरु छाया सुख जानै सोई ॥

—गिरिधर

जो तुझका तोला झुके, तू झुक सेर पचीस ।

—गिरिधर

जो धन होवै पास संत पर कीजै श्रद्धा ।

—गिरिधर

जो न्यायी है, सुजन वह ही, पा सका सौख्य भी ता ।

—अनूप शर्मा

जीवन चंचल थिर नहीं, ज्यों कर-अंजुरि वारि ॥

—सूरदास

जो मन प्रिय सो प्रिय लगै गुन अरु रूप विहीन ॥

—दी द गि

जा मन होय मलीन सो पर संपदा सहै न ॥

—दी द गि

जा लायक जिहि होय सो, ताहि ठौर मनोग्य ।

—वृन्द

जा स्नेही हैं, मरन-मित हैं, सौभाग्यशाली वही हैं ।

—अनूप शर्मा

जो हैं साधु, सफल सब उन्हें, सम्पदा-युक्त होते ।

—अनूप शर्मा

जो होते हैं, सदय वह ही, धन्य हैं मेदिनी में ।

—अनूप शर्मा

जो पै जो को रोपिये कबहू शालि न होय ।

—वृन्द

ज्ञानी-ध्यानी स्वगृह तज के घूमते हैं वनों में ।

—अनूप शर्मा

ज्ञानी पुरुष वे वंद हैं, अज्ञानी जन कैद ।

—गिरिधर

ज्ञानी सारे, विषय तज के, श्रेय ही चाहते हैं ।

—अनूप शर्मा

भव भयातुर हो करके बना, कब तिरोहित रोहित से हुआ ?

—रा च उ

तन धन हू दै लाज वे जतन करत जे धीर ।

—वृन्द

तब लग होत न मान मजब की जब लग पासी ।

—गिरिधर

तहाँ नहीं कछु भय जहाँ अपनी जाति न पास ।

—दी द गि

तिमिर मृत्यु है ज्योति जिन्दगी बस मैंने तो यह समझा है ।

—बुद्धमस्त

ताक-झाँक अनुचित महा, कट जायेगी नाक।

—हरिऔध

तिस को सब कुछ सुलभ फेंट जब दृढ़ कर बाँधी।

—गिरिधर

तीनों मल उपाधि की जर जोरू जामीन।

—गिरिधर कविराय

तुम अपने सुख-दुख की गाथा अपने तक ही रक्खो सीमित।

—शिवमंगल सिंह 'सुमन'

तेजस्वी के निकट पल में द्वेष भी प्रेम होता।

—अनूप शर्मा

थोरे में यश होय यशी पुरुषन के सांई।

—गिरिधर

दंड्य प्रियहु जो अत्याचारी।

—द्वा. प्र. मि.

दरबहिं ते यह राज पसारा। दरब लागि जग आइ जोहारा।

—उसमान

दान भोग बिन नाश होत जो दियो न खायो।

(कस्यचित्)

दुख में आरत अधम जन पाप करै डर डारि।

—दी. द. गि.

दुहिकि सकत कोउ वंध्या गाई।

—द्वा. प्र. मि.

दूरता के गर्भ में जो रूपता भरी है वही
माधुरी ही जीवन की कटुता मिटाती है।

—रामचन्द्र शुक्ल

देखण काज जुरे सब ही जन नाचन पैठी तो घूंघट कैसो।

—धर्मसिंह

देखा-देखी करत सब, नांहिन तत्त्व विचार।

—वृन्द

दैवै को है एक देव खैवे कुं खलक है।

—धर्मसिंह

दो खड्गों को गृह न मिलना एक ही कोप मे है।

—अनूप शर्मा

दौलत पाय न कीजिये सपने मे अभिमान।

—गिरिधर

धन सम कुल सम धरम सम, सम वय मीत बनाय।

—बुधजन

धनी सुखी नहि तोष बिनु, तुष्ट निधन सुखवान॥

—दी द गि

धनी होत निरधन बहुरि, निरधन ते धनवान।

—वृन्द

धन्य घरी सोइ जब सतसगा।

—तुलसीदास

धरम न दूसर सत्य समाना। आगम निगम पुरान बखाना।

—तुलसीदास

नयना जब परवश भये, उत्तम गुण सब जाँय।

—गिरिधर

नर भूपन सब दिन क्षमा, बिक्रम अरि-धन घेर।

—वृन्द

नहि असत्य सम पातक पुजा

—तुलसीदास

नहि जोजन सत दूर जो, दुहु मन पूरन प्यार।

—दी द गि

नहि धन धन है, परम धन, तोषहि कहैं प्रवीन।

—दी द गि.

नाथ बयरु कीजे ताही सो। बुधि बल सकिअ जीति जाही सो।

—तुलसीदास

नाथ विषय सम मद कछु नाही। मुनि मन मोह करइ छन माहीं।

—तुलसीदास

निज दुख दुखी जु ताहि सो, किमि पर पीर हराय॥

—दी द गि.

निन्दा-स्तुति नर नित करत, हित-अनहित अनुसार।

—द्वा. प्र. मि.

नियरहिं दूर फूल जस काँटा। दूरहिं नियर सो जस गुर चाँटा।

—जायसी

निष्ठा हो तो, प्रणय-धन का, काल भी गौण ही है।

—अनूप शर्मा

नीच बड़न के संग तें पदवी लहत अतोल।

—दी. द. गि

न्यायी होना कठिन अति है, किन्तु है सौख्यदायी।

—अनूप शर्मा

पर-ती लखि जे धरती निरखैं, धनि हैं, धनि हैं, धनि हैं, नर ते।

—भूधरदास

पट बाहर जेइ पांव पसारा। जाड़ा कठिन अंत तेहि मारा॥

—नूरमुहम्मद

पर- धन लेत छिनाय इक, इक धन देत हसंत।

—वृन्द

परवित अदत्त अंगार गिन, नीति निपुन परसैं न कर।

—भूधरदास

परहित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई॥

—तुलसीदास

पराधीनता दुख महा, सुख जग में स्वाधीन।

—दी. द. गि.

परिमल प्रेम न आछै छपा॥

—जायसी

परुष वचन ते रोष, हित कोमल वचन समाज।

—वृन्द

परे विपति मैं दुष्ट कों मोचत नाहिं प्रवीन।

—दी. द. गि.

पलुहत काया-पादप, सुख के तोइ।

—नरमुम्मद

पाय बहुत सहवास को, पुरुष नहीं प्रिय होय।

—दी. द. गि.

पूजत लोग मलीन को पावन जन पूजें न।

—दी द गि.

पूजनीक गुन ते पुरुष दरसन पूजन होय।

—वृन्द

प्रीति कीजिये बड़न सो, समया लावै पार।

—गिरिधर

प्रेम वाक्य परदान ते, तुष्ट होय सब जत।

—गिरिधर

प्रेमी साथ करे प्रेम पशु बालक नर नारी।

—गिरिधर

फरइ कि कोदव बालि सुसाली।

—तुलसीदास

फूलों मे भी, मृदुल मन के, वज्र से क्रूर होते।

—*अनूप शर्मा*

बड़ी साधना के अनन्तर बड़े हैं,
प्रगति के चरण ये कहीं रुक न जाएँ।

—बुद्धमल्ल

बड़े जिती लघुता करैं, तिती बडाई पायें।

—वृन्द

बड़े भले सब लच्छ ते, नहिं बिन लछ के जोग।

—वृन्द

बनना आदमी कुछ और, होना आदमी कुछ और।

—सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

बनियाँ अपने बाप को ठगत न लावै बार।

—गिरिधर

बरनै 'दीनदयाल' कहाँ मारिस बहैं केसर।

—दी द गि

बरु भल बास नरक कर ताता। दुष्ट संग जनि देह विधाता।

—तुलसीदास

मरु जिय तरसाइ जाहु जनि भँवर भटैया ।

—गिरिधर

बाँके नर के होत हैं, वंदनीक सब लोय ।

—वृन्द

बिन गुण लहै न कोइ सहस नर गाहक गुन के ।

—गिरिधर

बिना समुति को रंक पंक रावण भे सांई ।

—गिरिधर

बीज बयो सो होय, कहा करै उत्तम क्यारी ।

—गिरिधर

बीती ताहि बिसारि दे, आगे की सुधि लेइ ।

—गिरिधर

बुध जन क्रूर स्वभाव को नहीं करै इतबार ।

—दी. द. गि

बुध नहिं करहिं अधम कर संगा ।

—तुलसीदास

बैठे-ठाले रुदन करना दुःखितों की क्रिया है ।

—अनूप शर्मा

ब्रह्म चीह्न जो आप को जपै कौन को जाप ?

—गिरिधर

ब्रह्म ज्ञान बिन विद्या सब ज्यों पाक मे दरवी ।

—गिरिधर

ब्रह्मानन्दी, पुरुप करुणा—मूर्ति हो राजते है ।

अनूप शर्मा

भगतिहिं ग्यानहिं नहिं कछु भेदा । उभय हरहिं भव-संभव खेदा ।।

—तुलसीदास

भगति हीन गुन सुख सब ऐसे । लवन बिना बहु बिंजन जैसे ।

—तुलसीदास

भद्रो के ही, चरण रचते, क्षेम है मेदिनी मे ।

—अनूप शर्मा

भले बुराई ते डरें, राख्या चाहें सोय।

भाग्यहीन को रैन मिले तो शान्ति न आवे।

—गिरिधर

भूखे दिन मरियै कि विष खाय मरियै पै
खामन के लोगन की जामिनी न करियै

—गुपालराय

भू में जीवे, थिर विषमता-साम्य का मजु जोड़ा।

—अनूप शर्मा

मदिरा सम आन निषिद्ध कहा, यह जाने भले कुल मैं न गही।

—भूधरदास

मधुर मोदक क्या पच जायगा,
कवि ! सवा मन वामन पेट मे ?

—रा च उ

मन का अनुराग पुकारे तब हर मजिल छोटी हो जाती।

—बुद्धमल्ल

मन मानस का स्वाभिमान मजुल मोती है।

—रामखेलावन वर्मा

मरा पुरुष जिय जान जबै पर घर गई भारी।

—गिरिधर

मागन गये सो मर रहे, मरे से माग न जाय।

—गिरिधर

माँ बनते ही त्रिया कहाँ से कहाँ पहुँच जाती है !

—दिनकर

मात पिता के पक्ष के पुरुषहि प्रगट प्रभाव।

—वृन्द

मानन हैं बहु दीन को आये सरन महान।

—दी द गि

मानुष जनम पाय सोवत विहाय जाय,
खोवत करोरन की एक एक घरी है।

—भूधरदास

मीन रु मेख कहैं ध्रम देख पै कर्म की रेख टरै नहीं टारी।

—धर्मसिंह

मूरख को सीख दे कै यूं ही बैन खोयो है।

—धर्मसिंह

मूरख हृदय न चेत, जौं गुर मिलहिं बिरंचि-सम।

—तुलसीदास

मोह महा-तम रहतु है जौ लौ ज्ञान न होत।

—वृन्द

यह काजर की ओवरी, निकरो अंग बचाय।

—दी. द. गि.

योगी होता, विजन-प्रणयी, और एकान्तवासी।

—अनूप शर्मा

योषा मूरति पाप की, ज्यहि लख भुले गँवार।

—गिरिधर

रन चढ़ि करिअ कपट चतुराई। रिपु पर कृपा परम कदराई॥

—तुलसीदास

रहैं न कबहूँ दोष लखि, एक सदन के माहिं।

—वृन्द

रागी बिन रागी के विचार में बड़ो ही भेद,
जैसे भटा पच काहू काहू को बयारे हैं।

—कस्यचित्

(राजभ्रष्ट लखि भूप को त्यागि जाहिं सब दास।) —दी. द. गि.

राजाओं का, वदन रहता, युक्त वर्चस्विता से।

—अनूप शर्मा

रामहिं केवल प्रेम पिआरा।

—तुलसीदास

रिपु रुज पावक पाप प्रभु अहि गनिय न छोट करि॥

—तुलसीदास

रिपु समान परिहरिय हरिय धन धरती जा को।

—गिरिधर

रुदन मानव के हृदय की विवशता है।

—बुद्धमल्ल

लखि दरिद्र को दूर तें लोग करें अपमान।

—दी द गि

लघु उपाय करि अरिन को निज बस करें सुजान।

—दी द गि

लोभ लगें जग मे सुप्रिय, धर्म न तैसे होय।

—दी द गि

वय समान रुचि होत है, रुचि समान मन मोद।

—वृन्द

वह फाका करि मरै जगत मे शोभा पावै।

—गिरिधर

वाक्यो से क्या ? यदि न बनना कार्य हो इगितो से

—अनूप शर्मा

वायस वायस ही बनें पिक सौं कैसौ जोर॥

(ज्ञात कवि)

विनय न मान खगेस सुनु। डाटेंहि पइ नव नीच॥

—तुलसीदास

विपति समय हू करत हैं, सत पुरुष पर-काम।

—वृन्द

वीरो को है, उचित मरना, पाँव पीछे न देना।

—अनूप शर्मा

वे नर कैसे जियें जाहि व्यापी है चिन्ता ?

—गिरिधर

श्रद्धा होगी, अविचल सदा, सत्य कामी जनो मे।

—अनूप शर्मा

श्री की उद्यम के बिना, कोऊ पावत नाहिं।

—दी द गि

श्रीमानो से, विनय करना, धर्म है आश्रितो का।

—अनूप शर्मा

श्रेया भू में, सकल जन को, मध्यमा वृत्ति ही है।

—अनूप शर्मा

संत विटप सरिता गिरि धरनी। परहित हेतु सबन्ह कै करनी॥

—तुलसीदास

संत संग अपवर्ग कर, कामी भव कर पंथ।

—तुलसीदास

संतापों को शमित करना धर्म है साधुओं का।

—अनूप शर्मा

सजन करत उपकार को वित माफिक जग मांहि।

—वृन्द

सत्कार्यों का, अनुकरण भी, पुण्यभागी बनाता।

—अनूप शर्मा

सत्कार्यों में, विहग, बहुधा, विघ्न आते घने है।

—अनूप शर्मा

समय फिरें रिपु होहि पिरीते।

—तुलसीदास

समया पलटे आय बाज पर झपटत बगला।

—गिरिधर

समर है सुखदायक सूर को,
कब रुचा रण चारण को भला ?

—रा. च. उ.

समुझि बूझि के चलो बुरी नयनन की नोकै।

—गिरिधर

सांई तहां न जाइये, जहां न आपु सोहाय।

—गिरिधर

सांई तहां न बैठिये, जहँ कोउ देय उठाय।

—गिरिधर

सांई बेटा बाप के बिगरे भयो अकाज।

—गिरिधर

सांई सब संसार में मतलब का व्यवहार।

—गिरिधर

साई समय न चूकिये, यथा शक्ति सम्मान ।

—गिरिधर

साधुन को खल संग में आदर अंग नसाय ।

—दी द गि

सिद्ध एक पुरुषार्थ हमारी भुक्ति-मुक्ति का मंत्र ।

—मै श गु

सुख-दुख इष्टानिष्ट बिना तनु रहै न खाली ।

—गिरिधर

सुन कपे ! जल में बस वीर के, सुयश का रण कारण मुख्य है ।

—रा च उ

सुर नर मुनि सबकै यह रीती । स्वारथ लागि करहि सब प्रीती ।

—तुलसीदास

सूधे होत न, स्वान-पूछ ज्यों पचि-पचि वैद मरे ।

—सूरदास

सो घर सत्यानाश जहाँ है अनिबन्ध नारी ।

—गिरिधर

सौ-सौ चूहे खाइके बिलारी बैठी तप के ।

—भूषण

स्वामी को है, अनुचित महा, त्यागना आश्रित का ।

—अनूप शर्मा

हित 'दीनदयाल' बड़ो कठिन है,
कठिनो जति अंत निबाहनो है ।

—दी द गि

है कठिन विषधार से भी आँसुओं के घूंट पीना ।

—हरिकृष्ण प्रेमी

—०—

हमारे अन्य प्रकाशन

आलोचना तथा शोध प्रबन्ध

१. महाभारत का आधुनिक हिन्दी प्रबन्ध काव्यों पर प्रभाव :
डा० विनय २०.००
२. आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और चरित्र विकास : डा० बेचन २०.००
३. स्वातन्त्र्योतर हिन्दी साहित्य : डा० बेचन १५.००
४. बच्चन व्यक्तित्व और कवित्व : जीवन प्रकाश जोशी १५.००
५. व्यक्ति और व्यक्तित्व : कपिलदेव नारायणसिंह ८.००

उपन्यास

कमला	शरत चन्द एवं अन्य	
तट के पंछी	श्री राम शर्मा राम	
आंधी का उतार	श्री राम शर्मा राम	
धूप और बादल	श्री राम शर्मा राम	
जहांगीर	श्री राम शर्मा राम	४
राह अलग अलग	यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र	-
छोटे साहब	भगवती प्रसाद वाजपेयी	७
पाप और पुण्य	कमल शुक्ल	५
निशा की गोद	कमल शुक्ल	२
गंगा	समरेश बसु	६ ५
सामाजिक कारा के बन्दी	हरदयाल सिंह	४

सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली-७
१६, यू० बी० बैंग्लो रोड दिल्ली—७

रक्खो सब पर सौहृद दृष्टि।
हमें हमारा धर्म विशाल,
आर्य बनाता है चिरकाल,
और बताता है यह कार्य
कि हम बना लें सब को आर्य।
प्राप्त करें जो कुछ हम लोग
करें न एकाकी उपभोग॥
नहीं चाहता किस का क्षेम?
है जितने जड चेतन जन्तु
निर्विस निरामय सुखी भवन्तु
हिन्दू नही चाहते स्वर्ग,
नहीं चाहते वे अपवर्ग।
करे दुख-तप्तों का त्राण,
यही चाहते उनके प्राण॥

(मै श गु हिन्दू पृ ११९-२९)

धर्म का बल

बदलनों की बदल बदल रगत, धर्म बद को सुधार लेता है।
दूर करना ठमक ठमक की है, ऐंठ का कान ऐंठ देता है॥
ठोकरें खा जो कि मुह के बल गिरे, हैं उन्हें उसने समय पर बल दिया।
धर्म ने ही भर रगों मे बिजलियाँ, कायरो का दूर कायरपन किया॥

(हरिऔध चुभते चौपदे, पृ १७६—१७७)

धर्म का सस्कार

फटक धर्मों की भूमी जीर्ण, मुक्त कर बीज स्वरूप प्रकाश,
मनुज सस्कृति मे उसको नव्य सँजोना हो चरितार्थ विकास।

(सु न प लोकायतन, पृ ३१८)

धर्म के ठेकेदार

कमचारी, लपट, ठगी, अपढ, असाधु, असत।
बन बैठे सब धर्म के, ठेकेदार महन्त॥

(रामेश्वर करुण करुण सतसई, पृ १३७)

धर्म धन

न हो नहीं यदि धन कुछ पास, रक्खो भुज बल का विश्वास।
सच्चा धन तो है बस धर्म, जो हिन्दू का जीवन मर्म॥

(मै श गु हिन्दू, पृ १७३)

धर्म :—ध्वजी

श्रोताओ ! मेरे उपदेशों को नोट करो;
तुम घिसो बुद्धि की सिल पर घोटमघोट करो।
प्रात: गीता या रामायण का करो पाठ;
फिर दिन भर चाहे जितनी लूट-खसोट करो॥

(काका हाथरसी : दुलत्ती, पृ. ६८)

धर्म : नित्य और अनित्य

सत्य, अहिंसा, इन्द्रिय संयम।
शौचास्तेय पंच धर्मोत्तम॥
नित्य इनहिं तुम जानो ताता।
सर्व काल सब कहँ सुख दाता॥
पुनि अनित्य बहु धर्माचारा।
प्रचलित देश—काल अनुसारा॥
वेदस्मृति शास्त्रहु कहत, वहु प्रकार युगधर्म।
अज्ञानिहि हठि आचरत, सुजन समुझितिन मर्म॥

(द्वा. प्र. मि. : कृष्णायन, पृ. ८१३)

धर्म : निन्दनीय

होत सदा जेहि आड़ लै, अत्याचार अपार।
क्यों न कहै तेहि धर्म कहँ, कोटि वार धिक्कार॥

(रामेश्वर करुण : करुण सतसई, पृ. ८७)

धर्म :—प्रेमी

हो जिसे धर्म से प्रेम कभी वह कुत्सित कर्म करेगा क्या ?
वर्बर, कराल, दंष्ट्री वन कर मारेगा और मरेगा क्या ?

(दिनकर की सूक्तियाँ, पृ. ५०)

धर्म : बौद्ध और ब्राह्मण्य

कोरा ईश्वरवाद करेगा क्या अहो ?
है जो प्रभु के कर्म उन्हें करते रहो।
बौद्ध और ब्राह्मण्य धर्म यों एक हैं;
दोनों में ही यही अभिन्न विवेक है।

(मै. श. गु. : मंगलघट, पृ. १४५).

धर्म :—भावना

मनुष्य विद्यार्चन, अर्थ--अर्जना
शरीर को शाश्वत जान के करे;
परन्तु त्यागे न कदापि भावना,
स्व-धर्म की जीवन अल्प मान के।

(अनूप : वर्द्धमान, पृ. २९३)